प्रसाद के नारी-चरित्र

प्रस्तुत पुस्तक का शीषक स्पष्टीकरण

'प्रसाद के नारी चरित्र' सागर विश्वविद्यालय से पी —एच डी की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध है। वस्तुत प्रबन्ध का पूर्ण शीर्षक 'आधुनिक भारतीय समाज तथा हिन्दी साहित्य मे नारी स्थिति और प्रसाद के नारी चरित्र' है। किन्तु मुख-पृष्ठ पर इतना लम्बा शीषक कुछ अच्छा नही लगता, इसीलिए 'प्रसाद के नारी-चरित्र' के रूप मे उसे छोटा कर दिया गया है। वैसे प्रस्तुत प्रबन्ध मे भारतीय समाज तथा हिन्दी साहित्य मे नारी-स्थिति का विवेचन प्रसाद के नारी-चरित्रो को आधुनिक जीवन और साहित्य के परिवेश मे देखने के उद्देश्य को लेकर ही हुआ है। प्रबन्ध के अन्तिम चार अध्यायो मे की गई विवेचना से इस कथन की पुष्टि हो जाती है। इसीलिए प्रथम खण्ड मे आधुनिक भारतीय समाज तथा हिन्दी साहित्य मे नारी स्थिति का विवेचन और विश्लेषण किया गया है और द्वितीय खड मे प्रसाद के नारी-चरित्रो का विस्तृत विवेचन। साथ ही आधुनिक भारतीय समाज तथा हिन्दी साहित्य मे नारी स्थिति के विवेचन के सदभ मे उनकी नारी सम्बन्धी मान्यताओ एव योगदान की विश्लेषणात्मक चर्चा की गई है। इस प्रकार प्रथम खण्ड विवेचना प्रधान बन पडा है और द्वितीय खण्ड विश्लेषण प्रधान। इसमे लेखक की अपनी क्या उपलब्धि रही है, यह तो सुविज्ञ समीक्षक-गण ही बता सकेगे।

आभार प्रदर्शन

प्रस्तुत प्रबन्ध को मैंने श्रद्धेय आचाय नन्द दुलारे जी वाजपेयी के माग निर्देशन म लिखा है। सभी प्रकार की सुविधाओ और सबसे विशेष अपने अमित स्नेह और प्रोत्साहन से उन्होने इस प्रबन्ध की लेखन-अवधि मे मुझे साहित्यिक-क्षेत्र मे प्रवेश करने के लिए जो शक्ति और प्रेरणा प्रदान की है, वह मेरे लिए एक अमूल्य निधि है। 'डॉक्ट्रेट' की उपाधि से कही अधिक मैं अपनी उपलब्धि उनके स्नेह और आशीर्वाद की प्राप्ति को ही मानता हू।

श्रद्धेय भाई डॉ चन्दू लाल दुबे और डॉ मोहन चन्द्र जोशी ने इस सदभ मे मुझे जो स्नेह, प्रेरणा और अपनापन दिया है, उसके अभाव मे मैं कभी शोध-काय की कल्पना भी न कर पाता।

इसके साथ ही मैं उन सभी महानुभावो एव सस्थाओ का आभार स्वीकार करता हू जिन्होने मुझे इस दिशा मे मनोबल प्रोत्साहन और सहायता प्रदान की है और जिनकी प्रेरणा से ही मैं इस श्रम-साध्य काय को पूर्ण कर पा सका हू। अस्तु।

—देवेश ठाकुर

अनुक्रमणिका

स्पष्टीकरण

क्रान्ति : आधुनिक युग का आरम्भ
(तिथि-निर्धारण और विषय के महत्त्व पर विचार)

क्रान्ति और नवीन युग

प्राणी-मात्र का विकास सृष्टि की सहज स्वाभाविक प्रक्रिया है। प्रत्येक चेतन वस्तु अपनी अवस्था, वातावरण और प्रकृति के अनुसार गतिशील बनी हुई है। जीवन का प्रत्येक अणु दिन-प्रतिदिन की साधारण-असाधारण घटनाओ के माध्यम से भि न-भिन्न प्रकार के मोडो पर पहुँचता हुआ भी अपने विकास की शृखला मे सुसम्बद्ध है। प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व और उन्नति की पृष्ठभूमि मे विकास की भावना ही कायरत होती है। ठीक इसी प्रकार से मानव-समाज भी सृष्टि के प्रथम चरण से विकास पथ पर अग्रसर होता हुआ आज की उन्नत एव सवतोमुखी विकसित सामाजिक व्यवस्था तक आ पहुँचा है, और सदैव ही की भाति आज भी अपने नये-नये स्वरूपो मे नई-नई मान्यताओ को स्थापित्व प्रदान कर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। समाज का विकास निरन्तर प्रक्रिया एव गतिशीलता का परिणाम होता है। उस की मान्यताएँ सस्कृति तथा परम्पराएँ समय-समय पर नवोदित प्रतिभाओ द्वारा परिवर्धित एव सशोधित होती रहती है, और उनको नए युग का नया प्रकाश मिलता रहता है। लेकिन विकास की इस परम्परा के क्रम मे कभी कभी किसी विशेष घटना को लेकर कोई महान् परिवतन होता है और हमे उस परिवर्तित व्यवस्था मे पिछली परम्पराओ तथा आदर्शों से सवथा नवीन कुछ तथ्य दिखाई पडते है जो पुरातन परिपाटी के जीण आवरण को उघाड कर किसी नवीन दृष्टिकोण तथा नई जागृति की भावना का शिलान्यास करते है। यह नया दृष्टि-कोण सामाजिको को अपने बौद्धिक प्रयोग के लिए नवीन भावभूमि प्रदान करता है। इस नवीन भावभूमि की अवतारणा उस महत्वपूण जागृति एव आमूलमूल-परिवर्तन का परिणाम होती है जिसे हम क्रान्ति के नाम से पुकारते हैं, और इसी महान् क्रान्ति के बाद का युग नवीन युग कहलाता है। इस नवीन युग मे समाज परम्परागत सकीर्णविश्वासो को वही छोड, नवीन आदर्शों की स्थापना करते हुए अपने लिए उन्नति और विकास के नवीन मापदण्डो की योजना करता है।

क्रान्ति अपने स्वभाव मे किसी विस्फोट की भाँति अचानक ही फूट पडने वाली ज्वाला नही । इस विषय को लेकर वास्तविकता यह है कि यह परिवर्तन-

कारी भावना पिछली रूढिवादिता, अन्धविश्वासो और शोषण के विरुद्ध सामाजिको के मस्तिष्क मे नवीन दृष्टिकोण एव नए विश्वासो के रूप मे उपज कर धीरे-धीरे परिपक्व होती रहती है, और जब प्रत्याशित सफलता की सम्भावना को सुदृढ और व्यावहारिक धरातल की प्राप्ति हो जाती है तो किसी घटना-बिन्दु को लेकर वह प्रस्फुटित होती है और वही से क्रान्ति का सूत्रपात होता है। फलस्वरूप समाज को नया दर्शन मिलता है, नये आदर्श उसके सम्मुख आते हैं, अपने विश्वासो के प्रसार का उसे अवसर मिलता है और नई दिशा मे चलने की प्रेरणा प्राप्त होती है। यहाँ पर 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग करते हुए यह जान लेना भी आवश्यक है कि इस 'शब्द' के मूल मे 'शिव' की भावना निहित है। क्रान्ति सदैव ही शुभ के लिए, मगल की ओर अग्रसर होने के लिए ही होती है। उसके द्वारा समाज के अमगल और सकुचित दृष्टिकोण का विनाश होता है और इस प्रकार से समाज प्रगति और उन्नति के नये आदर्शो को लेकर नये युग के विकास की ओर उन्मुख होता है।

क्रान्ति से पूर्व का भारत

किसी भी क्रान्ति और उससे प्रसूत नवीन युग की पृष्ठभूमि मे राजनैतिक विषमता, शासकीय निरकुशता, आर्थिक शोषण, धार्मिक कट्टरता एव सास्कृतिक रूढवादिता ही मुख्य कारण होते हैं। अट्ठारहवी और उनीसवी शती के मध्य योरूपीय राजनीति के रगमच पर जिन महान् क्रान्तियो को अभिनीत किया गया, उन सब के मूल मे किसी न किसी रूप मे उपयुक्त कारण ही विद्यमान थे। फ्राँस की राज्य-क्रान्ति लुई-कालीन जीर्ण-शीर्ण सामाजिक अव्यवस्था, जनता के लिए आर्थिक एव राजकीय नियमो की असमानता, निर्धन कृषको के प्रति शासको की शोषण प्रवृत्ति, एकता के अभाव एव आभिजात्य वर्ग की अनन्त सुविधाओ तथा सम्राट के असीमित अधिकारो के विरुद्ध वहाँ के बुभुक्षित एव शोषित समाज की विद्रोहिनी हुकार थी। वाल्टेयर और रूसो ने स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव का नारा लगाकर तत्कालीन सामाजिक प्रथाओ एव मान्यताओ पर गहन प्रहार करते हुए सम्राट् होने के देवी अधिकार के सिद्धान्त का साहसिक खण्डन किया था। फ्राँस के सम्राट् ने पहली बार जनता की शक्ति मे वह विश्वास देखा था जो अनाधिकृत शोषण और अत्याचारो के विरुद्ध अपना मस्तक ऊँचा कर बडे से बडे साम्राज्य को विनष्ट कर सकता है और अकल्याणकर रूढियो एव अधविश्वासो पर आधारित सिद्धान्तो को मिटा कर बौद्धिकता की मनोभूमि पर अपनी मातृभूमि के लिए पुरातनता से सर्वथा नवीन सामाजिक, राजनैतिक अथवा धार्मिक व्यवस्था को जन्म दे सकता है[१]।

१—स्मिथ, पूजी तथा लायड वर्ल्ड हिस्ट्री, पृष्ठ ३०५

इससे पूव इगलैड मे १६८८ मे हुई रक्त-हीन राज्य क्रांति भी सम्राट की असह्य निरकुशता के विरोध तथा नागरिको के अधिकार प्राप्त करने की दिशा मे एक सफल चेष्टा थी। राजा की सावदेशिक एव सावभौमिक सत्ता की मान्यता के विरोध के फलस्वरूप ही वहा की जनता अपने अधिकारो की व्याख्या करवाती हुई राजा की अधिकार शक्ति की सौमित्र रेखा खीच सकी[१]। आर्थिक तथा राजनतिक क्रांति का अन्य उदाहरण अमेरीका का स्वातत्र्य-युद्ध है। १८वी शती के सातवे दशक तक अमेरीका के तेरह उपनिवेश अग्रजो के आधीन थे। इन उपनिवेश वासियो ने व्यापार की असुविधाओ तथा अधिकतम कर के रूप मे आर्थिक शोषण के विरुद्ध[२] विरोध का स्वर ऊँचा किया, और अग्रेजो के सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६--६३) की विजय से उत्पन्न अति विश्वास पर १७७६ क स्वातत्र्य युद्ध और विजय के माध्यम से गहरा आघात पहुँचाया। उस काल की अमेरीकी जनता का प्रतिनिधित्व वाशिगटन ने 'प्रतिनिधित्व बिना कर नही देगे' का नारा लगा कर किया था और उनको अपने अधिकारो के प्रति चेतना दी थी।

योरूपीय देशो की भाति एशिया मे भी जब चीन की मच सरकार अग्रेजो द्वारा किए जाते हुए अफीम के व्यापार पर निय त्रण न कर सकी, उनके द्वारा प्रोत्साहित एव प्रचारित ईसाई धम को अपने देश की मिट्टी मे पल्लवित होने से रोक सकने मे असमथ रही और देश की दिन प्रतिदिन गिरती हुई आर्थिक दशा को सुधारने की दिशा मे प्रयत्नशील न हो सकी, तो निदान १८५० मे चीन की जनता ने 'टाइपिंग विद्रोह' के रूप मे अपनी तत्कालीन सरकार के प्रति असतोष प्रकट किया और देश की रक्षा की बागडोर स्वय अपने हाथ मे लेनी चाही। इसी प्रकार उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक भारतीय समाज भी सभी क्षेत्रो मे आदश-विहीन तथा आत्म-विस्मृत हो अध पतन की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। राजनैतिक व्यवस्था के क्षेत्र मे मुगल साम्राज्य का महान प्रासाद बहादुर शाह के अशक्त व्यक्तित्व की नीव पर खडा हुआ डगमग कर रहा था। महाराष्ट्र जाति के गौरवपूण अभ्युत्थान का शिर विधाता के कठोर वज्र-दण्ड से चूर-चूर हो[३] विनष्ट हो चुका था। सिक्खो का विजय-सूय उदयाचल के शिखर पर ही[४] तिरोहित हो किसी अनचाहे अधकार को निमत्रण दे रहा था। सारा देश खण्डो-उपखण्डो मे विभाजित हो, अपनी मूल-शक्ति क्षीण कर चुका था। कही भी कोई ऐसी शक्ति

१—स्मिथ, पूजी तथा लायड वल्ड हिस्ट्री, पृष्ठ २४५

२—जवाहर लाल नेहरू ग्लिम्प्सेस ऑफ वल्ड हिस्ट्री, पृष्ठ ३५८.

३—विवेकानन्द चरित ले० सत्येन्द्र नाथ मजूमदार अनु० मोहिनी मोहन गोस्वामी, पृष्ठ ३०

४—वही, पृष्ठ ३०

शेष नही थी जो इन बिखरे सूत्रो मे एक्य स्थापित कर किसी केन्द्रीय शक्ति का निर्माण कर सकती । और इसी प्रकार से तत्कालीन सगठन-विहीन समाज राष्ट्रीय स्तर पर देश के हित की बात सोच सकने मे असमर्थ था । अब तक वणिक अग्रेजो का मापदण्ड राजदण्ड के रूप मे परिवर्तित हो चुका था । उन्होने राज्य विस्तार की नीति अपना कर देश के शासन व्यवस्था पर अपना प्रभुत्व जमा लिया । छोटे-बडे बहुत से राज्य उनकी अपहरण नीति के सुलभ मृगया क्षेत्र बन चुके थे, और उनके द्वारा आनीत पाश्चात्य शिक्षा, भाषा, सभ्यता एव धर्म के माध्यम से भारतीय दृष्टिकोण मे क्रान्ति की तीव्र लहर दौड चली थी । इस प्रकार बारहवी शताब्दी के भारतवर्ष मे जिस प्रकार असहाय होकर हिन्दू और बौद्ध एक ही साथ सिर झुकाते हुए इस्लामी राज्य शक्ति के सामने खडे हुए थे, अट्ठारहवी उन्नीसवी शताब्दी मे ठीक उसी तरह हिन्दू और मुसलमान दोनो बदनसीब जातियाँ प्राय बिना प्रतिवाद के अग्रजो के चरणो मे झुक चुकी थी[1] ।

सामाजिक स्थिति के क्षेत्र मे हिन्दू जाति का तीव्र गति से ह्रास हो रहा था । इस्लाम के प्रभाव से आत्म-रक्षा के लिए 'सती, बाल-विवाह, पर्दा, खान पान के बन्धन एव छून-छात आदि की जो दीवारे खडी की गई थी, इस काल तक आते-आते उन दीवारो ने उनकी अपनी उन्नति के मार्ग मे अवरोध उत्पन्न कर दिया[2] । जाति वहिष्कार की प्रथा वहिष्कृत हिन्दुओ मे हिन्दू-धर्म के प्रति खीझ उत्पन्न कर रही थी । सम्पूर्ण समाज मे रूढियो, अन्ध-विश्वासो एव परम्परागत सकीर्णता का स्वर ऊँचा था ।' बाल-विवाह, बहु-विवाह तथा गर्भ-विवाह सब प्रचलित थे । जाति तथा वर्ग-भेद विधवा जीवन की विडम्बना, महिला समाज मे शिक्षा का अभाव इनकी व्याप्ति के परिणाम स्वरूप हिन्दू जनता के मन मे उत्पन्न आक्रोश किसी न किसी बहाने फूट पडने के लिए अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था । ये सभी विषमताएँ देश भर मे व्याप्त थी ।

हिन्दू जाति की भाँति यह काल मुसलमानो की भी सामाजिक अवनति का काल था । मुसलमान जाति मे व्याप्त अशिक्षा उन्हे नवीन दिशा दे सकने मे सर्वथा असमर्थ थी । नवाबो के अधिकार अग्रेजी शासन द्वारा छीने जा चुके थे । कम्पनी की राजनीति द्वारा उन की स्थिति का पूर्णत अध पतन हो चुका था । धर्म-गुरू भी अपने क्षेत्र मे निरकुश न रह गये थे । उन के बनाये धार्मिक नियमो का निषेध कर, विदेशियो ने अपने अनुकूल नियमो को भारतीय सामाजिक एव राजनैतिक व्यवस्था मे मान्यता प्रदान की थी । काजियो के प्रभुत्व तथा फारसी भाषा का

१—विवेकानन्द चरित्र ले० सत्येन्द्र नाथ मजूमदार अनु० मोहिनी मोहन, गोस्वामी पृष्ठ ३० ।

२—दयानन्द सरस्वती ले० हरिचन्द्र विद्यालकार, पृष्ठ ४६ ।

३ वही, पृष्ठ ४६ ।

वहिष्कार कर अग्रेजो ने मुसलमानो की सामाजिक सुदृढता के मूल पर घातक प्रहार किया था। इस प्रकार मुसिलम जाति के सरक्षक नवाब और धम-गुरू दोनो ही शक्ति-हीन हो, अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा खो चुके थे। उनमे अब नेतृत्व की योग्यता नही रह गई थी[1]।

सामाजिक अव्यवस्था की तरह हिन्दुओ का धार्मिक जीवन भी निष्क्रिय और खडित हो चुका था। पूर्व मध्य युगीन धार्मिक परम्परा की उत्कृष्टता लुप्त-प्राय हो चली थी। विशुद्ध वैदिक धर्म, वैष्णव, शैव तथा शाक्त आदि सम्प्रदायो-उपसम्प्रदायो आदि मे विभक्त होकर शक्तिहीन हो आलस्य प्रमाद और गतिहीनता की सृष्टि कर रहा था। ब्राह्मण एव आचार्यगण वाह्य आडम्बरो के कुहरे मे वैदिक काल की वास्तविक ज्योति को भुला चुके थे। देश भर मे मन्दिर और मठो का निर्माण कर देवदासी के रूप मे खुला अनाचार हो रहा था। धर्म के तीनो अगो (ज्ञान, कम तथा भक्ति) के प्रति जनता मे उदासीनता व्याप्त हो रही थी। 'स्वामी शकराचार्य द्वारा चलाया हुआ अद्वैतवाद जन-साधारण और कलुष आत्माओ मे पहुँचकर भारतीय आत्मा मे निष्कर्मण्यता तथा पाप वासना का महान् कारण बन रहा था।' 'अहम् ब्रह्मास्मि' कह कर साधु-सत, जो भिन्न-भिन्न मन-मतान्तरो के परिणाम स्वरूप प्रकट हुए थे, अपने आप को पाप-पुण्य की भावना से ऊपर समझने लगे थे[2]।' भक्ति-माग अपनी पुनीत भावना को त्याग, राधा-कृष्ण को सामान्य प्रेयसी-प्रेयस के रूप मे स्थापित कर, अपने को धन्य समझ, घोर शृगारिक भावना की अभिवृद्धि कर रहा था[3]। हिन्दू धर्म के साथ-साथ जैन-धम भी अपनी अहिंसा की मूलभूत भावना का परित्याग कर कायरता, विडम्बना तथा निष्क्रियता का शिकार हो चुका था।

ऐसे समय मे, जब भारतीय समाज अपने कुसस्कारो के बोझ से दब कर आत्मरक्षा कर सकने मे असमर्थ था, अँग्रेजो ने परिस्थितियो तथा वातावरण का लाभ उठाकर ईसाई मत का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। 'विजित जाति की मनोवृति के अनुकूल बहुत से भारतीयो को इस नये धम मे एक नया दर्शन मिला। हिन्दू-धर्म की सकीर्णता से ऊबे हुए लोग ईसाई मिशनरियो के धर्म-प्रचार के शान्त उपायों तथा आर्थिक लोभ से आकर्षित हो, उस मे दीक्षित होने लगे। पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा के प्रति भारतीयो मे एक विश्वास उत्पन्न हो गया और धीरे-धीरे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचने लगे कि पतनोन्मुख भारतीय समाज की रक्षा पश्चिमी सभ्यता और सस्कृति के आलोक मे ही की जा सकती है।

दूसरी ओर, इग्लैड मे हुई औद्योगिक क्रान्ति ने भारत के आर्थिक जीवन

१—पन्निकर ए सर्वे ऑफ इन्डियन हिस्ट्री, पृष्ठ २८१।
२—महर्षि दयानन्द सरस्वती ले० हरिश्चन्द्र विद्यालकार, पृष्ठ ४५।
३—वही, पृष्ठ ४५।

को बहुत अधिक प्रभावित किया। भारत, अंग्रेजो के आधीन होने के कारण उनके देश की उन्नति के लिए कच्चे माल के निर्यात का साधन बन गया। परिणाम स्वरूप देश की आत्म-निर्भर ग्राम्य-व्यवस्था खडित हो गई। अब हिन्दू और मुसलमान दोनो जातियो के सम्मुख जीविका उपाजन की समस्या मुख्य थी। इस युग मे भारतीय शिल्प-कला का ह्रास हुआ। देश का धन विदेशी हाथो देश से बाहर जाने लगा। विदेशियो की यह चतुर्मुखी शोषण-नीति देश भर मे व्याप्त हो गई। परिणाम स्वरूप इस के प्रति सभी क्षेत्रो मे असतोष उत्पन्न हो कर सन् १८५७ की महान् क्रान्ति का सूत्र-पात हुआ।

क्रान्ति के परिणाम मूल्य और महत्व

परन्तु देश-व्यापी क्राति की यह लहर जो एक समय सतलज से नर्मदा तक व्याप्त हो गई थी अंग्रेजी शासन के सुदृढ हाथो दबा दी गई। स्वातन्त्र्य सग्राम की इस असफलता के बाद देश का शासन-सूत्र कम्पनी के हाथो से निकल कर ब्रिटिश पार्लियामेट के हाथो मे चला गया और महारानी विक्टोरिया देश की साम्राज्ञी घोषित हुई। इस प्रकार भारतीय इतिहास मे पहली बार विदेशी सत्ता का आविर्भाव हुआ। ईस्ट इन्डिया कम्पनी का अन्त हो गया और 'कम्पनी के डाइरेक्टरो ने इस विशाल देश को महारानी के प्रत्यक्ष नियन्त्रण मे समर्पित[1] करके भारतवर्ष से विदा ली। १ नवम्बर, १८५८ मे हुई अपनी घोषणा मे साम्राज्ञी ने भारतीयो को विश्वास दिलाया कि उनके साथ अन्य प्रजाजनो जैसा ही न्याय-सगत व्यवहार किया जाएगा। जाति-पाँति तथा रग-भेद का विचार न कर सब को योग्यतानुसार उन्नति के समान अवसर प्रदान किये जाएगे तथा देश के सवतोन्मुखी विकास के लिए शासन सदैव ही प्रोत्साहन देता रहेगा[2]। इतनी उदार घोषणा, पराजित एव हतोत्साहित भारतीयो के लिए आशा का सुवर्णिम सदेश लेकर लाई थी। परन्तु व्यावहारिक रूप मे अंग्रेजो की नीति इसके विपरीत ही थी। क्राति के पश्चात् अंग्रेज और भारतीयो के बीच आतरिक विद्वेष की दीवारे खडी हो गईं। इतना ही नही, हिन्दू और मुसलमान भी परस्पर वैमनस्य की भावना लिये दो विरोधी शिविरो मे विभक्त हो गये। मुसलमानो की धारणा थी कि क्रान्ति की असफलता का कारण हिन्दुओ की असहयोग नीति ही है और इसी कारण मुगल साम्राज्य का जर्जर भवन सदा के लिए धूलि-धूसरित हो गया है।

अब शासन-शक्ति ब्रिटिश पार्लियामेट मे जाने के परिणाम स्वरूप उसकी शक्ति विस्तृत हो गई। भारत मे सुरक्षा और शान्ति स्थापित करने के लिए भारतीयो के साथ बाह्य रूप से उदार नीति का व्यवहार होने लगा। उच्च पदो

१—स्मिथ द आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, पृष्ठ ७०६।

२—सी वाई चिन्तामणि इन्डियन पालिटिक्स सिन्स द म्यूटिनी, से उत्कथित।

पर नियुक्ति का मापदण्ड धर्म तथा रग न होकर योग्यता घोषित किया गया। क्रांति के पश्चात् अ ग्रेज भारतीयो की ओर से सतक हो गये थे। भारतीयों के अन्तर का विद्रोह किसी भी क्षण बाहर फूट सकता है, उन्हे अज्ञात न था। अत आत्म-रक्षा के दृष्टिकोण से अब देश मे अग्रेजी सेना का आधिक्य हो गया। देशीय सेना मे उच्च वग के भारतीयों की नियुक्ति न्यूनाधिक रूप से बन्द कर दी गई तथा युद्ध सामग्री अग्रेजी सेना के आधीन हो गयी।

राजनीति तथा बौद्धिकता के अनुपात मे उपर्युक्त क्रान्ति को धार्मिक तथा भावात्मक कहना ही अधिक तक सगत होगा। राजनैतिक दृष्टि से इस क्रान्ति को असफल कहा जा सकता है क्योकि इसके पश्चात् भारत मे अ ग्रेजी शासन सुदृढतर हो गया। परन्तु अन्य क्षेत्रो को लेकर इसका मूल्य और महत्व कम नही है। क्रान्ति के पश्चात् कम्पनी की उस प्रत्यक्ष शोषण नीति का अन्त हो गया, जो क्रान्ति के कारणो मे मुख्य थी। साम्राज्य-विस्तार की भावना का अन्त करके अब उन्होने अपनी समस्त शक्ति का उपयोग विजित क्षेत्रो मे शान्ति और सुरक्षा की स्थापना मे आरम्भ कर दिया। अग्रेज लोग अब इस तथ्य को भली-भाँति परिचित हो गये थे कि भारतीय जनता मे अपनी सामाजिक परम्पराओ तथा धार्मिक विश्वासो के प्रति अगाध श्रद्धा है। अत इन क्षेत्रों मे किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप कभी भी महान् विद्रोह की भूमिका प्रस्तुत कर सकता है। इसी कारण उन्होंने सामाजिक तथा धार्मिक पहलुओ पर हस्तक्षेप की नीति का अन्त कर दिया।

इधर भारतीयो मे इस क्रान्ति के पश्चात् नई जागृति का दिशा-ज्ञान हुआ। स्वतत्रता के महत्व को उन्होने पहली बार अनुभव कर, अपने हितों को राष्ट्रीय स्वरूप देना प्रारम्भ किया। वास्तव मे सन् १८५७ की क्रान्ति भारतीयो की एक परीक्षा थी कि वे किस सीमा तक एकता, स्वतन्त्रता तथा जन-शक्ति के महत्व को समझ सके थे। सदियो पश्चात् भारतीय राजनीति मे उस सामान्य शासन-प्रणाली का अभ्युदय हुआ था जिससे भारतवर्ष एकता के सूत्र मे बँध पाया[१]। एकता की इस भाव-भूमि का भी भारतीयो पर पूण प्रभाव पडा और वे पहली बार यह अनुभव करने लगे कि समस्त भारतीय राष्ट्रीय स्तर पर एक हैं। राष्ट्रीय भावना के इस उद्भव ने उनके मस्तिष्क मे नव-जागृति की भाव-भूमि प्रस्तुत कर भारत मे नवीन युग के विकास का काय प्रस्तुत किया।

भारत मे नवीन युग—तिथि निर्धारण

भारतीय जन-क्रान्ति के पश्चात् का काल भारतीय जन-जागृति का काल था। सन् १८५७ से सन् १८८५ तक के मध्य सभी क्षेत्रो मे देश-व्यापी परिवतन हुए और उन परिवर्तनो ने भारतीय मस्तिष्क को राष्ट्रीयता सम्बन्धी खाद्य सामग्री

१—के० एम० पन्निकर ए सर्वे आफ इन्डियन हिस्ट्री, पृष्ठ २६०।

प्रदान की। किसी भी युगारम्भ की तिथि एक निश्चित तिथि न होकर एक काल-विशेष होती है और पूवकाल तथा मध्यकाल के मध्य कोई भी स्पष्ट रेखा इसलिये नही खीची जा सकती क्योकि युगारम्भ किन्ही वैज्ञानिक तथ्यो या परिणामो पर आधारित न होकर जन साधारण के विचारो, उनकी भावनाओ तथा कार्य कलापो से सम्बन्धित होता है, और धीरे-धीरे विकास की प्राप्ति के माध्यम मे नवीन काल की पूर्व पीठिका निर्मित होती है और समाज के आदर्शो को एक नया दर्शन मिलता है।

फिर भी युगारम्भ की तिथि सामान्यत ऐतिहासिक क्रान्ति और राजनैतिक परिवर्तन, समाज तथा धर्म सम्बन्धी सुधार, शैक्षणिक विकास तथा राष्ट्रीय भावनाओ के प्रादुर्भाव की पृष्ठभूमि मे ही निश्चित की जा सकती है। इन्ही सकेतो के आलोक मे भारत मे युगारम्भ की तिथि का निर्धारण भी किया जा सकता है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति की दिशा मे सन् १८५७ की जन-क्रान्ति भारतीय इतिहास की सवप्रथम क्रान्ति है। यही से भारतीय समाज मे सव-प्रथम विदेशी शासन की स्थापना होकर रूढिगत सामाजिक मान्यताओ मे परिवतन होना प्रारम्भ हुआ। एक राष्ट्र, एक भाषा तथा एक लक्ष्य की भावना को यही प्रश्रय प्राप्त हुआ, और इसी से प्रेरणा प्राप्त कर, सम्पूर्ण देश नई जागृति और नए विश्वास को ले, आत्म-विकास और स्वतन्त्रता प्राप्ति की दिशा मे अग्रसर हुआ।

क्रान्ति की असफलता के पश्चात् भारतीय शासन-सूत्र अग्रेजी ससद के हाथो मे चला गया। १८५८ के अधिनियम के अनुसार कम्पनी के शासन का अन्त होकर महारानी विक्टोरिया के द्वारा और उसके नाम का शासन आरम्भ हुआ। कम्पनी कालीन 'बोर्ड आफ कन्ट्रोल' तथा 'कोट आफ डाइरेक्टस' मे निहित शक्ति भारत सचिव को प्रदान की गई और उसकी सहायता के लिए १५ सदस्यो की 'भारतीय परिषद' का निर्माण हुआ। देशी राजाओ को अपने राज्यो मे स्वतन्त्रता प्रदान की गई जिसके परिणाम स्वरूप देश की सरक्षकता साम्राज्ञी, भारत सचिव तथा देशी राजाओ के बीच विभक्त हो गई। इस प्रकार शासन-प्रबन्ध के क्षेत्र मे अपूर्व व्यवस्था कर अग्रेजो ने भारतवर्ष मे राज्य करना आरम्भ किया। १८५७ से १८८५ तक भारतीय राजनैतिक व्यवस्था मे जो भी परिवर्तन हुए वे सब अग्रेजी राज्य तथा ब्रिटिश ससद के बदलते हुए नियमो के परिणाम थे। अग्रजो ने अपनी कार्य-प्रणाली को शिक्षा प्रसार से आरम्भ किया। १८५७ मे ही मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयो की स्थापना हो गई थी। अब नगरो मे शिक्षा विभाग खोले गए। वर्नाक्यूलर मिडिल पाठशालाओं तथा हाई स्कूलों की स्थापना तथा उनका विकास करके १८८२ तक देश भर मे शिक्षा

सस्थाओ का जाल सा बिछा दिया गया। १८८२ मे हटर कमीशन के निदेश से प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय बोड के आधीन करके लगभग सभी प्रमुख नगरो मे शिक्षा प्रसार का उचित प्रबन्ध किया जा चुका था। इससे पूर्व १८७८ मे पजाब विश्वविद्यालय कॉलेज का विकास हो चुका था। इसके पाँच वष बाद प्रयाग विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

भारत मे नवीन जागृति का दूसरा प्रमाण इस काल मे हुए बहुदिशि सामाजिक एव धार्मिक सुधार थे। आवागमन के साधनो तथा डाक-व्यवस्था के विकास ने देश के दूरस्थ छोरो को परस्पर मिला दिया था। सम्पूर्ण देश मे समान न्याय-प्रणाली की स्थापना, जमीदारो के असीमित अधिकारो की सीमा उद्धता तथा कर आदि के नियमो की सुस्पष्ट व्याख्या ने देश वासियो मे एकीकरण तथा समान दिशा मे बुद्धि-प्रयोग की भावना को विकसित कर, उन्हे, पहली बार जातीयता के सकीण घेरे से निकाल, राष्ट्रीयता के स्वरूप को सम्मुख रख, सोचने की भावभूमि प्रदान की थी। स्थानीय सस्थाओ के निर्माण से नागरिक-गण अपने अधिकारो के प्रति जागरूक हो, स्वशासन के महत्व को अनुभव कर धीरे-धीरे अपने कतव्यो से अवगत हो रहे थे। इसी समय भारतवष मे महान् सुधारको का जन्म हुआ जिन्होने जन-जीवन की प्रगति और विकास के प्रति उदासीन एव आशकित अवस्था को नवीन उत्साह और शक्ति प्रदान की। सुधारको की यह परम्परा १९वी शताब्दी के प्रथम चरण मे राजा राम मोहन राय से आरम्भ हो कर दयानन्द, विवेकान द एव महादेव रानाडे आदि महान सुधारको से माग दशन प्राप्त करती हुई गाँधी जी तक शृखलित रही और उसने राष्ट्र के भाग्य-निर्माण मे विशेष सहायता प्रदान की। इन सुधारको द्वारा लाई गई सामाजिक एव धार्मिक पुनरुत्थान की इस लहर ने पतनोन्मुख समाज को नए आदर्शों का सम्बल प्रदान किया, जिस से खडित और तिरोहित होती हुई सामाजिक प्रतिष्ठा को बल मिला। धार्मिक जागृति और सामाजिक उन्नयन के इस प्रयास में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आय समाज तथा ब्रह्म विद्या समाज आदि सस्थाओ के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्ही सस्थाओ के सतत् सक्रिय प्रयत्न से देश मे सामाजिक प्रगति के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना को विकसित होने का श्रेय प्राप्त हुआ और राष्ट्रीय स्तर पर सस्थाओ की स्थापना प्रारम्भ हुई।

प्रादेशिक सस्थाओ की स्थापना की दिशा में भी इस काल मे प्रयत्न हुआ। क्रान्ति से पूर्व १८५१ मे प्रसन्न कुमार ठाकुर, डा० राजेन्द्र लाल मित्र तथा हरिश्चन्द्र मुकर्जी के प्रयत्न से 'ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन' की स्थापना हो चुकी थी। बगाल से प्रेरणा प्राप्त कर दादाभाई नौरोजी तथा जगन्नाथ शकर सेठ ने लगभग उसी समय बम्बई मे 'बाम्बे एसोसिएशन' की स्थापना की, परन्तु यह अधिक सफल न हो सकी। क्रान्ति के पश्चात् १८७० मे फिर उक्त सस्था के पुनर्संगठन की बात सोची जाने लगी किन्तु इसी समय एक दूसरी सस्था 'ईस्ट

इडिया एसोसिएशन' की स्थापना हो जाने के कारण इसका पुनर्संगठन न हो सका। १८८० के लगभग 'ईस्ट इडिया एसोसिएशन' भी विलुप्त हो गई। बगाल, बम्बई की तरह मद्रास मे भी 'मद्रास नेटिव एसोसीएशन' की स्थापना हुई, किन्तु इसका क्षेत्र अत्यन्त सकुचित होने के कारण यह जनता का सहयोग व सहानुभूति प्राप्त न कर सकी। मद्रास मे राष्ट्रीय जागरण का आरम्भ वास्तव मे 'हिन्दू' दैनिक (प्रकाशन १८७८) से ही होता है। उपर्युक्त प्रदेशो की तरह पूना मे भी राष्ट्रीय चेतना के प्रादुर्भाव के परिणाम स्वरूप १८७५ मे 'सार्वजनिक सभा' की स्थापना हो गई थी।

सस्थाओ के इस स्थापना काल मे इस तथ्य का निर्देश आवश्यक है कि ये सस्थाए केवल प्रादेशिक सीमाओ तक ही सीमित थी। राष्ट्रीय स्तर पर किसी सस्था के सगठन की पूर्व पीठिका मात्र थी। इनके सम्मुख राष्ट्रीय समस्याओ सम्बन्धी कोई ठोस कार्य-क्रम अथवा लक्ष्य न था। अपने क्षेत्र के हितो की बात को थोडे से सदस्यो के बीच कह सुन लेने तथा सरकारी नियमो की व्याख्या, आलोचना, कर लेने मे ही इनकी शक्ति पूणतया शेष हो जाती थी। फिर भी इन सस्थाओ का मूल्य और महत्व इनके सीमित क्षेत्र तथा मात्र प्रादेशिक हितो की बात को लेकर कम नही किया जा सकता। क्योकि सावजनिक भाषा के अभाव तथा यातायात के साधनो की विशेष व्यवस्था न होने के कारण सम्पूण राष्ट्र की महान् समस्याओ को लेकर चलना अभी तक दुष्कर काय ही बना हुआ था। दूसरे, विदेशी सरकार के दमन चक्र का भय तथा क्रान्ति की असफलता जन्य निराशा अभी लोगो के मस्तिष्क से दूर नही हुई थी।

तदन्तर, १८८३ मे बगाल मे, 'इन्डियन नेशनल कान्फ्रेस' की स्थापना हुई, जिस मे सर्व प्रथम राजनीतिक जागृति की भावना को बल मिला। इस कान्फ्रेन्स मे 'इलबट बिल' के विरोध मे लोगो ने चर्चा की। भारतीयो को इस विरोध प्रदशन से आत्म-रक्षा के लिए अग्रेजो ने लगभग डेढ लाख रुपया व्यय कर के डिफेन्स एसोसिएशन' की स्थापना की। १८८५ मे 'राष्ट्रीय कॉंग्रेस' की स्थापना के समय तक अन्य तीन सस्थाओ 'ब्रिटिश एसोसिएशन,' 'इन्डियन एसोसिएशन' तथा 'सेन्ट्रल मोहमडन एसोसिएशन' की स्थापना हो चुकी थी और इस प्रकार से विचार विनिमय कर, किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की भावना को बल मिल रहा था।

क्रान्ति के पश्चात् अग्रेजो और भारतीयो का सम्पर्क अधिक निकट हो जाने के परिणाम स्वरूप भारतीय जनता पाश्चात्य-शिक्षा के सम्पक मे आने लगी। पाश्चात्य शिक्षा और दर्शन ने भारतीयो के मस्तिष्क मे राष्ट्रीयता की भावना का उद्रेक कर, उन्हे सगठित होने की प्रेरणा प्रदान की। अग्रेजो द्वारा पाश्चात्य शिक्षा प्रसार का उद्देश्य भले ही' हिन्दुत्व के अग-अग तोडना[1] 'अथवा' भारतीयो

१—डा० डफ दिनकर द्वारा सस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ ४३५ मे उत्कथित।

के लिए सुन्दर ज्ञान-मन्दिर का द्वार खोलने की कुजी प्रदान करना"[1] अथवा अपनी योजना प्रणाली के प्रचार मे एडी चोटी का जोर लगाने वाले अग्रेजी सीखे भारतीय नवयुवको का निर्माण करना[2] रहा हो, किन्तु उनके इस प्रयास ने तत्कालीन भारतीय जाति का बडा उपकार किया, इसमे लेश-मात्र भी सन्देश नही है। भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे भिन्न-भिन्न प्रकार के भाषा-प्रयोग के बदले समस्त देश मे एक सामान्य भाषा का प्रचार कर, उन्होंने भारतीयो को एकता के सूत्र मे बाँध कर, उन मे सगठन की भावना का प्रस्फुटन किया जो आगे चल कर राष्ट्रीय हितो की दृष्टि से बडी उपयोगी सिद्ध हुई। अग्रेजो ने पाश्चात्य-शिक्षा-विस्तार के साथ साथ भारतीय शिल्प कला आदि का अध्ययन कर तथा उनकी महत्ता बतलाकर भारतीयो मे अपनी पुरातन कला एव सस्कृति के प्रति गौरव की भावना प्रदान की और वे एक बार फिर अपने देश की मिट्टी मे प्राचीन आदर्शों के अकुरण का स्वप्न देखने लगे। योरुपीय विद्वानो द्वारा भारतीय भाषाओ, विशेषतया सस्कृत के गम्भीर अध्ययन ने भारतीयो को उनकी सुषुप्त अवस्था का ज्ञान कराया। बनारस मे स्थापित 'क्वीन्स कालेज' सस्कृत साहित्य के अध्ययन की प्रथम केन्द्र स्थली थी।

इस सक्रान्ति-काल मे भारतीय शिक्षित वर्ग पर पाश्चात्य विद्वानो, दाशनिको तथा राजनीतिज्ञो की विचार-धाराओ का भी यथेष्ट प्रभाव पडा। भारतीय समाज सुधारको तथा तत्कालीन नेताओ की प्रेरणा के स्रोत मिल्टन, बक, मैकाले, स्पैन्सर तथा मैजिनी आदि पाश्चात्य विद्वान एव विचारक थे। इनकी 'स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता तथा स्वशासन' की विचारधारा ने भारतीय मस्तिष्क को अत्यधिक प्रभावित किया था और वे तत्कालीन भारतीय सामाजिक अवस्था के प्रति असन्तोष प्रकट करने लगे थे। साथ ही राजनैतिक स्वतन्त्रता के प्रति उनकी आसक्ति दिन प्रति दिन महत्व का स्थान ग्रहण कर रही थी। मैजिनी की विचार-धारा से प्रभावित सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने अपनी पुस्तक 'A Nation in Making'—मे लिखा है—

Upon my mind the writing of Mazzini had created a profound impression The purity of his patriotism, the loftiness of his ideals and his all embarking love for humanity, expressed with the true eloquence of the heart, moved me as I had never before been moved . Mazzini had taught Italian unity , we wanted Indian unity (Page 43)

१—सर चार्ल्स ट्रैविलियन नाहर द्वारा 'आधुनिक भारत' पृष्ट ६२१ मे उत्कथित।

२—वही, पृष्ठ ६२२ पर उत्काथित।

उपर्युक्त कथन से यह बात पूणतया स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय शिक्षित मस्तिष्क पाश्चात्य विचारों से प्रभावित होकर उनकी विचार धाराओ के पथ-प्रदशन मे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दृढ प्रतिज्ञ हो रहा था।

पाश्चात्य शिक्षा के विकास के साथ-साथ देशी भाषाओ मे भी साहित्य के माध्यम, नए आदर्श सम्मुख आ रहे थे। बकिम, द्विजेन्द्र लाल राय, भारती तथा रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने उस काल मे बगाली साहित्य का विकास किया। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगियो ने हिन्दी की धारा परिवर्तित की। इकबाल की लेखनी उर्दू को सशक्त बनाने में लगी। पश्चिम तथा दक्षिण प्रदेशो मे मराठी, गुजराती तथा कन्नड साहित्य का विकास भी इसी काल मे आरम्भ हुआ। वज्ञानिक शिक्षा की प्रगति के लिए भी इसी काल मे प्रयत्न किया गया जिसके फलस्वरूप १८७६ मे महेन्द्र लाल सरकार ने कलकत्ते मे 'वैज्ञानिक अध्ययन की भारतीय परिषद' का निर्माण किया[१]।

साथ ही जन शक्ति और जन-मत निर्माण के लिए उस काल मे पत्र-पत्रिकाओ ने भी महान् योग दिया। बगाल मे 'इडियन मिरर', 'अमृत बाजार पत्रिका', तथा 'बम्बई मे वायस आफ इडिया', 'नेटिव ओपीनियन', 'इदु प्रकाश', 'केसरी और 'मराठा', उत्तर प्रदेश मे 'इडियन हैरल्ड', दक्षिण मे 'हिन्दू' तथा पजाब मे 'ट्रिब्यून' आदि पत्रो के प्रकाशन से तत्कालीन विचारधाराओ का सम्पक जनता से किया जा रहा था तथा उससे समाज मे नवीन जागृति विकसित हो रही थी। यह काल हमारे देश मे पत्र-कारिता के उदभव का काल था। अत -उनमे भाषा की प्रौढ़ता, भावो की प्राजलता तथा सुस्पष्ट नीति का अभाव प्रतिलक्षित होता है, फिर भी राष्ट्रीय भावना के विकास मे उनका योगदान स्तुत्य है, इस तथ्य से किसी प्रकार भी इन्कार नही किया जा सकता।

राष्ट्रीय भावना के विकास तथा नवीन युगारम्भ के इस प्रसग मे विदेशी लोगो से प्राप्त सहायता एव सहयोग का उल्लेख न करना उनके प्रति अन्याय होगा क्योकि भारत की राष्ट्रीयता के विकास क्रम मे उन लोगो का भी बडा हाथ रहा है। १८८० मे लार्ड रिपन ने शासन-सूत्र ग्रहण कर शिक्षा तथा समाज सम्बन्धी जिन सुधारो की प्रतिष्ठा मे योग दिया, उसे कभी भी विस्मृत नही किया जा सकता। उनकी मान्यता थी कि नैतिक क्षेत्र मे जो अधम है, राजनैतिक क्षेत्र मे वह कभी भी धर्म नही हो सकता। इसी आदर्श के कारण वे भारतवासियो के प्रिय वाइसराय रहे और उनसे उन्हे उन्नति और विकास की प्रेरणा मिली। लार्ड रिपन के इस कार्य को मिस्टर ह्यूम ने प्रशस्त किया। स्वतन्त्रता के उत्कट अभिलाषी, प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता तथा सफल सगठन कर्त्ता के रूप मे उन्होने १८८५ मे

१—रति भानुसिंह नाहर आधुनिक भारत, पृष्ठ ५५८

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना मे महत्वपूर्ण योग दिया और इस प्रकार से विशृंखलित एव दूर विभ्रष्ट देश-खण्डो को एक सूत्र मे बाँध, एक्य का मार्ग निर्दिष्ट किया। स्वतन्त्रता का महत्व स्पष्ट करते हुए उन्होने सर्व-प्रथम देश वासियो को सगठित होने का उपदेश दिया[1]।

इस प्रकार इन सभी राष्ट्रीय भावनाओ एव नवीन जागृति तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयासो का प्रभातोदय भारतीय जन-क्रांति की घटना को लेकर होता है, इसीलिए प्रस्तुत प्रबन्ध मे १८५७ की तिथि को ही भारत मे आधुनिक युग की तिथि माना गया है, (हाँ, आधुनिक भारतीय समाज मे नारी-शीषक, दूसरे अध्याय के अन्तर्गत विषय मे क्रम एव शृखला की प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से तिथि विषयक इस प्रतिबध को स्वीकार नही किया गया है।)

उपयुक्त विवेचन के पश्चात् निष्कर्ष रूप मे यह कह देना पर्याप्त होगा कि राष्ट्रीय भावना के विकास की दिशा मे योरुपीय विचारको, उनकी मान्यताओ, पाश्चात्य शिक्षा तथा शासन व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साथ ही तत्काल भारतीय नेताओ की भारतीय समाज के प्रति उत्कृष्ठ सेवा भावना, प्रचलित पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन, देशीय साहित्य के विकास तथा समाज सुधारको एव सस्थाओ ने उस भावना को आगे बढाया और अन्त मे अग्रेजी शासन की परोक्ष आर्थिक शोषण नीति, शासक तथा शासित के सम्बन्धो मे निहित स्वाभाविक कटुता की भावना की उत्तरोत्तर वृद्धि, जातीय भेद तथा राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय सस्थाओ के विकास के उस नवीन युग की भावभूमि को वह सुदृढ नीव प्रदान की जिस पर आगे चल कर स्वतन्त्रता के महान् प्रासाद का निर्माण हुआ।

विषय के महत्व पर विचार

उन्नीसवी शती के उत्तरार्ध मे राष्ट्रीय जागरण के फल स्वरूप जिन महान् भावनाओ को प्रस्फुटन और उन्नयन का अवसर प्राप्त हुआ, उनमे नारी स्थिति के सुधार की भावना भी प्रमुख थी। प्रत्येक देश तथा प्रत्येक काल मे नारी की समाजगत स्थिति का निर्माण तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक एव धार्मिक अवस्थाओ एव विचारधाराओ के आधार पर ही होता है। इस काल तक चली आती हुई मध्य युगीन मान्यताओ एव परम्पराओ पर प्रगतिशील, प्रजातन्त्रात्मक पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भारतीय नारी की सामाजिक उन्नति के पुनरुत्थान मे विशेष सहायक रहा है। पश्चिम के उदार आदर्शों से प्रभावित हो, थोथी आध्यात्मिकता के सकीर्ण घेरे से बाहर निकल, समाज सुधारको ने नारी स्थिति की उस वैदिक प्रतिष्ठा का पुनर्स्थापन करना चाहा जो मध्यकाल तक आते-आते अपने स्वभाव मे पूर्णतया परिवर्तित हो, नारी स्वरूप की मात्र विडम्बना रह गई थी।

१—लाला लाजपतराय यंग इडिया, पृष्ठ १३७.

नारी अनन्त काल से समाज की मुख्य शक्ति तथा साहित्य का मुख्य प्राण रही है। समाज के बदलते हुए मापदण्ड, विभिन्न सामाजिक एव सास्कृतिक अवस्थाओ का विकास तथा नवीन आदर्शो की स्थापना नारी स्थिति के उत्थान-पतन के लिये उत्तरदायी रहे है। साहित्यकार सामाजिक परिस्थितियो से प्रभावित हो साहित्य-सृजन करता है। नारी उसके काव्य का मेरुदण्ड होतो है, अत उसकी नारी सम्बन्धी अनुरागात्मक अथवा घृणात्मक भावना तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियो के आधार पर बनती है, या यो कहना चाहिए कि राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एव आर्थिक कारणो से समाज मे जो अवस्था नारी की होती है, प्राय उसी का प्रतिबिम्ब कवि की नारी भावना होती है[1]। जिस प्रकार से समाज और साहित्य के परस्पर सम्बन्ध का विच्छेद नही किया जा सकता, ठीक उसी प्रकार नारी और धर्म की घनिष्ठता पर भी किसी प्रकार की आशका प्रकट करने के लिये कोई स्थान नही रह जाता। समाज और साहित्य की भाँति नारी और धर्म भी समान भाव भूमि पर प्रतिष्ठित रहते है। धर्म मनुष्य के कौटुम्बिक जीवन, सामाजिक कर्त्तव्य एव प्रेम सम्बन्धी मान्यताओ की व्यवस्था एव विश्लेषण करता है। उपर्युक्त तीनो भावनाओ मे नारी का विशेष योगदान होता है। अत धर्म की नवीन व्याख्या अथवा विश्लेषण से उसकी स्थिति प्रभावित होती है और उसमे परिवर्तन के परमाणु महत्व का स्थान ग्रहण करते है।

किसी विशेष युग मे जब धर्म आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होता है, और समाज मे लौकिक जीवन को गौण माना जाने लगता है तब आध्यात्मिक क्षेत्र मे नारी को सिद्धि मार्ग की बाधा मानने की भावना के विकास के कारण उसकी सामाजिक स्थिति का ह्रास होना आरम्भ होता है, और उसके कार्य क्षेत्र एव अधिकारियो की सीमाये सकुचित हो जाती हैं। परन्तु जब समाज सुधारको मे रूढिवादिता के प्रति असतोष उत्पन्न होकर धर्म की उदार एव विस्तृत व्याख्या के प्रति जिज्ञासा का प्रादुर्भाव होता है, नारी अपनी सीमित परिधि से बाहर निकल कर अपने अधिकारो का उपयोग करती हुई सामाजिक शक्ति की वृद्धि मे स्वयं का योग प्रस्तुत करती है और उसको अपनी प्रतिभा के विकास की प्राप्ति होकर समाज मे यथोचित मान्यता प्राप्त होती है। भारयीय सस्कृति का इतिहास भी नारी की इस उत्थान-पतन सम्बन्धी परिवर्तित अवस्था का परिचायक है।

भारतीय साहित्य का उद्गम वेदो से माना जाता है। वैदिक काल मे वर्णाश्रम धर्म की व्याख्या के फलस्वरूप गृहस्थाश्रम को, जिसका केन्द्र नारी है, प्रमुखता प्रदान की गई। तत्कालीन समाज मे धार्मिक कृत्यो से ले कर राजनीति तक नारी के समानाधिकार तथा सम्मान की भावना को प्रतिष्ठित किया गया।

१—शैलकुमारी . आधुनिक हिन्दी काव्य मे नारी भावना। पृष्ठ १.

तत्कालीन समाज की नारी आर्थिक स्वातन्त्र्य के साथ-साथ शिक्षा तथा विचार स्वातन्त्र्य के अधिकारो का उपभोग कर अपनी वैयक्तिकता के प्रति जागृत रही। वैदिक नारी भावना ने प्राचीन ऋषियो मे आह्लाद और आनन्द की सृष्टि कर, उन्हे समाज के सभी क्षेत्रो मे उन्नत धरातल प्रदान करने के लिए प्रेरित किया। किन्तु पूर्व-वैदिक काल की यह सर्व सम्मानित नारी उत्तर-वैदिक काल, बौद्ध, पुराण, स्मृति तथा महाकाव्यो के काल से होती हुई मुगल काल के अन्त तक सामान्यत उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुख होती गई। अब तक जनता की धार्मिक भावनाओं से खेल कर धर्म सरक्षको ने उन सामाजिक नियमो का निर्माण कर दिया था जिनके परिणाम-स्वरूप समाज की आदर्श व्यवस्था विशृखलित हो गई। नारी का स्थान समाज मे गौण हो गया, तथा बहु-विवाह, बाल-विवाह, सती प्रथा, अशिक्षा आदि नारी विषयक कुप्रथाएँ समाज के प्रतिष्ठित आदर्श मानी जाने लगी। शिक्षा और ज्ञान के अभाव मे वास्तविक आदर्श की भावना लुप्त होकर अन्धविश्वासों और कुरीतियों को बल प्राप्त होने लगा।

मुस्लिम जाति द्वारा भारत मे प्रवेश के समय ही हिन्दी काव्य के शिशु का जन्म रक्त-रजित रण-भूमि के बीच हुआ। यहाँ पर यह आशा की जा सकती थी कि सम्भव है नारी पुरुष की प्रेरणा, वीर माता और सहयोगिनी के रूप मे प्रकट होकर उसके पतनोन्मुख राजनैतिक एव सामाजिक जीवन को अपने स्नेह तथा शक्ति का सम्बल प्रदान करे। परन्तु इसके विपरीत वह पुरुष की भोग्या और सम्पत्ति के रूप मे ही सम्मुख आई। उसके लिए ही युद्ध हुए। तत्कालीन कवियों ने उसके रूप-सौन्दर्य का वर्णन कर समाज मे विलास-भावना का विकास किया। किसी ने भी उसके मानस की अथाह गहनता मे उतर कर उसके आन्तरिक गुणों की माणिक मजूषा पा लेने की आवश्यकता नही समझी। फलतः मुस्लिम काल मे नारी-स्थिति के सभी विकास-द्वार अवरुद्ध ही रहे।

तदन्तर, मुगलो के आगमन के समय हिन्दू जाति के बीच धार्मिक मर्यादा की कट्टरता का प्रादुर्भाव हो रहा था। हिन्दू समाज, राजनैतिक शक्ति खोकर तथा युद्ध-भूमि से थक कर, भगवान के शान्त रूप की उपासना करते हुए मुक्ति प्राप्त करने की दिशा मे प्रयत्नशील था। हिन्दी साहित्य का यह युग साहित्य-सृजन की दृष्टि से सुवर्ण-युग कहा जाता है। परन्तु यह स्वर्ण-काल भी नारी के लिए किसी विशेष प्रकार की प्रगति का सदेश लेकर नही आया। तत्कालीन संत कवियो ने भी नारी को 'नारी नागिन एक सुभाई' तथा 'साँप बीछि को मन्त्र' कहकर उसके प्रति उपेक्षा की भावना प्रकट की। इस युग में भक्ति सम्बन्धी साहित्य की सृष्टि होने के कारण उसकी सभी प्रकार से निन्दा की गई। भक्ति-कालीन भारतीय समाज मे साधु-सन्तों तथा विभिन्न मत-मतान्तरो की एक बाढ़-सी आ गई थी।

परिणामस्वरूप पारिवारिक जीवन की सुख-समृद्धि का पतन हो रहा था। जनता पलाय़नवाद की ओर अग्रसर हो रही थी। राजनीतिक क्षेत्र मे पराजित हिन्दुओ का लक्ष्य ससार से विरक्त हो, भगवान के चरणो मे आश्रय प्राप्त कर लेना मात्र रह गया था। विश्व से विरक्त वैरागी साधुओ के लिए विश्व मे कोई आकर्षण शेष नही था। इसीलिए सासारिक सुखो की उपेक्षा के साथ-साथ नारी जाति की उपेक्षा की गई, और उसका स्थान निरन्तर गौण होता चला गया। यहाँ पर यह बात विचारणीय है, कि भक्ति-कालीन सत साहित्यकारो ने नारी की लौकिक रूप मे भर्तस्ना की है। यथार्थ की भाव-भूमि पर ही वह निन्दनीय, उपेक्षनीय तथा त्याज्य दिखाई पडती है, अन्यथा जहाँ कही भी नारी की काल्पनिक चित्रपटी को आदर्श के स्तर पर विस्तार दिया गया है, वहाँ नारी का रूप प्राजल, पवित्र, प्रेरक और पूज्य है। नारी के सामान्य रूप का वर्णन करते हुए वे उत्तेजक, तीव्र आकर्षण से पूर्ण तथा 'कामिनी' के रूप मे देख पाये। इसीलिए नारी मे प्रेम और कर्त्तव्य का सामजस्य[१] न हो सका और वह केवल पुरुष की वासनामूलक प्रवृति को उभारने का साधन मात्र बन गई। इसके विपरीत जहाँ नारी के आदर्श रूप की कल्पना की गई है, वहाँ उसके मातृत्व तथा शक्ति-रूप को निखार कर उसे उच्च स्थान प्रदान किया गया है। जायसी की पद्मावती, तुलसी की सीता और कौशल्या तथा सूर की गोपिकाएँ और यशोदा इसके प्रमाण है।

मुगल शासन के उत्तरार्ध मे सामाजिक व्यवस्था तथा शान्ति की स्थापना हो चुकी थी। शान्तिकाल मे कला की उन्नति के साथ-साथ मुगल दरबार में विलास-प्रियता की भावना को भी प्रश्रय मिला और कविता शृगारिकता की वीथिकाओ मे बहने लगी। अतः शृगार की साम्राज्ञी नारी को एक बार फिर पुरुष की उप-भोग्या मात्र बनना बड़ा। भक्तिकाल के काम-दमन की भावना की प्रतिक्रिया इस रीति-काल मे काम-विस्तार के रूप मे हुई। कामिनी का दैहिक स्पर्श कवियो के अन्तस में स्वर्गीय सुख की सृष्टि करने लगा। सूर की आराध्या राधा, देव, घनानन्द के प्रॉगण मे घोर शृगार की सृष्टि कर, विलासिता की सामान्य गह चलती प्रेयसी बन कर, वासनाजन्य भावो को विस्तार देने का साधनमात्र बन गई। भक्ति-कालीन पूत सौन्दर्य, विलास के केलि-गृहो में आबद्ध हो, गतिहीन हो गया। रीतिकालीन कवि नारी के वाह्य-रूप, वहिर्भावनाओ तथा अग-प्रदर्शन तक ही अपनी दृष्टि डाल पाये। नारी के मानस मे बैठने की उन्होने कभी चेष्टा, नही की। इसी कारण नारी की उद्दात् भावनाओ का इस काल मे अभाव रहा, और नारी शृगार और भोग के क्षेत्र मे ही सीमित हो कर रह गई। इस काल की नारी नायिका के विभिन्न रूपो मे प्रकट की गई तथा नाना प्रकार के भेद-प्रभेदो के साँगोपाँग वर्णन हुए।

१—शैलकुमारी : आधुनिक हिन्दी काव्य मे नारी-भावना. पृष्ठ ८.

इस प्रकार से भक्तियुग तथा-रीति युग मे नारी-भावना को अभिव्यक्ति प्रदान की गई। नारी के प्रति भक्तिकाल की दृष्टि वैराग्यमूलक तथा उपेक्षापूर्ण है, तो रीतिकाल मे यह मनोविनोद तथा एन्द्रिक सुख प्राप्ति का सहज साधन। दोनो कालो मे उसकी स्थिति का ह्रास हुआ और वह कवियो की सहानुभूति प्राप्त कर पूर्ण-रूपेण उनकी विवेचना तथा श्रद्धेय भावना का विषय न बन सकी। भक्ति-काल मे नारी-भावना के प्रति इस प्रकार के दृष्टिकोण की प्रेरणा जहाँ पुराण तथा स्मृति-ग्रन्थो से प्राप्त हुई, वहाँ रीतिकालीन भावना का मूलाधार सस्कृत साहित्य बना। 'पुरुष के एन्द्रिक जीवन के अतिरिक्त मानसिक जीवन मे नारी का क्या स्थान है, नारी का निजी व्यक्तित्व क्या है, देश और जाति के जीवन मे नारी का क्या मूल्य है, यह सब देखने का प्रयास मध्य-युगीन कवियो ने नही किया'[1]।

मध्य-युग के पश्चात् अग्रेजी शासन विस्तार के समय से आधुनिक युग का आरम्भ होता है। पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता तथा सस्कृति के सम्पर्क मे आकर भारतीय समाज की परम्पराओ मे आमूल-चूल परिवर्तन हुए। रूढिगत अहितकर मान्यताओ और आदर्शों पर, जिन्होने जन-जीवन के बौद्धिक विकास को भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरो की खाइयो मे बन्दी बना रखा था, जागृति और नव-चेतना का आलोक इसी काल मे प्रतिबिम्बित हुआ। अग्रेजो की शासन व्यवस्था ने भारतीय राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रो पर प्रभाव डाला। भारतीय व्यवस्था मे तीव्रता से होते हुए परिवर्तनो ने समाज के सम्मुख नए आदर्श की स्थापना की, जिसके परिणामस्वरूप उनकी जडता को गति प्राप्त होकर आत्म-विकास की दिशा मे अग्रसर होने का अवसर मिला। नारी-जागृति के दृष्टिकोण से यह काल महत्वपूर्ण है। उत्तर-वैदिक काल से उत्तर-मध्य काल तक सामान्यत नारी को 'स्व' पर गौरवान्वित हो, अपनी मूल प्रेरक शक्तियो के विकास का अवसर नही मिला। पुरुष की दृष्टि मे वह जीवन की विडम्बना, सिद्धि-मार्ग का कटक अथवा शारीरिक सुख का सहज साधन बन कर रह गई। उसकी मातृत्व शक्ति को भुला कर उसकी नैसर्गिक प्रतिमा को प्रहारित एव कुठित किया गया। परन्तु बीसवी शताब्दी मे समाज के पुनरुत्थान के साथ-साथ नारी स्थिति के पुनरुत्थान की ओर समाज सेवियों, सुधारको तथा विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ। अग्रेजी शासन के प्रचार से भारतीय विचारकों की चिन्तन धारा दो मार्गों मे विभक्त हो गई थी। एक पक्ष के लोग अग्रेजी सभ्यता के आलोक मे राष्ट्र के पुर्नस्थापन की बात करते थे, जिनका विश्वास था कि भारतीय समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है और इसके लिए वे पश्चिमी सिद्धान्तो की दुहाई देते थे। इस पक्ष मे राजा राम मोहन राय, महादेव गोविन्द रानाडे तथा केशव चन्द्र सेन जैसे अग्रणीय

१—शैलकुमारी : आधुनिक हिन्दी काव्य मे नारी-भावना, पृष्ठ ११।

नेता हुए। दूसरे पक्ष वाले भारत की पुरातन सस्कृति के पुनरुत्थान को महत्व देते हुए वेदो की दिशा मे लौट चलने की प्रेरणा देते थे। इस पक्ष मे दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द तथा तिलक आदि महात्मा नेता थे। क्रान्तिवादी तथा पुनरुत्थानवादी दोनो प्रकार के सुधारको ने नारी जागृति का सदेश दिया। नारी को लेकर बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती प्रथा, अशिक्षा आदि जिन सकीर्ण विचार-धारा को प्राचीन काल के धर्म-पुरोहितो न नैतिक नियमो के रूप मे प्रस्थापित किया था, अब उनका उन्मूलन हो विचार-स्वातत्र्य, सुशिक्षा, समानता एव सर्वतोन्मुखी विकास के लिए उसको विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया गया। शिक्षा प्रसार से आत्म-हीनता की भावना विनष्ट हुई और उसमे आत्म-गौरव के भाव का उदय हुआ।

शिक्षित भारतीय समाज नारी को सहयोगिनी के रूप मे देखने लगा। परिवार की सकीर्णताओ से निकल कर नारी समाज की समस्या बन गई। राष्ट्रीय और राजनैतिक पहलुओ की ओर उसका ध्यान आकर्षित हुआ और उसने सभी क्षेत्रो मे सक्रिय सहयोग प्रदान किया। इस प्रकार नारी बदलती हुई सामाजिक मान्यताओ एव परिस्थितियो मे एक बार फिर महत्व का स्थान ग्रहण कर पाई। नारी-स्थिति का ऋग्वैदिक आदर्श सम्मुख रख कर जब समाज सुधारको ने नारी जागृति का शखनाद किया तो हिन्दी साहित्यकार के कर्ण-कुहरो पर भी उसके स्वर गूँज उठे और उससे प्रभावित हो साहित्यपटी पर नारी के चित्र परिवर्तित होने लगे। साथ ही देश-व्यापी पाश्चात्य-शिक्षा एव विचारो के प्रचार एव प्रसार नारी के शैक्षणिक जागरण तथा तत्सम्बन्धी राष्ट्रीय आन्दोलनो के प्रभाव से नारी को जैसे-जैसे समाज मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता गया और वह पुरुष की केलि-मात्र न रह कर सभी क्षेत्रो मे उसकी सहयोगिनी एव प्रेरणा बनती गई, वैसे ही वैसे हिन्दी साहित्य मे भी उसका रूप उज्ज्वल, उन्नत और प्राँजल होता गया।

आधुनिक हिन्दी साहित्य का उदय भारतेन्दु काल को लेकर होता है। · कालीन साहित्य नारी जागृति के चिह्न बहुत अधिक स्पष्ट न करते हुए भी नारी भावना के विकास की पृष्ठभूमि के रूप मे अवश्य ही महत्वपूर्ण है। इस काल मे रीतिकालीन परम्परा का पूर्ण ह्रास नही हुआ था। परन्तु सामाजिक एव राष्ट्रीय भावनाओं को भार ' द्वारा ही मुखर होने का अवकाश मिला। वैसे इस संधि-काल मे नारी मे सौन्दर्य के साथ शिव का सामजस्य न हो सका। फिर भी देश-व्यापी राष्ट्रीय आन्दोलनो तथा सस्थाओ का प्रभाव हिन्दी साहित्कार पर प्रचुर मात्रा में पडा। परिणामस्वरूप द्विवेदी-युग से प्रसाद-युग में आते-आते नारी पुरुष के लिए कर्तव्य की प्रेरणा बन गई। संक्रान्ति काल मे राष्ट्रीय आवश्यकताओ के कारण जहाँ नारी-स्थिति को महत्वपूर्ण समझा गया वहाँ आगे चलकर परिवर्तन काल में नारी के प्रति उपयोगिता-वादी दृष्टिकोण का परित्याग कर, प्रकृति के साथ नारी का

सामन्जस्य करके सौन्दर्य दृष्टि को सूक्ष्मता एव विविधता प्रदान करते हुए छायावादी कवियो द्वारा नारी को रहस्यमय बनाने का प्रयास किया गया, यहाँ तक कि जीवन की यथार्थ सीमा-रेखाएँ धुँधली और अस्पष्ट हो गई। कवि नारी को देवी के रूप मे मान कर अपनी पूज्य भावना उसके प्रति समर्पित करने लगा। इसी काल मे नारी की महिमा मडित किया गया। तरल कोमल नारी 'देवी, माँ, सहचरी, प्राण' के सम्बोधनों से अनुप्राणित होकर सस्कृतिगत शुचिता की पुर्नस्थापना में सकलपबद्ध हुई। आह्लाद और पवित्र आनन्द को निर्झरणी के साथ-साथ वह आन्तरिक तेज और वाह्य गुणो की समन्वयित्री बनी। नारी की मर्यादा का भाव इसी काल में मुखर हुआ। वह विश्व की मधुर कल्पना का स्वरूप लेकर पुरुष की अनिवार्य-आवश्यकता के रूप मे प्रकट हुई। साथ ही बौद्धिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी वह पुरुष की अर्धांगिनी बन, स्नेह की मधु रजनी मे अजस्र सुहाग की वर्षा करती रही। पुरुष का अतृप्त हृदय उसके आँचल की स्नेहित छाँव मे सन्तोष बन कर सुधा-पान करता हुआ तृप्त होता रहा। वैदिक युग के पश्चात् नारी प्रदत्त प्रेरणा मे, प्रथम बार, इसी काल में कवि को मगल और पाविञ्य के दर्शन हुए। परिवर्तन युग में नारी को असत् रूप या रीति-कालीन शृगारिक रूप मे जहाँ कही भी प्रकट किया गया है, वहाँ इस रूप के प्रति आसक्ति की भावना प्रसय प्राप्त नही कर पाई है।

विकास-काल के पश्चात् नव्य-काल मे नारी भावना का साहित्यिक विकास अनेकानेक दिशाओ मे हुआ है। सामाजिक एव राष्ट्रीय चेतना, अपने 'स्व' एवं वेयक्तिक स्वतन्त्रता के प्रति जागरुकता तथा पश्चिमी आदर्शो का प्रबल प्रभाव—इस काल की नारी-भावना के विशेष अग रहे है। नव्य-काल का साहित्यकार समाजवादी आदर्शों से प्रभावित होते हुए भी अभी तक नारी भावना को सुनिश्चित स्वरूप दे सकने मे असमर्थ रहा है। इस युग की नारी सम्बन्धी विचारधारा मार्क्स के भौतिक आदर्श, फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक विज्ञान एव भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनो के मध्य संघर्षरत रही है। अभी तक नया-साहित्यकार स्थिर भाव-भूमि पर नारी-सम्बन्धी आदर्श निश्चित कर सकने में असमर्थ रहा है। वह कभी समाजवादी आदर्शों से प्रभावित हो, राष्ट्रीय नव-निर्माण कार्य में नारी से सहयोग की अपेक्षा करता है, कभी नारी का मनोविश्लेषण करते हुए क्षयी-रोमान्सवादी दृष्टिकोण को अंकुरित कर, बाद में उससे घृणा करने लगता है, और कभी विकास-युगीन कवियों की भाँति उसे जीवन की महती आवश्यकता मान कर उसके काल्पनिक अथवा दैहिक सौन्दर्य में लीन हो जाना चाहता है।

हिन्दी साहित्य को, प्रसाद की प्रतिमा का उपहार विकास काल में मिला। इस युग में भारतीय नारी विभिन्न सस्थाओं एवं समाज सुधारकों का आशीर्वाद लेकर अपनी प्रतिष्ठा-प्राप्ति की दिशा में सलग्न थी। सांस्कृतिक कवि मैथिलीशरण

गुप्त द्वारा नारी, साहित्यिक पुनरुत्थान की दिशा मे प्रगति कर रही थी। उनके द्वारा उसे माँ, बहिन, भाभी तथा पत्नी के रूपो मे अभिव्यक्ति मिली। पत्नी के रूप में अपने अधिकारो और कर्तव्यो से परिचित उसने अपने पति से अधिकार की माँग करना आरम्भ कर दिया था। नारी हृदय मे उदारता, दान, त्याग और महत्व की व्यजना उन्ही से आरम्भ हुई और प्रसाद ने इस भावना पर अपनी वैयक्तिकता की छाप लगा कर नारी की मातृत्व शक्ति के स्वरूप को महत्ता प्रदान की। उन्होने 'असत् को सत मे, अधमता को उदारता मे, राक्षसत्व को देवत्व मे, बर्बरता को सभ्यता मे एव पाप को पुण्य मे परिवर्तित करने का भार' नारी ही पर रखा है[1]। न्यूमैन के कथन का वह तथ्य कि यदि आत्मा को उच्चतर आध्यात्मिक प्रसाद की उपलब्धि मे सलग्न होना हो तो उसे नारी बनना चाहिए, प्रसाद की नारी-भावना की कसौटी पर खरा उतरता है। पुरुष की समाज की उन्नति नारी बिना दु साध्य ही नहीं, असाध्य है। उसे समाज मे आदर और महत्व की प्राप्ति होनी ही चाहिए, क्योकि वह जननी है और जननी होने के नाते 'वात्सल्य, त्याग और करुणा की त्रिपथगा' है। वह श्रद्धा है। उसने पीयूष-वर्षा की है और जीवन के समतल को प्लावित कर अपनी सेवा और समर्पण की भी भावना से सजल सस्कृति का पोषण किया है।

इस प्रकार प्रसाद ने नारी-भावना की अभूतपूर्व चित्रपटी खडी करके आधुनिक हिन्दी साहित्य मे भारतीय नारी के उच्चतम गौरव की प्रतिष्ठा की है। वे अपने समय के सामाजिक नवोत्थान से पूर्णतया परिचित है। नारी स्थिति के विकास की भावना किन-किन दिशाओ मे प्रस्फुटित एवं प्रसारित हो रही है, इस से वे विज्ञ थे। नारी सम्बन्धी सामाजिक चेतना के आलोक मे साहित्य कौन-सी दिशा ग्रहण कर रहा है, यह भी उनसे अदृष्ट नही था। साथ ही भारतीय सस्कृति एव साहित्य के गम्भीर अध्ययन, शैव-दर्शन के प्रभाव तथा नव-विकसित रोमान्टिक साहित्य के आधार पर नारी के स्वछन्द रूप की कल्पना ने उनके सम्मुख जो आदर्श प्रस्तुत किए, उनसे प्रेरणा प्राप्त कर, उन्ही को उन्होने आधुनिक भारतीय नारी के लिए योग्य और उचित समझा। निरन्तर बढती हुई पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार से नारी मे जो अकल्याणकारिणी दर्प-पूर्ण अधिकार भावना बद्धमूल हो रही थी, उसके परिणामो से चिन्तित, प्रसाद ने साहित्य मे भारतीय नारी के उस रूप को प्रस्तुत किया, जिसमे वह स्वय अधिकारमयी है, पुरुष की पूज्या है, जीवन की सहचरी और लक्ष्य की प्रेरणा है। जिसकी दानशीलता के सम्मुख सृष्टि नत-शिर है और जो पुरुष की प्रेहलिकाओ का समुचित समाधान है। ऐसी नारी द्वारा अधिकारो की माँग करना वास्तव मे उसका अपमान है, उसकी स्थिति का पतन है, परोक्ष रूप मे प्रसाद ने अपने साहित्य की चिन्तनधारा से यह प्रमाणित कर दिया।

१—मुंशीराम शर्मा हिन्दी काव्य मे नारी . : कल्याण नारी विशेषाक, पृष्ठ १९८

अतः सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत प्रबन्ध आधुनिक समाज मे नारी स्थिति के विकास-क्रम और उस विकास द्वारा प्रभावित आधुनिक हिन्दी साहित्य मे उत्पन्न हुई विभिन्न विचारधाराओ पर विश्लेषणात्मक अध्ययन के निष्कर्ष उपस्थित करने की दिशा मे एक प्रयत्न है, तथा प्रसाद ने भारतीय सस्कृति, साहित्य और दर्शन से प्रेरणा प्राप्त कर, अपने साहित्य मे भारतीय नारी को सामाजिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, साँस्कृतिक एव दार्शनिक स्वरूप प्रदान करते हुए उसे प्रचलित सामाजिक एव साहित्यिक मान्यताओ के मध्य किस प्रकार प्रतिष्ठित किया है, इस दिशा मे नवीन दृष्टिकोण उपस्थित करने का प्रयास इस प्रबन्ध की अपनी विशेषता है।

प्रथम खण्ड

आधुनिक भारतीय समाज तथा हिन्दी साहित्य में नारी

प्रकरण—१

पृष्ठभूमि

कालीन[1] नारी-स्थिति : उत्थान-पतन के विभिन्न स्तरों पर

१—वेद काल से उत्तर-मध्य काल तक।

प्रकरण—१

पृष्ठभूमि

विश्व-प्रकृति नारी के रूप मे मूर्त होकर नर के लिए अनन्त काल से प्रेरणा और शक्ति का स्रोत रही है। नारी से शक्ति प्राप्त कर नर शक्तिवान् कहलाता है। अक्षय शक्ति की स्रोत नारी के जीवन-विकास पर ही पुरुष के जीवन का उत्कर्ष निर्भर है। नारी पुरुष के जीवन को उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक प्रभावित और निर्दशित करती रहती है। नारी पुरुष जीवन के सृजन, पोषण और उन्नयन की आधार-शिला है। वह सामान्य पुरुषो की ही नही, देवताओं की भी जननी है इसीलिए देवताओं की सृष्टि में आदरणीय है। अर्ध-नारीश्वर ने पार्वती को अपने मस्तक पर स्थान दे कर नारी को सम्मानित करने के क्षेत्र मे सीमा भीत्ति बाँध दी है, 'भारतीय सस्कृति का निर्माण अध्यात्म के सुदृढ धरातल पर उन महर्षियों द्वारा हुआ है जो दिव्य-दृष्टि सम्पन्न रागद्वेष-शून्य और समदर्शी थे।' उनकी दृष्टि मे स्त्री-पुरुष का सयोग विकास का मूल है। सुसमाज में व्यवस्था, शान्ति और ऐश्वर्य की स्थापना मे नारी का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वह सृष्टि की साधन और प्रकृति की मूर्तरूप हो कर पुरुष के लिए सौन्दर्य, प्रेम, अन्नन्यता और आनन्द का कारण बनती है। इसीलिए वह मान्या है, पूज्या है, आराध्या है, इसलिए उसमे देवत्व है और इसीलिए वह श्री है, शक्ति है, चिति है।

प्राचीन मनीषियो ने 'जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी' कहकर नारी के मातृत्व रूप को गौरव की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। भारतीय सस्कृति मे नारी को अन्य देशो की सस्कृतियो से अधिक सम्मान की प्राप्ति हुई है। भारतीय साहित्य का उदय ऋग्वेद को लेकर होता है। ऋग्वेदिक समाज पितृ-सत्तात्मक होते हुए भी नारी के प्रति उदार दृष्टिकोणों से पूर्ण था। जीवन के सभी क्षेत्रों मे उसे महत्ता प्राप्त थी। 'युद्ध मे विजय, और शान्ति मे सम्पन्नता' प्राप्त करने के लिए उसका सहयोग आवश्यक समझा जाता था, 'आर्यों ने स्वभाव मे दार्शनिक और चिन्तनशील होते हुए भी कभी भौतिक जीवन की उपेक्षा नहीं की।

भौतिक जीवन में नारी को मुख्य स्थान प्राप्त है, इसी कारण उसे भी उस काल मे महत्व का स्थान प्रदान किया गया। पुरुषों के जीविकोपार्जन के साधनो मे व्यस्त रहने के कारण गृहस्थी के समस्त कार्यों का भार नारी पर ही होता था। वह गृह-स्वामिनी होती थी। धार्मिक कृत्यो में पत्नी को पति के साथ भाग लेने का अधिकार होता था। ऋचाओ का निर्माण महिलाओ को ही प्राप्त था। उनकी उपस्थिति के बिना कोई भी धार्मिक कृत्य पूर्ण नही समझा जाता था। वह दान देती, सोमरस बनाती और पीती थी[1]। गृह-पत्नी के रूप मे वह कुटुम्ब के सदस्यो को उनके दैनिक कृत्यों के लिए जगाया करती थी। उस काल का मान्यता थी कि पत्नी ही पर, गृहस्थी और आनन्द है[2]।

ऋग्वेदिक नारी को शिक्षा-प्राप्ति के पूर्ण अवकाश प्राप्त थे ब्रह्मवादिनियाँ सदैव अध्ययन में रत रहती थी[3]। अपनी अध्ययनशीलता के परिणामस्वरूप उन्हे तत्कालीन समाज मे उच्चतर प्रतिष्ठा की प्राप्ति थी। अध्ययन का क्षेत्र धार्मिक और दार्शनिक होते हुए भी सीमित अथवा सकुचित न था।

ऋग्वेद में कुछ मन्त्र ब्रह्मवादिनियो द्वारा भी आविष्कृत किए गए हैं। इनमें रोमसा, लोपामुद्रा, आप्त, विश्ववटा, घोषा और श्रद्धा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। वैदिक नारियाँ संगीत-कला मे निपुण होती थीं। वे यज्ञोपवीत धारण करती तथा अध्ययन के प्रति रुचिवान् थी। कहीं-कही विदूषियों द्वारा पुरुषों के साथ शास्त्रार्थ करने का भी उल्लेख मिलता है। सुलभा, मैत्रेयी और गार्गी की विद्वता लोक-प्रसिद्ध है। त्याग और तपस्या से ऋषिभाव को प्राप्त करके वे मंत्रों की रचना करती थीं।

ऋग्वेदिक काल में मस्तिष्क के विकास के सभी साधन उनके लिए प्रस्तुत थे। सामाजिक समारोहों में भाग लेने की उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी[4]। मेले, त्योहारो तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं में वे प्रचुर मात्रा मे उपस्थित होती तथा भाग लेती थीं। इस काल में नारियों के रणक्षेत्र में जाने के उदाहरण भी मिलते हैं[5]। समाज में पर्दा प्रथा का अभाव था। विदूषी, वीरांगनाओं तथा स्वतन्त्रता-प्राप्त नारियो के लिए सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। प्रेम और विवाह के क्षेत्र मे वे पूर्ण

१—ऋग्वेद : १।१३१।३, ५।४३।१५।

२—ऋग्वेद : ३।५३।४, ३।५३।६।

३—ए० एस० अल्तेकर : द पोजिशन आफ वोमन इन हिन्दू सिविलीजेशन, पृष्ठ १३।

४—वही पृष्ठ २३३।२३५।

५—ऋग्वेद : १।११२।१०, १।११६।१५, १।११७।११, १।११८।८।

स्वतन्त्र थी। वे अपनी रुच्यानुसार पुरुष से प्रेम और तत्पश्चात् विवाह कर लेती थी[1]। नारी के प्रति सौन्दर्यानुभूति के प्रमाण ऋग्वेद मे भरे पड़े है। विवाह एक पवित्र कार्य समझा जाता था। बहु-विवाह प्रथा अधिकतर राजा, महाराजा तथा सम्मानित पुरोहितो तक ही सीमित थी। वैसे समाज मे एक विवाह का आदर्श ही मान्य था। विवाह युवा होने पर ही होता था।

विवाह का अर्थ नारी के साथ रह कर सम्पन्नता प्राप्त, धर्मानुष्ठान तथा यज्ञ सम्पादन होता था। ऋग्वैदिक भारत मे बाल-विवाह की प्रथा का, जो कालान्तर मे इतनी अधिक प्रचलित हो गई, प्रादुर्भाव नही हुआ था[2]। सगोत्र और अन्तर्जातीय-विवाह प्रचलित थे। विधवा-विवाह वर्जित नही था। बल्कि ऐसा लगता है कि विधवा-विवाह के लिए, उस समाज मे अवकाश था। प्रस्तुत मन्त्र इसका प्रमाण है—

कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कहोषतुः
कोवां शयुत्रा विधवेव देवर मर्यं न योषा कृणुते सधस्त आ

—ऋग्वेद १०।४०।२.

एक दूसरे मत्र . ऋग्वेद १०।१८।८। . द्वारा भी विधवा विवाह की पुष्टि होती है। उक्त मत्र का भावार्थ यो है :—

'उठो स्त्री, तुम उसके पास पडी हो, जिसका जीवन समाप्त हो गया है। अपने पति से दूर, तुम उसकी पत्नी बनो, जो तुम्हारा हाथ पकड़ता है, और तुमसे विवाह करने को तैयार है।'

इस काल मे पुनर्विवाह के अवकाश होने के कारण सहमरण की प्रथा का जन्म नही हुआ था। जिस प्रकार पुरुष को पुनर्विवाह का अधिकार था, उसी प्रकार नारी को भी चार विवाह तक करने की अनुमति थी :—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः।

ऋग्वेद १०।८५।४०

ऋग्वैदिक समाज, विकास के प्रथम चरण पर होने के कारण अपनी अर्थ-व्यवस्था में बहुत ही स्पष्ट नही हो पाया था। पुत्र-हीन पिता की सम्पत्ति पर ही पुत्री का अधिकार हो पाता था। वैसे विवाह के अवसर पर उसे स्त्री-धन की प्राप्ति होती थी। जिस पर पूर्ण रूप से उसका ही अधिकार होता था, और उसी धन मे से वह दानादि किया करती थी। इस काल मे दहेज-प्रथा अधिक विकास नही पा सकी थी क्योकि स्त्री-पुरुष स्वेच्छा से एक दूसरे से प्रेम और विवाह करते थे।

१—ऋग्वेद : १।११५।२, ६।३२।५, ६।५६।३।
२—ए० बी० कीथ : 'द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पहली पोथी, पृष्ठ ८८।

इस प्रकार से ऋग्वैदिक समाज मे नारी की स्थिति सभी .प्रकार से समुन्नत थी। वह पुरुष की सम्पति न होकर उसकी सहयोगिनी और साथिन थी तथा सामाजिक, धार्मिक् एव शैक्षणिक क्षेत्र मे पुरुष के समान सभी सुविधाओ की अधिकारिणी थी। उसके गुणो के साथ-साथ उसके स्वरूप को भी प्रतिष्ठा प्रदान की गई और उसको पुरुष के समान भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित कर उसके गौरवपूर्ण जीवन के मूल्य और महत्व को अनुभव किया गया।

ऋग्वैदिक काल के आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य आनन्द था। परन्तु उत्तर-वैदिक काल में ऋषि महर्षि आनन्द की अपेक्षा तप को अधिक महत्व प्रदान करने लगे। आनन्द की पवित्र विभूति और सुख की अजस्र स्रोत नारी जो ऋग्वैदिक जीवन के लक्ष्य मे अपनी महत्ता के शीर्ष पर आसीन थी, अब इस तप काल मे एक सीढी नीचे उतर आई। क्योकि इस नवोदित मनोवृति के अनुसार वह लक्ष्य (आनन्द) प्राप्ति मे सहयोगिनी नही, वरन् बाधा समझी जाने लगी। उत्तर-वैदिक काल मे नारी-समाज मे शिक्षा का अभाव हो गया था। यह एक अजीब-सी बात लगती थी कि एक ओर जहाँ पुरुष ज्ञान-प्राप्ति की तीव्र उत्कण्ठा से तपस्या और त्याग की ओर अग्रसर हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर नारी के विद्याध्ययन के अधिकार को केवल धार्मिक शिक्षा क्षेत्र तक ही सीमित कर दिया गया था। पुरुषो से स्वतन्त्र सपर्क अब बुरा माना जाने लगा। एक ओर शैक्षणिक अवरोध और पुरुष सम्पर्क के अभाव मे उत्तर-वैदिक समाज की नारी अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकने मे असफल रही, दूसरी ओर ज्ञान प्राप्ति के लिए लालायित पुरुष-समाज ने इसी हीनता के कारण पुरुष और नारी की समानता के भाव को खंडित करके उसको स्थिति को और भी दुर्बल बना दिया। विद्या की उपासना के इस युग में नारी-समाज को यथेष्ठ क्षति उठानी पडी। वैसे तो ऋग्वैदिक काल में भी पुत्र का जन्म आनन्ददायक होता था, परन्तु कन्या के जन्म पर लोग दुखी नही होते थे। उत्तर-वैदिक काल मे कन्या का जन्म विपत्ति लाने वाला माना जाने लगा। ऐतरेय ब्राह्मण : ७।१५ : में पुत्र को स्वर्ग-तुल्य तथा कन्या को कृपणम् अर्थात् विपत्ति के रूप में संबोधित किया गया है। तैतिरीय सहिता ' ६।५।८।२ में उसे बुरे शूद्र से भी नीच कहा गया है। इस काल मे वैवाहिक व्यवहार मे भी कुछ कडाई आने लगी थी। सगोत्र-विवाह की मनाही भले ही अभी नही हुई थी, किन्तु उसके प्रति किसी प्रकार का आकर्षण लोगो में नहीं रह गया था। विवाह अब भी पुनीत कर्म माना जाता था, परन्तु बहु-विवाह की प्रथा धीरे-धीरे विकास पा रही थी। मैत्रायणी संहिता में मनु की दस पत्नियो का उल्लेख है, :१।५।८। विधवा-विवाह अब भी प्रचलित था। किन्ही मन्त्रो मे सती-प्रथा का विधान भी देखने को मिलता है[१]। शतपथ ब्राह्मण : शत० ५।२।१।१० का कथन है कि

१—अथर्व वेद : १८।३।१-२, तथा ऋग्वेद १०।१८।८।

पत्नी के बिना पति स्वर्ग नही जा सकता। विधवा-विवाह के विषय मे 'दिधितु' शब्द से ज्ञात होता है कि विधवा अपने देवर से विवाह कर लेती थी। विधवा-विवाह का सकेत 'पर-पूर्वा' शब्द से भी होता है[१]।

यजुर्वेद की तैत्तिरीय सहिता ' ६।५।८।२ मे पिता के धन पर कन्या के अधिकार का निषेध बतलाया गया है। इस प्रकार से उत्तर-वैदिक काल मे नारी-स्थिति के महत्व मे एक आघात लगा। परन्तु इस करुण पक्ष के साथ-साथ नारी-स्थिति का उज्ज्वल पक्ष भी उत्तर-वैदिक साहित्य में देखने को मिलता है। उपनिषदो में शिक्षित नारियो का उल्लेख है। वे शिक्षिकाएँ होती थी तथा नारी समाज मे धर्म-शिक्षा का प्रचार करती थी। उपनिषदो में नर-नारी द्वार लोक संचालन की क्रिया का वर्णन भी किया जाता है। उपनिषदो ने ससार को पर-ब्रह्म की यज्ञशाला मान कर नर को होता तथा नारी को अग्नि-रूप मे उपस्थित किया है। इस प्रकार से नर सचायक है और नारी विभाजक। इसमे नारी को पुरुष के समान ही महत्ता प्राप्त है, और इसी के आधार पर सारा ससार स्थित है। फिर भी उत्तर-वैदिक काल के मनीषी नारी को यह सदेश देना नही भूले है कि उनके लिए वही शुभ बुद्धि है, जिस बुद्धि से उन्हे अपने इस स्वरूप का ज्ञान हो जाय कि हम नर (ब्रह्म) की भिन्न भिन्नात्मिका शक्ति तथा अश है और नर हमारा नियामक, संरक्षक और अभिवर्धक है। यदि हम नर से तनिक भी अपने को पृथक सत्ता वाली एवं स्वतत्र मानती है तो हमारी वही गति होगी जो वृक्ष से पृथक होकर इतस्तत. गिरने वाले पत्र की होती है[२]।

वैदिक युग के पश्चात् सूत्र ग्रन्थो तथा महाकाव्यो का काल आता है। सूत्र-काल मे नारी रक्षा का भार सम्राट पर होता था। अब उसके अधिकार पहिले की अपेक्षा सीमित हो गए थे। उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता का लोप हो गया था। यज्ञादि धार्मिक समारोहो मे उसकी उपस्थिति अनिवार्य न रह गई थी[३]। इस काल मे नारी पुरुष की सम्पत्ति मानी जाने लगी[४]। सहमरण की प्रथा का चलन अभी नही हुआ था। सन्तानहीन विधवाओ की पर-पुरुष से पुत्र प्राप्ति का अधिकार था[५]। बाल-विवाह होना आरम्भ हो गए थे। कन्या के रजस्वला होने से पूर्व ही विवाह करना उत्तम माना जाता था। उत्तर-सूत्र-काल मे नारी सम्बन्धी विचारो मे बडा अन्तर्विरोध मिलता है। नारी-स्थिति के विषय मे सभी सूत्रकार एकमत नही हैं।

१—डा० बेनी प्रसाद : 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता,' पृष्ठ १०७।

२—ब्रजवल्लभ शरण : 'कल्याण' नारी विशेषाक ' पृष्ठ ११०।

३—बौध : ११, २३, ४४, गौतम . १५।१ : 'द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आँफ इन्डिया' प्रथम पोथी, पृष्ठ २४७ पर उत्कथित।

४—वास, १६।१८।

५—बौध, २।४।६।

फिर भी नारी के लिए कुछ सामान्य आदर्शों की प्रतिष्ठा की गई है। माता के रूप मे नारी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। वधू का कुमारी होना अनिवार्य समझा जाता था[१]। विधवा-विवाह वर्जित थे। विधवाएँ असम्मानित, नियन्त्रित एव उपेक्षापूर्ण जीवन व्यतीत करती थी। सहमरण शास्त्र सम्मत न था।

इसके उपरान्त रामायणकाल मे नारी-स्थिति का विकास हुआ। राजकुमारियो को स्वय वरण करने का अधिकार था। इस काल मे पतिव्रत धर्म का बहुत महत्व था। पति देवता के रूप मे पूज्य था[२]। अयोध्याकाण्ड मे सीता स्त्रियो के धर्म की व्याख्या इस प्रकार करती है —'स्त्री का सहारा न तो माँ बाप से है, न अपने से है, पति ही एक मात्र सहारा है[३]।' इस काल मे बहु-विवाह प्रथा प्रचलित थी। दशरथ इसके उदाहरण है। सपत्नियो के सम्बन्ध अच्छे न थे। यज्ञादि मे भाग लेने का अधिकार उन्हे प्राप्त था।

महाभारत काल तक आते-आते भारतीय सामाजिक व्यवस्था का स्तर अनेक दृष्टियो से पतित हो चुका था। जन्मगत वश का अभिमान तथा वर्ण एव जाति-भेद की दीवारे दृढ हो गई थी। यह काल नारी-स्थिति के ह्रास का काल था। अब उन्हे शूद्रो के समकक्ष रखा जाने लगा। उनकी स्वतन्त्रता नियन्त्रित कर दी गई। पति के अधा होने के कारण गान्धारी को जीवन भर आँखो पर पट्टी बाधे रहना पडा। द्रौपदी पाँच पतियो की पत्नी बनने पर विवश हुई। अपने प्रेम को विवाह मे परिवर्तित करने के लिए अर्जुन को सुभद्रा का हरण करना पडा। नारी को सम्पति समझ, सामान्य धन की भाँति जुए के दाँव पर लगा देना भरी सभा मे नारी के सतीत्व-हरण की चेष्टा तत्कालीन नारी स्थिति का दयनीय चित्र उपस्थित करती है। धृतराष्ट्र के १०० पुत्रो का उल्लेख बहु-विवाह का द्योतक है।

महाभारत कालीन नारियो की स्थिति बड़ी विचित्र-सी दिखाई पडती है। कही उनके उज्ज्वल पक्ष को उपस्थित कर उन्हे सम्मान प्रदान किया गया है। वे पति की पथ-प्रदर्शिका, उन्हे दुष्कार्यों से बचाने मे पूर्ण हृदय से सलग्न दिखाई पडती है। पति की असहाय अवस्था मे राज्य का पूर्ण रूप से सचालन तथा अपने परिवार का पोषण उनके चरित्र की अपनी विशेषता रही है[४]। परन्तु कही-कही उन्हे किसी भी प्रकार का स्वतन्त्रता देने की अनुमति न देने का उल्लेख भी है[५]। घर की सीमाओं मे उनके जीवन का उद्देश्य सीमित है। माया, अग्नि, सर्पिणी,

१—मनु, ९।६५।

२—बाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड, १८।

३—डा० बेनी प्रसाद . 'हिन्दुस्तान की पुरानी सम्यता,' पृष्ठ १८३ पर उत्कथित।

४—वन पर्व ११, २७, ३७, ५६, ६१।

५—अनुशासिक पर्व . ४५।

गरल, विचार-विहीना, चचला तथा दुश्चरित्रा आदि विशेषणों से युक्त उनके प्रति उपेक्षा के प्रमाण भी महाभारत मे मिलते हैं[१]। इस काल मे बहुत-सी घटनाओ के कारण नारी द्वारा उच्च सम्मान-प्राप्ति की बात भी लक्षित होती थी। सुभद्रा हरण की घटना से नारी के स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण का प्रमाण मिलता है। स्वयवर की प्रथा इस काल मे भी प्रचलित थी, विधवा-विवाह के विषय मे परस्पर विरोधी प्रमाण मिलते हैं। माद्री अपने पति पाँडु के साथ सती हो जाती है, जबकि दमयन्ती के दूसरे स्वयवर की घोषणा का भी उल्लेख मिलता है[२]। नियोग प्रथा का प्रचलन सम्भवतः इस काल मे आरम्भ हो गया था। नियोग पति की मृत्यु के पश्चात् तथा विशेष दशा में जीवित रहने पर भी उसकी आज्ञा से किया जाता था[३]। नारी के पत्नी स्वरूप को इस काल मे उच्च महत्व प्राप्त था। 'पत्नी ही घर है, जिस घर मे पत्नी नही, वह घर नही है......धर्म, अर्थ और काम मे, देश मे और परदेश मे, सुख मे, दुख मे, हर बात मे पत्नी ही साथी है[४]।

उत्तर-वैदिक काल से लेकर महाकाव्यो के काल तक ब्राह्मण धर्म की कट्टरता संकीर्ण पथ से निकलती हुई स्वतन्त्र वातावरण और उदार विचारो का दलन कार्य कर रही थी। इसी सकीर्णता के विरोध मे बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ। समस्त मानव जाति के लिए समानता का भाव लेकर इस धर्म ने आत्म-शुद्धि तथा आत्म-सयम का सदेश दिया। सन् १०० ई० तक इस धर्म का प्रचुर प्रचार हो चुका था। धर्म प्रस्थापन के ६ वर्ष बाद स्त्रियो को इस धर्म मे दीक्षित होने की अनुमति प्राप्त हो गई थी। बुद्ध भगवान ने नारी के लिए आत्म-विकास की भावना का पुर्नस्थापन किया। बौद्ध-धर्म के भ्रष्ट होने से पूर्व नारी की सामाजिक स्थिति इस काल मे उन्नत थी। धार्मिक क्षेत्र मे उसे महान् स्वतन्त्रता प्राप्त थी। इसीलिए हिन्दू धर्म की कट्टरता से विक्षुब्ध नारियो ने इस नए धर्म को हृदय से स्वीकार किया। महाप्रजापति देवी, अन्य कई महिलाओं के साथ सबसे पहले इसमें दीक्षित हुई, वेश्याओ और नर्तकियों के लिए भी इस धर्म के द्वार बन्द नही थे। इस धर्म से प्रभावित समाज मे अन्तर्जातीय विवाह होने आरम्भ हो गए थे। पुत्री का जन्म अमगलकारी नही समझा जाता था। उनकी शिक्षा पर पुत्रों के समान ही ध्यान दिया जाता था[५]। विवाह आयु मे अभी कमी नही हुई थी। पूर्ण वयस्क होने पर ही विवाह किया जाता जाता था कुमारियो को अपने प्रिय से विवाह करने

१—अनुशासिक पर्व : १२, १६-२१, ३८-३६, ५०।

२—नाहर . प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सास्कृतिक इतिहास, पृष्ठ ११८।

३—वही।

४—डा० बेनी प्रसाद : हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृष्ठ १६५।

५—हार्नर एल० बी० : 'वीमन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म' पृष्ठ १६-२०।

के लिए अभिभावको की अनुमति लेनी पडती थी। माता को अपनी पुत्री के विवाह पर अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार था। पति-पत्नी, एक दूसरे के विचारो का आदर करते थे, लेकिन पुरुष का स्थान ऊँचा होता था। इस काल मे विधवा-विवाह लगभग बन्द हो गये थे। विधवाएँ अधिकतर बौद्ध सघ मे दीक्षित होकर तपश्चर्या का जीवन व्यतीत करती थी। वैसे विधवा-विवाह को बुरा नही माना जाता था। यह कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म के आरम्भिक काल मे, जब वहाँ भ्रष्टता का प्रस्फुटन नही हुआ था, नारी को महत्व का स्थान देने, और उसकी वेद कालीन उखडती हुई स्थिति को सँभालने की दिशा मे प्रयत्न किया गया[1]।

नारी-स्थिति के इतने सरक्षण के साथ-साथ बौद्धकाल मे उनकी स्थिति के ह्रास को दृष्टि-ओझल नही किया जा सकता। प्रारम्भ मे महात्मा बुद्ध इस पक्ष में नही थे कि नारी को बौद्ध सघ मे दीक्षित होने की अनुमति दी जाय। आनन्द की प्रार्थना पर ही उन्होने सघ मेप्रवेश की आज्ञा दी थी। साथ ही उन्होने ८ ऐसे कठोर नियम बना दिए जिससे नारी के लिए सघ जीवन कष्टदायक, और पुरुष की तुलना मे स्थिति निम्न हो गई। उदाहरण के लिए, सौ वर्ष की भिक्षुणी को भी पहिले भिक्षु की अर्भ्यथना करनी पड़ती थी, चाहे भिक्षु केवल एक ही दिन का क्यो न दीक्षित हुआ हो[2]। भिक्षुणियाँ भिक्षुओ के साथ स्वेच्छा से जाकर वार्तालाप नही कर सकती थी, पर भिक्षुओ के लिए यह स्वतन्त्रता प्राप्त थी[3]। भिक्षुणियाँ किसी भिक्षुक पर दोषारोपण नही कर सकती थी, जबकि भिक्षुक को यह अधिकार प्राप्त था। विनयपिटक : चुल्लवग्ग १।१। . मे महात्मा बुद्ध ने आनन्द से नारी के संघ-प्रवेश पर अपना दुख यो प्रकट किया है—'पर, अब, जब स्त्रियों का प्रवेश हो गया है आनन्द, धर्म चिरस्थायी न रह सकेगा।...जिस प्रकार ऐसे घरों मे जिनमे स्त्रियाँ अधिक और कम पुरुष होते हैं, चोरी विशेष रूप से होती है, कुछ इस प्रकार की अवस्था उस सूत्र और विनय की समझी जानी चाहिए जिसमे स्त्रियाँ घर का परित्याग करके गृह-विहीन जीवन मे प्रवेश करने लगती है...........फिर भी आनन्द, मनुष्य जैसे भविष्य को सोचकर जलाशय के लिए बाँध बँधवा देता है, जिससे जल बाहर न बहने लग जाए, उसी प्रकार आनन्द, भावी के लिए, मैंने ये आठ कठोर नियम बना दिए हैं, जिनका पालन भिक्षुणियो के लिए अनिवार्य है। जब तक धर्म है, उन नियमो के पालन मे प्रमाद न होना चाहिए।'

इस प्रकार से तत्कालीन समाज में स्त्रियो की स्थिति को पूर्वकालीन गौरव की प्राप्ति न थी। बुद्ध जैसे निष्पक्ष व्यक्ति को भी उनके आचरण पर पूर्ण

१—नीरा देसाई : 'वीमन इन माडर्न इन्डिया' पृष्ठ ११।

२—विनयपिटक चुल्लवग्ग १०।१।

३—वही।

विश्वास न था साधारणतया तत्कालीन नारी गृह-सीमाओ मे आवद्ध हो गई थी। गृहस्थ धर्म तथा ललित कलाओ एव सगीत मे रुचि ही उसका मूल्य गुण बन गया था, और समाज सम्बन्धी स्वतन्त्र विचारधारा एव व्यवहार उसके क्षेत्र से बाहर की वस्तु बन गए थे।

बौद्ध-धर्म के साथ-साथ भारतवर्ष मे जैन धर्म का भी आविर्भाव हुआ। जैन धर्म ग्रन्थो मे नारी के प्रति अटूट विरक्ति की भावना स्पष्ट लक्षित होती है। वे पुरुष के सिद्धि मार्ग की सबसे बडी बाधा माया-रूप मरीचिका तथा मृत्युपाश हैं। 'ज्ञानार्णव' मे शुभचन्द आचार्य ने कहा—'स्त्रियाँ वाणी मे अमृत रखती हैं, लेकिन हृदय मे विष भरे हुए है। वे स्वभाव से ही कुटिल हैं। स्त्री, पुरुषों को वज्राग्नि की ज्वाला के समान और साँप की दाढ के समान भय सताप देने वाली है। क्रोध से फुकार भरती हुई सर्पिणी का—आलिगन करना श्रेष्ठ है किन्तु स्त्री को कौतुक-मात्र से आलिगन करना भी उचित नही है, क्योकि सर्पिणी यदि काटे तो एक बार ही का मरण होता है पर स्त्री तो नरक की पद्धति के समान है, वह एक बार नहीं, बार-बार मरण करा कर नरक मे ले जाने वाली है।' . ज्ञानार्णव, अध्याय १२, २-३, ५ .

'सुभाषित रत्न संदोह' मे भी अमित गति आचार्य ने नारी को माया, अस्थिर मना, अपकारी, असत्य भाषण मे चतुरा तथा कुल मे कलंक लगाने वाली कहा है[१]।'

नारी की सामाजिक स्थिति के ह्रास का प्रथम प्रत्यक्ष चरण स्मृति काल से आरम्भ होता है। उपर्युक्त काल तक नारी स्थिति के विषय को लेकर जो कुछ भी कहा गया वह नारी स्थिति के पतन के पूर्व-पीठिका मात्र था। वैदिक-कालीन धार्मिक अनुष्ठानो मे नारी-महत्वपूर्ण भाग लेती रही थी, और उसकी उपस्थिति के बिना कोई भी कृत्य पूरा नही समझा जाता था, परन्तु अब उसकी बौद्धिक स्थिति को सकीर्ण सीमाओं मे आवद्ध कर दिया गया। धर्म से नारी का सम्पर्क धीरे-धीरे छूट रहा था। केवल विवाह के अवसर पर ही उसे मन्त्रो का उच्चारण करना पडता था। अत उसको शिक्षित करने की भी आवश्यकता नही समझी गई। परिणामस्वरूप नारी के धार्मिक जीवन के साथ-साथ उसकी शिक्षा भी समाप्त हो गई। स्मृतिकारो ने स्त्री को स्वतन्त्रता प्रदान करने मे अपनी उपेक्षा प्रकट की है। सामाजिक, सास्कृतिक एव धार्मिक समारोहो मे उपस्थित होने अथवा भाग लेने की पहली जैसी स्वतन्त्ता उसे अब नही रह गई थी। स्मृतिकालीन समाज रूढिवादिता की दिशा में अग्रसर हो रहा था। मनु ने ब्राह्मणों को अधिक

१—शाश्वन्माया करोति, स्थिर पति न मनो मान्यते नोपकारे,
या वाक्य वक्त्यसत्य, मलिन पति कुल, कीर्ति वल्लीलुनाति'। . सु० रं० सन्दोह ११६।

स्वतन्त्रता एव अधिकार देकर नारी और शूद्रो की स्थिति को बहुत नीचे गिरा दिया। अब नारी की अपनी वैयक्तिकता समाप्त हो चुकी थी। पुरुष उसका नियामक बनने की दिशा मे अग्रसर हो रहा था। उच्च कुलो मे पर्दे की प्रथा थी। हिन्दू धर्म-शास्त्रियो के अनुसार विवाह के ८ भेद कर दिए गए। जिनमे से प्रथम चार प्रकार के विवाह हिन्दू धर्म द्वारा मान्य थे। पिता अपनी कन्या को उपहार के रूप मे किसी योग्य पुरुष को दे देता था। कन्या के वयस्क हो जाने की अवस्था १२ वर्ष मानी गई[१]। वयस्क होने पर ही उसका विवाह होता था। विवाहित पत्नी का कर्तव्य पारिवारिक सुव्यवस्था के लिए धन का सदुपयोग करने, घर को स्वच्छ रखने, धार्मिक कृत्यो को पूर्ण करने, भोजन बनाने तथा बच्चो की देख-भाल करने तक सीमित हो गया[२]। मनु ने सती प्रथा का तीव्र खण्डन किया है। उनके अनुसार साध्वी पत्नी पति की मृत्यु के उपरान्त पवित्र जीवन व्यतीत करती है, तो उसे पवित्र पति की ही भाँति स्वर्ग की प्राप्ति होती है[३]। मनु-सहिता मे सहमरण के साथ-साथ विधवा-विवाह का विरोध भी किया गया है। पुनर्विवाह करने वाली नारी दुराचारिणी है, और वह पुरुष जो ऐसी नारी के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, श्राद्ध, सस्कार से वचित होना चाहिए[४]। मनु के विपरीत कौटिल्य ने सन्तानहीन विधवा के लिए 'नियोग' का विधान बतलाया है, जब कि मनु ने 'नियोग' की भी तीव्र आलोचना की है। इस प्रकार नारी पुनर्विवाह से वचित रहती थी, जबकि पुरुष धार्मिक अनुष्ठानो को पूर्ण करने के हेतु एक पत्नी के मरने के बाद दूसरा विवाह कर सकता था। कौटिल्य अर्थ-शास्त्र में एक ही विवाह के आदर्श को माना गया है। विवाह होने पर सुगमता से सम्बन्ध-विच्छेद नही किया जा सकता था, वैसे उच्च वर्गों मे ओपशायक दोष उत्पन्न हो जाने पर सम्बन्ध-विच्छेद का नियम था। एक दूसरे से घृणा होने पर भी सम्बन्ध-विच्छेद का नियम था[५]। विवाह हो जाने के पश्चात् यदि स्त्री के गर्भ न रहता हो, अथवा गर्भदान-शक्ति क्षीण हो गई हो तो आठ वर्ष तक, मृत बच्चे के होने पर १० वर्ष तक, केवल कन्यायें होने पर १२ वर्ष तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् पुत्रार्थी दूसरा विवाह कर सकता था। इस प्रकार से यदि युवती विधवा सन्तान प्राप्त करने की इच्छा से पुनर्विवाह करती तो उसे अपने स्वसुर तथा पति का धन-

१—शाम शास्त्री . कौटिलीय अर्थ शास्त्र, पृष्ठ १६६।

२—बुह्लर · 'द लाज ऑफ मनु' पृष्ठ ३२६।

३—एम० पिनखम द्वारा 'वीमन इन द सेकण्ड स्क्रिपचर्स' मे पृष्ठ ८७ पर उत्कथित।

४—बुह्लर . 'द लाज ऑफ मनु' पृष्ठ, १०७।

— ११म शास्त्री : 'कौटिलीय अर्थ शास्त्र,' पृष्ठ १७६-१७७।

विवाह के अवसर पर दे दिया जाता था[१]। सन्तानवती विधवा का विवाह वर्जित था। मनु सम्बन्ध-विच्छेद के भी पक्षपाती नही है।

नारी के सम्पत्ति विवाह अधिकारो की भी व्याख्या स्मृतिकारो ने की है। सहोदर विहीन बहिन पिता के धन की अधिकारिणी हो सकती थी। मनु-स्मृति मे ऐसी अवस्था मे बहिन को केवल विवाह योग्य धन देने की ही व्यवस्था है[२]। मनु का कथन है कि पत्नी, पुत्र और दास को सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही होता। इनके धन पर उस पुरुष का अधिकार है, जिससे ये सम्बन्धित है[३]। आगे मनु ने ६ प्रकार के स्त्रीधन की व्यवस्था की है। जिस पर स्त्री का पूर्ण अधिकार होता है। यह धन विवाह के अवसर पर पिता से, विदाई के अवसर पर पिता से, समय-समय पर भेट रूप मे पति से, तथा विभिन्न अवसरो पर माता, पिता तथा भाई से प्राप्त होता है। विधवा अपने पवित्र वैधव्य काल मे अपने पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है, और उसका उपयोग सन्तति-पोषण के लिए किया जा सकता है। मनु के अनुसार नारी पुरुष के प्रगतिपथ की सबसे बडी बाधा होती है। इस कारण विद्वान लोग उसका साथ नही करते। नारी मूर्ख मनुष्य को ही नही, वरन् साधुओ को भी पथ-भ्रष्ट कर, उनमे इच्छा जागृत कर देने की शक्ति रखती है[४]।

भारतीय नारी-स्थिति के ह्रास का यह क्रम पौराणिक युग मे अधिक मुखर हो गया। पुराणो की रचना बौद्ध धर्म के विरोध मे ब्राह्मणो की अक्षुण्णता स्थापित करने के लिए की गई थी। बौद्ध और जैन लोगो के इस विश्वास ने कि मोक्ष प्राप्ति के लिए आत्मा और परमात्मा के मध्य कोई मध्यस्थ रखने की आवश्यकता नही है और नारी भी भिक्षुणी होकर मोक्ष की अधिकारिणी हो सकती है, ब्राह्मण पन्थियो को भयभीत कर दिया था। इसलिए इस युग मे एक बार फिर वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा की गई। फलस्वरूप नारी के अधिकार और भी अधिक सकीर्ण हो गए। उनके लिए पति ही देवता हो गया। इनके द्वारा इस विश्वास को प्रस्थापित किया गया कि उसके द्वारा पति की आराधना जीव की ब्रह्म के प्रति आराधना है[५]। किसी भी दशा मे पति को छोड़ने का अधिकार उसे नही है। एक बार विवाहिता हो जाने पर पति ही उसका लक्ष्य, धर्म और आदर्श है। श्री के पी. जायसवाल ने अपनी पुस्तक 'मनु ऐण्ड याज्ञवलक्य'[६] मे पौराणिक नारी की

१—देवदत्त शास्त्री : 'कोटिल्य अर्थ शास्त्र,' पृष्ठ ३१४।
२—बुह्लर . द लाज ऑफ मनु, पृष्ठ ३४८।
३—बुह्लर . द लाज ऑफ मनु पृष्ठ ३२६।
४—जान विलियम : मनुस्मृति, पृष्ठ ३६।
५—पद्म पुराण, : प्रथम पोथी : पृष्ठ ४१, ७०।

मनु और कौटिलीय नारियो से तुलना करते हुए लिखा है—

'It was not the wife of the time of the Kautilya who would bring an action for defamation or assualt and become a defendent in the court for beating her husband. It was not the wife of the time of Manava who regarded 'Mutual Fidelity' to be highest duty. It was the wife of Yajnavalkya's age permeated to the core like Pickle......with the dharma of object obedience and unnatural tolerance. (Page 232)

पौराणिक काल मे नारी का धार्मिक जीवन केवल व्रत रखने तक ही सीमित हो गया था। नारी द्वारा वेदाध्ययन का अधिकार इस काल मे समाप्त कर दिया गया। गृहस्थ जीवन को सबसे अधिक महत्ता प्रदान की गई। कोई भी नारी आजन्म कौमार्य पालन नही कर सकती। विवाह योग्य आयु और भी नीचे आ गई। साधारणतया ८-१० वर्ष की कन्या का विवाह कर दिया जाता था। ब्रह्म पुराण मे विवाह की अवस्था चार वर्ष मानी गई है[१]। इस काल मे अन्तर्जातीय विवाह होने बन्द हो गए थे। एक जातीय विवाह का आदर्श समाज मे प्रचलित था। पुनर्विवाह प्रथा समाप्त हो चली थी[२]। पुराणो मे सहमरण के बहुत से उदाहरण मिलते है। इससे पूर्व सहमरण के जो भी उदाहरण प्राप्य है, उनमे आत्म-त्याग की भावना विशेष होती थी। परन्तु अब उन्हे सती होने के लिए बाध्य किया जाने लगा। पौराणिक काल के इस धूमिल प्रहर मे भी एक बात विशेष रूप से विचारणीय है और वह है स्त्री-धन की महत्ता। स्त्रियो को स्त्रीधन पर पूर्ण अधिकार था। पुत्र के अभाव मे पति के धन की वे ही अधिकारिणी होती थी। परन्तु इसके लिए विधवा का पवित्र होना अत्यावश्यक होता था।

पौराणिक काल नारी के लिए उसकी दुरावस्था का सदेश लेकर आया। समाज मे रूढिवादिता की जडे गहरी हो रही थी। ब्राह्मण धर्म अपनी कट्टरता के बल, उसे अपनी वैयक्तिकता के विकास के लिए किसी भी प्रकार का अवकास और अवसर प्रदान करने के पक्ष मे नही था। इस प्रकार विदेशियो के आगमन से पूर्व ही भारतीय समाज विवाह, बहु-विवाह, सती-प्रथा, अशिक्षा, बाधित वैधव्य एव पर्दा प्रथा आदि कुरीतियो का प्रचलन हो गया था। इनको उत्तर-पुराण काल मे मुसलमानो के आगमन से और भी अधिक विकसित होने का अवसर मिला।

१—नीरा देसाई : 'वीमन इन माडर्न इन्डिया' पृष्ठ २१।

२—ह्वेन च्वेग, सल्तोरे आर० एन० द्वारा 'लाइफ इन गुप्ता एज,' पृष्ठ १११ : मे उत्कथित।

पौराणिक युग से आरम्भ हुई सकीर्णता विदेशियो के आक्रमणों तथा उनके धर्म-प्रचार के प्रयास के कारण और भी अधिक सकीर्ण होती चली गई। अब नारी की प्रगति और स्वतन्त्रता समाप्त होकर उसका जीवन परम्परागत अवरुद्ध धाराओ मे बहने लगा। उत्तर-पौराणिक काल नारी-स्थिति दृष्टि से सबसे अधकारमय काल है। नारी की यह दयनीय स्थिति १६वी शताब्दी के आरम्भिक वर्षो तक बनी रही। भारतीय समाज मे मुसलमानो से पूर्व बहु-विवाह प्रथा प्रचलित थी, परन्तु इसका प्रचलन अधिकतर राज्य वशो अथवा उच्चतर स्तर के लोगो तक ही सीमित था। मुसलमानो के प्रभाव से इस प्रथा का विस्तार हुआ और जन-साधारण मे भी बहु-पत्नी प्रथा व्याप्त हो गई। सामाजिक समाराहो मे एक प्रकार से उसका पूर्ण निषेध हो गया। घर की चहारदीवारी उसके कर्म-क्षेत्र की सीमा-रेखा के रूप मे मान्य हुई। विधवा-विवाह प्रथा पूर्णतया नष्ट हो गई। सती प्रथा का विस्तार हुआ। अभी तक क्षत्रिय लोगो मे ही सहमरण प्रथा प्रचलित थी। अब ब्राह्मणो ने भी आत्म-सम्मान की रक्षा की भावना से इस प्रथा को अपना लिया। कालान्तर मे यह भावना इतनी अधिक बलवती हो गई कि सती होने से बचने वाली स्त्री को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। मुसलमानो मे सम्बन्ध-विच्छेद, पति की सम्पति पर पत्नी का अधिकार तथा विधवा-विवाह आदि प्रथाएँ प्रचलित थी, परन्तु ब्राह्मण आदर्शो से निर्देशित भारतीय समाज इन प्रथाओ को अपना सकने मे असमर्थ रहा, और अपनी परम्परागत सकीर्णताओ से मोह रखते हुए प्राचीन परिपाटी पर ही चलता रहा।

हिन्दू समाज मे रूढिवादिता तथा सकीर्ण भावना का विकास आत्म-रक्षा के उद्देश्य से किया गया था। परन्तु कालान्तर मे यह भावना परिपाटी के रूप में चलकर सकीर्ण से सकीर्णतर होती हुई हिन्दू समाज के पतन का कारण बन गई। बौद्ध धर्म के विरुद्ध ८वी शती मे शकराचार्य का अभ्युदय हो चुका था। उन्होने ज्ञान के बल पर वेदो की उच्चता का पुनर्स्थापन करना चाहा। परन्तु जन-सम्पर्क की न्यूनता के कारण जन-साधारण को उनके ज्ञान का अधिक लाभ प्राप्त न हो सका। उनके उपरान्त १२वी शताब्दी मे जब भारतीय भूमि पर विदेशियो का पदार्पण हो चुका था, रामानुज ने भक्ति आन्दोलन का शिलान्यास कर, प्राणी मात्र के बीच परस्पर स्नेह तथा समानता का सदेश दिया। भक्ति आन्दोलन की यह लहर रामानुज से आरम्भ होकर १५वी और १६वी शताब्दी तक देश के कोने-कोने मे व्याप्त हो गई। रामानुज का आविष्कृत सगुणभक्ति-मार्ग लोगों के जीवन की इच्छा का प्रादुर्भाव करते हुए उन्हे अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। दूसरी ओर गुजरात प्रदेश मे स्वामी माधवाचार्य वैष्णव धर्म का प्रचार कर रहे थे। पूर्व भाग मे जयदेव और विद्यापति कृष्ण भक्ति की प्रतिष्ठा मे रत थे। १५वीं शताब्दी के लगभग मध्य-भारत मे रामानन्द राम-भक्ति का प्रचार कार्य कर रहे थे, और दूसरी

ओर उत्तर भारत में स्वामी वल्लभाचार्य कृष्ण-भक्ति के महात्म्य के बखान मे लगे थे। भक्ति के इस युग मे देश ने जहाँ रामानुज, निम्बार्क मुनि, माधवाचार्य और चैतन्य जैसे महात्मा उपदेशकों को उत्पन्न किया वहाँ दूसरी ओर रामानन्द, कबीर, नानक, तुलसी, सूर, मीरा, नरसिह, नामदेव एव तुकाराम जैसे सन्तो और भक्तो की भी प्रतिष्ठा की, जिन्होंने भक्ति की इस धारा को सुदृढता तथा दीर्घ जीवन प्रदान किया। इस काल मे भिन्न-भिन्न जातियो से महात्माओ और साधको का अभ्युदय हुआ, अत जाति-पाँति और लिंग की समानता का घोष उच्च स्वर मे किया गया। सभी धर्मावलम्बियो ने अपने धर्म के द्वार सभी के लिए समान रूप से खोल दिए। इसके परिणामस्वरूप नारी को एक बार फिर उन्मुक्त वातावरण प्रदान करने की भावना का जन्म हुआ। भक्त और साधकों के इस युग मे ऐसे साहित्य का सृजन किया जो जन-साधारण के लिए सुलभ हो। कबीर की साखियाँ, तुलसी की चौपाइयाँ, सूर के पद, चैतन्य के कीर्तन, नरसिह के प्रात गीत, ज्ञानदेव और तुकाराम के अभग तथा मीरा के भजनो ने भारतीय समाज को अमूल्य साहित्य का उपहार दिया। महादेव गोविन्द रानाडे ने अपनी पुस्तक 'द राइज आफ मराठा पावर' : पृष्ठ, ३५९ मे इस नव-रचित भक्ति-साहित्य के विषय मे महत्वपूर्ण उद्धरण प्रस्तुत किया है —

'The Professors of Sanskrit learning found for the first time, to their great surprise that the saints and prophets addressed the people in their own vernacular and boldly open the hitherto hidden treasures of all and sundry, men and women, Brahmans and Shuaras alike.'

भक्ति-युगीन साधकों तथा उपदेशको के इस प्रवाह मे नारी को धार्मिक क्षेत्र में महत्व प्रदान हुआ। पुरुष की भाँति नारी भी भक्ति के माध्यम से भगवान की पूजा करके मोक्ष प्राप्त कर सकती थी। पुराणो और स्मृतियों ने पतिव्रत धर्म के निभाने पर ही मोक्ष प्राप्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। परन्तु भक्ति-काल मे पतिता, वेश्या और अकुलीना भी मोक्ष प्राप्त कर सकने का अधिकार रखती थी। इस काल में सर्वोपरि शक्ति पर अगाध विश्वास रखने वाली कुछ भक्तिने हुई। जिन्होने भगवद् प्राप्ति के लिए पारिवारिक जीवन से विमुख होकर त्याग और तपश्चर्या के जीवन को प्रमुखता दी। ऐसी भक्तिनों मे मीरा, मुक्ता, क्षेमा आदि के नाम उल्लेखनीय है।

धार्मिक क्षेत्र के साथ-साथ समाज गत व्यवस्था मे भी कुछ सुधार हुए। इस काल में कीर्तन, भजन आदि धार्मिक मांगलिक कृत्यों के अवसर पर महिलाएँ

भी उपस्थित रहती थी। पुरुषो के साथ बैठने, बात करने के प्रसंग आने के कारण पर्दे की प्रथा कम हुई। सन्त अमरदास ने अपनी शिष्याओ मे पर्दा-प्रथा को उठा दिया था। साथ ही साथ एक बार नारी को घर की सीमाओ से बाहर सामाजिक समारोहो मे भाग लेने का अवसर मिला। साधुओं द्वारा गृहस्थाश्रम धर्म पर विशेष बल दिया गया। सन्यासी बनने से पूर्व पति को पत्नी की आज्ञा लेना अनिवार्य था। यदि किसी अवसर पर पत्नी भी पति के साथ सन्यासिनी बनना चाहे, तो उसे ऐसा करने का अधिकार प्राप्त था। मोक्ष प्राप्ति में भी नारी पुरुष का साथ देती थी। तत्कालीन सन्तो ने जिस प्रकार के साहित्य का सृजन किया वह जन-साधारण के लिए सुलभ था। अत. नारी को एक बार फिर शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर मिला। भक्ति-युग मे युगल-पूजा के प्रचलन से नारी जाति गौरव का स्थान प्राप्त करने की दिशा मे अग्रसर हुई। लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती आदि युगल देवताओं की आराधना ने नारी के प्रति एक मनोवैज्ञानिक सम्मानित दृष्टिकोण का भाव प्रदर्शित किया।

धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्र मे इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त करने के साथ-साथ भक्त उपदेशको एव सन्तो ने नारी के प्रति विरक्ति की भावना भी प्रकट की है। एकनाथ ने साधक को नारी से दूर रहने का आदेश दिया है[1]। उन्होंने यह भी कहा है कि पुरुष का नारी से आवश्यकता से अधिक सम्पर्क स्थापित करना उचित नही है। तुकाराम ने भी इसी प्रकार नारी ससर्ग से अलग रहने की इच्छा प्रकट की है, क्योकि उसके सम्पर्क से भगवद्भक्ति मे बाधा पडती है तथा मनोभाव सयमित नही रह पाते हैं[2]। चैतन्य उस पुरुष से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहते, जो नारी से सम्बन्ध बढाने का अभ्यस्त है। मध्य-कालीन सतो ने कही-कही नारी विषयक बडे उपेक्षामय उद्गार प्रकट किए हैं। ये लोग नारी में केवल यौन भावना से उद्भूत वासना ही देख पाये, उसके उच्च चारित्रिक गुणो पर उनकी दृष्टि नही गई। परन्तु जहाँ कही भी उन्होने नारी को देवी अथवा माता के रूप मे देखा है, उनकी जिह्वा उनका गुणगान करते थकी नही है। नारी के प्रति उपेक्षापूर्ण शब्दो को व्यक्त करने का उनका आशय यही रहा था कि नारी का दैहिक आकर्षण मोक्ष-प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करता है। मोक्ष प्राप्ति उनका लक्ष्य था अत उस तक पहुँचने के लिए उन्होने सामान्य रूप मे ही नारी की उपेक्षा की है। वैसे सभी सन्तो के मन मे नारी के प्रति पूर्ण आदर और सम्मान के भाव निहित थे और इसीलिए अपने आराध्य को भी वे युगल रूप मे ही स्वीकार करते थे। नारी के प्रति इतनी महत्वशालिनी एवं पवित्र भावना होने पर भी नारी-स्थिति के उत्थान का यह प्रयास इन भक्तसाधको के साथ ही लुप्त हो गया और

१—बेलवेकर रानाडे, 'ओर हिस्ट्री ऑफ इन्डियन फिलासफी' दूसरी पोथी, पृष्ठ २४२।

२—वही।

उत्तर-मध्य काल तक नारी स्थिति उत्तरोत्तर अधःपतित होती गई। इसका सबसे विशेष कारण हिन्दू समाज की निर्माण-शक्ति का क्षीण होना था। भक्ति-युगीन साधकों द्वारा प्रचारित सुधारो को अपना सकने मे भारतीय समाज असमर्थ रहा। धार्मिक क्षेत्र मे नारी को जो भी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, सामाजिक क्षेत्र के सकीर्ण होने के कारण उस स्वतन्त्रता का कुछ भी मूल्य नही रह गया। इस काल मे आर्थिक व्यवस्था की विषमता उत्पन्न हो चुकी थी। अर्थ-सुव्यवस्था के बिना किसी भी सुधार का विकास एव प्रसार करना कष्ट-साध्य होता है, दूसरे इन सुधारको ने सम्पत्ति, परिवार एव सामाजिक व्यवस्था की ओर ध्यान नही दिया। सामाजिक उत्थान की कोई सुनिश्चित रूप-रेखा के अभाव मे उनका योग केवल धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित रह गया। तीसरे, इन भक्त साधकों के धर्म प्रचार मे बौद्धिकता की अपेक्षा भावुकता तथा अपने आराध्य के प्रति अगाध विश्वास की भावना ही विशिष्ठ थी। अत जन साधारण के मस्तिष्क मे इसका प्रभाव अधिक स्थायी रूप से नही बैठ सका। भक्त समाज अपने मे सगठित नही था। विभिन्न मत-मतान्तरो मे विश्वासी ये साधक अपने मत को एक दूसरे से अधिक उच्च और विशिष्ठ बताने का दावा करते थे। अत जनता पर सामान्य रूप से इस भावना का अच्छा प्रभाव नही पडा, और इनकी साधना एक प्रकार से असफल ही रह गई।

इस प्रकार से पूर्व-मध्यकाल से लेकर उत्तर-मध्य काल तक नारी का गौरव पतन की दिशा मे ही अग्रसर होता चला गया। मध्य-कालीन मुगल शासको की नीति धार्मिक हस्तक्षेप की नीति नही थी, क्योकि कटु अनुभवो के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँच गए थे कि हिन्दू जनता अपने धार्मिक एव सास्कृतिक क्षेत्र मे कट्टर पंथी है, और उसमे हस्तक्षेप का अर्थ, किसी भी क्षण विद्रोह का भयंकर विस्फोट हो सकता है। फिर भी अकबर ने सती प्रथा को बन्द कराने का प्रयास किया। उसके एक नियम के अनुसार कोई भी स्त्री सती होने के लिए बाधित नही की जा सकती थी।

मुगल शासन काल सामान्य रूप से कला और ऐश्वर्य का काल था। युद्ध भूमि से थके हृदयों को शान्ति और सुख की खोज थी। अत. बादशाहो के दरबारो मे विलासिता की भावना को प्रश्रय मिला। इस भावना की पूर्ति का साधन नारी बनी। नारी जब इस प्रकार से पुरुष के मन-बहलाव और तृप्ति के साधन के रूप मे उपस्थित हुई, तो उसे सम्मान देने की बात का प्रश्न ही नही उठा। इस काल मे नारी स्थिति का मूल्य और महत्व भी नीचे गिर गया, और वह पुरुष की उपभोग्या मात्र रह गई। उसकी यह दशा उस समय तक रही जब तक १९वी शताब्दी के आरम्भ मे पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के आलोक मे भारत के नवीन सुधारको द्वारा भारतीय नारी को सम्मानित करने का प्रयास नही किया गया।

इस प्रकार से वैदिक कालीन नारी जो अपने सम्मानपूर्ण पद पर प्रस्थापित हो, पुरुष की सहयोगिनी और प्रेरणा की स्रोत थी, जिसको सामाजिक, आर्थिक एव धार्मिक क्षेत्र मे स्वतन्त्रता प्राप्त थी और जिसकी वैयक्तिकता पुरुषो द्वारा मान्य थी, आगे चल कर भक्तिकाल तक आते-आते वर्ण-व्यवस्था, नियोग-पद्धति, अशिक्षा, सती-प्रथा, बाधित वेधव्य तथा पर्दा प्रथा आदि कुरीतियो के विस्तार मे अपनी स्थिति को बनाए रखने मे असमर्थ हो गई। धर्म सरक्षको एवं मनीषियो ने उसके अधिकार क्षेत्र को सकीर्ण और सीमित कर, उसकी मानसिक स्वतन्त्रता एव बौद्धिक विकास के द्वार पर कठोर नियमो की अर्गला लगा दी। सैद्धान्तिक दृष्टि से उसकी स्थिति पुरुष से बहुत नीचे हो गई। वैशिष्ठ्य और व्यक्तित्वहीन सामाजिक मान्यताओ से रिक्त एव अधिकारों से विमुख नारी अब या तो पुरुष की लौकिक तृषा-तृप्ति का साधन बन गई या उस पर भार-स्वरूप, और उसका मूल्य नही के बराबर ठहराया गया।

मुगल काल के अन्तिम समय तक वह अपनी इस शोचनीय अवस्था की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी, और तब क्रान्ति स्वरूप १९वी शती के भारतीय समाज मे पाश्चात्य सभ्यता एव सस्कृति के विस्तार मे समाज सुधारकों को नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया, जिससे प्रेरणा प्राप्त कर युगो के पश्चात् नारी-जागृति का शखनाद हुआ और वह अपनी दीर्घकालीन असहाय अवस्था को भूल कर एक बार फिर अपना गौरवान्वित पद प्राप्त करने की दिशा मे अग्रसर हुई।

प्रकरण—२

आधुनिक भारतीय समाज में नारी

: पूर्व आधुनिक काल : उत्थानोन्मुख नारी स्थिति :

· १८५७ से १९०० तक

विषय को क्रमबद्ध एव पूर्ण बनाने के उद्देश्य से १८५७ से पूर्व की सुधार योजनाओ एव समाज सुधारको की भी विवेचना कर ली गई है।

पूर्व-आधुनिक काल

जैसा कि पूर्व पृष्ठों मे कहा जा चुका है कि उन्नीसवी शती के आरम्भ काल तक—भारतीय नारी अपनी स्थिति के ह्रास की चरम सीमा का स्पर्श कर चुकी थी। पुरुष-समाज द्वारा प्रतिपादित नैतिक नियमो की अर्गला मे उसकी सामाजिक, धार्मिक एव आर्थिक स्वतन्त्रता आवद्ध होकर रूढ-परम्पराओ के विरुद्ध विद्रोह करने योग्य न रह गई थी। स्वस्थ, हितकर एव विस्तृत भाव-भूमि पर मस्तिष्क का उपयोग कर सकने की—सम्भावनाओ से ही उसकी शून्य स्थिति पडिता रामाबाई के इन शब्दो मे स्पप्ट रूप से व्यक्त होती है :—

'She is forbidden to read the sacred scriptures. She has no right to pronounce a single syllable out of them. To appeal to her uncultivated low kind of desire by giving her ornaments, to adorn her person and by giving dainty food together with an occasional bow which costs nothing, are the highest honours to which a Hindu woman is entitled. (The High Caste Hindu Woman, Page 81-82)

तत्कालीन भारतीय समाज की पितृ-प्रधान सयुक्त व्यवस्था, नारी स्थिति के विकास में अवरोध उत्पन्न करने लगी। उस समाज की हिन्दू एव अहिन्दू सभी जातियों ने नारी को स्वतन्त्रता एवं अधिकार प्रदान करने के क्षेत्र में उदासीनता एव उपेक्षा की भावना का ही प्रदर्शन किया, उसे पुरुष की मात्र शारीरिक एवं निम्नतर आकांक्षाओ की पूर्त्ति का साधन समझा गया, साथ ही किसी भी क्षेत्र में मस्तिष्क का विकास एव उपयोग कर सकने के अयोग्य ठहराई गई[1]। इस प्रकार से तत्कालीन सामन्तवादी समाज, प्रधानतया आत्म-निर्भर ग्राम्य व्यवस्था, जातीयता, संयुक्त कुटुम्ब प्रथा एवं रूढिवादी आदर्शो पर आधारित होकर नारी के लिए किसी भी प्रकार का प्रबुद्ध विकास-क्षेत्र उपस्थित कर सकने मे असमर्थ रहा[2]। अतः इस

१—अव्वे जा डुबायस · हिन्दू मैनर्स कस्टम्स एण्ड सेरेमनीज, पृष्ठ ३३६।
२—नीरा देसाई : 'वीमन इन माडर्न इन्डिया,' पृष्ठ ३०।

अमंगल संकीर्णता की प्रतिक्रिया स्वरूप भारत को उस समय एक नवीन समाज की महत्ती आवश्यकता थी, जो इस हीनावस्था को प्राप्त नारी स्थिति को लेकर जागरण का शखनाद कर सकता तथा उस जागरण के आलोक का स्वागत करती हुई तत्कालीन नारी अपने वास्तविक अधिकार क्षेत्र को पहचान, उनका उपयोग कर, नवीन समाज की नवीन भावभूमि मे अपना सम्मानित स्थान ग्रहण कर पाती।

और ऐसी ही परिस्थितियो के बीच भारत पाश्चात्य देशो के सम्पर्क मे आया। १५वी शताब्दी के बाद से ही योरूप मे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एव सास्कृतिक मान्यताओ मे परिवर्तन होने लगा था। १८वी शताब्दी मे इग्लैंड मे हुई औद्योगिक क्रान्ति ने व्यापारिक विस्तार के लिए नए-नए उपनिवेशो की खोज आरम्भ कर दी थी। जमीदारी प्रथा की निरकुशता तथा सम्राट् होने के ईश्वरीय अधिकार के सिद्धात बौद्धिक जागृति के आलोक मे व्यर्थ से लगने लगे थे। 'मुद्रण सस्थाओ के विकास ने व्यक्ति-गत स्वतन्त्रता तथा जन-सत्ता की भावना को बल प्रदान किया था'[1]। उस काल का योरूप वैज्ञानिको, समाज-शास्त्रियो एव दार्शनिक विचारको का योरूप था, उसने बेकन, ह्यूम, लॉक, रूसो, वाल्टेयर तथा हेल्वेटियस आदि विद्वानो को जन्म देकर सामाजिक तथा राजनीतिक मान्यताओ मे एक नवीन क्रान्ति का सूत्रपात्र किया। इस प्रकार 'पश्चिमी योरूपीय देशो मे जिस नवीन समाज का निर्माण हुआ उसमे आर्थिक क्षेत्र मे पूँजीवाद, सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र मे प्रजातन्त्रात्मक भावना एव व्यावहारिक स्तर पर व्यक्तिगत वैशिष्ठ्य के आदर्श को प्रस्थापित किया गया'[2]। १९वी शताब्दी के इस नए योरूप की स्वातन्त्र्य विचारधारा ने योरूप के सामाजिक को बुद्धि-प्रयोग के लिए नए क्षितिज प्रदान किए, जन्म से प्राप्त सुविधा-असुविधा के अन्धविश्वास पर कुठाराघात किया तथा राज्य की सर्वोच्च शक्ति को उसके उच्चतम शिखर से उतार कर व्यक्ति को महत्ता प्रदान की। इस काल मे धर्म व्यक्तिगत प्रश्न बनकर अपने महत्व की दिशा मे गौण हो गया तथा उसके बदले वैयक्तिकता को सम्मान के उत्कर्ष पर प्रतिष्ठित किया गया। इसी भावना से प्रेरित होकर 'मिल ने नारी जागरण का स्वर ऊँचा किया', नारी के मताधिकार का प्रश्न उपस्थित करते हुए उसने कहा था—

'Workmen need other protection than that of their employers and women need other protection than that of their men.'[3]

सर एन॰ जे॰ चन्दावरकर ने तत्कालीन योरूप का वर्णन इस प्रकार किया है :—

१—नीरादेसाई 'वीमन इन माडर्न इन्डिया,' पृष्ठ ५०।
२—वही, पृष्ठ ४९।
३—स्ट्रैचे रे. 'दि काज़,' पृष्ठ १०८ पर उत्कथित।

It was an age of splendour when humanity seemed to stand at the start of a quickened life with promise of a bright future for modern civilization. In politics it was the age of reform bills, of free trade, of the abolition of slavery, of statesmen, of towering personality like Palmerston, Peel, Gladstone, Disraelli, Cobden, Bright, Clarkson and Wilberforce. In social reforms it was the age of emancipation of women, of Elizabeth Fry and Florence Nightangle. In literature which for the period reflects its currents and character and the ideals of the people, it was the age of Wordsworth, Tennyson, Browning reflecting through them the mighty that makes us the men.[1]

पाश्चात्य जागृति और चेतना के उपर्युक्त तत्वो से भारतीय समाज भी प्रभावित हुआ और उसमे भी प्रगतिशील मान्यताओ के परमाणु जीवन एकत्र करने लगे। पाश्चात्य राजनीति, सभ्यता, शिक्षा एव सस्कृति के प्रभाव से भारतीय समाज को जैसे अपनी सुप्तावस्था का भान होकर, उसके निवारण के निमित इन्ही पाश्चात्य आदर्शो से प्रेरणा प्राप्त होने लगी और वह समाज के नए दर्शन की स्थापना करने मे जैसे प्राणपण से कटिबद्ध हो गया।

परिणाम स्वरूप बौद्धिक विकास और युग-चेतना के नवीन उत्थान मे भारत मे समाज-सुधारको की एक बाढ-सी आ गई। सामाजिक जीवन की शोचनीय अवस्था पर दुखी होकर तत्कालीन सुशिक्षित समाज ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एव समानता, राष्ट्रीयता एव तर्क-शक्ति की भावना को प्रधानता दी, तथा अनीतिपूर्ण सकीर्ण मान्यताओ के मूलोच्छेदन के साथ-साथ नारी जागृति को स्वरूप देने का प्रयत्न भी इन्ही सुधारको से आरम्भ हुआ। श्री शकरन नायर ने सामाजिक एव धार्मिक समानता के विषय को लेकर घोषणा की थी :—

'To break down the isolation of Hindu religion, to remove the barriers which now prevent free social intercourse and unity of action, to extend the blessings of education to the lower classes, to improve the position of women to one of equality to men, we require the continuance of a strictly secular government in

१—बुच एम० ए० 'राइज़ एन्ड ग्रोथ ऑफ लिबरलिज्म' पृष्ठ १०२ पर उत्कथित।

thorough sympathy with liberal thought and progress"[1]

इस प्रकार नवीन भारत पर पाश्चात्य प्रगतिशील प्रजातन्त्रात्मक आदर्शों का पूर्ण प्रभाव पडा। इन्ही मान्यताओ के आलोक मे भारतीय नारी के उत्थान की भावना को विकास के लिए अवसर की प्राप्ति हुई और तत्कालीन समाज-सुधारको ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे पश्चिम से प्रेरणा लेकर नारी-स्थिति के सुधार कार्य को आरम्भ किया।

खण्ड—१

वैधानिक एवं सामाजिक विकास

१९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे नारी स्थिति सम्बन्धी सुधार कार्य कई प्रकार से हुआ। तत्कालीन नारी समाज मे व्याप्त कुप्रथाएँ उसे कोई भी समुचित दिशा दे सकने मे असमर्थ थी। पश्चिम की औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप वहाँ महिला समाज मे जागृति उत्पन्न होकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता को प्रस्थापित करने के हेतु तीव्र आन्दोलन आरम्भ हो गये थे[2]। परन्तु भारतीय सुधारको ने नारी-स्थिति को उन्नत करने के लिए मानवतावादी सिद्धात का प्रतिपादन किया। इन प्रारम्भिक सुधारको ने सती तथा बाधित वैधव्य आदि कुप्रथाओ को धर्म के प्रतिकूल बतलाकर इनके उन्मूलन के द्वारा सुधार कार्य का शिलान्यास किया। तत्कालीन सुधार, शिक्षा-प्रचार, सती-प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह के विरोध, पुनर्विवाह के समर्थन एव देवदासी आदि प्रथाओ के विनाश की दिशाओ मे किए गए। इन रूढिगत कुप्रथाओ को दूर करने के लिए जिन समाज सुधारको ने अपना सहयोग प्रादन किया, वे ही आगे चल कर महिला-आन्दोलन के अग्रदूत कहलाए। अगली पक्तियों मे हम भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे दिये हुए नारी स्थिति के विकास की बात कहेंगे।

शिक्षा—

भारत में महिला-शिक्षा का वास्तविक आरम्भ उन्नीसवी शताब्दी के

१—सी० वाई चिन्तामणि इन्डियन सोशल रिफॉर्म, पृष्ठ २२६-२२७ पर उत्कथित।

२—लक्ष्मी मैनन 'वीमन ऑफ इन्डिया' पृष्ठ ५५।

पाँचवे दशक से होता है। १८४७ मे कलकत्ता मे सबसे पहिले महिला कालेज बेथ्यून कालेजकी स्थापना हुई[१]। इस कालेज द्वारा महिलाओ के लिए आधुनिक शिक्षा प्राप्ति के द्वार खुले। नारी-समाज के बीच शिक्षा प्रचार की यह लहर बगाल से चलकर गुजरात तक फैल गई और १८४८ मे स्थापित 'गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी' ने १८४९ मे स्वय प्रस्थापित शिक्षा सस्थाओ मे सह-शिक्षा आरम्भ कर दी। इस दिशा मे अग्रसर होने वाली यह अपने समय की एकमात्र सस्था थी[२]। इसी वर्ष बम्बई मे १८४७ मे स्थापित 'विद्यार्थी सघ' ने नारी शिक्षा का प्रचार कार्य आरम्भ किया। महिलाओ की सुविधा के लिए नगर के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे प्रात कक्षाएँ लगाई जाती थी। 'एलफिन्सटन इन्स्टीट्यूट' ने बिना पारिश्रमिक लिए इन शिक्षा-सस्थाओ में प्रशसनीय प्रचार कार्य किया[३]। १८५४ तक इस सस्था द्वारा ५ महिला-शिक्षा-सस्थाएँ सचालित की जाती थी, जिनमे लगभग ६५० विद्यार्थी शिक्षित होते थे। १८५१ मे ज्योतिराव फुले ने व्यक्तिगत रूप से महिलाओ को शिक्षित करने का प्रयास किया। इसी वर्ष 'गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी' ने मगनभाई करमचन्द से प्राप्त आर्थिक सहायता द्वारा दो नई पाठशालाओ की स्थापना की। इन्ही दिनो आगरा मे गोपाल सिंह द्वारा भी नारी-क्षेत्र मे शिक्षा-प्रचार का कार्य किया गया। उनके द्वारा नारी शिक्षा के महत्व पर लगभग दो सौ व्यख्यान आयोजित किए गये जिनमे लगभग ३८०० उच्च वर्गीय हिन्दू बालिकाएँ उपस्थित हुई[४]। नारी शिक्षा के विकास के लिए राजकीय प्रोत्साहन सबसे पहिले १८५४ मे 'वुड्स' द्वारा प्रकाशित 'सरकारी प्रेषण' से मिला, जिसमे बालिकाओ को उन ग्राम्य शिक्षा सस्थाओ मे जाने के लिए प्रोत्साहित किया गया था जो अब तक केवल बालको के लिए ही खुली थी[५]। इससे पूर्व १८२३ मे जब श्री एलफिन्स्टन ने नारी शिक्षा पर ९३ कण्डिकाओ का वृत उपस्थित किया था, तब भी नारी-शिक्षा पर किसी प्रकार का प्रकाश नही डाला गया। परन्तु इसके विपरीत लार्ड डलहौजी ने 'बेथ्यून कालेज' का अध्यक्ष पद भार ग्रहण करते समय कहा था कि 'गवर्नर जनरल इन कौंसिल' का यह विश्वास है कि जनता में तब तक कोई भी हितकारी विकास किया जाना सम्भव नही है, जब तक कि बालिकाओ को समुचित शिक्षा के उचित अवसर की प्राप्ति न हो[६]। श्री 'वुड' का प्रेषण इसी घोषणा का

१—हन्ना सेन : 'वीमन ऑफ इन्डिया,' पृष्ठ ४६।
२—नीरा देसाई 'वीमन इन माडर्न इन्डिया,' पष्ठ ११७।
३—चित्र रेखा नायक . 'एजूकेशन ऑफ वीमन इन द प्राविन्स ऑफ बाम्बे,' पृष्ठ ११८।
४—कोअन मीना 'एजूकेशन ऑफ वीमन इन इन्डिया,' पृष्ठ ३९।
५—मारगेरेट ई कज़िन्स : 'इन्डियन वीमनहुड टुडे,' पृष्ठ १४-१५।
६—चित्र रेखा नायक 'एजूकेशन ऑफ वीमन इन द प्राविन्स ऑफ बॉम्बे, पृष्ठ १२१ पर उत्कथित।

परिणाम था, इधर १८३७ से लेकर १८८६ के मध्य उत्तर-भारत में आर्य-समाज तथा बगाल मे ब्रह्म-समाज और ईसाई मिशनरियो ने नारी-शिक्षा के प्रचार-कार्य को आगे बढाया। इन सस्थाओ ने बालिकाओ को शिक्षिकाएँ तथा परिचारिकाएँ बनने के लिए प्रेरित किया[१]।

नारी-शिक्षा के प्रसार-कार्य मे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम उल्लेखनीय है। उन्होने 'नारी-शिक्षा की उपयोगिता' विषयक एक निबन्ध प्रतियोगिता आयोजित की तथा तत्कालीन नारी-शिक्षा के महान समर्थक मिस्टर बेथ्यून को पारितोषिक वितरण के लिए आमन्त्रित किया। १८५५ से लेकर १८५८ तक पाठशाला-निरीक्षक के पद पर कार्य करते हुए उन्होने लगभग ४० बालिका-विद्यालयो की स्थापना की[२]। १८५७ मे बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयो की स्थापना हो चुकी थी। परन्तु इनमे से किसी मे भी नारी-शिक्षा के लिए कोई विधान न था। १८७५ मे बैलगॉव के प्रेषपति—खुरशेद जी ने अपनी पुत्री को बम्बई विश्व-विद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा दिलानी चाही, परन्तु विश्वविद्यालय मे छात्राओ द्वारा परीक्षा देने के किसी भी प्रकार के विधान के अभाव मे वह परीक्षा देने मे असमर्थ रही[३]। कुछ समय उपरान्त यही समस्या कलकत्ता विश्वविद्यालय में भी उपस्थित हुई। चन्द्रमुखी वसु नामक छात्रा प्रवेश-परीक्षा उत्तीर्ण करना चाहती थी। उसे परीक्षा देने की अनुमति तो मिल गई। परन्तु उसे उपाधि प्राप्त करने के योग्य नही समझा गया। कालान्तर मे १८७७ मे उप-कुलपति श्री हॉबहाउस के सतत प्रयत्नो के परिणाम स्वरूप ही महिलाओ को परीक्षा मे बैठने की अनुमति प्रदान की गई[३]। इसी काल मे अहमदाबाद तथा पूना मे प्रशिक्षण कक्षाएँ खुली तथा १८७५-७६ के मध्य 'ग्रान्ड मेडिकल कॉलेज,' बम्बई मे धात्री-विद्या की कक्षाएँ भी प्रारम्भ की गई। १८८३ मे बैथ्यून कॉलेज (कलकत्ता विश्वविद्यालय) से दो छात्राओ को स्नातिका की उपाधि प्रदान की गई। इस अवसर पर कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति ने कहा था —

'The condition of the female education in India is still painfully backward......out of girls of school going age who ought to be in schools, only one in hundred is actually under instructions in Bengal.'[४]

कुमारी कानेलिया सोराब जी बम्बई विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त प्रथम स्नातिका थी।

१—मारगेरेट ई कजिन्स : वीमनहुड टुडे, पृष्ठ १६।
२—नीरा देसाई वीमन इन मॉडर्न इन्डिया, पृष्ठ ७४।
३—वही, पष्ठ २०७।
४—चित्र रेखा नायक : एजूकेशन ऑफ वीमन इन द प्रॉविन्स ऑफ बॉम्बे, पृष्ठ १७३ पर उत्कथित।

१८५४ के उपरान्त महिला शिक्षा के क्षेत्र मे दूसरा राजकीय प्रोत्साहन १८८२ मे 'हन्टर आयोग' की नियुक्ति से मिला। इस आयोग द्वारा नारी-शिक्षा के प्रसार, शिक्षिका एवं निरीक्षिकाओ के प्रशिक्षण एव नियुक्ति आदि बातो पर प्रकाश डाला गया तथा महिला शिक्षण सस्थाओ को आर्थिक सहायता प्रदान करने की सिफारिश की जाकर[1] नारी समाज मे अनिवार्य रूप से शिक्षा-प्रचार की विशेष आवश्यकता समझी गई।

इधर १८८१ से लेकर १९०४ तक का युग समाज-सुधारवादी सस्थाओ के निर्माण एव नवीन चेतना का युग है। इस काल की सभी सस्थाएँ एव सुधारक महिला समाज में शैक्षणिक जागृति के लिए प्रयत्नशील रहे। रानाडे ने १८८४ मे एक बालिका विद्यालय की स्थापना की तथा नारी-शिक्षा के कार्य को आगे बढाया। १८९६ मे महान् शिक्षा-शास्त्री एव महिला समाज कल्याण के अग्रदूत महर्षि कर्वे द्वारा हिंगरणे नारी-शिक्षण सस्था 'अनाथ बालिकाश्रम' के नाम से स्थापित की गई, जो आगे चलकर कर्वे विश्वविद्यालय के रूप मे विकसित हुई, इस काल तक समाज सुधारवादी सस्थाओं का ध्यान नारी-शिक्षा पर प्रर्याप्त रूप से केन्द्रित होने लगा था। १८९६ मे 'इन्डियन नैशनल' सोशल कान्फ्रेन्स' ने अपने १०वे अधिवेशन मे नारी-शिक्षण पर विशेष-बल दिया। इस अधिवेशन मे नारी शिक्षा के प्रचार, प्रसार एव वृद्धि के लिए महिला विद्यालयो मे हिन्दू परिवारो की सुचरित्र अध्यापिकाएँ नियुक्त करने, महिलाओ को सफल शिक्षिका बनाने के लिए उनके लिए प्रशिक्षण की आयोजना करने, विद्यालयों मे आकर शिक्षा ग्रहण कर सकने मे असमर्थ प्रौढ महिलाओ मे शिक्षा प्रचार के हेतु गृह-कक्षाएँ आरम्भ करने तथा महिलाओ को धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा देने के उद्देश्य से पंडितों की नियुक्ति करने, महिला शिक्षण सस्थाओ के अनुकूल पाठ्य-पुस्तके प्रकाशित करने के लिए प्रयास करने तथा उच्चतर माध्यमिक शालाओ मे महिलाओ को स्वास्थ्य, कढाई, कला तथा गृह-कार्यादि का प्रशिक्षण देने सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किए गए[2]।

यहाँ पर यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि १९वी शताब्दी मे महिला-शिक्षा प्रचार क्षेत्र मे केवल पुरुष वर्ग द्वारा ही प्रयास किया गया। बाल-विवाह तथा पर्दा प्रथा के प्रचलन से इस युग मे नारियो को इस बात का अवसर ही प्राप्त नही हुआ कि वे स्वय इस क्षेत्र मे अपने मानसिक विकास के अवसरो की खोज कर, उनका उपयोग कर सकें। अतः अपनी बौद्धिक चेतना के लिए वे पूर्णतया पुरुष वर्ग पर ही निर्भर रही।

सती-प्रथा

इस युग में महिलाओं को शिक्षित करने की समस्या के साथ-साथ दूसरी

१—हटर कमीशन रिपोर्ट, पृष्ठ ५४८-५४९।

२—चन्द्रकला हाते : 'हिन्दू वीमन एण्ड हर फ्यूचर' पृष्ठ २६४-२६५।

विशेष समस्या सती-प्रथा को नष्ट करने की थी। १९वी शताब्दी के प्रारम्भिक सुधारको ने इस समस्या को प्राथमिकता प्रदान की। नारी-सुधार आन्दोलन के अग्रदूत राजा राम मोहन राय ने सबसे पहिले सती-प्रथा को विनष्ट करने का दृढ सकल्प किया। १८१८ से ही उन्होने अपने लेखो द्वारा इस कुप्रथा का विरोध करना आरम्भ कर दिया था[1]। इनकी प्रेरणा से १८२९ मे लार्ड विलियम बेंटिग ने सती-प्रथा निरोधक कानून पारित कर दिया जो कट्टर पन्थी हिन्दुओ के लिए असह्य था। अत उन्होने १८३० मे उपर्युक्त कानून के विरोध मे याचिका प्रस्तुत की। इस पर राजा राम मोहन राय ने कानून के पक्ष मे अपनी दूसरी याचिका प्रस्तुत कर दी। यहाँ असफल होकर कट्टर हिन्दुओ की धर्म सभा ने इस कानून के विरोध मे इग्लैड में अपनी याचिका प्रस्तुत की। परन्तु राजा राम मोहन राय के राजकीय कानून के समर्थन से वहाँ भी १८३२ मे उनकी याचना अस्वीकृत हो गई। तदन्तर सती-प्रथा कानूनी रूप से अपराध ठहराई गई। तत्कालीन समाज मे इस प्रथा के उन्मूलन को नारी स्थिति के उत्थान की दिशा मे अपना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

विवाह

इस काल मे नारी-स्थिति के उत्थान के लिए जिन-जिन सुधारो का आयोजन किया गया उनमे विवाह विषय को लेकर किए गये सुधार प्रमुख थे। बाल-विवाह, बाधित-वैधव्य तथा बहु-विवाह की कुप्रथाओ से नारी-जीवन मे एक घुटन-सी व्याप्त हो गई थी। किसी भी प्रकार की स्वतन्त्र दिशा पा सकने के अभाव में उनके मानसिक एव भौतिक विकास के द्वार अवरुद्ध हो गये थे। अमेरिका मे महिला-समाज सुधार के प्रवर्तक सुसान बी एन्थोनी ने १८४८ मे महिलाओ के लिए पुरुषों के समान, समान अवसर की प्राप्ति का स्वर ऊँचा किया। उनके इस आन्दोलन से प्रभावित भारतीयो मे भी नारी-समाज को जागृत करने और उनको सम्मानपूर्ण जीवन-यापन करने की सुविधा प्रधान करने की प्रेरणा प्रसारित हुई। १८५३ में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने 'विडो रिमेरिज' पुस्तक प्रकाशित कर कट्टर हिन्दू समाज मे एक खलबली उत्पन्न कर दी। ये पुरातनपन्थी, जो सती-प्रथा को अवैधानिक घोषित कर दिए जाने पर संतुष्ट नही थे, किस प्रकार युगों से चली आई बाधित-वैधव्य की इस परम्परा पर नवीन दृष्टिकोणो का यह प्रहार सहन कर पाते। विद्यासागर के इस दुस्साहस से क्रोधित एव व्यग्र इस कट्टर समाज ने उनकी हत्या तक करने का असफल प्रयत्न किया[2]। किन्तु इन बातो से अप्रभावित विद्यासागर के सतत प्रयत्न से १८५६ मे विधवा पुनर्विवाह कानून पारित हो गया। जिसके अनुसार इच्छुक विधवा पुनर्विवाह कर सकती थी, तथा ऐसे विवाहो से उत्पन्न

१—नीरा देसाई 'वीमन इन मॉडर्न इन्डिया, पृष्ठ ६३।

२—वही, पृष्ठ ७२।

सन्तान को सम्पत्ति-अधिकार के विषय मे वैध समझा गया। विधवा-विवाह का प्रचार करने मे विद्यासागर का प्रयत्न सराहनीय है। उन्ही की प्रेरणा से १८६० से १९०१ तक १३८ पुनर्विवाह हुए[१], तथा विधवा पुनर्विवाह पर लिखी हुई उनकी पुस्तक गुजराती तथा मराठी मे भी अनूदित हुई। १८६१ मे 'विधवा पुनर्विवाह सस्था' की स्थापना हुई तथा महादेव गोविंद रानाडे सक्रिय सदस्य रहे। उन्होने विधवा-विवाह का समर्थन करते हुए कहा था—

'The advocates of remarriage have never mentioned that a woman after her husband's death should not live a life of single devotion, to her deceased husband...But a woman who cannot like this species of life, a woman who is widowed when a girl, before she knew what her duties as a wife were, surely such a woman cannot practise this devotion. It is on behalf of such women that this reform is a peremptory and crying want, and to require them to live a life of devotion in the manner Manu precribes is a simple mockery of all religion and justice'[२]

और जब १८६९ मे सबसे पहिला विधवा-विवाह हुआ तो रानाडे उसमे उपस्थित हुए थे, जिसके परिणाम स्वरूप शकराचार्य ने उनका बहिष्कार कर दिया था। पूना मे सबसे पहिला विधवा-विवाह १८९३ मे हुआ। १८७० मे रानाडे ने ऐतिहासिक वाद-विवाद मे भाग लिया, जिसमे 'विधवा-विवाह शास्त्र-सम्मत है या नही' विषय पर चर्चा हुई थी। शकराचार्य ने इस सम्मेलन मे सभापति पद ग्रहण किया था।

ब्रिटिश साम्राज्य के प्रभाव मे आकर भारतीय अन्तर्जातीय विवाहो मे भी रुचि लेने लगे थे। इसी दिशा मे १८७२ मे अन्तर्जातीय विवाह अधिनियम पारित हुआ। जिसमे सम्बन्ध-विच्छेद तथा सम्पत्ति अधिकार का भी विधान था। इस अधिनियम के अन्तर्गत विवाहितो को यह घोषणा करनी पडती थी कि उन्हे उस धर्म मे, जिसमें वे उत्पन्न हुए हैं, किसी प्रकार का विश्वास नहीं है। इस अधिनियम में १९२३ और १९५४ मे कुछ सुधार किए गये जिनका वर्णन अगले अध्याय मे किया जाएगा। विधवा-विवाह की इस परम्परा मे १८६१ मे स्थापित 'विधवा-विवाह संस्था' का १८९३ मे महर्षि कर्वे द्वारा पुनरुत्थान किया गया, तथा यह विधान बनाया गया कि इस सस्था के सभासद वे ही व्यक्ति हो सकेंगे, जिन्होंने या

१—नीरा देसाई 'वीमन इन मॉडर्न इन्डिया,' पृष्ठ ७६।
२—रेव कैलाक : 'महादेव गोविद रानाडे,' पृष्ठ ९६।

तो विधवाओं से विवाह किया हो, या जो ऐसे पुनर्विवाहितों के साथ खान-पान सम्बन्ध बनाए रख सकते हो। पहली श्रेणी के लोग 'सभासद' तथा दूसरी श्रेणी के लोग सहानुभूति रखने वाले होते थे[1]। इसके उपरान्त 'इन्डियन नेशनल कान्फ्रेन्स' ने १८९६ मे कलकत्ता मे हुए १०वें अधिवेशन मे इस आशय का प्रस्ताव पारित किया कि देश मे बालिकाओ के पुनर्विवाह की भावना को हतोत्साहित नही करना चाहिए, यदि उनके अभिभावक उनका विवाह शास्त्र-सम्मत रीति मे करते हों[2]।

इस काल मे बाल-विधवा प्रथा के उन्मूलन सम्बन्धी सुधार भी किए गये। एक प्रकार से इस प्रथा के द्वारा ही तत्कालीन समाज मे अधिकतर महिलाओ को वैधव्य का दारुण दु ख भोगना पड़ा। इस कुप्रथा को कम करने के लिए न्यूनतम विवाह योग्य आयु निश्चित करने की दिशा मे सबसे प्रथम प्रयास १८६० मे किया गया। भारतीय दण्ड सहिता मे इस बात की घोषणा की गई कि वह व्यक्ति जो १० वर्ष से कम आयु की कन्या से विवाह करेगा उसे बलात्कार के अपराध के अन्तर्गत आजीवन कारावास के दण्ड का भागी बनाया जा सकता है[3]। १८८४ मे इसी विषय को लेकर बहराम जी मालाबारी की पुस्तक 'भारत मे बाल-विवाह तथा बाधित-वैधव्य' प्रकाशित हुई। जिसमे अपरिपक्व-आयु मे विवाह करने के कुपरिणामो पर प्रकाश डाला गया था। उदाहरणार्थ, इसमें कहा गया था कि ऐसे विवाहों के फलस्वरूप पुरुष की अध्ययन अवधि लगभग समाप्त-प्राय हो जाती है तथा स्त्री रोगी बच्चो को उत्पन्न करने की साधन मात्र बन जाती है जिससे भावी समाज की आधार-शिला क्षीण से क्षीणतर होती चलती है, और उसकी दृढता को आघात, पहुँचता है। १८८४ से लेकर १८८९ तक मालाबारी ने नारी-स्थिति को सुधारने की दिशा मे सक्रिय योग दिया तथा सरकार से परस्पर विनिमय करके निरन्तर इस बात पर बल दिया कि न्यूनतम विवाह योग्य आयु को बढा कर १२ वर्ष कर दिया जाये। इसी काल मे 'नेशनल सोशल कान्फ्रेन्स' ने भी अपनी सभाओं मे यह प्रस्ताव पारित किया कि सरकार भारतीय दण्ड सहिता मे सशोधन कर, न्यूनतम विवाह योग्य आयु १२ वर्ष कर दे। सयोगवश इन्ही दिनो ११ वर्षीया विवाहिता फूलमणि दासी की बलोत्पादित संभोग क्रिया के परिणामस्वरूप मृत्यु हो गई[4]। इस घटना को लेकर बडी खलबली मची और १८९० में मालाबारी इग्लैड गए तथा बाल-विवाह पर चर्चा करने के लिए एक सभा की स्थापना की, जिसमे न्यूनतम विवाह योग्य आयु को १२ वर्ष तक बढाने तथा बाल-विवाहो के पति-पत्नी की

१—नीरा देसाई : 'वीमन इन मॉडर्न इन्डिया, पृष्ट ८८-८९।

२—चन्द्र कला हाते 'हिन्दू वीमन एण्ड हर फ्यूचर', पृष्ठ २८५।

३—नीरा देसाई · 'वीमन इन मॉडर्न इन्डिया,' पृष्ठ १७०।

४—वही, पृष्ठ ७८।

इच्छा से होने तथा वैधानिक मान्यता प्राप्त करने सम्बन्धी प्रस्ताव पास किए गये। इस प्रकार सुधारकों के सम्मिलित प्रयास से १८९१ मे 'सहमति वयस्क कानून' पास हुआ, जिसके द्वारा न्यूनतम विवाह योग्य आयु १० से बढाकर १२ वर्ष ठहराई गई। सुधारकों के इस काल मे सुधारवादी सस्थाओ ने भी बाल-विवाह निरोधक प्रस्ताव पास करके इस कुप्रथा को विनष्ट करने मे योगदान दिया। १९०० मे 'इन्डियन नेशनल सोशल कान्फ्रेन्स' ने लाहौर के अपने १४वे अधिवेशन मे इस आशय का नवाँ प्रस्ताव पास किया कि "बालिकाओ की विवाह योग्य आयु १२ से १४ तथा बालको की १५ से २१ वर्ष तक होनी चाहिए।"

तत्कालीन बंगाल मे बहु-विवाह प्रथा के प्रचलन से भी नारी-स्थिति के विकास का अवसर अवरुद्ध हो रहा था। राजा राम मोहन राय तथा ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने इस दिशा मे सुधार भावनाओ को बल प्रदान किया। उच्च वर्गीय बगाली ब्राह्मणों मे कुलीन भावना के विकास के परिणाम स्वरूप ही बगाल मे बहु-विवाह प्रथा का जन्म हुआ। उपर्युक्त दोनो ही सुधारको ने इस प्रथा का तीव्र विरोध किया, किन्तु वैधानिक सहायता के अभाव मे उनके प्रयत्नो द्वारा इस दिशा मे सतोषजनक उपलब्धि न हो सकी।

१९ वी शती के उत्तरार्द्ध मे विवाह-सम्बन्धी कुछ अधिनियम भी पारित किए गये। १८७२ मे 'क्रिश्चियन मैरेज अधिनियम' के अन्तर्गत ईसाई विवाह-इच्छुको को विवाह-निबन्धक को तदविषयक सूचना देनी पडती थी, तथा उनमे से एक को यह घोषणा करनी पडती थी कि उनके इस विवाह-सम्बन्ध के विषय को लेकर कोई वैधानिक अडचन नही है, और यदि उनमे से कोई अवयस्क हो तो यह घोषणा करनी पडती थी कि सम्बन्धित व्यक्ति के अभिभावको से विवाह की अनुज्ञा प्राप्त करली गई है[1]। इस प्रकार के विवाह मे पुरुष की आयु १६ वर्ष तथा स्त्री की आयु १३ वर्ष से अधिक होनी आवश्यक थी। (परन्तु अब यह आयु क्रमश १८ वर्ष और १५ वर्ष हो गई है क्योकि बाल-विवाह निरोधक कानून ईसाइयो पर भी लागू होता है)।

ईसाई विवाह-सम्बन्ध विच्छेद को लेकर १८६९ मे एक कानून पारित हुआ जिसके अनुसार न्यायालय को सम्बन्ध-विच्छेद कर देने का अधिकार दिया गया। न्यायालय पति से पत्नी का जीविका-भार वहन करने तथा ऐसे विवाहो से उत्पन्न सतान का पालन-पोषण तथा शिक्षित करने की माँग भी कर सकता था। इससे पूर्व १८६६ मे पारित 'धर्म परिवर्तन विवाह-सम्बन्ध विच्छेद कानून' के अनुसार एक साथी दूसरे साथी द्वारा ईसाई धर्म ग्रहण कर लेने के परिणाम स्वरूप सम्बन्ध विच्छेद कर सकता था।

१—रेनु चक्रवर्ती 'वीमन इन इन्डिया', पृष्ठ ८४।

देवदासी एवं वेश्यावृत्ति—

तत्कालीन दक्षिण भारत के हिन्दू मन्दिरो मे देवदासी प्रथा धार्मिक वेश्यावृत्ति के रूप मे प्रचलित थी । भारत की तरह मध्य पूर्व की सभ्यताओ की आदि-स्रोत सुमेरी सभ्यता मे भी इस प्रथा का प्रचलन था । मन्दिर मे स्थापित देवताओ का कुमारी कन्याओ से विवाह करके उन्हे उन देवताओ की सेविका के रूप मे स्वीकृति मिली होती थी । सुमेर तथा भारत की तरह ही साइप्रस, फीनिशिया, कॉरथेज, रोम, इटली तथा फ्रॉस आदि देशो मे भी—धार्मिक वेश्यावृति धर्म मान्य थी । समाज मे इन स्त्रियो को वैधानिक पद प्राप्त था । भारत के पश्चिमी घाट और कोकण प्रदेश मे 'लिंगम्' पूजा का बहुत प्रचार था । देवदासियो की प्रथा के साथ-साथ यह भी आवश्यक था कि 'लिंगम्' के साथ अक्षत-यौनि कुमारिकाओ का सस्पर्श कराया जाय[1] । १९वी शती मे भारतीय समाज सुधारको का ध्यान इस ओर अधिक आकर्षित नही हुआ । दक्षिण भारत से कोई भी सुधारवादी सस्था इतनी साधन या शक्ति सम्पन्न नही थी जो इस धार्मिक परम्परा के विरोध मे अपना स्वर ऊँचा कर सकती । इस प्रथा के उन्मूलन मे २०वी शताब्दी के महान् राजनीतिक एव समाज सुधारक महात्मा गॉधी का नाम उल्लेखनीय है ।

उत्तर प्रदेश मे विवाहादि उत्सवो के अवसर पर नृत्य-प्रथा का प्रचलन था । इस नृत्य को वेश्या-नृत्य की सज्ञा दी जाती थी । 'उस समय के लोगो को यह सोचना भी कठिन होता था कि वेश्या-नृत्य के बिना विवाह भी हो सकता है कि नही[2] ।' तत्कालीन सुधारवादी सस्थाओ ने इस दिशा मे कुछ सुधार-प्रयास किए । १९०० में 'इन्डियन नेशनल सोशल कान्फ्रेन्स' के लाहौर अधिवेशन मे वेश्या-नृत्य बन्द कराने विषयक प्रस्ताव पास किया गया[3] । परन्तु उस काल मे जनता के मस्तिष्क को इस कुप्रथा के परिणामो से अवगत करा सकना साधारण कार्य न था ।

उपर्युक्त धार्मिक वेश्यावृत्ति से आधुनिक वेश्यावृत्ति का जन्म हुआ[4] । आधुनिक वेश्यावृत्ति का विकसित रूप हमे केवल बडे नगरो मे ही देखने को मिलता है[5] । इस दिशा मे पश्चिमी विचारको एव समाज-शास्त्रियो द्वारा ही सुधार-कार्य आरम्भ किये गये । १८५० के लगभग डा० लिपर्ट ने वेश्याओं की हृदय-द्रावक कहानियों से योरूप के मानसिक धरातल को कम्पित कर दिया । १८९२ मे डा०

१—ईस्ट इन्डिया जर्नी, पृष्ठ १६१ ।

२—बसन्त लाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ५०७ ।

३—चन्द्रकला हाते . हिन्दू वीमन एण्ड हर फ्यूचर' पृष्ठ २६८ ।

४—गोथे बसन्त लाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ २६० पर उत्कथित ।

५—शापन हावर : जनरल फार द सप्रेशन ऑफ वेनरल डेज़ीज़ दू० पोथी, पृष्ठ ३११-३१० ।

अल्फ्रेड ब्लाखों ने 'मैडिकल सोसाइटी', बर्लिन की ओर से वेश्यावृत्ति के विनाश के लिए एक विश्व-सम्मेलन किया[1]। वेश्यावृत्ति निरोध के लिए भारत मे १९वी शती मे कोई उल्लेखनीय प्रयास नही हुआ। हाँ, सभी सुधारको की मौखिक सहानुभूति सदा ही इस वर्ग के साथ रही।

सम्पत्ति

पिछली पक्तियो मे वर्णित सुधारो के अतिरिक्त १९वी शताब्दी मे नारी के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारो की ओर भी सुधारो का ध्यान आकर्षित हुआ। राजा राम मोहन राय ने नारी की अवनति का प्रमुख कारण उसकी शोचनीय आर्थिक हीनता बताया तथा साथ ही उसके सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारो की व्याख्या भी की। प्राचीन धर्म ग्रन्थो मे वर्णित 'स्त्रीधन' तथा 'दयाभाग' के अन्तर्गत आने वाले विषय ही अब तक स्त्री सम्पत्ति समझे जाते थे। इस दिशा मे १८७४ मे पारित 'विवाहित महिलाओ की सम्पत्ति सम्बन्धी अधिनियम' द्वारा 'स्त्रीधन' का क्षेत्र विस्तृत हो गया। इस नियम के अनुसार नारी किसी नौकरी, व्यवसाय तथा वैधानिक मान्यता प्राप्त व्यापार द्वारा अर्जित धन ; साहित्यिक, कलात्मक एव वैज्ञानिक ज्ञान से सचित धन, उपर्युक्त साधनो से प्राप्त धन मे मे शेषधन तथा अपने जीवन बीमा गोपलेख से प्राप्त धन की अधिकारिणी हो सकती थी[2]। इस प्रकार पूर्व 'स्त्रीधन' की मान्यतानुसार 'अचल सम्पत्ति' के साथ-साथ वह अपने परिश्रम से प्राप्त धन की भी स्वामिनी हो गई।

१९वी शताब्दी की भारतीय नारी अपनी स्थिति मे इतनी दयनीय थी कि उसे कभी राष्ट्रीय एव सामाजिक स्तर पर अपनी क्षमता प्रदर्शित करने का अवसर ही प्राप्त नही हुआ। उसका नागरिक एव बौद्धिक जीवन शून्य और निष्प्राण-सा रहा। फिर भी पारा ने काँगडा शैली की चित्रकारी मे लोकप्रियता प्राप्त की। विश्व कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर की बहिन स्वर्ण कुमारी को सगीत साहित्य तथा चित्रकारी सभी क्षेत्रो मे ख्याति मिली। तत्कालीन सामाजिक सकीर्णताओ के मध्य भी पडिता रामाबाई ने नारी-जागृति के क्षेत्र मे अपना ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया, और इस प्रकार उन्नीसवी शती के अन्तिम चरण मे बीसवी शताब्दी मे हुए नारी स्थिति के चतुर्मुखी विकास की पृष्ठभूमि को सुदृढ आधार मिला।

१—विश्वम्भर नाथ पान्डे · बसन्त लाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ, २६२।

२—नीरा देसाई : 'वीमन इन मॉडर्न इन्डिया,' पृष्ठ १८४।

खण्ड—२

समाज सुधारक

प्रत्येक देश ने समाज मे व्याप्त बुराइयो के निवारण एव सामाजिकों को उन्नतिशील दिशा देने एव राष्ट्रीय गौरव की रक्षा के लिए समय-समय पर समाज-सुधारको को जन्म दिया है। व्यक्ति और समष्टि के पारस्परिक सम्बन्धो के विकास से जिस सामाजिक चेतना का प्रादुर्भाव होता है, उसी चेतना से अनुप्राणित ये समाज-सेवक समाज मे स्वतन्त्रता, समानता एव बधुत्व के सिद्धातो की प्रतिष्ठा के लिए आत्मोत्सर्ग द्वारा दलित समाज मे नये प्रगतिशील, दृष्टिकोण, मान्यताओ, एव सिद्धातो की आयोजना करते है जिससे उच्चतर सामाजिक जीवन की उपलब्धि मे योगदान प्राप्त हो सके। भारत मे सामाजिक क्रान्ति या समाज-सुधार की यह परम्परा तथागत से प्रारम्भ होती है। तेरहवी और चौदहवी शताब्दी मे जिन समाज गत सुधारो की प्रतिष्ठा की गई, उनका कारण मुस्लिम सम्पर्क था। उसी प्रकार १९वी शताब्दी के भारत मे हुए समाज सुधारो की पृष्ठभूमि मे पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट था। इस काल मे जिन समाज सुधारको ने नारी-स्थिति के उत्थान कार्य मे सहयोग दिया, उन्हे दो श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है—सुधारवादी तथा पुरुत्थानवादी। दोनों वर्ग के सुधारक इस विषय पर एकमत थे कि तत्कालीन सामाजिक परम्पराओं मे भारी दोष उत्पन्न हो गए है तथा उनमे परिवर्तन की आवश्यकता है। परन्तु पहिले वर्ग के लोग उन परम्पराओ मे प्रगतिशील आन्दोलनो के द्वारा सुधार करना चाहते थे, जब कि दूसरे वर्ग के लोग वैदिक मान्यताओ की पुनर्स्थापना मे विश्वास करते थे। इन दोनो ही वर्ग के सुधारकों ने नारी-स्थिति की दयनीय अवस्था के सुधारकार्य मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पाश्चात्य शिक्षा एवं सस्कृति से अत्यधिक प्रभावित इन सुधारको मे सुधारवादी वर्ग के लोग ही अधिक है। पुरुत्थानवादी सुधारको मे स्वामी विवेकानद तथा स्वामी दयानन्द के नाम अग्रगण्य है। अगले पृष्ठो मे हम इन सुधारको एव इनके सुधार कार्य का विवेचन करेंगे।

राजा राम मोहन राय (१७७२-१८३३)

'भारतीय नवोत्थान की धारा मे क्रम से छोटे-बडे अनेक व्यक्ति उत्पन्न हुए है। यह धारा अब भी प्रवाह मे है और आज भी ऐसे व्यक्तियो का आविर्भाव अवरुद्ध नही हुआ है, किन्तु इन सारे व्यक्तित्वो के आध्यात्मिक पिता राम मोहन राय हैं[1]।

समाज-सुधार आन्दोलन के आदि-प्रवर्तक इस मनस्वी का जन्म ब्रिटिश काल मे १७७२ मे हुआ था। इन्हे नारी स्थिति के उत्थान की प्रेरणा १८८१ मे अपने ज्येष्ठ भ्राता जगमोहन की मृत्यु की घटना से मिली। मृत भाई के शव के साथ उनकी पत्नी ने भी सती होने का निश्चय किया। परन्तु ज्वालाओ से भयभीत होकर वह बचने का प्रयास करने लगी। तब सभी उपस्थित सम्बन्धियो ने उसे बलात् ज्वालाओ के बीच मे ढकेल दिया। हृदय द्रावक इस दृश्य ने राम मोहन के बाल मस्तिष्क मे खलबली उत्पन्न कर दी और उन्होने तभी शपथ ली कि वे अपने जीवन काल मे सती की इस कुप्रथा को समाप्त करके दम लेगे[2]।

राम मोहन कालीन-समाज मे सहमरण प्रथा, बहु-विवाह, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, अशिक्षा एव देवदासी आदि कुप्रथाएँ प्रचलित थी। राम मोहन राय ने सबसे प्रथम सती प्रथा के विनाश का बीडा उठाया। १८१८ से ही उन्होने अपने पत्र 'सम्बन्ध कोमुदी' मे सती प्रथा के विरोध मे लेख लिखने आरम्भ कर दिए थे। सती प्रथा को शास्त्र-सम्मत बताने वाले कट्टर पन्थियो को उन्होने अपने पत्र मे खूब फटकारा। उन्होने बताया कि वेदकालीन समाज मे यह प्रथा स्वय इच्छित थी। किसी को सहमरण के लिए बलात् विवश नही किया जाता था। लेकिन आज का भ्रष्ट एव विपथगामी समाज नारी को सहमरण के लिए विवश करता है, जो किसी भी प्रकार से वाँछनीय नही है। उन्होंने तत्कालीन धर्म पुरोहितो को जो यह दलील देते थे कि नारी का पवित्र होना आवश्यक है, इसीलिए विधवाओ के लिए सहमरण का विधान है, बताया, कि मन से पवित्र नारी कभी भी अपवित्र नही हो सकती और जो कलुषित भावना से मुक्त है वह पति के जीवित रहते भी अपवित्र जीवन बिता सकती है। उन्होने तर्क से इस बात का भी प्रमाण दिया कि नारी पुरुष से किसी भी प्रकार से हीन नही है, उसकी आज की हीनावस्था इस कारण से है कि उसे विकास का अवसर ही प्रदान नही किया गया। इस प्रकार अपने लेखो तथा प्रपत्रो के माध्यम से वे जनता मे इस कुप्रथा के विनाश का प्रचार करते रहे तथा अन्त में १८२६ मे बगाल की सरकार ने उनसे सहायता प्राप्त करके सती निरोधक

१—ए० सी० ई० जकारिया 'रिनेसैंट इन्डिया' दिनकर द्वारा 'सस्कृति के चार अध्याय,' पृष्ट ४४२ पर उत्कथित।

२—नीरा देसाई . 'वीमन इन मॉडर्न इन्डिया', पृष्ठ ६४।

कानून पास कर दिया । श्रीयुत जे. फॉक्स ने 'ग्रेट मैन ऑफ इण्डिया (पृष्ठ ४६५) मे इस विषय को लेकर लिखा है '—

'There is no doubt that it was greatly through his firmness, his enlightened reasonings and his persevering efforts, that the government of Bengal at last thought themselves enabled to interdict the immolation of widows.'

तत्कालीन बगाल मे उच्च कुलीन ब्राह्मण परिवारो मे वैवाहिक क्षेत्र की सकीर्णता के परिणाम स्वरूप एक प्रकार की विषमता उत्पन्न हो गई थी । कुलीन वशीय महिलाओं को कुलीन वश मे ही विवाह करना पड़ता था अत पहिले से ही आर्थिक संकटो मे ग्रस्त ब्राह्मण भारी दहेज दे सकने मे असमर्थ होकर, अविवाहित व्यक्तियो के अभाव मे अपनी कन्याओ का विवाह पूर्व विवाहित व्यक्तियो से ही कर देते थे, इस ने बहु-विवाह प्रथा को जन्म दिया । साथ ही भावी सकटो से भयभीत निर्धन माता-पिता द्वारा पुत्री को जन्मते ही मार डालने की प्रथा का प्रादुर्भाव भी यही से हुआ । परिणामत पारिवारिक जीवन की शान्ति छिन्न-भिन्न हो गई तथा बाल-विधवाओ की सख्या उत्तरोत्तर बढने लगी । राम मोहन राय ने अपने समाज की इस विषमता का गहन अध्ययन किया और उन्होने बतलाया कि कुलीनवाद की यह प्रथा शास्त्र सम्मत नही है । मनु ने उस पिता की पुत्री का विक्रेता बतलाया है जो विवाहावसर पर पुत्री देने के बदले में द्रव्य प्राप्त करता है । अन्य शास्त्रो मे भी दूसरे विवाह की आज्ञा विशेष परिस्थितियो मे ही प्रदान की गई है । राजा जी ने इस बात पर बल दिया कि सरकार किसी को दूसरा विवाह करने से पूर्व परिस्थितियों की वैधानिक जाँच करे ।

राजा राम मोहन राय पहिले व्यक्ति थे जिन्होंने सती प्रथा को नारी जीवन मे व्याप्त भारी आर्थिक विषमता के साथ जोडा । उनका कहना था कि नारी स्वय की इच्छा से कभी-कभी इसीलिए सहमरण की कामना करती है, क्योंकि पति के मरने के बाद उसकी आर्थिक स्थिति बडी दयनीय हो जाती है । उसे ग्लानि, हीनता और दुर्दैवपूर्ण अभिशप्त जीवन बिताना पडता है । ऐसा जीवन बिताने की अपेक्षा वह अपने पति के शव के साथ जीवनोत्सर्ग करना अच्छा समझती है । उन्होंने इस बात की घोषणा की कि पूर्व कालीन नारी अधिकारों से सभी नियामको में पति की सम्पत्ति पर पत्नी का पुत्र के समान अधिकार बतलाया है । केवल उत्तरकालीन शास्त्रियों ने माता के अधिकार को 'दयाभाग' की सीमाओं मे आबद्ध कर दिया । पुत्री के आर्थिक अधिकारो की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि उसे पिता के धन से पुत्र के अधिकार का चतुर्थांश प्राप्त होना चाहिए ।

किन्तु 'दयाभागकारो'[१] का मत है कि पिता की सम्पत्ति से पुत्रो को उसके विवाह के लिए ही धन प्राप्त होना चाहिए। राजा जी सरकार से इस बात की अपेक्षा करते थे कि वह वैधानिक रीति से नारी के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारो का आरक्षण करे, और इस प्रकार से उन्हे आर्थिक स्वतन्त्रता एव मानसिक विकास के क्षितिज प्रदान करे।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजा राम मोहन राम ने नवीन आदर्शों का स्वागत करते हुए भारत मे नवीन सस्कृति का श्रीगणेश किया[१]। भारतीय समाज की उन्नति एव विकास की दिशा मे किए गये महान् प्रयत्नो का उल्लेख करते हुए मिस कालेट ने लिखा है कि 'इतिहास मे राम मोहन राय का स्थान उस महासेतु के समान है, जिस पर आरूढ होकर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अपने अज्ञात भविष्य मे प्रवेश करता है'[२]।

ईश्वर चन्द्र विद्यासगार (१८२०-१८६१)

सुधारवादी विचारको की परम्परा मे राजा राम मोहन राय के बाद ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का नाम उल्लेखनीय है। तत्कालीन ब्रह्मवाद से प्रभावित परिवार मे जन्मे उनके चरित्र मे 'उदारता, सहिष्णुता, तेजस्विता और दृढता का अपूर्व सम्बन्ध देखने को मिलता है'[३]। राजा राम मोहन राय ने जिस नारी को बाधित सहमरण की कारा से मुक्त कराया, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने उसे पुनर्विवाह का वैधानिक अधिकार दिलाने की दिशा मे प्रयत्न किया। विद्यासागर के विद्यार्थी जीवन में सम्पूर्ण बग-समाज विभिन्न प्रकार के वाद-विवादो, तर्क-वितर्को, आन्दोलन-प्रति-आन्दोलनो के व्यूह में अवरुद्ध होकर कोई सुनिश्चित दिशा ग्रहण करने का प्रयास कर रहा था। बालक विद्यासागर के चरित्र मे आरम्भ से ही असीम मातृभक्ति, सादा जीवन, निर्मलता तथा नीतिमत्ता आदि महान् गुणो का समावेश हो गया था। उनकी माता निरक्षरा होते हुए भी उदार वृत्ति वाली महिला थी। उन्होने विद्यासागर के योरूपीय मित्रों के साथ तथा पुनर्विवाहित मुगल के साथ भोजन किया। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर माता की इसी महानता के कारण ही समस्त नारी जाति के प्रति श्रद्धालु हो उठे तथा नारी-स्थिति के सुधार की ओर अग्रसर हुए। इस दिशा मे दूसरी घटना उनकी गुरु-पत्नी के असमय विधवा हो जाने की हुई। उनके गुरु ने उस अवस्था मे विवाह किया था जब कि उन्हे सन्यासाश्रम मे पदार्पण करना चाहिए था। इस विवाह के एक ही वर्ष बाद उनकी मृत्यु हो गई[४]। इस घटना के परिणामस्वरूप विद्यासागर के मन मे नारी

१—बुच एम० ए० : 'राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इन्डियन लिबरलिज्म,' पृष्ठ ८१।
२—वही, पृष्ठ ८२ पर उत्कथित।
३—विनय घोष : बसन्त लाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ४२४।
४—नीरा देसाई : 'वीमन न मॉडर्न इन्डिया,' पृष्ठ ६९।

के प्रति श्रद्धा एवं दया का ऐसा अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ कि वे जीवन भर इस जाति के उत्थान कार्य मे ही जुटे रहे। नारी-स्थिति को सुधारने सम्बन्धी उनके इस अभियान मे उनकी साथिन राममणि ने भी यथेष्ठ सहयोग दिया[1]।

सस्कृत कालेज मे अध्यापक हो जाने के पश्चात् ही उनके सुधार कार्य का आरम्भ होता है। उनका विश्वास था कि किसी भी सुधार की लोक-मान्यता एव लोक-प्रतिष्ठा के लिए यह आवश्यक है कि वह सबसे पहिले स्वय सुधारक द्वारा अपने जीवन मे प्रतिष्ठित हो। अत उन्होने सकल्प किया कि 'वे अपनी पुत्रियो के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था करेंगे, ग्यारह वर्ष से पूर्व अपनी पुत्रियो का विवाह नही करेंगे', (उनकी सभी पुत्रियो का विवाह १६ वर्ष के उपरान्त ही हुआ।) अपनी पुत्रियो के वर का चुनाव करते समय वे धन को महत्ता नही देंगे, पुत्री के विधवा होने पर, यदि वह पुनर्विवाह करना चाहेगी, तो उसे ऐसा करने की अनुमति देंगे, अपने किसी भी पुत्र की १८ वर्ष की अवस्था से पूर्व विवाह नही करने देंगे तथा वे अपनी पुत्री का विबाह पूर्व विवाहित पुरुष से नही करेंगे[2]'। उनके इस सकल्प मे शिक्षा, बाल-विवाह, कुलीन-वाद, पुनर्विवाह तथा बहु-विवाह आदि तत्कालीन सभी नारी-समस्याओ का चित्र उपस्थित हो जाता है।

विद्यासागर ने पराशर सहिता' से तथ्य उपस्थित करके पुनर्विवाह के स्थापना के तर्क की पुष्टि की। उपर्युक्त सहिता के अनुसार 'नारी पति की मृत्यु के उपरान्त, उसके सन्यासी हो जाने पर, नपुसक, पतित अथवा रोगी हो जाने पर पुनर्विवाह कर सकती है[3]'। इसी प्रकार अन्य धर्म ग्रन्थो, पुराणो, श्रुतियो एव स्मृतियो से भी उद्धरण देकर उन्होने विधवा विवाह को शास्त्र सम्मत बताते हुए उसका जोरदार समर्थन किया। हिन्दू धर्म शास्त्र के अनुसार विधवा-विवाह किस प्रकार पूर्ण ग्राह्य है इस विषय पर १८५३ मे 'विधवा-पुनर्विवाह' नामक उनकी एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई। १८५६ मे विधवा-विवाह को वैधानिक मान्यता प्राप्त हो गई जो ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की तत्कालीन रूढिवादी समाज के विरुद्ध महान् उपलब्धि थी। परन्तु यह सुधार सकीर्ण सामाजिको के क्षेत्र मे अधिक लाभप्रद न हो सका। फिर भी बगाल मे उत्पन्न विधवा-विवाह की यह भावना महाराष्ट्र और गुजरात के समाज सुधारकों द्वारा अनुप्राणित होती रही।

सन् १८५१ से १८५८ तक विद्यासागर शिक्षा पद्धत्ति मे आमूलचूल परिवर्तन करने मे श्रमरत रहे। उन्होने स्त्री पुरुषों को समान रूप से शिक्षा प्राप्ति के अवसर प्रदान करने की बात का समर्थन किया तथा महिलाओं के लिए अग्रेजी शिक्षा की आवश्यकता बतलाई। उन्होने लगभग ४० विद्यालयो की स्थापना करके महिला-

१—नीरा देसाई वीमन इन मार्डन इन्डिया पृष्ठ ७०।

२—वही, पृष्ठ वही।

३—एल० यू० त्रिवेदी : 'विधवा-विवाह' पष्ठ ६।

शिक्षा प्रचार के कार्य को आगे बढाया। नारी-शिक्षा की उपयोगिता पर निबन्ध प्रतियोगिताएँ आयोजित करके उसका प्रचार किया। महिला विद्यालयो मे उनके लिए उपयोगी पाठ्य-पुस्तको की रचना मे विद्यासागर जी का पूरा हाथ रहा[1]।

विद्यासागर ने दूसरा आघात कुलीन वर्ग पर किया। इस समाज मे दैनन्दिन बढती हुई बहु-विवाह प्रथा नारी के अस्तित्व तथा महत्ता को निम्न से निम्नतर कर रही थी। राम मोहन राय द्वारा इस समस्या का उद्घाटन पाहले ही किया जा चुका था अब विद्यासागर ने ऐसे बहु-विवाहित पुरुषों की सूची बनाई। उस सूची मे उन्होने ५ विवाह करने वाले लोगो की भारी सख्या हो जाने के भय से सम्मलित नही किया था[2]। इस सूची के अनुसार एक बहु-विवाहहित के ८० पत्नियाँ थी। इस खोज मे एक उदाहरण ऐसा भी प्राप्त हुआ जिसमे एक पुरोहित ने ५० वर्षीय एक वृद्ध के एक सौ सात विवाह सम्पन्न कराये थे[3]। विद्यासागर ने पहली बार इस परम्परागत दोष को समाज के सम्मुख रखकर उसे इसके भयकर परिणामो से अवगत कराया।

विद्यासागर का विश्वास था कि युवा होने पर ही कन्या का विवाह अपेक्षित है। विवाह आयु के बढाने विषयक उनके निरन्तर प्रचार के परिणाम स्वरूप ही १८६० मे वैधानिक रूप से न्यूनतम सम्भोग स्वीकृति आयु १० वर्ष कर दी गई थी।

विद्यासागर सदैव ही नारी-जाति के परम हितैषी, उनकी समृद्धि के परम इच्छुक तथा उनके उन्नयन और विकास की दिशा मे प्रथम कोटि के सहायक रहे। यह सत्य है कि उनके तथा राम मोहन राय के द्वारा किए गये सुधारो को उनके युग में मान्यता प्राप्त नही हुई, परन्तु फिर भी उन्होने तत्कालीन बुद्धिवादी वर्ग को चिन्तन की जिस नवीन दिशा का दर्शन कराया, उसी पर अग्रसर होकर भावी सुधारको ने समाज-सुधार क्षेत्र मे महत्वपूर्ण योगदान किया। विद्यासागर जी की चतुर्थ वार्षिकी के अवसर पर कवि गुरू रवीन्द्र ने कहा था—'विद्यासागर का समाज-निर्माण में बहुत बडा हाथ रहा है... ..आज वे ससार में नही हैं—लेकिन उनके महत्त चरित्र का जो अक्षय-वट समाज मे फैला हुआ है—उसके नीचे बैठ कर आने वाली सतान को एक नया सकेत मिलता है—एक नई दीक्षा मिलती है[4]।'

महादेव गोविंद रानाडे (१८४२-१६०१)

पाश्चात्य शिक्षा, सम्यता एव सस्कृति से प्रभावित समाज सुधारको मे महादेव गोविंद रानाडे अग्रगण्य है। जब बगाल में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर द्वारा रूढ़िगत

१—विनय घोष · बसन्त लाल मुरारका स्सृमाति ग्रन्थ, पृष्ठ ४२५।
२—पाँचवी इन्डियन नेशनल सोशल कान्फ्रेन्स का सूचना पत्र, पृष्ठ २७।
३—नीरा देसाई, :'वीमर इन माडर्न इन्डिया,' पृष्ठ ७३।
४—विनय घोष : बसन्त लाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पष्ठ ४२६ पर उत्कथित

मान्यताओं पर तर्कपूर्ण आघात-प्रतिघात हो रहे थे, तब महाराष्ट्र में भी आगरकर, फुले तथा रामाबाई पडिता द्वारा सामाजिक चेतना विकसित हो रही थी आगरकर' द्वारा सम्पादित 'सुधारक' मे प्रकाशित लेखो, व्याख्यानो द्वारा जनता मे जागृति उत्पन्न हो चली थी। इसी जागृति-काल मे महादेव गोविद रानाडे का आविर्भाव हुआ।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद पर आसीन होते हुए भी उन्होने सामाजिक प्रगति के पुण्य कार्य मे सदैव ही सक्रिय भाग लिया। वे जाम्बेकर तथा पॉडुरग के सम्पर्क मे आए जो नारी-शिक्षा का प्रचार-कार्य कर रहे थे। उन्होने विष्णु शास्त्री से सम्पर्क स्थापित किया जो महाराष्ट्र मे विधवा-विवाह के कार्य को आगे बढा रहे थे[1]। वे पश्चिम के उदार दर्शन से बहुत प्रभावित थे। उनका विश्वास था कि समाजगत जीर्ण-शीर्ण मान्यताओ मे क्रॉतिकारी परिवर्तन करके ही समाज को प्रगति के पथ पर अग्रसर किया जा सकता है। नारी-स्थिति के सुधार कार्य मे उन्होने सबसे पूर्व विधवा-विवाह की समस्या को लिया। उन्होने पूर्व-सुधारको की तरह ही सप्रमाण इस तथ्य की पुष्टि की कि वेदकालीन भारत मे विधवा-विवाह वर्जित नहीं था। वे विधवा-विवाह सस्था के सक्रिय सदस्य तथा पुनर्विवाह के समर्थको के सहायक थे। विधवा-विवाह की समस्या को लेकर समय-समय पर उनके लेख 'इन्दु प्रकाश' मे प्रकाशित होते रहे।

इस दिशा मे उनका दूसरा सुधार कार्य बाल-विवाह प्रथा की समस्या को लेकर था। उन्होंने बताया कि वेद कालीन भारत मे युवा होने पर ही विवाह का विधान था। उनके अनुसार स्त्री पुरुष की न्यूनतम विवाह आयु क्रमश. १२ तथा १८ वर्ष तथा सम्भोग सहमति आयु १६ और २५ वर्ष होनी चाहिए। रानाडे ने नारी-शिक्षा का प्रश्न भी उठाया तथा एक नारी शिक्षण सस्था की स्थापना की। सुधार-कार्य क्षेत्र मे रानाडे का सबसे महत्वपूर्ण कार्य 'दि इन्डियन नेशनल सोशल कान्फ्रेन्स' की स्थापना है। इस सस्था द्वारा दूसरे समाज सुधारो के साथ-साथ नारी स्थिति सबधी सुधार कार्य भी सम्पादित किए गये।

रानाडे महाराष्ट्र के प्रथम सुधारवादी नेता थे, जिन्होने अपने सुधार-आन्दोलन को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। उनका विश्वास था कि राजनैतिक चेतना तथा समाज-सुधार कार्य पृथक रूप से नही चल सकते, इन्हे अनन्याश्रित होना चाहिए। इसी बात की दृष्टि में रखकर 'नेशनल कान्फ्रेन्स' की स्थापना हुई थी। नीरा देसाई ने एक स्थान पर उनके विषय मे लिखा है—

'Ranade's role as a pioneer in the movement for women's uplift is great and unique. He correctly understood the Indian situation. He did not stand for

---

१—नीरा देसाई · वीमन इन मार्डन इन्डिया पृष्ठ ७६।

blind imitation of the west, as 'Young Bengal' movement in initial stages did, nor was he the worshipper of India's past, as the revivalist were. He believed in synthesising the best elements of the two"

दयानन्द सरस्वती (१८२४-१८८३)

स्वामी दयानन्द १९वी शताब्दी के भारतीय नवोत्थान के विकास क्रम मे एक अनिवार्य कडी थे। ये पहिले सुधारक थे जिन्होने पश्चिमी सस्कृति से उदासीन हो भारत की सामाजिक पुनरुत्थान की दिशा मे प्रेरित किया। जनतन्त्र और तर्क के इस युग के सस्थापको मे उनका नाम सदैव ही स्मरणीय रहेगा। १८२४ मे काठियावाढ के मोरवी राज्य के एक ब्राह्मण परिवार मे उत्पन्न इस तेजस्वी महापुरुष का वास्तविक नाम मूलशकर था। बचपन से ही विद्याध्ययन मे इनकी रुचि थी। युवावस्था मे इनके मन की सत्य की खोज की चाह ने इन्हे वैरागी बना दिया। १८४५ मे घर से निकल कर सबसे पहिले इन्होने गुरु की खोज की। १८७५ मे सामाजिक सुधार की भावना से प्रेरित होकर बम्बई आर्य समाज की स्थापना की स्थापना की गई जो १८७७ के उपरान्त लाहौर मे खूब विकसित हुई।

दयानन्द ने हिन्दुओ की कट्टरता एव सकीर्णता के परिणाम स्वरूप हिन्दुत्व के महान् प्रासाद को खडित होते हुए देखा था। उन्होने अनुभव किया था कि ये रूढिवादी अनिष्टकर परम्परा हिन्दूधर्म का नेतृत्व कर रही है। उनका विश्वास था कि एक विशिष्ठ जाति, जो आज के हिन्दू समाज मे दिशा निदेश का कार्य कर रही है, उसकी वास्तविक अधिकारिणी नही है, इसलिए उन्होने जन्म के स्थान पर विद्वता और नैतिकता के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा प्रस्थापित करने का उपदेश दिया।

नारी-स्थिति के पुनरुत्थान की ओर अग्रसर होते हुए उन्होने वैदिक धर्म ग्रन्थो से उद्धरण-प्रस्तुत किए और इस बात की घोषणा की कि पूर्व काल मे नारी को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे। उसको शिक्षा प्राप्ति के समान अवसर की प्राप्ति थी। अनन्तर इस अधिकार के छीन लिए जाने से नारी का साँस्कृतिक जीवन समाप्त प्राय हो गया। शिक्षा के अभाव मे बाल-विवाह की प्रथा आरम्भ हुई और उसके उपरान्त नारी सम्बन्धी अनेक कुप्रथाओ का श्री गणेश हुआ। इस लिए नारी के साँस्कृतिक एव सामाजिक जीवन को पुनर्जीवित करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता उनके बीच मे शिक्षा का विकास करने की है, जिनसे उनमें मानसिक चेतना का प्रादुर्भाव हो। शिक्षा सम्बन्धी उनकी योजना अन्य सुधारकों की अपेक्षा अधिक विस्तृत थी। दयानन्द के अनुसार सामान्य शिक्षा के साथ-साथ उनके लिए शारीरिक शिक्षा प्राप्त करने का भी विधान था। उनके मतानुसार

१—नीरा देसाई : वीमन इन मार्डन इन्डिया पृष्ठ ८४।

बालिकाओं को १६ वर्ष की अवस्था तक विद्याध्ययन करना चाहिए। दयानन्द सह-शिक्षा के कट्टर विरोधी थे। वेदोक्त रीति से प्रदत्त विद्या ही उनके मत मे सर्वश्रेष्ठ थी। नारी के लिए भाषा, धर्मशास्त्र, शिल्प, सगीत तथा वैद्यक शास्त्र की शिक्षा आवश्यक मानी गई। दयानन्द जी इस बात पर बल देते थे कि नारी-शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो गृह-कार्यों के साथ-साथ सामाजिक जीवन मे भी लाभप्रद हो सके तथा जिससे नारी आर्थिक दृष्टि से भी स्वय को स्वतन्त्र अनुभव कर सके[1]। इस प्रकार 'स्त्री शिक्षा का व्यापक प्रचार करके ही दयानन्द ने भारत की राजनैतिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया था'[2]।

दयानन्द विवाह को स्त्री और पुरुष का पवित्र सम्बन्ध मानते थे सम्बन्ध-विच्छेद मे उन्होने कभी भी विश्वास नही किया। वे पूर्व-कालीन स्वयवर रीति के पक्षपाती थे। विधवा-विवाह मे वे नियोग पद्धति का समर्थन करते थे[3]। बाल-विधवा का मृत पति के भाई से विवाह उनकी दृष्टि मे अनुचित न था। बाल-विवाह को वे अनेक पापो का मूल मानकर उसका तीव्र विरोध करते थे।

तत्कालीन समाज को दयानन्द की विशेष देन आर्य-समाज है। इस नवीन सस्था द्वारा दयानन्द जी के सिद्धांतो का प्रतिपादन किया गया। शिक्षा के क्षेत्र मे गुरुकुलो की स्थापना हुई। अनेकों विधवाश्रम खोले गए। पतन काल मे शुद्धि-आन्दोलन इस की विशेषता रही है। दयानन्द युगीन भारत, जो तीव्रता से पश्चिमी आदर्शों की ओर अग्रसर हो रहा था, आर्य-समाज के प्रादुर्भाव से वैदिक सस्कृति की ओर आकर्षित हुआ। यह पहली सस्था थी, जिसने नारी जागृति के लिए ठोस प्रयत्न किए। आर्य समाज द्वारा पहली बार आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता तथा आत्म-ज्ञान की भावना को विशेष महत्व प्रदान किया गया तथा युगो के बाद भारत को एक बार अपने अतीत की ओर देखकर गौरवान्वित होने की प्रेरणा मिली।

इस प्रकार, नारी उत्थान की दिशा मे दयानन्द ने 'स्त्रो शूद्रोनाधियाताम' का खण्डन करके 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' वाले मन्त्र की घोषणा की। तत्कालीन हिन्दुत्व को निन्दित तथा आक्रान्त देख कर उन्होने जो मार्ग अपनाया, उसी पर चलकर नए भारत के निर्माताओ ने एक ऐसे तन्त्र का निर्माण किया, जिसकी परिणति हमारी राजनीतिक ही नही, मानसिक मुक्ति मे भी हुई'[4]।

विवेकानन्द

'वह देश और वह जाति, जो अपनी स्त्री-जाति की प्रतिष्ठा नहीं करती है, वह न तो कभी उन्नतिशील हुई थी और न हो सकेगी। हमारी जाति के इस अध पतन का मुख्य कारण यही है कि हमने शक्ति की इन सजीव प्रतिमाओ का

१—नीरा : 'वीमन इन माडर्न इन्डिया,' पृष्ठ १०६

२—विष्णु प्रभाकर : बसन्तलाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ४१६।

३—हरिश्चन्द्र विद्यालकार · महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृष्ठ २१६।

४—विष्णु प्रभाकर बसन्तलाल मुरारका स्मृतिग्रन्थ, पृष्ठ ४२०।

आदर करना छोड दिया है। यदि तुम स्त्रियों की, जो आदि-माता की सजीव मूर्तियाँ हैं, उन्नति की चेष्टा नही करोगे तो तुम यह निश्चय जान लेना कि तुम्हारे अभ्युदय का कोई दूसरा मार्ग है ही नही"[1]।

—विवेकानन्द ।

उपर्युक्त कथन के प्रणेता स्वामी विवेकानन्द पुनरुत्थानवादी सुधारकों की कोटि मे आते हैं। प्राचीन भारतीय सस्कृति की शुचिता पर उन्हे पूर्ण आस्था थी। मात्र हिन्दुत्व के समर्थक रामकृष्ण परमहस के शिष्य होते हुए भी उन्होने पाश्चात्य सभ्यता का अध्ययन, मनन और अनुशीलन किया। परन्तु उनके द्वारा शिकागो तथा पैरिस की धर्म सभाओ मे सर्वत्र भारतीय सस्कृति की प्रतिष्ठा प्रस्थापित की गई। शुद्ध वेदान्तवादी होते हुए भी वे विचार स्वातन्त्रय के प्रबल समर्थक थे। समाज सेवा की भावना को उन्होने सदैव ही महत्ता प्रदान की।

स्वकालीन हिन्दू धर्म मे व्याप्त असमानताओ, दोषो एव समस्याओ के निवारण के निमित्त उन्होने सतत प्रयत्न किए। तत्कालीन नारी की करुण दशा उनसे अदृष्ट नही थी। फिर भी भारतीय नारीत्व को उन्होने प्रतिष्ठा के शीर्ष पर आसीन किया। उनका कहना था कि 'भारत मे स्त्री जीवन के आदर्श का आरम्भ और अत मातृत्व मे ही होता है'[2]। स्त्री जीवन के इस आदरणीय स्थान को पाने के लिए नारी के नारीत्व का पूर्ण विकास होना आवश्यक है[3]। क्योकि 'विश्व के समस्त दैवी गुण और शक्तियाँ उस गृह, समाज तथा राष्ट्र मे विद्यमान रहते है, जहाँ नारियो की पूजा होती है'[4]। भारतीय नारियो की बौद्धिक प्रगति के लिए उन्होने पाश्चात्य नारी का उदाहरण प्रस्तुत किया। न्यूयार्क मे दिए गए अपने भाषण मे उन्होने कहा था—'मुझे बडी प्रसन्नता होगी कि भारतीय स्त्रियो की ऐसी बौद्धिक प्रगति हो, जैसी इस देश मे हुई है, परन्तु वह उन्नति तभी अभीष्ठ है जब वह उसके पवित्र जीवन एव सतीत्व को अक्षुण्ण बनाए रखते हुए हो'[5]।

विवेकानन्द चाहते थे कि धर्म को केन्द्र बना कर स्त्री शिक्षा का क्षेत्र निर्धारित किया जाए। उनका विश्वास था कि उनमे, बिना शिक्षा प्रचार के, किसी भी प्रकार का विकास होना सम्भव नही है। 'नारी सुशिक्षित बनकर स्वय कहेगी कि उसे किन सुधारो की आवश्यकता है। नारी-समाज मे शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के लिए उन्होने ब्रह्मचारिणियों की नियुक्ति की आयोजना की।

१—'चाँद' मासिक · १९२५ : के पृष्ठ ३१४ पर सम्पादक द्वारा 'रमणी का स्थान' के अन्तर्गत उत्कथित।

२—विवेकानन्द : भारतीय नारी, पृष्ठ २३।

३—वही : ,, पृष्ठ २६।

४—वही, : ,, पृष्ठ ३२।

५—वही, : ,, पृष्ठ २१।

बहराम जी मालाबारी (१८५३-१९१२)

बाल-विवाह प्रथा को वैधानिक रूप से नष्ट करने की दिशा में बहराम जी मालाबारी का प्रयत्न विशेष रूप से प्रशसनीय है। उनका कहना था कि अपरिपक्व आयु के विवाह ही वैधव्य के विकास की पृष्ठभूमि है। इसीलिए वैधव्य को नष्ट करने के लिए बाल-विवाह की प्रथा का निवारण आवश्यक है। १८८४ मे इसी विषय पर उनकी एक पुस्तक, 'नोट्स आन इन्फेन्ट मैरिज इन इन्डिया एण्ड इनफोर्सड विडो हुड' प्रकाशित हुई, जिसमे बाल-विवाह के दोषो पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया। उन्होने बताया कि इस प्रकार के विवाह से बालको के शिक्षा प्राप्ति के अवसर समाप्त हो जाते हैं, तथा बालिकाएँ रोगी बच्चो को जन्म देकर समाज के स्तर को गिराने के साथ-साथ आर्थिक समस्याओ को भी जन्म देती है। इस विषय में उन्होंने उक्त विषय मे यह समाधान प्रस्तुत किया कि विश्वविद्यालयो को बाल-विवाह प्रथा को हतोत्साहित करने की दिशा मे अग्रसर होना चाहिए[1], तथा स्नातको को यह सकल्प करना चाहिए कि वे किसी निश्चित आयु सीमा से कम आयु की बालिका से विवाह नही करेंगे[1]।

मालाबारी ने यह अनुभव किया था कि विधवा विवाह कानून के पारित हो जाने के बाद भी बहुत कम व्यवहृत होता था क्योंकि लोगो को जाति निष्कासन का धार्मिक भय था। इस विषय मे जाति प्रथा पर आघात करते हुए उन्होने कहा था—

'Caste has no objection to the widower marrying again as often as he likes and more women than one at a time if he so wishes. Its cold blooded philosophy is reserved only for the woman who has lost her husband, that is her all in life. Here there is a conflict between state and caste who is stronger."[2]

विधवा नारी की स्थिति मे विकास के दृष्टिकोण से उनका कहना था कि सरकार को इस दिशा मे विधवा विवाह कानून की वैधानिक प्रतिष्ठा करनी चाहिए। साथ ही बाधित वैधव्य के प्रतिकार एव विधवाओ की धर्मपुरोहितो से रक्षा आदि सुधारो मे सक्रिय योगदान देना चाहिए। उन्होंने पाठ्य-पुस्तको मे विधवा-विवाह के समर्थन सम्बन्धी पाठो, निबन्धो तथा कहानियों आदि के रखने का भी सुझाव दिया। मालाबारी जी के सतत प्रयत्नो का यह फल हुआ कि १८९१ मे सम्भोग सहमति आयु १० वर्ष से बढा कर १२ वर्ष कर दी गई।

१—नीरा देसाई, वीमन इन माडर्न इन्डिया, पृष्ठ ७७-

२—वही, पृष्ठ ७७।

विवेकानन्द बाल-विवाह के विरोधी थे उनका कहना था कि बाल-विवाह के फलस्वरूप भावी सन्तति दुर्बल तथा लघुजीवी होती है। सम्भोग आयु-सहमति के विरोधी कट्टर धर्म पन्थियों को ललकारते हुए उन्होने कहा था कि 'जैसे धर्म का अर्थ १२ या १३ वर्ष की बालिका की माँ बनाने मे ही सीमित हो गया है'[1]।

'भारतीय नारी' मे एक स्थान पर उन्होने कहा है—'यदि हमारे यहाँ कन्याओ का विवाह कुछ अधिक आयु मे हो और उनका लालन-पालन सस्कृत वातावरण मे हो तो वे ऐसी सन्तान को जन्म देगी, जिससे देश का यथार्थ कल्याण हो सकता है। अब घर-घर विधवाएँ पाये जाने का मूल कारण बाल-विवाह ही है।'

विवेकानन्द ने कभी भी विधवा-विवाह का समर्थन नही किया। इस प्रकार के विवाह को वे निम्न श्रेणी के लोगो में प्रचलित परम्परा मानते थे। वे प्रेम विवाह के भी विरोधी थे। इस विषय मे उनका कथन था कि यदि 'हम परस्पर प्रेम और विवाह की पूर्ण स्वतन्त्रता दे देते है तो ऐसे विवाहो से उत्पन्न सन्तान दुष्ट और राक्षसी वृत्ति की होगी'[2]।

उपर्युक्त उपदेशो के साथ-साथ विवेकानन्द ने नारी स्वातन्त्र्य पर भी यथेष्ठ बल दिया है। उनके विचार से 'स्त्री के पैरो मे पराधीनता की बेडी डालना तथा निर्धन जनता को जातीय बन्धनो के आधार पर समस्त मानवी अधिकारो से वचित रखना'[3]—ये दो सामाजिक अनर्थ भारत की प्रगति के पथ को अवरुद्ध किए हुए हैं। विवेकानन्द भगवान् बुद्ध की तरह स्त्री-पुरुषो के क्षेत्र तथा अधिकार विभाजन मे विश्वास नही करते थे वे कहा करते थे कि मेरा इस देश की स्त्रियो के लिए वही सदेश है, जो पुरुषो के लिए है[4]।

इस प्रकार नवीन जागृति के इस नवीन कलाकार राजकुमार ने[5] भारतीय नारी की पतनोन्मुख दशा के मूल कारणों को खोज करके उनके उन्मूलन की दिशा मे प्रयास किया। उन मे शिक्षा प्रचार की भावना को विशेष बल देकर नारी जाति के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की। उनके उपदेशो से ही भारतवासी अपने पतन की गहराई माप सके, अपने शारीरिक श्रम एव आधिभौतिक विनाश, अपनी क्रिया विमुखता और आलस्य तथा अपने पौरुष से भयानक ह्रास को पहचान सके। विवेकानन्द ही की वाणी मे सॉस्कृतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ और लोगो मे अपने भविष्य के प्रति उज्जवल आशा सचारित हुई[6]।

१—अद्वैत आश्रम : पृष्ठ ३१-३२।
२—विवेकानन्द . भारतीय नारी, पृष्ठ ६१।
३—वही, पृष्ठ ६५।
४—रोम्यो रोलाँ : प्राफिट्स आफ द न्यू इन्डिया, पृष्ठ १७३।
५—दिनकर : सस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ ५०६।
६—दिनकर वही, पृष्ठ ५०६।

विवाह, नारी-समाज मे अशिक्षा आदि समस्याएँ उपस्थित थी। मेहता जी ने विधवा पुनर्विवाह की समस्या को प्रमुखता प्रदान की तथा सामाजिक रूढिवादियो के विरुद्ध व्यक्ति के बौद्धिक विकास की इच्छा से १८४४ मे 'मानव धर्म समाज' की स्थापना की। इस सभा मे तत्कालीन सामाजिक विषमताओ के विषय मे चर्चा होती थी तथा उनके निवारण के लिए समाधान प्रस्तुत किए जाते थे। यह सच है कि इस सभा को तत्कालिक सफलता नही मिली। फिर भी रूढिवादी समाज को बौद्धिक एव तर्कसगत शिक्षा देने के क्षेत्र मे सर्वप्रथम सस्था होने के कारण इसका स्थान महत्वपूर्ण है।

गुजराती समाज के बीच सुधारकर्ताओ मे दुर्गा राम मेहता के उपरान्त दलपतराय (१८२०-१८९८) ने अपने साहित्य के माध्यम से इस कार्य को आगे बढाया। उनका विश्वास था कि औद्योगिक उन्नति के उपरान्त ही सामाजिक कुप्रथाओ का अन्त होकर भारत सामाजिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक रूप से जागृत हो सकेगा। वे नारी शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उन्होने देखा था कि गुजराती समाज मे बाल-विवाह के कारण न तो बालिकाओ को पर्याप्त शिक्षा ही दी जा सकती है जो उन्हे सुगृहिणी बनने मे योग दे सके, और न उनका मानसिक विकास ही हो पाता है। इस हीनता का अन्त करने के लिए उनमे शिक्षा का प्रचार आवश्यक है। इसी विचार को अपनी कविता के माध्यम इस प्रकार प्रकट किया था, 'यदि तुम अपनी पुत्री को आभूषण दोगे, तो उसका पति उन्हे छीन लेगा, पर यदि तुम उसे विद्या दोगे, तो उसे कोई नही छीन पायेगा'[१]। तत्कालीन गुजराती समाज मे, पुनर्विवाह की अनुमति नही थी। अत बाधित वैधव्य की यातनाओ से भयभीत होकर बहुत सी महिलाएँ धर्म-परिवर्तन कर लेती थी। दूसरे सुधारको की तरह से दलपतराय ने भी पुनर्विवाह का समर्थन किया। 'विधवा-पुनर्विवाह' सम्बन्धी एक लेख मे उन्होने असॉस्कृतिक परम्पराओ का तीव्र खण्डन किया। उनके लेखो एव कविताओ से गुजराती समाज मे नवीन सामाजिक चेतना का आविर्भाव हुआ।

बम्बई मे प्रस्थापित 'प्रार्थना समाज' के सस्थापको मे गुजराती नेता महीपत राम रूप राम (१८३०-१८९०) का नाम उल्लेखनीय है। उपर्युक्त समाज सुधारको की तरह इनके द्वारा भी विधवा-विवाह का समर्थन तथा नारी के शिक्षा के विकास पर बल दिया गया। परन्तु उदार सिद्धॉतो के प्रस्थापन तथा सामाजिको की बौद्धिक चेतना के विकास मे नर्मदाशकर (१८३३-१८८६) का स्थान विशिष्ठ है। नारी को जन्म से ही हीन तथा अशिक्षित रखने के पक्षपाती धर्म-पुरोहितो के विरुद्ध उन्होने नारी-शिक्षा का जोरदार समर्थन किया। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि नारी को शिक्षित करने से पहिले ही यह कैसे निर्णय किया जा सकता है कि नारी शिक्षा-प्राप्ति के योग्य नही है। विधवा पुनर्विवाह का समर्थन करते हुए उन्होने कहा कि

१—दलपतराम, दलपत काव्य, भाग २, पृष्ठ ६२।

पत्नी की मृत्यु के बाद जब पुरुष को पुर्नविवाह का अधिकार प्राप्त है, तो फिर नारी को क्यो नही। मानवता एव नैतिकता के स्तर पर नारी के इस स्वतन्त्रता उपभोग के अधिकार को नही छीना जा सकता। आरम्भ मे वे पाश्चात्य तर्क पद्धति एव बौद्धिक जागृति से अत्यधिक प्रभावित थे, परन्तु बाद मे उनका रुझान भारतीय सस्कृति की ओर हो गया था। उदारवादी सुधारको की इस परम्परा मे लाल शकर उभिय शकर का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होने विद्यासागर की पुस्तक 'विडोरिमेरिज' का गुजराती मे रूपान्तर किया। उनका सम्पर्क बहुत सी प्रादेशिक समाज सुधार सम्बन्धी सस्थाओ से था तथा विख्यात 'इन्डियन सोशल कान्फ्रेन्स' से भी वे सम्बन्धित थे।

गुजराती समाज सुधारको की इस शृखला मे बडोदा के महाराजा सयाजी राव गायकवाड एक विशिष्ठ कडी है। अपने राज्य के सर्वेसर्वा होने के नाते उन्हे दूसरे सुधारको की तरह किसी सरकारी सहायता, सस्थागत सहयोग अथवा जनमत की अपेक्षा नही करनी पडी। वे बाल-विवाह के कट्टर विरोधी तथा नारी-शिक्षा के विकास के प्रबलसमर्थक थे। बहु-विवाह प्रथा से उन्हे घृणा थी। बाधित वैधव्यका वे तीव्र विरोध करते थे। इस विषय को लेकर उन्होने अपने एक भाषण मे कहा था—

'The one keeps up a duly low standard of morality among men, the other demands an impossible high standard from women......... ..Inspite of harsh measures we fail to preserve even an ordinary standard of morality in this much ill treated class.'[1]

१६०४ मे उन्होने अपने राज्य मे बाल-विवाह निरोधक कानून प्रचलित किया। उन्होंने अक्षत योनि विधवाओ को विवाह की अनुज्ञा दी। महिलाओ को औद्योगिक शिक्षा का महत्व बतलाया तथा छात्र-वृत्तियाँ प्रदान की[2]। आपने अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन किया। अपने राज्य मे पर्दा-प्रथा का अन्त किया। विवाह-विच्छेद का विधान बनाया तथा कन्या विक्रय की परम्परा समाप्त की[3]। साथ ही १८८२ मे स्त्रियों के उत्तराधिकार का नियम बनाकर नारी को आर्थिक क्षेत्र मे भी अधिकार प्रदान किए। महिला समाज के चतुर्मुखी विकास के लिए सगीत तथा नृत्य भवन एव अन्य साँस्कृतिक सस्थाओ की स्थापना मे भी आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

महाराष्ट्र क्षेत्र में

गुजरात की भाँति महाराष्ट्र मे भी समाज सुधार की प्रवृत्ति का जन्म

१—स्पीचेज आफ महाराज सयाजी राव गायकवाड, पृष्ठ १६४।
२—चित्राव शास्त्री, चरित्र कोष, पृष्ठ, १८४।
३—वही, पृष्ठ १८४।

१६वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे ही हो गया था। महाराष्ट्र के प्रथम सुधारक बाल-शास्त्री आँमिकर थे जिन्होंने १८४० के लगभग गगाधर शास्त्री फडके द्वारा विधवा विवाह पर एक पुस्तक लिखवा कर महाराष्ट्र मे विधवा विवाह आन्दोलन को बल प्रदान किया। उपर्युक्त अन्य सुधारको की भाँति उन पर भी पाश्चात्य सभ्यता एव संस्कृति का पूर्ण प्रभाव पडा था। समाज सुधार के कार्यों मे उनकी उदार वृत्ति, धर्म की सीमाओ मे आबद्ध सुधार भावना एव 'सार्वजनिक हिताकॉक्षा' आदि-सद्-गुणों का परिचय मिलता है[१]। बाल शास्त्री के काल मे महाराष्ट्र मे सामाजिक जागृति विकसित होना आरम्भ हुई थी, उस समय स्त्री स्वातन्त्र्य की दृष्टि से विधवा के पुनर्विवाह का प्रश्न समाज के सम्मुख था। इस दिशा मे बालशास्त्री के बाद मराठी के प्रख्यात वैयाकरण दादोबा पॉडुरग का कार्य 'परमहस मडली' की स्थापना के रूप में बहुत ही महत्वशाली है। इस गुप्त सस्था की स्थापना बम्बई मे १८४० में हुई थी। यह सस्था जाति भेद पर विश्वास नही करती थी तथा विधवा विवाह का समर्थन करती थी। इसी काल मे लोकहितवादी ने अपनी साहित्यक प्रतिभा एव सम्पादकीय अधिकार द्वारा महाराष्ट्रीय जनता मे सर्वांगीण उन्नति का पथ प्रशस्त किया। वे तत्कालीन महाराष्ट्रीय समाज के विकास के लिए पश्चिम से प्रेरणा एव शिक्षा लेना आवश्यक समझते थे। उनका कहना था कि 'हमारी जो सस्कृति नष्ट-भ्रष्ट सी दीख पडती है, उसका पूर्व रूप प्राप्त करने के लिए मानो ईश्वरीय प्रेरणा से अग्रेज भारत मे पधारे है[२]'।

महाराष्ट्रीय नेताओ मे समाज सुधार की प्रमुख नीव डालने वाले महादेव गोविंद रानाडे थे, जिनका वर्णन पिछले पृष्ठो मे किया जा चुका है। इसी समय तिलक का आविर्भाव हुआ। उन्होने सामाजिक सुधारो की अपेक्षा राजनीतिक सुधारो को अग्र स्थान एव प्राथमिकता देने की बात कही। उन्होंने समाज सुधार विषयक अपनी सैद्धान्तिक भूमि को स्पष्ट करते हुए कहा कि 'समाज-रचना चाहे जिस प्रकार की क्यो न हो, जब तक स्वाधीनता एव राष्ट्रीयता का उत्साह देश मे जागृत है, तब तक समाज की दुर्बलता राष्ट्र की उन्नति व उत्कर्ष मे रोडे नहीं अटका सकती। किन्तु वह जोश ही यदि नष्ट हो गया तो वे कमजोरियाँ रावण के धनुष के समान सीने पर गिर कर हँसी का कारण बन जाएगी[३]'। फिर भी वे समाज सुधार के विरोधी नही थे। १८९० मे उनकी ओर से प्रकट निवेदन में कहा गया था कि लडके और लडकी की विवाह-आयु क्रमश २० तथा १६ वर्ष होनी चाहिए, बाल-विवाह तथा दहेज प्रथा का अन्त होना चाहिए। उनका कहना था कि 'हमे जन-समूह में सुधार करना है पर कही सुधार के हेतु जन समूह मे फूट

१—आचार्य शंकरराव जावडेकर, बसन्तलाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ३६६।
२—काशी नाथ सोमण, वसन्त लाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ५१३।
३—वही पृष्ठ ५१५।

आप इंग्लैंड गईं तथा वहाँ धर्म-परिवर्तन कर लिया। १८८७ में आपके द्वारा लिखित 'हाई कास्ट हिन्दू वीमन' पुस्तक प्रकाशित हुई। अमेरिका आवास काल मे भारत विधवा-शिक्षण सस्था आरम्भ करने की आपकी कल्पना को प्रोत्साहन मिला। उसी के परिणामस्वरूप १८८९ मे बम्बई मे 'शारदा सदन' की स्थापना हुई। "शारदा सदन' का तिलक द्वारा तीव्र विरोध किया गया क्योकि उनका विश्वास था कि उक्त सस्था बालिकाओ को ईसाइयत की राह पर ले जाती है। अतः इसका बहिष्कार होना चाहिए। फिर भी नारी होकर रामाबाई पडिता ने सुधार क्षेत्र मे जो अपूर्व साहस और उत्साह प्रदर्शित किया, इससे उनकी गणना प्रथम कोटि के समाज सुधारको मे होने लगती है।

पंजाब, उत्तर प्रदेश और दक्षिण में

पजाब और उत्तर प्रदेश मे नारी स्थिति के विकास का कार्य मुख्यत आर्य-समाज के द्वारा ही सम्पादित किया गया। फिर भी इन प्रदेशो मे सर गगाराम (१८५१-१९२७) तथा लाला देवराज द्वारा नारी जागरण के प्रशसनीय प्रयास हुए। समकालीन अन्य समाज सुधारको की ही तरह सर गगाराम ने भी विधवा-विवाह के प्रश्न को उठाया। उन्होने अपने धन का सदुपयोग इन विधवाओं के उद्धार-कार्य मे ही किया। सम्पूर्ण विधवाओ के चार भिन्न-भिन्न श्रेणियो में विभाजित करके उन्होने उनकी समस्याओ के निवारण के लिए 'सर गगारामट्रस्ट सोसाइटी' की स्थापना की। लाहौर मे उनके द्वारा 'औद्योगिक शाला' प्रस्थापित की गई, वहाँ विधवाओ को शिक्षिका बनने के लिए प्रशिक्षित किया जाता था। साथ ही सिलाई, कटाई, बुनाई की भी शिक्षा दी जाती थी। उन्होंने अपने ही नाम पर एक बालिका विद्यालय की स्थापना करके पजाब मे स्त्री शिक्षा का विकास किया।

लाला देवराज का नाम नारी शिक्षा के प्रसार के साथ सम्बद्ध है। इस विषय मे उन्होने आर्यसमाज के एक अधिवेशन मे कहा था—'मैं कन्या विद्यालय के काम को कोलम्बस के काम से उपमा दूँगा। अन्तर केवल इतना है कि कोलम्बस ढाई वर्ष की मेहनत के बाद पाताल देश के तट पर पहुँच गया। मगर विद्यालय के कार्यकर्ताओं को २० वर्ष के अर्से के बाद अभी सिर्फ किनारा नजर आने लगा है।............लडकियो के लिए औद्योगिक शाला की आवश्यकता है। जिल्द-साजी, घडी साजी के काम लडकियाँ घर बैठे कर सकती हैं। कन्याओं को विदेश भेजकर विद्यालाभ कराने के लिए 'विदेश यात्रा फण्ड' कायम करने की जरूरत है.........स्त्री प्रचारिकाएँ भी पैदा करनी हैं'[1]। देवराज जी द्वारा स्थापित महा-विद्यालय मे बालिकाओ में अतीत के प्रति श्रद्धा भावना तथा भविष्य के प्रति आशा

१—सत्यदेव विद्यालकार, बसन्तलाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ३८३।

उत्पन्न करने का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। वे पहिले व्यक्ति थे, जिन्होंने कन्याओं के लिए छात्रावास की व्यवस्था की।

१९वीं शती के बम्बई प्रदेश के समाज सुधारकों मे काशीनाथ त्रिम्बक तेलग (१८५०-१८९३) का नाम नारी शिक्षा के प्रचार तथा पुनर्विवाह के समर्थकों के रूप मे उल्लेखनीय है। 'सम्भोग सहमति आयु बिल' पर इन्होने भी चर्चा की थी। काशी नाथ को 'हिन्दू ला' का पूर्ण ज्ञान था। उन्होने वैधानिक रूप से नारी-स्थिति के उत्थान की बात कही। महिला जागृति का यह कार्य दक्षिण मे के० वीरेसलिंगम पॉतुल (१८४८-१९१९) द्वारा सम्पन्न किया गया। वे बाल-विवाह तथा वेश्या-नृत्य के कट्टर विरोधी एवं बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह के समर्थक थे। उनकी मान्यता थी कि देवदासी प्रथा के प्रचलन से उच्चतर सामाजिक आदर्श का ह्रास होता है। नारी के सामाजिक व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा पर उन्हे पूर्ण आस्था थी। उनके सुधार कार्य प्रार्थना समाज से सम्बद्ध थे।

मुस्लिम सुधारक

अँग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक वर्षों मे पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, केवल हिन्दुओं पर ही पडा और उन्होने ही सामाजिक सुधारो की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया। प्रारम्भ में मुसलमानों मे अंग्रेजी तथा अँग्रेजी सभ्यता शिक्षा तथा संस्कृति के प्रति उदासीन एवं घृणात्मक भावना ही व्याप्त थी। वे उस प्रत्येक वस्तु का बहिष्कार करते थे, जिसका सम्बन्ध अंग्रेजों से होता था। सर सैयद अहमद खाँ (१८१७-१८९८) पहिले मुस्लिम थे जिन्होने पाश्चात्य शिक्षा के महत्व को समझा। उन्होंने मुस्लिम समाज में अंग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रसार का प्रयत्न किया। इस क्षेत्र में उन्हे बडी कठिनाइयो का सामना करना पडा[1]। हालाँकि मुस्लिम समाज मे नारी-अधिकारों की व्याख्या होने के कारण—सैद्धान्तिक दृष्टि से उसकी दशा हिन्दू नारी से उन्नत लगती थी। परन्तु उस समाज में पर्दा-प्रथा के प्रचलन से उसका सार्वजनिक जीवन समाप्त होकर, मानसिक विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया। सर सैयद भी, जो मुस्लिम समाज के दिशा-प्रवर्त्तक जाने जाते हैं, केवल महिलाओं को घर की चहारदीवारी के भीतर ही शिक्षा देने के पक्ष मे थे, सार्वजनिक विद्यालयों मे नही। बदरुद्दीन तयाबजी (१८४४-१९०९) पहिले व्यक्ति थे, जिन्होंने पर्दा प्रथा का विरोध किया तथा नारी के अधिकाधिक अधिकारो की माँग की। हैदरी ने नारी शिक्षा के प्रचार को बल प्रदान किया, उन्होने बताया कि महिला का शिक्षित होना इसलिए आवश्यक है कि शिक्षित नारी द्वारा समस्त परिवार के बौद्धिक एवं नैतिक-स्तर का विकास होता है[2]। सैयद इमाम नारी

१—नातेसेन, प्रकाशक:, 'एमिनेन्ट मुसलमान्स' पृष्ठ २५।
२—वही पृष्ठ २५।

स्थिति के विकास को देशोन्नति एव राष्ट्रीय प्रगति और जागरण का प्रतीक मानते थे उन्होने पटना मे 'जनाना स्कूल' की स्थापना की।

इस प्रकार उपर्युक्त समाज-सुधारको के सतत् प्रयत्नों से भारतीय-समाज मे नारी-जागृति का शखनाद हुआ। नारी, अब जीवन को विकासोन्मुख करने की दिशा मे प्रेरित हुई। उसे उस मनोभूमि की प्राप्ति हुई जिसमे आगे चल कर वह अपनी सर्वांगीण प्रगति का स्वप्न हरियाता हुआ देख सके।

खण्ड—३

सुधार-संस्थाएँ

पूर्व पंक्तियो मे वर्णित समाज-सुधारको की प्रेरणा से इस युग मे कई समाज-सुधार-सस्थाओं की भी स्थापना हुई। इन सुधार-सस्थाओ ने नारी-स्थिति के उन्नयन का सामूहिक प्रयत्न किया तथा सुधारको द्वारा प्रस्थापित नवीन जागृति की मान्यताओ के लोक-प्रचार कार्य को विकसित करने में योग दिया। इस काल मे प्राय. सभी सुधार-सस्थाएँ इन्ही समाज-सुधारको के मस्तिष्क की खोज थी। अपने सुधार-कार्य को आगे बढाने के लिए ही राजा राम मोहन राय ने ब्रह्म-समाज, दयानन्द ने आर्य-समाज तथा रानाडे ने 'भारतीय परिषद' की स्थापना की। अगली पक्तियो मे हम इस काल की कुछ विशिष्ट सुधार-सस्थाओ के कार्य-क्रमों तथा उनकी उपलब्धि की विवेचना करेगे।

आर्य-समाज

१८७५ मे स्वामी दयानन्द द्वारा सस्थापित 'आर्य-समाज' समाज-सुधार-सस्थाओ मे सबसे अधिक व्यापक एव नारी-स्थिति को व्यावहारिक अर्थों मे उन्नतिशील बनाने मे सहायक हुआ है। नारी स्थिति सम्बन्धी दयानन्द के आदर्शो को व्यावहारिकता की मनोभूमि पर प्रतिष्ठित कर, आर्य-समाज ने नारी-जाति को सचमुच उपकृत किया। नारी-शिक्षा के विस्तार हेतु आर्य-समाज ने सम्पूर्ण राष्ट्र मे अपनी शाखाओं-उपशाखाओ की स्थापना की। इस सस्था द्वारा वैदिक-शिक्षा की प्रतिष्ठा की गई बालिकाओ के लिए गुरुकुलों की स्थापना हुई। उनके लिए संस्कृत, दर्शन तथा गृह-विज्ञान की शिक्षा आवश्यक एवं उपादेय समझी गई। विधवाश्रमों की स्थापना भी आर्य-समाज के कार्य-क्रमों में प्रमुख था। इस समाज ने भारतीय-नारी

को वैदिक पीठिका के आलोक में नई दीक्षा देने का प्रयत्न किया एव उसकी स्थिति को सुधारने सम्बन्धी कार्यो को व्यायहारिक भावभूमि प्रदान की। आर्य-समाज का योगदान राष्ट्रीय भावनाओ के विस्तार एव ईसाइयत तथा इस्लाम धर्म से हिन्दू-सस्कृति की रक्षा के क्षेत्र मे बहुत महत्वपूर्ण है[1]। आर्य-समाज द्वारा प्रतिपादित वैधव्य जीवन की पवित्रता-सुरक्षा एवं सह-शिक्षा का विरोध आदि सिद्धात भले ही आज के बौद्धिक युग मे सकुचित मनोवृति एव सीमित दृष्टिकोण के परिचायक हो, परन्तु तत्कालीन समाज मे, विशेष रूप से उत्तरी-भारत मे, इस सस्था द्वारा जिन सुधार कार्यो का आयोजन किया गया, उनकी महत्ता को सहज ही विलुप्त नही किया जा सकता।

भारतीय परिषद

इन्डियन नेशनल सोशल कान्फ्रेन्स

भारतीय परिषद की स्थापना राष्ट्रीय स्तर पर सुधार कार्यो को विकसित करने के उद्देश्य से १८८७ मे हुई थी। १८८५ मे राष्ट्रीय काग्रेस के प्रथम अधिवेशन मे रानाडे ने एक ऐसी सस्था की स्थापना पर विशेष बल दिया था, जो पूर्ण रूप से समाज-सुधार कार्यो से ही सबन्धित हो। १८८७ मे मद्रास मे हुए 'परिषद' के प्रथम अधिवेशन मे रानाडे ने घोषणा की थी कि—

'The conference is intended to strengthen the hands of a local associations and to furnish informaticns to each association, to provide and caste and stimulate active interest by mutual sympathy and co-operation.'[2]

भारतीय परिषद के कार्यक्रमो मे समाज-सुधार कोष का निर्माण, सुधार-विषयक सामाजिक व्याख्यान, स्थानीय-सस्थाओ की स्थापना, आग्ल तथा प्रादेशिक भाषाओ मे साहित्य-प्रकाशन एवं सस्थाओ का निबन्धन आदि विषय प्रमुख थे।

नारी-स्थिति विषयक सुधारो के अन्तर्गत परिषद ने बाल-विवाह का विरोध किया। बाधित वैधव्य की यातनाओ को लोगों के सम्मुख रखा, तथा नारी को उस असह्य वातावरण से मुक्ति दिलाने की दिशा मे परिवर्तन किए। आर्य-समाज की भाँति शिक्षा-प्रचार क्षेत्र मे भी परिषद का योग सराहनीय है। इस परिषद द्वारा

१—ए सर्वे ऑफ इन्डियन हिस्ट्री, पृष्ठ २६९।

२—नीरा देसाई द्वारा 'वीमन ऑफ माडर्न इन्डिया,' पृष्ठ १२४ पर उत्कथित।

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, समारोहों में दिए गए भाषणों एव अधिवेशनों में पारित प्रस्तावों द्वारा तत्कालीन नारी-स्थिति के दयनीय चित्र उपस्थित किए गए तथा लोगों को इस दिशा में सोचने की प्रेरणा प्रदान की गई कि नारी की महत्ता बीमार बच्चों को उत्पन्न करने तथा घरेलू वातावरण में सीमित रह सकने से कहीं अधिक है। अतः उसे अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर मिलना ही चाहिए। सुधार क्षेत्र मे भारतीय परिषद का स्थान इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि यह राष्ट्रीय स्तर पर सुधार कार्यो की आयोजना करने वाली प्रथम सस्था थी। सम्पूर्ण भारत की सामाजिक समस्याओ के समाधान के लिए उसने पुरोगम प्रस्तुत किए तथा उन्हे व्यावहारिक रूप देने की चेष्ठा की। 'भारतीय परिषद' के सभी सुधारक रानाडे की ही भाँति पाश्चात्य शिक्षा एवं सस्कृति से प्रभावित थे। इसलिए गणतन्त्रात्मक भारतीय-समाज की रचना के लिए उन्होने पश्चिमी उदार सिद्धान्तो का पक्ष समर्थन किया। परिषद के विषय में एक समय चन्दावरकर ने कहा था—

'All this (widow remarriage, education etc.) we may say in the language of Mr. Risley in the last cencus report is due to the influence to western ideas which through the agency of social conference and otherwise is gradually bringing a change of feeling among the upper classes and larger cities.'[1]

विद्यार्थी संघ

आर्य-समाज के पश्चात् नारी-शिक्षा के प्रचार में सबसे अधिक कार्य विद्यार्थी परिषद द्वारा सम्पन्न हुआ है। १८४८ मे प्रोफेसर पैडन की अध्यक्षता में संघ ने दो शाखाओ-मराठी ज्ञान प्रसारक सभा तथा गुजराती ज्ञान प्रसारक मंडली के रूप मेंअपना कार्य आरम्भ किया। प्रसारक मण्डली केवल पारसी-क्षेत्र तक ही सीमित थी। १८७२ मे हिन्दू गुजराती जाति मे महिला-शिक्षा के विस्तार के लिए 'बुद्धिवर्धक सभा' की स्थापना की गई। इन संस्थाओं ने समय-समय पर लेखों को प्रकाश में लाकर अथवा व्याख्यानों की आयोजना करके शिक्षा-प्रसार कार्य को आगे बढ़ाया। १८४९ में बहराम जी खुर्शीद गाँधी ने 'नारी-शिक्षा' पर एक निबन्ध पढ़ा। बुद्धि-वर्धक हिन्दू सभा के तत्वाविधान में पहला व्याख्यान 'स्त्री-शिक्षा' पर हुआ। विद्यार्थी संघ द्वारा १८५१ तथा १८५४ में क्रमशः पायधुनी तथा फोर्ट मे दो बालिका विद्यालयों की स्थापना हुई। १८५५ मे 'मराठी बालिका पत्रिका' भी इसी संघ द्वारा प्रकाशित की गई। १८५६ मे 'मराठी विद्यालय' में चिमाबाई नामक प्रथम अध्यापिका की नियुक्ति हुई। पहले १०-१२ वर्ष की अवस्था के पश्चात् बालिकाओं

१—नीरा देसाई द्वारा 'वीमन इन माडर्न इन्डिया,' पृष्ठ १२८ मे उत्कथित।

को पाठशाला से उठा लिया जाता था। परन्तु १८८३ मे यह आयु-सीमा हटा दी गई। १८८४ में 'एग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूल' की स्थापना हुई। 'विद्यार्थी परिषद' के तत्वाधान मे १८४३ से १८५१ के मध्य, 'महिलाओ की प्रारम्भिक शिक्षा' तथा 'भारत मे बाल-विवाह से हानि' आदि विषयो पर व्याख्यान हुए। १८५५ तथा १८५६ के बीच, 'भारत मे नारी-शिक्षा' और 'विधवा-पुनर्विवाह' पर व्याख्यान हुए। १८७०-७१ के अधिवेशन में दलपतराम जीवन राम ने 'महिलाओं के अधिकार' पर व्याख्यान देकर उनके अधिकार-क्षेत्र पर प्रकाश डाला। मराठी ज्ञान-प्रसारक सभा के तत्त्वाधान मे १८४९-१९५१ के मध्य सुक्का राम दीक्षित ने 'नारी-शिक्षा' पर तथा बहराम जी खुर्शीद जी ने गुजराती ज्ञान-प्रसारक मण्डली के तत्त्वाधान मे 'नारी-शिक्षा की आवश्यकता' पर भाषण दिए। उधर १८५४ से १८५९ के मध्य 'गुजराती हिन्दू सभा' के अधिवेशनो मे मनसुख राम नरसी दास द्वारा 'शीघ्र विवाह से हानि' गगादास केशवदास द्वारा 'विवाह', सोमनारायण नन्दनारायण द्वारा 'हिन्दू नारी की दशा', महीपत राम रूपराम द्वारा 'विवाह प्रसविदा' तथा दलपतराम दयाभाई द्वारा 'मृत्यु होने पर महिलाओ मे छाती पीटने की प्रथा' आदि विषयो पर भाषण हुए। इस प्रकार से विद्यार्थी सघ द्वारा तत्कालीन नारी-स्थिति की प्राय सभी दिशाओ पर प्रकाश डाला गया तथा समाज मे उनके प्रति जागृति उत्पन्न करने की चेष्टा की गई।

भारतीय महिलाओं की राष्ट्रीय परिषद

१८७५ मे राष्ट्र परिषद महिला समाज की सामाजिक एवं नैतिक समृद्धि के उद्देश्य से संस्थापित हुई थी। इस परिषद की स्थापना मे बम्बई की श्रीमती दौराव टाटा का विशेष सहयोग रहा। इसके द्वारा भी दूसरी सस्थाओ की भाँति ही नारी-शिक्षा पर बल दिया गया तथा महिला-समाज की जागृति के लिए वैधानिक रूप से अधिकार प्राप्त करने की बात कही गई। नारी की सामाजिक एव आर्थिक स्वतन्त्रता विषयक कई प्रस्ताव पारित किए गये, तथा इस बात पर बल दिया गया कि स्त्री जाति को अपने चतुर्मुखी विकास के लिए अवसर प्राप्त होने चाहिएँ। महिला राष्ट्रीय परिषद स्तर पर सुधार कार्य सम्पन्न किए। बम्बई, बगाल, नागपुर, दिल्ली तथा बर्मा तक मे परिषद की शाखाएँ स्थापित की गईं। महिलाओ की इस राष्ट्रीय परिषद के विषय में विशेष उल्लेखनीय यह है कि यह १९वी शती की पहलीसस्था थी, जिसकी स्थापना मे एक महिला का विशेष योगदान रहा और जिसने पुनरुत्थान की बात न कह कर पाश्चात्य आलोक में प्रगतिशील मान्यताओ का अनुसरण किया।

ब्रह्म-समाज और प्रार्थना-समाज

नव-युगीन समाज सुधारकों के आदि पुरुष राजा राम मोहन राय ने अपने सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप देने के उद्देश्य मे १८२८ मे ब्रह्म-समाज की स्थापना

की थी। वास्तव में ब्रह्म-समाज ईसाई-धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव के परिणामस्वरूप घबडाई हुई मनोवृत्ति एवं हिन्दुत्व की रक्षा के प्रति किए गए प्रयत्नो का एक साकार रूप था। अत ब्रह्म-समाज का रूप-निर्विवाद रूप से भारतीय था, और भारतीय परम्परा में कहे तो कह सकते हैं कि यह अद्वैतवादी हिन्दुओ की संस्था थी[१]। किन्तु इस समाज के संस्थापक मूल रूप में समाज-सुधारक थे अतः इस समाज द्वारा अन्य समाज सुधार सम्बन्धी कार्यों के साथ-साथ नारी-स्थिति का उत्थान सम्बन्धी कार्य भी सम्पन्न किया गया। राजा राम मोहन राय के सभी सिद्धान्तों को इस समाज द्वारा मुखर होने का अवसर मिला। उनकी मृत्यु के उपरान्त समाज का कार्य-भार महर्षि देवेन्द्र नाथ के हाथों मे चला गया। वे इसे धार्मिक संस्था ही बनाए रखना चाहते थे, जिसके लिए इसकी स्थापना की गई थी। अतः उनके काल में 'समाज' द्वारा समाज-सुधार की गति धीमी पड गई थी। परन्तु १८५७ में केशव चन्द्र के प्रवेश से 'समाज' को फिर जीवन प्राप्त हुआ। और पाश्चात्य सभ्यता के आलोक मे सुधार-कार्य आगे बढने लगा। केशव चन्द्र सेन के समय में 'समाज' ने अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया, तथा सामाजिक क्रान्ति में पूर्ण उत्साह से भाग लिया। महर्षि देवेन्द्र नाथ और केशव चन्द्र सेन मे सैद्धान्तिक मतभेद हो जाने से केशव चन्द्र का 'समाज' . 'ब्रह्म-समाज' तथा देवेन्द्र नाथ का 'समाज' आदि 'ब्रह्म-समाज' कहलाया। 'आदि ब्रह्म-समाज' देवेन्द्र नाथ के विचारो के अनुकूल हिन्दू धर्म की संस्था बन कर रह गया। वैसे 'योरूपीय संस्कृति, धर्म और विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण ही ब्रह्म-समाज सदैव ही थोडे लोगो की संस्था रहा। जिनमे धन या विद्या का प्राचुर्य था वे ही इस में रहे। बंगाल की साधारण जनता ने इसे कोई प्रश्रय नहीं दिया। फिर भी ब्रह्म-समाज आन्दोलन भारतीय संस्कृति के महान् आन्दोलनों में से एक है क्योंकि योरुप से आने वाले बहुत से विचारों ने आरम्भ में ब्रह्म-समाज से ही हिन्दू धर्म में प्रवेश किया।' इसके माध्यम 'भारतवर्ष योरुप के साथ अपना समन्वय खोज रहा था[२]।' इस प्रकार भारत के अग्रगण्य नेता भारतीय उन्नति के लिए पश्चिम से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे। इसके विपरीत आर्य-समाज ने लोगों में आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता तथा आत्म-ज्ञान की भावना पर विशेष बल दिया एवं हिन्दू-संस्कृति की पृष्ठभूमि मे वैदिक युग की पुनर्स्थापना करनी चाही। श्री L. L. S. O. Malley ने अपनी पुस्तक 'Modern India and the West' (पृष्ठ ६८०) में दोनों संस्थाओ की तुलना करते हुए लिखा है—

'Brahmo Samaj arose out of admiration of Chris-

१—रामधारी सिंह 'दिनकर' : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ ४५१।

२—वही, पृष्ठ ४५५।

tianity, whereas Arya Smaj frankly and avowedly antagonistic to Christianity.'

बगाल के ब्रह्म-समाज की ही भाँति बम्बई मे १८६७ मे प्रार्थना-समाज की स्थापना हुई। महर्षि देवेन्द्र नाथ के 'आदि ब्रह्म-समाज' की भाँति वैसे तो प्रार्थना-समाज भी धार्मिक हिन्दुओ की संस्था थी। परन्तु 'उधार धर्म भावना के परिणाम-स्वरूप सामाजिक सुधार की प्रेरणा भी स्वभावत ही उसमे से उत्पन्न हो गई'[1]। समाज-सुधार क्षेत्र मे प्रार्थना-समाज ने 'बाल-विवाह प्रतिबन्धक सभा' की स्थापना की। अनमेल तथा वृद्ध-विवाह रोकने की व्यवस्था की। विधवा-विवाह को प्रोत्साहन दिया तथा स्त्री-शिक्षा के प्रचार तथा वेश्या-नृत्य निषेध आदि सामाजिक सुधार सम्मन्न किए।

क्रिस्तीन महिला संस्था : वाई. डबल्यू. सी. ए.

भारत मे क्रिस्तीन महिला-सस्था की स्थापना १८७५ में हुई। इस संस्था का उद्देश्य भारत के समस्त धर्म एव मतावलम्बियो मे विश्वासी महिला वर्ग मे विश्व-बंधुत्व की भावना का प्रचार करना है। इस सस्था के द्वारा ग्रीष्म शिविर एव ग्रीष्म कक्षाएँ भी आयोजित की जाती हैं, जिनमे जीवन के सभी क्षेत्रो मे उन्नतिशील बनने के लिए महिलाओ को प्रशिक्षित किया जाता है जिससे उनमे समाज-कल्याण की भावना विकसित हो। आज इस सस्था की शाखाएँ समस्त भारतवर्ष मे हैं। भारतीय क्रिस्तीन महिला-सस्था अखिल विश्व क्रिस्तीन महिला-सस्था से सम्बद्ध है।

अन्य-संस्थाएँ

उपर्युक्त सुधार संस्थाओ के अतिरिक्त भी १९वी शती मे बहुत-सी अन्य-सस्थाओ की स्थापना हुई। जिसके द्वारा नारी-सम्बन्धी कुप्रथाओं के अन्त का प्रयास किया गया तथा नारी-जागृति की भावना को बल प्राप्त हुआ। १८९६ मे पूना में महर्षि कर्वे द्वारा हिन्दू 'विधवाश्रम' की स्थापना की गई। इस आश्रम का उद्देश्य उन ऊँचे वर्ग की विधवाओ को, जिनमें पुनर्विवाह की प्रथा नहीं है, शिक्षा देना था, जिससे वे प्रतिष्ठापूर्वक अपनी जीविका उपार्जित कर सकें और शिक्षित भी हो जाये। 'विधवाश्रम' की प्रगति के कुछ समय उपरान्त हिंगणे नामक स्थान मे 'नारी-शिक्षण सस्था' की स्थापना हुई, जहाँ बालिकाओ को सामान्य शिक्षा, विवाहित महिलाओ को गृह-शिक्षा एव विधवाओं को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था थी, जिससे वे आत्म-निर्भर बन सकें। सतारा आदि नगरो मे भी इस संस्थाओं की शाखाएँ हैं। बम्बई प्रदेश में उपर्युक्त सस्था को भाँति 'दक्षिण-शिक्षा मण्डली' का नाम भी उल्लेखनीय है। इस सस्था की स्थापना से पूर्व १८८० मे चिपलूणकर नें तिलक और

१—गट्टु भाई धू : बसन्त लाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ५३४।

आगरकर की सहायता से पौर्वात्य सिद्धान्तो पर आधारित 'न्यू इग्लिश विद्यालय' आरम्भ किया था। बाद मे इन सुधारकों ने मिल कर १८८४ मे नारी-जाति मे शिक्षा-प्रचार के उद्देश्य से उक्त सस्था की स्थापना की। उनका विश्वास था कि विद्याध्ययन के माध्यम से ही महिला जगत मे जागृत उत्पन्न की जा सकती है। इन्ही दिनों १८९५ मे शोलापुर मे निराश्रया नारी की सहायता के उद्देश्य से 'वासुदेव बाबाजी नवरंगी अनाथालय' की स्थापना की गई। इस अनाथालय मे आई हुई असहाय महिलाओं को औद्योगिक प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे वे आत्म निर्भर होकर जीवन यापन कर सके। बम्बई के उपनगर विले पार्ले मे भी इस सस्था की एक शाखा है।

बम्बई की भाँति गुजरात मे भी बहुत-सी समाज-सुधार-सस्थाओ की स्थापना हुई। १९वी शती के मध्यकाल मे गुजरात का सामाजिक स्तर अधविश्वासो, अशिक्षा तथा कुसस्कारों के परिणामस्वरूप अध पतित हो चुका था। सामाजिक स्तर के गिरने से महिला समाज की दशा भी शोचनीय थी। इस दिशा मे १८४८ में स्थापित 'गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी' ने नारी-शिक्षा के विकास की भावना को बल देकर तत्कालीन गुजरात को वास्तविक अर्थों मे उपकृत किया। इस सस्था के सदस्यों में दलपतराम, महीपत राम, लाल शकर, उमिय शकर आदि प्रमुख थे। सुधारकों द्वारा सह-शिक्षा के विकास पर भी बल दिया गया। साथ ही नारी-सम्बन्धी समस्याओ पर साहित्य प्रकाशित करने का श्रेय भी इसी सस्था को प्राप्त है। इन्होंने पुरस्कार भेट आदि देकर महिला-शिक्षा को प्रोत्साहित किया। गुजराती समाज मे इस संस्था द्वारा शिक्षा-प्रचार का कार्य विशेष रूप से सराहनीय है। निराश्रित महिलाओ को आश्रय देने तथा उनके भरण-पोषण का भार सँभालने के क्षेत्र मे अहमदाबाद में १८९२ मे स्थापित 'महीपतराम रूपराम अनाथालय' की गणना तत्कालीन प्रमुख सुधार सस्थाओं में की जाती है। इसमे कुमारियों, विवाहितो एव विधवाओ के लिए प्रश्रय, शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था है। १८९७ मे 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना वेदान्तवादी विचारधारा के प्रचार, जाति-पाँति कुप्रथा के विनाश तथा सामाजिक सुधारो के प्रसार के दृष्टिकोण से की गई। महिला-सुधार क्षेत्र में मिशन द्वारा प्रसूति गृह, बालिका विद्यालय एव औषधालय संचालित होते हैं। ग्राम्य-बालिकाओं मे शिक्षा-प्रचार कार्य मे इस मिशन का विशेष सहयोग रहा है, उपर्युक्त मिशन की मद्रास, कलकत्ता आदि प्रमुख नगरों में शाखाएँ भी हैं।

उपर्युक्त प्रदेशों की भाँति पश्चिमी बंगाल मे भी १८८२ मे 'निर्धनों की भगिनी' नामक संस्था की स्थापना हुई। इस संस्था द्वारा वृद्धाओं के भरण-पोषण की व्यवस्था एवं औषधिक सहायता की जाती है। कलकत्ता में दूसरी सुधारवादी संस्था 'कलकत्ता मुस्लिम अनाथालय' है जो १८९२ में स्थापित हुई। इस संस्था

द्वारा लिंग, जाति एव धर्म के भेद-भाव बिना सभी को शिक्षा प्राप्ति का समान अवसर दिया जाता है। इसमे अपहरित महिलाओ को आश्रय देने की व्यवस्था भी है। महिलाओ मे शिक्षा-प्रचार के लिए १८९५ मे स्थापित 'शारदेश्वरी आश्रम एव नि शुल्क कन्या विद्यालय' का नाम भी उल्लेखनीय है। इसके तत्त्वाधान मे विधवाओ के लिए धार्मिक व्याख्यानो की आयोजना होती है। नावाद्वीप (कलकत्ता) तथा गिरिदिडहश (बिहार) मे इस आश्रम की शाखाओ द्वारा सुधार कार्य सम्पन्न होता है।

पजाब में समाज सुधार कार्य प्राय आर्य-समाज द्वारा ही सम्पन्न किया गया। १८७७ मे फिरोजपुर में 'आर्य-समाज अनाथालय' की स्थापना हुई। इसमे निराश्रित महिलाओ को औद्योगिक प्रशिक्षण दिया जाता है। बालिकाओ के लिए उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था है। १८५४ मे स्थापित 'सत जौसेफ अनाथालय' द्वारा मद्रास मे किया हुआ कार्य भी सुधारवादी दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। वृद्ध नारियों का भरण-पोषण, अविवाहिता माताओ को शरण तथा निर्बलो की सहायता इस सस्था का लक्ष्य है। इस अनाथालय मे शिक्षा की भी व्यवस्था है। बालिकाओ को औद्योगिक प्रशिक्षण दिया जाता है। साथ ही पशु-पालन एव गृह-उद्योगो की शिक्षा भी दी जाती है। दक्षिण मे नारी-सुधार सम्बन्धी पहली सस्था होने के नाते सुधार-सस्थाओ में कैथोलिक मिशनरी द्वारा स्थापित इस सस्था का स्थान विशिष्ठ है।

उपसंहार

१९वी शती मे नारी-स्थिति के क्रमागत विकास, समाज-सुधारको एव सुधार-संस्थाओ के उपर्युक्त अध्ययन और विवेचन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि इस युग मे सुधारवादी एव पुनरुत्थानवादी दोनो प्रकार के समाज-सुधारको ने नारी-समाज की परम्परागत दयनीय स्थिति का विरोध करके उसके लिए उच्चतर सामाजिक जीवन की प्रतिष्ठा करनी चाही। वैदिक काल के पश्चात् पहली बार नारी को सम्मानपूर्ण स्थिति का अवकाश देकर समान भाव-भूमि पर अपने व्यक्तित्व का विकास करने का सुयोग इसी काल मे पुरुष समाज द्वारा प्रदान किया गया। स्वामी दयानन्द को छोडकर प्राय. अन्य सभी समाज-सुधारो की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। पाश्चात्य मान्यताओ पर आधारित राजा राम मोहन राय का 'ब्रह्म-समाज' तथा महादेव गोविंद रानाडे की 'सामाजिक परिषद' तत्कालीन नारी-सुधार-

संस्थाओ मे प्रमुख थी। इस काल मे आरम्भिक सुधारको ने नारी-स्थिति के विकास की दिशा मे प्रयत्न करने के बदले तत्कालीन समाज मे व्याप्त कुप्रथाओ का अन्त करने की चेष्टा की। इस सम्बन्ध मे राजा राम मोहन राय द्वारा सती-प्रथा का विरोध एव विद्यासागर तथा मालावारी द्वारा पुनर्विवाह समर्थन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वैसे 'विद्यार्थी परिषद' द्वारा नारी-समाज मे शिक्षा-प्रचार कार्य आरम्भ हो चुका था, परन्तु इस दिशा मे राष्ट्रीय स्तर पर विशेष कार्य आर्य-समाज द्वारा सम्पन्न किया गया। बालिकाओ की शिक्षा के लिए गुरुकुल, निराश्रित विधवाओ के लिए अनाथाश्रम एव आर्य-समाजी वैवाहिक पद्धति आर्य-समाज के नारी-स्थिति के उत्थान सम्बन्धी व्यावहारिक प्रयासो मे प्रमुख हैं। स्वामी दयानन्द द्वारा ही पौराणिक परम्पराओ के नीचे दबे हुए वैदिक हिन्दुत्व की रक्षा की गई। जैसे राजनीतिक क्षेत्र मे हमारी राष्ट्रीयता का सामरिक तेज पहिले-पहल तिलक मे प्रकट हुआ था वैसे ही सस्कृति के क्षेत्र मे भारत का आत्माभिमान स्वामी दयानन्द मे निखरा[1]। हिन्दुत्व और सस्कृति की रक्षा के परिणामस्वरूप दयानन्द द्वारा नारी जाति भी व्यावहारिक रूप से उपकृत हुई। विवेकानन्द ने भी नारी को सम्मान के शीर्ष पर आसीन किया है। बौद्धिक तर्कों से उन्होने भी इस सत्य की प्रतिष्ठा की है कि नारी को पुरुष की भाँति व्यक्तित्व के विकास तथा सामाजिक जीवन की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि के समान अवसर की प्राप्ति होनी चाहिए। उन्होने भी महिला-समाज में शिक्षा-प्रचार के लिए आजन्म सेवारत ब्रह्मचारिणयो की नियुक्ति की, परन्तु उन्हे व्यावहारिक क्षेत्र मे उतनी सफलता प्राप्त नही हो सकी, जितनी स्वामी दयानन्द को। क्योकि दयानन्द की कार्य-प्रणाली आर्य-समाज के माध्यम से सुनिश्चित योजना के अनुसार व्यवहारित होती थी। आर्य-समाज के विषय मे यह भी उल्लेखनीय है कि यह पहली पूर्ण भारतीय-सस्था थी। इसने कभी भी शासको की सहायता की अपेक्षा नही की। नारी को शरीरिक विकास के क्षेत्र मे प्रथम प्रोत्साहन इसी सस्था के द्वारा दिया गया। इसी 'समाज' ने वैदिक सस्कृति के आलोक मे आधुनिक भारत के निर्माण के योग प्रदान किया। इस प्रकार से वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा कर, पाश्चात्य सस्कृति को आँखे मूँद कर ग्रहण कर लेने की तत्कालीन मनोवृति पर इसी समाज द्वारा रोक लगाई गई।

इस काल के प्राय. सभी प्रमुख सुधारको ने भिन्न-भिन्न सस्थाओं की स्थापना करके सुधार कार्य को आगे बढाया। उनका विश्वास था कि रूढिगत परम्पराओ का मूलोच्छेदन करने मे व्यक्तिगत प्रयासो की अपेक्षा सस्थागत और सामूहिक प्रयत्न अधिक लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। इन सभी सुधारको द्वारा नारी-जागरण की भावना को बल मिलता रहा। राम मोहन राय से लेकर बहराम जी

१—दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय।

मालावारी तक सती-प्रथा, बाल-विववाह, बाधित-वैधव्य आदि कुप्रथाओ का विरोध किया गया। गुजराती सुधारको ने साहित्य के माध्यम से सुधार भावना को मुखरित किया। दयानन्द ने नारी-शिक्षा के विकास पर बल दिया और रानाडे ने नारी-जागृति के इस नवोदित आन्दोलन को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार से नारी-सुधार भावना के प्रासाद का दृढ शिलान्यास १९वी शती की समाज-सुधार क्षेत्र में महान् उपलब्धि है।

नारी-स्थिति के उत्थान क्षेत्र की इन उपलब्धियों के साथ-साथ १९वी शती के इस क्रान्ति काल मे कुछ न्यूनताएँ भी शेष रह गई जिनका विवेचन भी आवश्यक हो जाता है। इस काल के सुधारको ने मुख्यतया परम्परागत कुप्रथाओं को मिटाने की ही चेष्टा की। अधिकार प्राप्ति के नवीन क्षितिजो का स्पर्श इस काल मे नही के बराबर किया गया। रामाबाई पंडिता के अतिरिक्त किसी भी महिला ने सुधार आन्दोलन मे सक्रिय भाग नही लिया। वाणी एव विचारशून्य तत्कालीन नारी अशिक्षिता होने के कारण स्वयं कोई लक्ष्य निर्धारित कर सकने मे असमर्थ रही। केवल पुरुष वर्ग द्वारा ही यह कार्य सम्पन्न किया गया। परिणामस्वरूप नारी को सम्मानपूर्ण स्थिति प्रदान करने के बदले उसके प्रति करुणा और दया की भावना ही अधिक व्यक्त हुई। सुधार कार्य भी केवल उच्च वर्गीय तथा उच्च मध्य वर्गीय नारी-समाज तक ही सीमित रहा। ग्रामीण एवं निम्न वर्गीय महिला-समाज इन सुधारों से किसी प्रकार की प्रेरणा ग्रहण नही कर सका। इस रूप मे समाज-सुधार की इस योजना को एकागी कहा जा सकता है। दूसरे, वेश्या-वर्ग, देवदासी समाज तथा विस्तृत अनैतिक व्यापार की ओर इस काल के सुधारकों का ध्यान आकृष्ट नही हुआ और वे केवल सती-प्रथा, बाल-विवाह एवं विधवा-विवाह और इससे आगे शिक्षा-प्रचार कार्य तक ही सीमित रहे।

इसके साथ-साथ ही विशेष बात यह भी हुई कि बहुत से प्रमुख सुधारक स्वय प्रतिष्ठित सुधारकों को मान कर नही चल सके। बाल-विवाह के विरोधी रानाडे ने ९ वर्ष की बालिका से विवाह किया[1]। विधवा-विवाह के समर्थक दुर्गा राम मेहता ने अपनी पूर्व पत्नी की मृत्यु के बाद एक कन्या से विवाह किया[2]। ब्रह्म-समाज के स्तम्भ एवं बाल-विवाह के कट्टर विरोधी केशव चन्द्र सेन ने अपनी अल्प-वयस्क कन्या का विवाह कूच-बिहार के अल्प-वयस्क राजकुमार से किया[3]। तथा वेश्या-नृत्य के विरोधी वीरेस-लिंगम् पांतुल अपने विवाह समारोह मे वेश्या-नृत्य नही रोक सके। इन सब की पृष्ठ-भूमि मे समाज भय की भावना प्रमुख थी। सुधारक स्वयं

१—नीरा देसाई : 'वीमन इन माडर्न इन्डिया,' पृष्ठ ७९।

२—वही पृष्ठ ९३।

३—दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ ४५४।

प्रस्थापित सुधारो को अपनाने मे हिचकिचाते थे, क्योंकि अब भी समाज मे कट्टर-पन्थियो की शक्ति क्षीण नही हुई थी। इन पुरातन पन्थियों से भयभीत ये समाज-सुधारक जो कुछ भी कर पाये उससे वे महिला क्रान्ति को उनका सम्मानपूर्ण स्वरूप अनुभव करा सकने मे असमर्थ रहे। दूसरे 'आर्य-समाज' तथा 'सामाजिक परिषद' के अतिरिक्त दूसरी सुधारवादी सस्थाएँ केवल प्रादेशिक क्षेत्रो तक ही सीमित रहीं तथा बगाल, बम्बई, महाराष्ट्र तथा गुजरात और पजाब आदि कुछ विशिष्ट प्रदेशो मे इस सुधार आन्दोलन का अधिक प्रभाव नहीं पडा। इसके अतिरिक्त कभी-कभी समाज-सुधारकों मे परस्पर मतभेद भी हो जाता था। 'सम्भोग सहमति आयु विधेयक' को लेकर रानाडे और तिलक मे मतभेद की खाई उत्पन्न हो गई थी। इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था मे इस सुधार-क्रान्ति में कतिपय त्रुटियाँ रह गई थीं, जिनके कारण नारी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की भावना पूर्ण रूप से प्रसरित नही हो पाई। फिर भी १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे नारी-जाति को विकासोन्मुख करने की जो चेष्टा की गई, उसी भाव-भूमि पर आधारित २०वी शती में उसके चतुर्मुखी विकसित व्यक्तित्व के प्रासाद का निर्माण हुआ।

प्रकरण—३

आधुनिक भारतीय समाज में नारी

क्रमश :

उत्तर आधुनिक काल : विकासोन्मुख नारी-स्थिति
(१९०१ से १९५७ तक)

प्रकरण—३

उत्तर-आधुनिक काल :

बीसवी शती राष्ट्रीय उद्बोधन एवं प्रगति के साथ-साथ नारी-जागृति के दृष्टिकोण से भी बहुत महत्वपूर्ण है। १९वी शताब्दी के ८वें दशक के मध्य मे भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस की स्थापना से जनता मे स्वाधिकार एव स्वशासन के प्रति एक प्रकार की अधिकार भावना बद्धमूल हो रही थी। तात्कालिक राजनैतिक चेतना विभिन्न प्रकारो में मुखर होती हुई सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करती चल रही थी। अत. इस नवीन व्यवस्था मे नारी को भी राष्ट्रीय स्तर पर कार्य-क्षेत्र प्राप्त करने का अवसर मिला। अब तक उसमे शिक्षा का प्रचुर प्रचार हो चुका था। सामाजिक हीन-भावना को विनष्ट करने के लिए भाव-भूमि प्रस्तुत की और उदार पथी सुधारको के द्वारा समाज मे कुप्रथाओं के प्रति एक उपेक्षापूर्ण भावना का निर्माण किया जा चुका था। अब केवल इस बात की अपेक्षा थी कि उसे एक सुनिश्चित दिशा देकर व्यावहारिक कार्य-क्षेत्र मे प्रोत्साहित किया जाए। भारतीय राजनीति मे महात्मा गाँधी के पदार्पण ने इस कार्य को पूरा किया। उन्होने अपने आन्दोलनों मे नारी-समाज को समान कार्य-क्षेत्र प्रदान किया। उसके सकोचशील व्यक्तित्व को विकास का अवसर देकर उसे भी पुरुष समाज की भाँति स्वतन्त्रता आन्दोलन मे भाग लेने की आयोजना सर्व प्रथम उन्ही के द्वारा सम्पन्न हुई। नारी ने भी विस्तृत वातावरण में अपनी स्थिति का अनुभव कर, अपने अधिकारो की शक्ति को पहचाना और पहली बार स्वय अपनी प्रगति और विकास की दिशा मे अग्रसर हुई। महिला-समाज की इस बौद्धिक जागृति के काल मे देश की राष्ट्रीय भावना को बल मिला और समाज के एक निष्प्राण अंग मे फिर से यौवन रेखा दौड गई। इस काल मे नारी ने अपनी स्थिति को सुदृढ करने के लिए वैधानिक अधिकारो का भी आश्रय लिया। इसलिए इस काल मे, इस दिशा मे बहुत से वैधानिक सुधार किए गए जो उसे उच्चतर सामाजिक जीवन की स्वीकृति प्रदान करने में सहायक हुए। अगली पक्तियो में हम तद्विषयक वैधानिक सुधारों एवं सामाजिक प्रगति की विवेचना करेंगे।

खण्ड—१

वैधानिक सुधार

(अ) विवाह-सम्बन्धी

इस काल मे नारी-सम्बन्धी वैधानिक सुधार मुख्यत· विवाह, सम्बन्ध-विच्छेद, सम्पति अधिकार तथा वेश्यावृत्ति को लेकर हुए, विवाह विषयक सुधारो का आरम्भ प्रादेशिक स्तर से होता है। १९०४ मे सयाजी राव गायकवाड ने अपने राज्य मे बाल-विवाह निरोधक कानून प्रचलित किया, जिसमे बाल-विवाह करने वाले संरक्षक को दण्ड देने का विधान था[1]। उन्ही के द्वारा फिर १९१० मे 'सिविल मैरिज कानून' बनाया गया,[2] जिनको सम्पन्न करने के लिए किसी भी धार्मिक-विवाह विधि की अनिवार्यता आवश्यक नही समझी गई। सन् १९२३ मे पारित 'विशेष विवाह कानून' मे भी सशोधन किया गया। इससे पूर्व इस कानून के अन्तर्गत विवाह करने वालों को यह घोषणा करनी पडती थी कि वे किसी धर्म या जाति पर विश्वास नही करते है। इस शोधन से उक्त सघोषणा के प्रतिबन्धों को हटा दिया गया। इसके उपरान्त १९२५ में सम्मति वय को वैवाहिक तथा अवैवाहिक सीमा रेखाओ में विभाजित कर, १२ वर्ष के बदले, क्रमश· १३ वर्ष और १४ वर्ष मे बढा दिया। १९२८ में श्री एन० एम० जोशी की अध्यक्षता में 'सम्मति वय समिति' नियुक्त की गई जिसने सम्मति वय को वैवाहिक और अवैवाहिक परिस्थितियो मे क्रमशः १५ वर्ष और १८ वर्ष मे बढाने का सुझाव दिया। इसी बीच मे १९२७ मे श्री हर विलास सारदा द्वारा हिन्दू जाति मे सम्मति आयु विषयक एक विधेयक विधान सभा मे प्रस्तुत किया गया जिसमें कहा गया कि यह कानून हिन्दुओ के साथ-साथ सभी भारतीयो पर लागू होना चाहिए। एक दूसरी प्रवर समिति की नियुक्ति के बाद १९२९ मे बाल-विवाह निरोधक कानून पास किया गया जिसके अनुसार बालक और बालिका की न्यूनतम-विवाह आयु क्रमशः १८ वर्ष और १४ वर्ष ठहराई गई।

१—सुमन्त मेहता : बसन्त लाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ४८१।
२—वही, पृष्ठ ४८३।

१८५६ में पारित 'विधवा-विवाह' कानून के अनुसार पुनर्विवाहिताओ की सम्पति विषयक कोई अधिकार प्राप्त नही होता था। इस दिशा मे बम्बई प्रादेशिक समाज सुधार-सस्था ने १९३८ मे उक्त कानून में सशोधन के निमित्त एक विधेयक प्रस्तुत किया, परन्तु उसका कोई सुपरिणाम नही निकला[1]। १९४२ मे बडौदा सरकार ने पूर्व विवाह-सम्बन्ध को विच्छेद किए बिना दूसरा विवाह करने के अधिकार पर रोक लगाने सम्बन्धी कानून प्रचलित किया। १९४६ मे बम्बई सरकार ने भी इस आशय का 'हिन्दू बहु-विवाह निरोधक कानून' लागू किया, जिसकी अविज्ञा करने पर ७ वर्ष के कारावास तथा आर्थिक दण्ड का विधान था। इसी वर्ष 'हिन्दू विवाह अयोग्यता निवारण कानून' के पारित हो जाने से समान गोत्रीय विवाहो को मान्यता प्राप्त हुई। इसके तीन वर्ष उपरान्त १९४९ मे 'हिन्दू विवाह मान्यता कानून' के अन्तर्गत अन्तर्जातीय विवाहो के लिए अवसर प्रदान किया गया। १९५४ मे 'विशेष विवाह कानून' पारित हुआ जिसके अनुसार अपने पहले पति या पत्नी से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने अथवा उनकी मृत्यु हो जाने पर, स्त्री-पुरुष, यदि वे क्रमश १८ वर्ष तथा २१ वर्ष की आयु के हैं, परस्पर विवाह-सम्बन्ध स्थापित कर सकते है। महिलाओ को उच्चतर सामाजिक जीवन की स्वीकृति दिलाने के उद्देश्य से सरकार द्वारा १९४१ मे श्री बी० एन० राव की अध्यक्षता मे एक समिति बनाई गई थी जिसने उत्तराधिकार के सम्बन्ध मे हिन्दू कानून के पुनर्निमाण का समर्थन किया था। सरकार द्वारा स्वीकृति इस सुझाव के परिणाम स्वरूप १९४२ मे इस आशय का एक विधेयक व्यवस्थापिका सभा के सन्मुख प्रस्तुत किया गया। व्यवस्थापिका सभा मे प्रवर समिति ने उतराधिकार सम्बन्धी कानून के साथ-साथ उक्त राव समिति द्वारा सम्पूर्ण हिन्दू कानून का मसविदा पुन तैयार करने का सुझाव दिया। इसी सुझाव का परिणाम १९५७ का 'कोड बिल' था। जिसकी रूप-रेखा निर्माण करने मे भारत के तत्कालीन विधि मन्त्री स्वर्गीय भीम राव अम्बेदकर ने बहुत प्रयत्न किया था। राव समिति द्वारा प्रस्तुत मसविदे पर १९४८ मे ससद की प्रवर समिति ने विचार विनिमय के उपरान्त, उसमे परिवर्तन कर हिन्दू कोड बिल को हिन्दू विवाह विधेयक, हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, हिन्दू अल्पवयस्कता व सरक्षणता विधेयक तथा हिन्दू दत्तक ग्रहण और निर्वाह विधेयक के रूप में चार विभिन्न उप-विभागो मे विभाजित करने तथा अधिनियम बनाने की बात का समर्थन किया। इसी के परिणाम स्वरूप 'हिन्दू विवाह विधेयक' १८ मई १९५५ को पारित होकर अधिनियम बन गया। इस अधिनियम द्वारा बहु-विवाह का निषेद तथा विशेद परिस्धितियो मे सम्बन्ध विच्छेद की अनुमति प्रदान की गई। इस अधिनियम के अनुसार एक विवाह की अनिवार्यता लागू हुई तथा इसके अन्तर्गत किए गये विवाहों के पंजीकरण की भी आवश्यकना नही समझी गई।

१—नीरा देसाई : 'वीमन इन माडर्न इन्डिया' पृष्ठ १६९-१७०।

(आ) सम्बन्ध विच्छेद सम्बन्धी

विवाह-सम्बन्धी वैधानिक सुधारो के साथ-साथ इस काल मे सम्बन्ध-विच्छेद सम्बन्धी भी कुछ कानून पारित किए गये। इस प्रकार के कानूनो का आरम्भ १९३६ के 'पारसी विवाह एव विच्छेद अधिनियम' से होता है, जिसके अनुसार विवाहोपरान्त एक वर्ष तक सम्भोग न करने, अस्वस्थ मस्तिष्क होने, विवाह से पूर्व पत्नी के गर्भवती होने तथा कारावास होने एव पत्नी को वेश्यावृति के लिए विवश करने आदि परिस्थितियो मे पारसीक जाति मे सम्बन्ध विच्छेद किया जा सकता है। १९३७ मे बडौदा राज्य मे भी ७ वर्ष तक अज्ञात वास करने, धर्म परिवर्तन करने, क्रूर होने तथा मद्यप होने आदि कारणो से परस्पर सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने सम्बन्धी कानून पास किया गया। इसी आशय का कानून मुसलमानो मे भी प्रचलित हैं। मुस्लिम पति, बिना कारण दिए ही केवल तीन बार 'तलाक' शब्द का उच्चारण कर, अपनी पत्नी से सम्बन्ध विच्छेद कर सकता है[1]। मुस्लिम पत्नी द्वारा अपने पति को तलाक देने सम्बन्धी दो प्रकार है, प्रथम न्यायालय के द्वारा तथा दूसरे स्वय पति की अनुमति से। न्यायालय के द्वारा सम्बन्ध-विच्छेद की माँग करने सम्बन्धी नियम १९३९ मे पारित 'मुस्लिम विवाह अधिनियम' के अनुसार व्यवहारित होते है। उपर्युक्त बडौदा के सम्बन्ध-विच्छेद सबधी नियम के समानान्तर १९४७ मे बम्बई मे भी 'बम्बई हिन्दू सम्बन्ध विच्छेद अधिनियम' पारित हुआ, जिसके अनुसार हिन्दू नारी को सम्बन्ध-विच्छेद और पुर्नविवाह के क्षेत्र मे अधिक अधिकारो की प्राप्ति हुई। हिन्दू, मुस्लिम और पारसीक लोगो की भाँति भारतीय ईसाई मतावलम्बी स्त्री-पुरुष भी १९५४ के 'विशेष विवाह अधिनियम' के अनुसार परस्पर सम्बन्ध-विच्छेद कर सकते है। ईसाई मतावलम्बियो के अतिरिक्त यह अधिनियम उन पर भी लागू होता है जो इस नियम के अन्तर्गत विवाहित हुए हैं। सम्बन्ध-विच्छेद सम्बन्धी इन नियमो को परम्परा मे हिन्दू कोड बिल के अन्तर्गत १९५५ में पारित 'हिन्दू विवाह अधिनियम' विशेष उल्लेखनीय है। इसके अनुसार पति या पत्नी दूसरे व्यक्ति के व्यभिचारी होने, मत परिवर्तन करने, असाध्य रूप से पागल होने, संक्रानम अथवा असाध्य कुष्ठ रोग अथवा स्पर्श जन्य किसी भयकर त्वचा रोग से पीडित होने, सन्यासी बन जाने, सात वर्ष तक जीवित रहने का समाचार न मिलने तथा न्यायालय द्वारा पृथक रहने का आदेश दिए जाने के उपरान्त दो वर्ष तक सहवास न होने पर परस्पर सम्बन्ध-विच्छेद कर सकते है[2]। इस अधिनियम के अनुसार पत्नी अपने बहु-विवाहित पति से भी सम्बन्ध-विच्छेद कर सकती है। सम्बन्ध विच्छेद-सम्बन्धी प्रार्थना पत्र विवाह की तिथि के तीन वर्ष बाद ही स्वीकार किया जाता है। किन्तु

१—नीरा देसाई 'वीमन इन माडर्न इन्डिया,' पृष्ठ १७४।

२—क्षितीश कुमार विद्यालकार : बसन्त लाल मुरारका स्मृति-ग्रन्थ पृष्ठ २११।

विशेष परिस्थितियो मे उपर्युक्त तिथि से पूर्व भी न्यायालय प्राथी का प्रार्थना-पत्र स्वीकार कर सकता है।

(इ) सम्पति अधिकार सम्बन्धी

सन् १८७४ मे 'विवाहित नारी सम्पति अधिनियम' के अन्तर्गत नारी को जिस सम्पति अधिकार का आभास मात्र हुआ था, उसका विकास २०वी शताब्दी मे स्त्री-धन के अधिकार के अतिरिक्त भी अन्य बहुत-सी दिशाओ मे हुआ। १६२५ मे 'भारतीय उतराधिकार अधिनियम' के अन्तर्गत ईसाई तथा पारसी महिलाओं को अपने पति की सम्पति मे अधिकार प्राप्त हुआ। १६२७ में 'भारतीय परिमितता अधिनियम (संशोधित) के अनुसार मृत पति की सम्पति पर विधवा पत्नी का अधिकार वेध माना गया। १६२६ मे 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम' व्यवहारित हुआ, जिसके अनुसार दादा अथवा चाचा अथवा मातुल के बाद पुत्र की पुत्री, पुत्री की पुत्री, बहिन तथा बहिन के पुत्र को सम्पति का उतराधिकारी माना गया। सम्पति सम्बन्धी अधिकारो का विकास १६३३ मे बडौदा राज्य मे पारित अधिनियम द्वारा भी किया गया। इसके अनुसार विधवा को मृत पति की सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया। यदि वह स्वतन्त्र रहना चाहती है, तो उसे पुत्र के समान सम्पत्ति पर अधिकार था अन्यथा वह मृत पति की सम्पति का पुत्र के साथ-साथ रहकर भी उपभोग कर सकती थी। १२००० रु० तक की सम्पति पर विधवा के पूर्ण अधिकार का मान्यता प्रदान की गई[२]। इसके उपरान्त १६३७ में 'हिन्दू महिला सम्पति अधिकार सम्बन्धी अधिनियम' के अन्तर्गत भी विधवा के सम्पति-अधिकारो की व्याख्या की गई तथा १६४२ मे बम्बई सरकार ने बम्बई प्रदेश मे उपर्युक्त नियम के आलोक में कृषि-सम्बन्धी सम्पत्ति मे भी नारी को अधिकार क्षेत्र प्रदान कर दिया। उपर्युक्त सम्पति सम्बन्धी अधिनियम नारी को अधिक अधिकार देने के क्षेत्र मे दूसरे अधिनियमों से विशिष्ठ हैं। इसके विषय में 'मायने' ने कहा है—

'Mitakshara widow succeed to the coparcenery interest of her husband in the partable property of the joint family and along with his male issue to his separate property and to enable a 'Dayabhaga' widow to succeed along with the male issue in all case.'[३]

१—रेणु चक्रवर्ती : 'वीमन ऑफ इन्डिया,' पृष्ठ ८५।

२—'सोशल रिफार्म एनुअल' १६३८, पृष्ठ ६६-१०२।

३—चन्द्रसेखर ऐय्यर द्वारा 'मायनेज ट्रीटाइज आन द हिन्दू ला एण्ड यूसेज' में पृष्ठ ६०३ पर उत्कथित।

नारी द्वारा सम्पत्ति अधिकार प्राप्त करने के क्षेत्र मे सबसे महत्वपूर्ण और अन्तिम अधिनियम 'हिन्दू कोड बिल' के अन्तर्गत १७ जून १९५६ को पारित 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम' है। इस अधिनियम का उद्देश्य कन्याओं को उत्तराधिकार मे सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार देना तथा इस सम्बन्ध मे स्त्री-पुरुष का भेदभाव हटा कर, प्रेम और स्नेह के आधार पर सम्पत्ति के उत्तराधिकारियो का क्रम तैयार करना है[1]। इस के अनुसार हिन्दू महिला द्वारा अधिकृत प्रत्येक प्रकार की सम्पति को दान में देने, बेचने अथवा उसे आगे उत्तराधिकार के रूप मे देने का अधिकार केवल उसी का है। हाँ, पुत्र की विधवा पत्नी, पोते की विधवा पत्नी तथा भाई की विधवा पत्नी ने यदि उत्तराधिकारी की घोषणा के समय या उससे पूर्व पुनर्विवाह कर लिया हो तो वे उतराधिकार के अधिकारी नही रह जाते। इस अधिनियम के अन्तर्गत नारी को सम्पत्ति सम्बन्धी वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो कि पुरुष को। और इस प्रकार से इस अधिनियम द्वारा नारी वर्ग के सम्पत्ति अधिकार सम्बन्धी-दीर्घकाल से उपेक्षित इस पक्ष को प्रबल समर्थन प्रदान किया गया है।

(ई) वेश्यावृत्ति निवारण सम्बन्धी

वेश्यावृत्ति निवारण सम्बन्धी प्रयास जैसा कि द्वितीय अध्याय मे कहा जा चुका है, १९वी शती के सुधारको द्वारा नही के बराबर किया गया। परन्तु २०वी शती मे इस वृत्ति के भयानक दुष्परिणामो की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ और महिलाओं को अनैतिक आचरण से मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से भिन्न-भिन्न राज्यो में समय-समय पर इस वृत्ति से सम्बन्धित कानून लागू हुए। इस दिशा मे सर्व-प्रथम प्रयास बम्बई सरकार द्वारा 'बम्बई वेश्यावृत्ति निरोधक कानून' (१९२३) लागू करके किया गया। इसके उपरान्त मद्रास (१९३०), उत्तर प्रदेश (१९३३), बगाल (१९३३), जम्बू काश्मीर (१९३४), पंजाब (१९३५), मैसूर (१९३६), बिहार (१९३८), पटियाला (१९४८), त्रावणकोर-कोचीन (१९५२), सौराष्ट्र (१९५२), हैदराबाद (१९५२), मध्य-प्रदेश (१९५३) तथा अजमेर (१९५३) मे भी अनैतिक व्यापार निरोध कानून लागू किए गए। इन कानूनो को प्रचलित करके वेश्यावृत्ति पर आयु सीमा का बन्धन लगा दिया गया। भिन्न-भिन्न राज्यो मे यह आयु-सीमा अलग अलग रखी गई। उपर्युक्त अधिनियमों के अतिरिक्त भी कुछ विशेष प्रकार के कानून लागू किए गये। जिनमे बम्बई का देवदासी कानून (१९३४) तथा मद्रास का देवदासी कानून (१९४७) प्रमुख हैं। इन अधिनियमों के अनुसार इन राज्यो में बालिकाओं के कौमार्य को देवार्पित करके देवदासी बनाने की प्रथा अवैधानिक घोषित की गई। मद्रास मे १९४० मे अनैतिक व्यापार निरोधक सम्बन्धी जो कानून लागू हुआ था वही नियम आन्ध्र मे भी प्रचलित हैं, तथा इसी

१—क्षितीश कुमार विद्यालंकार : बसन्त लाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ २१३।

आशय का बगाल का १६३३ मे पारित अधिनियम दिल्ली में। इससे पूर्व १६२६ मे उत्तर-प्रदेश मे 'यू० पी० नामक बालिका कानून' पारित हुआ था जिसके अनुसार १८ वर्ष की अवस्था से पूर्व कोई भी बालिका वेश्यावृत्ति नही अपना सकती है। इसी वर्ष 'उत्तर-प्रदेश अल्प-वयस्क बालिका रक्षा कानून' भी पारित किया गया, जिसमे अल्प वयस्क बालिका को वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए विवश करने वाले व्यक्ति को कठोर रूप से दण्डित करने की व्यवस्था की गई है।

सम्बन्धित महिलाओं को वेश्यावृत्ति और अनैतिक व्यापार सम्बन्धी विभ्रष्ट चारित्रिक व्यवसायो से बचाने की दिशा मे केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्मित 'केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड' का प्रयास विशेष उल्लेखनीय है। इस बोर्ड द्वारा २४ दिसम्बर, १६५४ को श्रीमती धन्वन्ती रामा राव की अध्यक्षता मे 'सामाजिक और नैतिक स्वास्थ्य परामर्श समिति' स्थापित की गई। इस समति द्वारा ३० सितम्बर १६५५ को प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमे अन्य बातो के अतिरिक्त वेश्यावृत्ति तथा बालिकाओ के अनैतिक व्यापार का भी उल्लेख किया गया। इस समिति की सिफारिस के ही परिणाम स्वरूप १६५६ मे भारतीय लोक सभा ने 'महिला तथा बालिकाओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम' पारित किया। इसके साथ ही वेश्यालयो को अवैधानिक घोषित करने सम्बन्धी कानून भी लागू किया गया। भारतीय दण्ड विधान (धारा ३६६, ३६६ अ, ३६६ ब, ३६२, ३७३, तथा ३७६) के अन्तर्गत बालिका से यौन-सम्बन्ध स्थापित करने, उसे वेश्यावृत्ति कराने तथा अपहरण करने या कराने सम्बन्धी आयु-सीमा तथा परिस्थितियों का स्पष्टीकरण भी किया गया है। इस प्रकार से १६वी शताब्दी तक वेश्यावृत्ति सम्बन्धी जो उच्छटखलता व्याप्त थी उसे व्यवस्थित, परिसीमित एव विनष्ट करने के लिए २०वी शती मे उपर्युक्त सुधारो की प्रतिष्ठा की गई।

खण्ड—२

सर्वतोन्मुखी विकास

(अ) राष्ट्रीय जागृति

२०वी शताब्दी में भारतीय नारी मे राष्ट्रीय भावना का विकास उसको उच्चतर सामाजिक प्रतिष्ठा एवं उपलब्धि देने मे सहायक हुआ। इस शती के दूसरे दशक से ही उसमे राष्ट्रीय एवं राजनैतिक जागरण के परमाणु स्पष्ट दीखने लगे थे। उन्नीसवी शती की नारी को २०वी शती की नारी से इस भावना के विकास के परिणाम स्वरूप ही पृथक किया जा सकता है। जिस प्रकार से भारतीय समाज मे राष्ट्रीय चेतना और राजनैतिक जागृति की पृष्ठभूमि मे मिस्टर ह्यूम का योगदान महत्त्वपूर्ण है, उसी प्रकार भारतीय नारी समाज में भी विदेशी अंग्रेज़ महिला द्वारा ही राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित हुई। श्रीमती एनी बीसेट ने १६१४ मे भारतीय महिलाओ का ध्यान इस नवीन क्षेत्र की ओर आकर्षित किया, और फलस्वरूप वे भी स्वतन्त्रता प्राप्ति की दिशा मे पुरुष समाज से सहकार कर, राष्ट्रीय कार्य-क्षेत्र मे अग्रसर हुई।

अपने राष्ट्रीय प्रेम तथा स्वतन्त्रता प्रियता के कारण ही श्रीमती एनी बीसेंट को १६१७ में भारतीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन की प्रथम महिला अध्यक्षा बनने का गौरव प्राप्त हुआ। इसी अधिवेशन में श्रीमती सरोजनी नायडू, बेगम अस्मन बीबी तथा श्रीमती शौक़त अली को भी सामाजिक जीवन मे आकर भारतीय महिलाओ का प्रतिनिधित्व करने का अवसर प्राप्त हुआ था। इसी वर्ष श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा अन्य चौदह प्रमुख महिलाएँ शिक्षा, मातृ-सेवा तथा महिलाओं के मताधिकार के प्रश्न को लेकर श्री मान्टेग्यू से मद्रास मे मिली थीं तथा उपर्युक्त विषयो पर वैधानिक रूप से नारी को अधिकार क्षेत्र प्रदान करने की बात पर विशेष बल दिया था। इसी मताधिकार के प्रश्न को लेकर सरोजिनी नायडू, एनी बीसेंट तथा हीरा बाई टाटा ने १६१६ में संयुक्त संसदीय समिति के सन्मुख महिलाओं के मताधिकार के प्रश्न को प्रस्तुत किया परन्तु १६१६ के अधिनियम में महिलाओं को उक्त अधिकार प्रदान नहीं किया गया। तब बम्बई में महिलाओं की

एक सभा आयोजित की गई तथा उनको मताधिकार न देने के निर्णय का विरोध किया गया। इस समय तक सरोजिनी नायडू भारतीय राजनीति मे अपना विशिष्ठ स्थान बना चुकी थी। १९२१-२२ मे जब गाँधी जी ने असहयोग का शखनाद किया, तब भारतीय महिला मे पहली बार सम्मिलित रूप से राष्ट्रीय हित-कार्य मे भाग लिया और कारावास की यातनाएँ सही। राष्ट्रीय जागृति मे भाग लेने वाली इन राष्ट्र-सेवी महिलाओ ने मद्य-निषेध के लिए दूकानो पर धरना दिया, विदेशी वस्तुओ का वहिष्कार किया एवं सहयोगी के प्रचार मे विशेष सहयोग दिया। इस दिशा मे गान्धी जी प्रथम व्यक्ति और सुधारक थे जिन्होने नारी शक्ति का उचित उपयोग कर उन्हे राष्ट्रीय हितो एव राष्ट्रीय सेवाओ के लिए उन्मुख किया। महिलाओ द्वारा १९१७ मे मताधिकार प्राप्त करने के लिए किया गया प्रयत्न १९२१ मे फलीभूत हुआ और बम्बई तथा मद्रास मे नारी को मताधिकार की प्राप्ति हुई। इसके उपरान्त दूसरे देशो ने भी नारी को मताधिकार की मान्यता प्रदान की। फलत: १९२३ मे उत्तर-प्रदेश तथा केन्द्रीय व्यवस्था मे नारी को मताधिकार प्राप्त हुआ। १९२५ मे बगाल, १९२६ मे पंजाब, १९२७ मे मध्य-प्रदेश, तथा १९२८ मे बिहार राज्य मे भी महिलाओ को मताधिकार प्रदान किया गया।

१९२७ में एनी बीसेंट ने सर तेज बहादुर सप्रू के साथ नारी को सामाजिक मान्यता दिलाने के उद्देश्य से 'कामनवेल्थ ऑफ इन्डिया बिल' का स्वरूप निर्धारित किया, तथा इस पर चर्चा करने के लिए 'भारतीय महिला परिषद' ने अपना एक प्रतिनिधि भेजा जो पुरुष के समान नारी के अधिकारों एव कर्तव्यो का पक्ष समर्थन कर सके[1]। इस प्रकार राष्ट्रीय जागृति के साथ-साथ वह सामाजिक मान्यता प्राप्त करने की दिशा मे विशेष प्रयत्नशील रही। १९२८ मे पहली बार भारतीय महिला श्रीमती सरोजिनी नायडू को भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस के वार्षिक अधिवेशन मे अध्यक्षा पद ग्रहण करने का गौरव प्राप्त हुआ। इस समय तक महिला-समाज मे राजनीति के प्रति एक आकर्षण-भावना का विकास हो चला था और पूर्ण उत्साह से उसमें भाग लेने लगी थी। १९२८ मे अखिल भारतीय राजनैतिक स्वतन्त्रता मे भाग लेने सम्बन्धी विषय पर विचार-विमर्श किया गया तथा १९२९ की प्रथम गोलमेज सभा में 'महिलाओं की भारतीय परिषद' की प्रतिनिधि बेगम शाहनवाज तथा श्रीमती सुब्बरमन ने निर्वाचनो में अधिक-से-अधिक महिलाओ को मताधिकार देने सम्बन्धी मन्तव्य का समर्थन किया तथा यह सुझाव दिया कि उन विधवाओ को जो अपने मृत पति की सम्पति की अधिकारणी हैं, मताधिकार प्रदान किया जाये[2]। इसी समय १९२९-३० मे भारत में अवज्ञा-आन्दोलन के आरम्भ हो जाने पर भारतीय नारी

१—फ्रैंक मोरिस : वीमन ऑफ इन्डिया, पृष्ठ ९५।
२—वही, पृष्ठ ९६।

ने पुरुषो के साथ साथ इसमे भाग लेकर इसे बल प्रदान किया। १९३० मे विदेशी वस्तुओं के वहिष्कार सम्बन्धी आन्दोलन मे अकेले महिला अपराधिनियो की सख्या १७००० थी[1]। इसी वर्ष सरोजिनी नायडू ने नमक सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व कर महिलाओ मे नेतृत्व भावना का विकास किया। नारी को राजनैतिक कार्यों सम्बन्धी प्रशिक्षण देने के लिए १९३१ मे 'सेवा दल शिविर' की स्थापना की गई। इसी वर्ष महिलाओ को केन्द्रीय सरकार के निर्वाचनो मे खडे होने का अधिकार भी प्राप्त हो गया। सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलनो की शक्ति क्षीण करने तथा विकास शील राष्ट्रीय भावना को हतोत्साहित करने मे विदेशी सरकार ने महिलाओ पर भी अमानुषिक अत्याचार किए। १९३२ मे जवाहर लाल नेहरू की माता तथा पत्नी को सरकारी यन्त्रणा का भागी होना पडा, जिसके परिणाम स्वरूप महिला-समाज मे विदेशी सरकार के प्रति एक प्रतिशोधात्मक भावना व्याप्त हो गई, और वे और भी अधिक सक्रियतापूर्वक आन्दोलनो मे भाग लेकर राष्ट्रीय सगठन को दृढ से दृढतर बनाने लगी। नारी के निरन्तर प्रयास एव अविचलित उत्साह के परिणाम स्वरूप १९३५ मे नए अधिनियम मे उसके मताधिकार की व्याख्या की गई तथा उसको पुरुष के समान राजनैतिक अधिकार प्रदान किए जाने की दिशा मे सफल प्रयत्न किए गये। इसी के परिणाम स्वरूप १९३६ ने निर्वाचनो मे श्रीमती अनुसूया बाई तथा श्रीमती सिपाई मालानी क्रमश नागपुर तथा सिंध-प्रदेश से निर्वाचित हुई और इस प्रकार से उनको भी राष्ट्रीय स्तर पर महिला-समाज का प्रतिनिधि बनने का अवसर प्राप्त हुआ। इसी वर्ष श्रीमती रुक्मणि लक्ष्मीपति मद्रास मत्रि-मण्डल की मत्राणी बनी तथा १९३७ मे श्रीमती ज्योति वेकटचलम को राजगोपालाचारी के मन्त्रि-मण्डल मे स्थान प्राप्त हुआ।

१९४२ मे 'भारत छोडो' आन्दोलन मे भारतीय महिला ने गाँधी जी के नेतृत्व मे जिस कर्म परायणता का परिचय दिया, वह वास्तव मे सराहनीय है। गाँधी जी का अहिंसा आन्दोलन बहुत अशो मे महिला-प्रवेश के कारण ही सफल हो पाया। अरुणा आसफअली, विजय लक्ष्मी पडित, सरोजिनी नायडू तथा कस्तूरबा आदि प्रभृति कार्य कर्त्रियो एव राष्ट्रीय-सेविकाओ की निरन्तर कार्य-निष्ठा का ही परिणाम था कि यह आन्दोलन इतना सफल हो सका। इसी आन्दोलन के परिणाम स्वरूप दन्डित माँ कस्तूरबा का १९४४ मे देहावसान हो गया, जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन में और भी तीव्रता आ गई। इस वर्ष कमला देवी तथा विजय लक्ष्मी पंडित ने अमेरिका का भ्रमण किया, तथा वहाँ से लौटने पर भारतीय नारियो में राष्ट्रीय भावना का प्रचार किया। पुरुष वर्ग के साथ-साथ नारी समाज के अथक परिश्रम और प्रयासो से १९४७ मे भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई, और जब १९५०

१—'वीमन ऑफ इन्डिया,' पृष्ठ २५।

मे स्वतन्त्र भारत का सविधान कार्यान्वित किया गया तो उसमे पुरुष और स्त्री के बीच बिना किसी भेद-भाव के सभी को समान स्तर पर सामाजिक, राष्ट्रीय एव राजनैतिक जीवन की स्वीकृति मिली। १९५२ और १९५७ मे हुए निर्वाचनो मे महिलाओं ने भी भाग लिया और विजयी हुई। आज प्रान्तीय विधान सभाओ, लोक-सभा तथा राज्य-परिषद सभी स्थानो मे महिलाओ को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। १९५८ मे इन्दिरा गाँधी द्वारा 'भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस' की अध्यक्षता प्राप्त कर लेने के परिणाम स्वरूप राजनैतिक क्षेत्र तथा राष्ट्रीय वातावरण मे भारतीय महिला और भी गौरवान्वित हो गई हैं।

(आ) सामाजिक कुप्रथाओं का विनाश

२०वी शती मे महिला क्षेत्र मे राष्ट्रीय भावना के विकास और उसके राज-नीति मे पदार्पण के साथ-साथ १९वी शती मे आरम्भ हुई समाज-सुधार कार्यो की परम्परा भी बनी रही। १९०१ में 'भारतीय सामाजिक परिषद' के पन्द्रहवे अधि-वेशन मे देश मे बहु-विवाह प्रथा के कम होने तथा विवाह आयु बढने पर सतोष प्रकट किया गया। अगले वर्ष १९०२ मे उक्त परिषद द्वारा विवाह के अवसर पर होने वाले अपव्यय का विरोध किया गया। १९०९ मे लाहौर मे हुए २३वे अधिवेशन मे उक्त परिषद ने पुर्नविवाह-आन्दोलन को पुनर्जीवित करने सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किया जिसकी पुनरावृति १९१९ मे भी की गई[1]। १९२४ मे बाल-विवाह तथा बहु-विवाह के विरुद्ध कार्यवाही करने सम्बन्धी बात केन्द्रीय विधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत की गई। इसके उपरान्त १९३१ मे भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस ने कराँची अधिवेशन मे महिलाओ को सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रो मे समान अधिकार देने के विचार की घोषणा की[2]। हिन्दू-जाति मे प्रचलित पर्दा-प्रथा के विरोध मे भी इस काल मे प्रदर्शन किए गये। १९४१ मे 'महिलाओ की पर्दा विरोधी परिषद' के वार्षिक अधिवेशन मे लगभग ५००० मारवाडी महिलाओ ने कलकत्ता की सडको पर पर्दा विरोधी नारे लगाते हुए एक बडा जुलूस निकाला। महिलाओ को उच्चत्तर समान सम्मानित जीवन प्रदान करने के उद्देश्य से १९५५ मे 'केन्द्रीय समाज कल्याण केन्द्र' ने वेश्याओ के जीवन, उनकी परिस्थितियो एव समस्याओ का अध्ययन करने के उद्देश्य से एक समिति का निर्माण किया तथा उसके द्वारा दिए गये सुझावो के अनुरूप इस दीर्घकालीन अस्वस्थ एवं कलकित वर्ग को स्वस्थ दिशा देने का प्रयास किया।

(इ) शिक्षा-प्रचार

महिला समाज की उपलब्धियो के प्रसग में बीसवी शती मे शिक्षा क्षेत्र मे

१—चन्द्रकला हाटे : 'हिन्दू वीमन एण्ड हर फ्यूचर,' पृष्ठ २७१।

२—मारगेरेट इ० कज़िन्स : 'इण्डियन वीमनहुड टु डे,' पृष्ठ १७६।

हुए विकास क्रम का अवलोकन भी महत्वपूर्ण है। इस शताब्दी मे सबसे पूर्व १६०४ मे लार्ड कर्जन ने नारी-शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया तथा शिक्षा-प्रचार के लिए बहुत से सुझाव भी प्रस्तुत किए। १६०७ मे नारी-शिक्षा के प्रबल समर्थक तथा महिला सुधार-क्षेत्र के अग्रगण्य नेता महर्षि कर्वे ने महिला-महाविद्यालय की स्थापना की। उन्ही के द्वारा १६१७ मे बम्बई मे एस. एन डी. टी. विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। १६१६ मे इस सस्था से प्रथम छात्रा को स्नातिका की उपाधि मिली। १६१६ तथा १६२३ के मध्य बहुत से अन्य विश्वविद्यालयो एव महाविद्यालयो की स्थापना की गई, जिनमे छात्रो के समान छात्राओ को भी विद्याध्ययन का समान अवसर प्राप्त हुआ। महिलाओ को गृह-विज्ञान की शिक्षा देने के उद्देश्य से १६३२ के नवम्बर माह मे 'लेडी इरविन होम साइस कालेज' की स्थापना हुई। महिला-शिक्षा क्षेत्र मे अधिक उन्नति १६३७ मे कांग्रेस के मन्त्रि-मण्डल बनने के समय से हुई। बालिकाओ तथा महिलाओं को शिक्षा देने के साथ-साथ इस वर्ष प्रौढ महिला वर्ग मे भी शिक्षा प्रचार की चर्चा की गई। १६५३ में उच्चत्तर शिक्षा आयोग की नियुक्ति हुई जिसमे नारी-शिक्षा के विषय मे भिन्न-भिन्न मत प्रकट किए गए। एक वर्ग नारी को केवल ऐसी शिक्षा देने के पक्ष मे था जो गृह-कार्य सचालन मे योग दे सके जब कि दूसरा वर्ग सार्वजनिक जीवन मे भी नारी की उपयोगिता तथा आवश्यकता अनुभव कर, उसे पुरुष के समान शिक्षा देने के पक्ष में था[१]। इसके उपरान्त १६५६ मे 'केन्द्रीय उपदेष्ट्री समिति' के अभिस्ताव पर केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने राजकीय सरकारो को ग्राम्य-क्षेत्रो मे महिला-शिक्षा प्रचार के लिए प्रयत्न करने की प्रार्थना को तथा इस विषय पर भी सुझाव प्रकट किए गये कि किस प्रकार नारी समाज को शिक्षण-क्षेत्र की ओर अधिकाधिक आकर्षित किया जाये।

(ई) सार्वजनिक प्रगति

आधुनिक भारतीय महिला समाज ने उपर्युक्त उपलब्धियो के साथ-साथ आज के सार्वजनिक जीवन मे भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। रगमच, सगीत, नृत्य, चित्रकला, साहित्य, खेल, सामाजिक सेवाएँ, व्यापार तथा राजकीय सेवाओं आदि सभी क्षेत्रो मे उसे अपनी प्रतिभा-प्रदर्शन का अवसर मिला है। जीवन का कोई भी अग आज उसके स्पर्श से शून्य नही है। सभी क्षेत्रो मे प्रवेश कर, तथा अपनी कुशलता का परिचय देकर उसने यह सिद्ध कर दिया है कि नारी किसी भी क्षेत्र मे

१—Muriel Wasi—'They urge that women should be given precisely the same education as men, so that they may compete with men on equal terms at schools and colleges, as in the profesions and services of the country.' 'Women of India,' Page 158.

पुरुष समाज से हीन नही है। अपने युग-युगो से अभिशप्त व्यक्तित्व को अपने परिश्रम, प्रतिभा एव योग्यता की आभा से उसने इतना देदीप्यमान कर लिया है कि जिसका आलोक भविष्य में सदैव ही उसका पथ प्रशस्त करता रहेगा। उसने कभी भी विशेषाधिकारो की माँग नही की। सदैव ही समान अवसर एव अधिकार प्राप्त करने के लिए वह प्रयत्नशील रही। अब स्वतन्त्र भारत के सविधान मे प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अपनी जीविका उपार्जन की समान स्वतन्त्रता है एव समान कार्य के लिए समान वेतन का विधान है। यह विधान मात्र सैद्धान्तिक नही है अपित इसको व्यावहारिक भावभूमि पर भी सफलता के साथ प्रयुक्त किया जा चुका है।

आदिम जातियों में नारी

नागरी वातावरण मे जीवन व्यतीत करने वाले महिला समाज की भाँति आदिम जातियो का महिला समाज भी इस प्रसग मे उल्लेखनीय है। नागरिक महिला की भाँति आदिम महिला के मन मे भी स्नेह, ममत्व, आकांक्षा, भय, और ईर्ष्या जैसी भावनाएँ होती हैं। उसके हृदय मे भी पति के प्रति असीम निष्ठा तथा गृहस्थी सचालन के प्रति पूर्ण कर्तव्य परायणता पाई जाती है। किन्तु इतनी समानता होते हुए भी वह नागरी महिला से बहुत-सी बातो मे भिन्न है।

आदिम पुरुषो की भाँति निपट अशिक्षिता होने के कारण उसका बौद्धिक विकास उन दिशाओ मे नही हो पाता, जो उच्चतर सामाजिक जीवन की प्राप्ति के लिए पथ-प्रशस्त करती हैं। परन्तु घर की चहारदीवारी के भीतर उसका पूर्ण अधिकार होता है। वह सही अर्थो मे गृह-स्वामिनी होती है। अपनी बौद्धिक योग्यताओं-अयोग्यताओ को लेकर वह गृहस्थी का सचालन करती है तथा अपनी परम्पराओ के अनुकूल अधिकाधिक सुखी पारिवारिक जीवन की कल्पना मे कार्य-रत रहती है। उसका कार्य-क्षेत्र केवल घर तक ही सीमित नहीं होता वरन् जीविकोपार्जन के लिए वह खेतो मे काम करती है, लकडी और घास काटती है तथा कभी-कभी अपने पति के साथ आखेट में भी भाग लेती है। उसे पुरुष समाज की ओर से सम्मान भावना तथा स्वतन्त्रा मिली होती है। वह पुरुषों से बात-चीत कर सकती है, हँस-बोल सकती है तथा परिहास भी कर सकती है। उन्मुक्त वातावरण मे उसकी परम्पराओ और अपने समाज मे उसे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

असम प्रदेश की आदिमजातियो मे नारी का जीवन बहुत कठोर होता है। वहाँ के पुरुषों के सदैव युद्ध रत रहने के कारण वाह्य तथा आन्तरिक सभी प्रकार के कार्य नारी को ही सम्पन्न करने पडते है। परन्तु इस कठोरता मे भी उसे आनन्द की अनुभूति प्रसन्न बनाए रखती है। इसका जीवन किसी ताल के जल-सा स्थिर न होकर पर्वतीय उपत्यका के किनारे बहते निर्झर-सा गतिशील सौन्दर्यमय होता है। समाज मे उसकी स्थिति को समान स्वीकृति मिली होती है। विवाह वयस्क होने

पर ही होता है। सम्बन्ध-विच्छेद का भी उसे अधिकार है। जीवन के सभी क्षेत्रों में कार्यशील होने के नाते उसमें साहस की मात्रा भी कम नही है।

असम प्रदेश की भाँति हिमाचल प्रदेश मे भी गद्दी, गुज्जर, हाँगरग, किन्नर, पंगवाल आदि आदिम जातियाँ है जिनकी महिलाओ की भी लगभग उपर्युक्त स्थिति ही है। गद्दी जाति की महिलाएँ निरक्षरा है परन्तु अब वहाँ शिक्षा का प्रचार होने लगा है[1]। घर का सारा कार्य स्त्री ही करती है जो अपने अधिकार क्षेत्र मे पूर्ण स्वतन्त्र होती है। गुज्जर जाति में शत-प्रतिशत् पुरुष निरक्षर होते हैं। ये अपने गोत्र में विवाह नही करते[2]। बाल-विवाह तथा सम्बन्ध-विच्छेद की प्रथा इनमे प्रचलित है। विवाह मुस्लिम शरियत के अनुसार होता है[3]। हॉगरग जाति मे बहु-पति प्रथा का प्रचलन है। इसका कारण यह है कि ये लोग सयुक्त कुटुम्ब प्रथा पर विश्वास करते हैं। यदि भाई पृथक-पृथक विवाह करे तो 'सब अपनी-अपनी पत्नियो को लेकर मैदान भाग जाएँगे और घर बरबाद हो जाएगा[4]। बहु-पति प्रथा के विपरीत जौनसार बाबर में बहु-पत्नी प्रथा प्रचलित है। हॉगरग मे १९५१ की जनगणना के अनुसार स्त्रियों की सख्या पुरुषों की सख्या से अधिक थी। उस पर बहु-पति प्रथा होने से यह एक विकट समस्या दिखाई पडती है, परन्तु इस प्रथा का सम्बन्ध आर्थिक, नैतिक और सामाजिक परम्पराओ के साथ सम्बद्ध है, अत: इस दिशा मे शीघ्र ही कोई क्रान्ति-कारी परिवर्तन अपेक्षित नही है। इस जाति की स्त्रियाँ प्राय· सभी काम करती है तथा पुरुष निठ्ठले तथा कार्य-भीरु होते हैं। समस्त हाँगरग मे मानसिक दरिद्रता व्याप्त है। बहुधा लोग ५ से अधिक गिनती नही जानते। हाँगरग प्रदेश की भाँति किन्नर जाति की स्त्रियाँ भी बहुत परिश्रमी तथा शक्तिवान् होती हैं। यहाँ भी बहु-पति तथा सम्बन्ध-विच्छेद की प्रथा प्रचलित है। स्त्री का विक्रय सामान्य-सी बात है। सम्बन्ध-विच्छेद के नाम पर धन लेना भी यहाँ पर सामान्य है। किन्नर-प्रदेश मे नारी का स्थान आर्थिक साधन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हुए भी सामाजिक दृष्टि से हीन है। "आदिम जाति सेवक संघ" ने १९५७ मे यहाँ 'ठक्कर बापा किन्नर आश्रम' की स्थापना की है, जिसके द्वारा एक पाठशाला भी सचालित होती है, जिसमे छात्राओं के विद्याध्ययन की भी व्यवस्था है। पंगवाल जाति मे पुरुष के लिए विवाह करना जीवन की प्रमुख साधना है। यहाँ विवाह सम्बन्धी तीन प्रकार प्रचलित हैं। बट्टा, सप्तवार्षिक श्रम-विवाह तथा बलात् हरण-विवाह। 'बट्टा' मे पुरुष पत्नी के बदले में अपनी पुत्री या बहिन देता है। 'सप्तवार्षिक श्रम-विवाह' में विवाहोच्छुक

१—धर्मदेव शास्त्री : हिमाचल प्रदेश की आदिम जातियाँ, पृष्ठ ६।

२—वही, पृष्ठ १४-१५।

३—वही, पृष्ठ १५।

४—वही, पृष्ठ २१।

पुरुष भावी सास ससुर के घर पर सात वर्ष तक परिश्रम करता है, तब उसे पत्नी प्राप्त होती है। बलात् हरण विवाह बहुधा स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम के परिणाम स्वरूप होता है। स्त्री-हरण के समय पुरुष के साथी उसका साथ देते हैं। हरणोपरान्त उसका साथी बकरा और शराब देकर पति सास-ससुर से क्षमा माँगता है, जो उसे मिल जाती है।

इस प्रकार आदिम जाति मे बहु-पति, बहु-पत्नी, बाल-विवाह, स्त्री-विक्रय असमान एव कठोर परिश्रम आदि विषमताएँ व्याप्त हैं परन्तु इस पर भी वहाँ की महिलाएँ प्रसन्न-वदना हैं, स्वस्थ हैं और जीवन के प्रति आशावान् है। 'वेरियर एलपिन' ने उनके विषय में चर्चा करते हुए लिखा है—

'Generally speaking the tribal woman enjoys a high and honourable place in society and goes proudly free about the country side. She can speak her mind and often has considerable influence on village affairs...'

खण्ड—३

समाज-सुधारक

समाज-सुधारकों की यह परम्परा २०वी शती में भी बनी रही। इन सुधारकों में से कतिपय सुधारक तो पिछली शताब्दी से ही सुधार-कार्य-क्षेत्र मे प्रविष्ठ हो गये थे, परन्तु उनके द्वारा २०वी शती मे अधिक योग दिए जाने के कारण उनकी गणना इस युग के सुधारकों में कर ली गई है। श्री देवधर और महर्षि कर्वे इसी श्रेणी के सुधारको मे आते हैं। इस युग के सुधारको का विशेष प्रयास नारी को सामाजिक स्वीकृति दिलाने के साथ-साथ उसे राजनैतिक वातावरण एव स्वतन्त्रता प्रदान करने की दिशा में रहा है। राष्ट्रीय आन्दोलनो के इस युग में उन्होंने राष्ट्रीय क्षेत्र मे भी नारी के सहयोग की आवश्यकता का अनुभव किया, और इसीलिए उनके द्वारा संकीर्ण परम्पराओ एवं अकल्याणकारी प्रथाओ का विरोध तो किया ही गया, साथ ही सार्वजनिक जीवन मे भी नारी को महत्व दिए जाने की बात प्रतिष्ठित की गई और इस दिशा मे उन्हें यथेष्ठ सफलता भी प्राप्त हुई।

जी. के. देवधर (१८७१-१९३५)

भारत सेवक समाज के सस्थापक सदस्यों में श्री देवधर का नाम अग्रगण्य है। इनका विश्वास था कि नारी-सुधार और नारी-जागृति के कार्य को सुधार-सस्थाओं की स्थापना करके ही आगे बढाया जा सकता है क्योकि व्यक्ति की अपेक्षा सस्था अधिक शक्ति-सम्पन्न एवं प्रभावशाली होती है। १९०७-१९०८ में उत्तर-प्रदेश में अकाल पीडितों के सहायतार्थ कार्य करते समय पहली बार उनके मस्तिष्क मे प्रशिक्षित महिलाओं की आवश्यकता विषयक विचार आया था, और उन्होने अनुभव किया था कि भारत को अपनी सर्वतोन्मुखी उन्नति के लिए प्रशिक्षित पुरुषों की भाँति प्रशिक्षित महिलाओं की भी आवश्कता है[1]। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए १९०९ में पूना मे 'सेवा सदन' की स्थापना हुई जिसमे युवा और प्रौढा दोनों प्रकार की महिलाओं को भैषजिक प्रशिक्षण दिया गया तथा उन्हे आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर बनाने के लिए अन्य प्रकार के प्रयत्न किए गये। देवधर का विश्वास था कि नारी-जाति के ह्रास का प्रमुख कारण स्त्री-पुरुष के असमान अधिकारो का होना है इसी असमानता को समाप्त करने के लिए उन्होने समाज-सुधार क्षेत्र मे पदार्पण किया था[2]। मद्रास मे नारी-शिक्षा पर वक्तव्य देते हुए उन्होने कहा था—

I have considerable amount of experience, and as a representative of several institutions intended for the amelioration of the condition of women, I must tell you that women are as intelligent as you are and as capable as you are"[3]

और जब १९३२ में नारी को मताधिकार देने का प्रश्न उठा, तब श्री देवधर ने इसी समानता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

श्रीमती एनी बीसेंट (१८४७ से १९३३)

श्रीमती एनी बीसेंट ने भारतीय नारी की पतनोन्मुख दशा को सुधारने का तथा उसमें शिक्षा-प्रचार करने के क्षेत्र मे जो योग दिया है, वह अविस्मरणीय है। वे रूस की हेलेना पेट्रोवना ब्लेवास्की तथा न्यूयार्क के आलकट साहब द्वारा संस्थापित 'ब्रह्म विद्या समाज' से बहुत प्रभावित हुई तथा इस संस्था की मान्यताओं के प्रचार के लिए १६ नवम्बर १८९३ को भारतवर्ष में आईं। विशुद्ध अंग्रेज महिला होते हुए भी वे भारतवर्ष में हिन्दू संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित होकर कालान्तर में स्वयं को भी हिन्दू मानने लगीं। उस समय भारत में चल रहे राजनैतिक एवं सांस्कृति

—एच. कुंवरू : जी. के. देवधर, पृष्ठ ६३।
—वही, पृष्ठ १२३।
—वही, पृष्ठ १२४।

आन्दोलन की ओर भी उनका ध्यान आकृष्ट हुआ और वे राजनीति के साथ-साथ समाज-सुधार क्षेत्र मे भी कूद पड़ी। तत्कालीन समाज में व्याप्त कुप्रथाओं मे से उन्होने सर्व प्रथम बाल-विवाह-प्रथा का विरोध किया। उनका कहना था कि भारत का भविष्य बाल-विवाह-प्रथा के विनाश पर भी निर्भर करता है। आज समाज मे जो क्षीण-शक्ति, संक्रामक रोग तथा शीघ्र मृत्यु आदि विषमताएँ व्याप्त हैं, उनका एक मात्र कारण बाल-विवाह की प्रथा का प्रचलन है और यही प्रथा हमारे राष्ट्र को ससार के दूसरे शक्तिशाली राष्ट्रो के मध्य महत्व का स्थान ग्रहण करने की दिशा मे बाधक बन रही है[1]। इस प्रथा को नष्ट करने के लिए उनका सुझाव था कि शिक्षा-क्षेत्र मे विवाहित बच्चो का प्रवेश निषिद्ध होना चाहिए, तथा बालको को इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि वे बाल्यावस्था में विवाह नही करेगे। साथ-ही-साथ वैधानिक रीति से भी इस कुप्रथा के विनाश का प्रयत्न करना चाहिए। वे बाल-विधवाओ के पुनर्विवाह की समर्थक थी। पूर्ण वयस्क विधवाओ के विषय मे उनका कहना था कि उन्हे पुनर्विवाह की अनुज्ञा प्रदान करने से वैवाहिक धर्म की वह पवित्रता नष्ट हो जाती है जो हिन्दू धर्म का महान् गौरव है।[2]

श्रीमती एनी बीसेंट ने नारी-शिक्षा पर महत्वपूर्ण विचार प्रकट किए हैं। वे राष्ट्रीय विचारधारा की भाव-भूमि पर महिला-शिक्षा पद्धति का बौद्धिक प्रासाद निर्माण करना चाहती थी। उनको पुस्तक 'For India's uplift' के पृष्ठ ६८ पर उन्होने लिखा है—

'The National movement for girls education must be on national lines, it must accept the general Hindu conceptions of women's place in the national life, not the dwarfed modern view, but the ancient ideal. It must see in the women, the mother and the wife, or, as in some cases, the learned and poise ascetic, the Brahmavadini of older days.'

उन्होंने महिलाओं को धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा देने का प्रबल समर्थन किया। साथ ही योग्य साहित्यिक, वैज्ञानिक, कलात्मक एव शारीरिक शिक्षा भी उनके लिए आवश्यक बतलाई गई। उन्होने इस बात पर भी बल दिया कि भारतीय नारी को अधिक विस्तृत अधिकार क्षेत्र की प्राप्ति होनी चाहिए। भारतवर्ष उस समय तक महानता के शीर्ष पर आसीन नही हो सकता जब तक इस देश की महिलाओ को विस्तृत स्वतंत्र एव पूर्ण जीवन की प्राप्ति नही हो जाती, क्योकि भारत की मुक्ति

१—एनी बीसेट : 'वेक अप इन्डिया,' पृष्ठ ५०।

२—एनी बीसेट, बिल्डर ऑफ न्यू इन्डिया, पृष्ठ ४२४।

अहिलाओं के ही अधिकार मे है[1]। नारी को सामाजिक स्वतन्त्रता प्रदान करने का पक्ष समर्थन करते हुए उन्होने कहा है—

> This shuttering up of women is unworthy of civilization. Indian men do not deserve to be free politically, until they give freedom specially to Indian women.[2]

धोंडू केशव कर्वे (१८५८)

महाराष्ट्र के समाज सुधार क्षेत्र मे महर्षि कर्वे का योगदान विशिष्ठ है। आप २०वी शताब्दी के विशुद्ध समाज सुधारक थे। यह प्रथम सुधारक थे जो स्वय आयोजित सुधारको को स्वय भी मान कर चले। १८६२ मे अपनी पत्नी के देहावसान के पश्चात् यह जानते हुए भी कि सकीर्ण मनोवृति से पूर्ण कट्टर वैष्णवो द्वारा इसका विरोध होगा, आपने विधवा से ही विवाह किया। उनके इस दुस्साहस पर कुपित सजातीय सम्बन्धियो ने उनको अपने समाज से बहिष्कृत कर दिया, परन्तु दृढ कर्वे इससे अप्रभावित ही रहे। इसी वर्ष उन्होने विधवाओ को आश्रय देने तथा अनाथ बालक-बालिकाओ के भरण-पोषण के उद्देश्य से 'पुनर्विवाह परिषद' की पुनर्स्थापना की, जिसमे विधवा महिलाओ को औद्योगिक शिक्षा देकर आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर बनाने का प्रयास किया गया। महर्षि कर्वे की यह मान्यता थी कि महिला क्षेत्र मे शिक्षा का प्रचार किए बिना उनमे किसी भी प्रकार की जागृति या बौद्धिक विकास को आशा नही की जा सकती, अतः उन्होने अपना समस्त जीवन महिला समाज के मध्य शिक्षा-प्रचार करने मे लगा देने का निश्चय किया।

महर्षि कर्वे द्वारा सामाजिक जीवन एक ग्राम्य पाठशाला के अध्यापक के रूप मे आरम्भ किया गया। उस समय वे अपनी आय का कुछ भाग ग्रामीण बालिकाओं की शिक्षा के लिए ग्रामकोष मे दे दिया करते थे। तदूपरान्त 'न्यू इगिलश स्कूल' तथा 'दक्षिण शिक्षा सस्था' मे क्रमश वे प्राध्यापक नियुक्त हुए। वहाँ वे गोपाल कृष्ण गोखले के सहयोगी रहे। १८६६ मे उनके द्वारा 'विधवा आश्रम' की स्थापना की गई। इस आश्रम की विधवाओं को अच्छी पत्नी, सुयोग्य माताएँ और शालीन पडोसिन[3] बनाने के उद्दृश्य से एक महिला विद्यालय की स्थापना की गई। महर्षि कर्वे कालीन भारत मे विधवाओं के साथ-साथ बालिकाओ को भी शिक्षित करने की समस्या बनी हुई थी। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए १६०७ मे 'महिला विद्यालय' की स्थापना की गई। १६१५ मे जब आप 'भारतीय सामाजिक परिषद' के वार्षिक

१—एनी बीसेट : 'फार इन्डियाज़ अप लिफ्ट' पृष्ठ ७४।

२—वही, पृष्ठ २६६।

३—धोडू केशव कर्वे : आन लैकिंग बैक, पृष्ठ ६७।

अधिवेशन मे सभापति पद पर गौरवान्वित हुए तब आपने महिला-शिक्षा विकास सम्बन्धी अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उनमे शिक्षा के प्रचार का प्रबल समर्थन किया। उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया कि विद्यार्थी को मातृ-भाषा के माध्यम से ही शिक्षा देनी चाहिए तथा महिलाओं मे उनके क्षेत्र-सम्बन्धी शिक्षा का ही प्रचार करना चाहिए। महर्षि कर्वे के इस महान् स्वप्न को विट्ठलदास ठाकरसी ने आर्थिक सहायता प्रदान करके पूर्ण किया और १९१६ मे महिला विश्वविद्यालय की स्थापना हो गई। १९२० में इस विश्व-विद्यालय का प्रधान कार्यालय पूना से बम्बई स्थानान्तरित कर दिया गया।

महिला-क्षेत्र मे शैणिक जागृति उत्पन्न करके उसका विकास करने के उद्देश्य से विवेकानन्द की ब्रह्मवादिनियों की भाँति उन्होने भी १९०८ में 'निष्काम कर्म मठ' की स्थापना की, जिसमे आजन्म समाज सेवी सेविकाओ को प्रशिक्षित किये जाने की व्यवस्था की गई।

इस प्रकार महर्षि कर्वे द्वारा प्रतिपादित सुधार-कार्यो, विशेषतया शैक्षणिक विकास के रूप मे उनके योगदान को ऐतिहासिक वैशिष्ठ्य प्राप्त है। महिला-जागृति के क्षेत्र मे उन्होने उस काल मे ठोस सुधार-कार्यों की योजना की जब कि समाज का नैतिक स्तर परम्परागत मान्यताओ एव विश्वासो की शृखला से आबद्ध था। इस क्षेत्र मे किए गये अपने प्रयत्नों को उन्होंने इस प्रकार उपस्थित किया है—

At twentyeight I took up the work of Murud Fund, which became a very important side activity of mine for several years......

Ten years latter Hindu widows Home Association was established......When I was 48 the ideas of Mahila Vidyalaya and Nishkam Karma Math took possession of me and I enthusiastically took up the corresponding services. It was at the age of 58 that I took a Leaf in the dark to found the 'women's university.'

मोहनदास करमचन्द गाँधी (१८६९-१९४८)

आधुनिक स्वतन्त्र भारतीय राष्ट्र के जनक महात्मा गाँधी २०वीं शती के महान् राजनैतिक, भविष्य-द्रष्टा, शान्तिदूत, महात्मा तथा प्रथम कोटि के विचारक एवं समाज सुधारक थे। विदेशी सत्ता से भारतीय जनता को मुक्ति दिलाने की दिशा में उनकी दूरदर्शी एवं स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा समाज में शन्तिमय वातावरण निर्माण करने के क्षेत्र में उनके सामयिक उपदेश और विश्व-बन्धुत्व का पवित्र नारा तथा भारतीय लोक-जीवन को उच्चतर भावभूमि पर अधीष्ठित करने के उद्देश्य से

अस्पृश्यता-निवारण एव महिला-जागृति को लेकर किए गए उनके सुधार कार्य, उन्हे विश्व के महानतम पुरुषो मे विशिष्ठ स्थान प्रदान करने के लिए यथेष्ठ सामग्री प्रस्तुत करते है।

स्वाधीनता संघर्ष के उस काल मे गाँधी जी का प्रमुख कार्य-क्षेत्र राजनीति ही रहा है। अहिंसा, सत्याग्रह और वहिष्कार की नवीन भाव-भूमि पर लक्ष्य-प्राप्ति के महान् विश्वास का बीजारोपण कर उन्होने राष्ट्रीय कॉंग्रेस मे उस नैतिक बल की प्रतिष्ठा की थी, जिसकी सहायता से बडी सफलतापूर्वक, विदेशी शासको से रक्त की एक बूँद गिराए बिना, अपना अधिकार छीना जा सका था। परन्तु स्वतन्त्रता के उस अधिकार की रक्षा के लिए देश की स्वस्थतर सामाजिक स्थिति भी अनिवार्य थी। महात्मा गाँधी ने अपनी दूरदर्शिता से इस तथ्य को जान लिया था। इसीलिए वे आरम्भ से ही उन्नत सामाजिक जीवन की प्रतिष्ठा के लिए भी कटिवद्ध हो गये थे। तत्कालीन समाज के उपेक्षित अग—अस्पृश्य जाति एव नारी पर उनकी दृष्टि केन्द्रित हुई, और परिणामस्वरूप उनके द्वारा इन्ही दो दिशाओ मे विशेष सुधार कार्य किए गये।

महिला क्षेत्र मे सुधार की प्रेरणा उन्हे १९०९ मे अपने इग्लेड आवास काल मे श्रीमती पकहर्स्ट तथा श्रीमती डेसपार्ड से मिली। उस समय वहाँ चल रहे नारी-आन्दोलन मे उपर्युक्त महिलाएँ नेतृत्व कर रही थी। गाँधी जी अपने देश मे भी नारी-जागृति के इस स्वप्न को साकार करना चाहते थे। परन्तु अपने देश मे जागृति लाने से पूर्व महती आवश्यकता इस बात की थी कि सामाजिक कुप्रथाओ को, जिन्होने नारी की वैयक्तिकता को विभ्रष्ट और निष्प्राण बना डाला था नष्ट किया जाये। इसीलिए गाँधी की ने भी पूर्व सुधारको की भाँति ही सती-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह और पर्दा-प्रथा आदि समस्याओ पर व्याख्यान देकर तथा लेख लिखकर उनके उन्मूलन के लिए सामाजिक चेतना को प्रस्फुटित एव विकसित करने की सफल चेष्टा की।

(अ) सती-प्रथा

गाँधी जी का विश्वास था कि अपने शरीर की आहुति दे देने से पति के प्रति अपनी कर्त्तव्य-परायणता की पूर्ति नही हो जाती। इसके लिए जीवित रह कर अपने पति के आदर्शों और गुणो के स्थापन कार्य मे अपने जीवन को उत्सर्ग करना होता है, जिससे उसकी (पति की) आत्मा को अमरता प्राप्त हो सके[1]। गाँधी जी ने सती भाव की कभी-भी उपेक्षा नही की। परन्तु सती भाव मे निहित पवित्रता, उनका कहना था, कभी-भी जीवनोत्सर्ग करके प्राप्त नहीं की जा सकती। उसके लिए जीवित होता है तथा जीतित रहकर निरन्तर सघर्ष करते हुए दिन प्रतिदिन आत्मा को

१—म० क० गाँधी . यँग इण्डिया, दिनाँक २१-५-१९३१।

पवित्र से पवित्रतर बनाने की चेष्ठा करनी होती है[1]। वास्तविक अर्थो मे विवाह का का उद्देश्य शारीरिक एकता के माध्यम से आत्मिक एकता को प्राप्त करना होता है। प्रचलित सती-प्रथा की पृष्ठ-भूमि मे युगीन अधविश्वास तथा पुरुष का अह भाव ही प्रमुख कारण थे। भले ही उस काल मे सती-प्रथा का यह स्वरूप आत्म-रक्षा के विचार से नैतिकता सम्मत रहा हो, परन्तु आज के युग मे इस प्रकार प्राणो की आहुति दे देने के लिए विवश करना सभ्य समाज की घोर बर्बरता का परिचायक है।

(आ) बाल-विवाह

गाँधी जी बाल-विवाह के विरोधी थे। उनके अनुसार यह प्रथा नैतिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार से दूषित थी। क्योकि इससे हमारी नैतिकता का पतन तथा शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है। बालिका के लिए उन्होने सामान्यत. विवाह योग्य आयु १८ वर्ष मानी है[2]। बालिका पत्नियो के विषय मे एक बार खेद प्रकट करते हुए उन्होने कहा था :—'मुझे दु ख है कि लाखो अल्प-वयस्क बालिकाओ के विवाह होते हैं और वे पत्नियो की भाँति रहती हैं[3]। वे बाल-विवाह प्रथा को नष्ट करने के लिये युवकों से सहयोग की अपेक्षा करते थे। एक बार युवक समाज मे उन्होने बालिकाओ की विवाह योग्य आयु २० वर्ष निर्धारित की थी। उनका कहना था कि यदि अपनी जाति में २० वर्षीय अविवाहित कन्यायें नही मिलती हैं तो उन्हे किसी बाल-विधवा से विवाह कर लेना चाहिए और यदि वह भी नही मिलती हैं तो किसी भी मनपसन्द महिला से विवाह कर लेने का अधिकार उनको है[4]। इस कुप्रथा का अन्त करने के लिए उन्होने शिक्षित महिलाओं को भी इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया था। उन्हे उस समय तक बाल-पत्नियों एव बाल-विधवाओं के मध्य कार्य करते रहने को कहा गया जब तक इस प्रथा का प्रचलन असम्भव ही न हो जाये, और जब तक प्रत्येक बालिका मे इतना साहस न आ जाए कि वे वयस्क होने से पूर्व स्पष्ट रूप के विवाह करने की अनिच्छा प्रकट कर सकें। गाँधी जी ने यह भी अनुभव किया था कि बाल-विवाह की यह प्रथा नगरों की अपेक्षा प्रान्तो मे अधिक प्रचलित हैं। उन्होने 'भारतीय महिला परिषद' की सदस्याओं को ग्रामीण महिलाओं के मध्य जाकर उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने तथा इस प्रथा को दूर करने का सुझाव दिया था[5]।

गाँधी जी ने नारी को सदैव ही पुरुष की सहयोगिनी के रूप में ग्रहण किया।

१—म० क० गाँधी : यंग इन्डिया, दिनाँक २१-५-१९३१।
२— „ „ „ दिनाँक, २६-८-१९४६।
३— „ „ „ दिनाँक, ९-९-१९२६।
४— „ „ „ दिनाँक, १५-९-१९२७।
५— „ „ हरिजन, दिनाँक, १६-११-१९३५।

वह माता के रूप मे पुरुष से कही उच्चत्तर भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित है, तथा सस्कृति का पोषण करने वाली है। वैवाहिक जीवन उत्तरदायित्व का जीवन है, जिसको सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए परिपक्व विचारो एव सतुलित प्रौढ मस्तिष्क के उपयोग की आवश्यकता होती है। इसीलिए उनके विचार मे विवाह पूर्ण वयस्क होने पर ही सम्पन्न होना चाहिए जिससे वह अपने अधिकार और कर्त्तव्य-क्षेत्रो के प्रति पूर्ण जागरुक रह कर वैवाहिक जीवन की समृद्धि और सुख को पा सके।

(इ) विधवा-विवाह

सती-प्रथा और बाल-विवाह की परम्परा को नष्ट करने के साथ-साथ गाँधी जी का योगदान विधवा-विवाह की स्वीकृति को लेकर भी महत्त्वपूर्ण है। उनका कहना था कि यदि किसी व्यक्ति के सरक्षण मे कोई बाल-विधवा आश्रित है तो यह उस व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह उस बालिका के पुनर्विवाह का प्रयत्न करे[1]। और जिन व्यक्तियो ने अपनी कन्याओ का विवाह अल्पावस्था मे ही कर दिया है वे अपने इस कलक को बाल-विधवा का पुनर्विवाह करके मिटा सकते है[2]। विद्यार्थियो के लिए गाँधी जी का सदेश था कि वे केवल बाल-विधवाओ से ही विवाह करने की दृढ प्रतिज्ञा कर ले। बाल-विधवाओ के अभाव मे वे विवाह ही न करें[3]। गाँधी जी कहते थे कि इस सुधार को सबसे पूर्व जन-वाणी का रूप देकर घर-घर मे इसका प्रचार करना चाहिए। परन्तु इतना होने पर भी वे एनी बीसेंट की भाँति पूर्ण वय प्राप्त होने पर विवाहित तथा तदुपरान्त विधवा हो जाने वाली महिला को पुनर्विवाह का अधिकार नही देते थे। उनका कहना था कि स्वेच्छित वैधव्य हिन्दुत्व का अमूल्य वरदान है तथा बाधित वैधव्य एक कलक[4], क्योकि दिवगत साथी के स्नेह से रिक्त, स्वयं स्वीकृत वैधव्य जीवन मे सम्मान और ज्योति की वृद्धि मे सहायक होता है, जिससे गृह को पवित्रता तथा धर्म को उत्कर्ष का अवकाश मिलता है। परन्तु धर्म या परम्पराओं द्वारा बाधित वैधव्य एक असह्य भार है जो अप्रतिलक्षित कुठाओ से घर को अपवित्र तथा धर्म का ह्रास करता[5] है। वे उन असहाय बालिकाओ को दारुण दुख देने के पक्ष मे नही थे जो पतिव्रत धर्म के नाम से अनभिज्ञ है, प्रेम भावना से जिनका हृदय शून्य है। ऐसी बालिकाओं पर वैधव्य का भार लादना उनके तथा भगवान के प्रति अन्याय है[6]।

१—म० क० गाँधी, : यंग इन्डिया, दिनाँक, ४-२-१९२६।
२— ,, ,, : ,, दिनाँक, १४-१०-१९२६।
३— ,, ,, : ,, दिनाँक, १५-९-१९२७।
४— ,, ,, : हरिजन दिनाँक, २२-६-१९३५।
५— ,, ,, : यंग इन्डिया, दिनाँक, ५-८-१९२६।
६— ,, ,, : ,, दिनाँक, १९-८-१९२६।

(ई) पर्दा

गाँधी जी भारतीय समाज से पर्दा-प्रथा का भी अन्त कर देना चाहते थे। पवित्रता की जिस सुरक्षा के आशय से पर्दा-प्रथा का जन्म हुआ था, गाँधी जी उसे पर्दे के माध्यम से रक्षित होने के विश्वास पर शका करते थे। उनका कहना था कि गृह-सीमाओ मे बद्ध होकर पवित्रता की रक्षा नही की जा सकती। व्यक्ति को व्यक्ति के रूप मे नारी-जाति पर विश्वास करना होगा, तभी पावित्र्य रक्षा की कल्पना की जा सकती है। उनका दृढ विश्वास था कि यदि पर्दा-प्रथा विरोधी आदोलन को सुव्यवस्थित ढग से योजनान्वित किया जाये तो यह हमारे देश के लिए मात्र अतीत की वस्तु रह जाएगी[1]।

(उ) देवदासी एवं वेश्यावृत्ति

गाँधी जी धार्मिक वेश्यावृत्ति को सामाजिक पतन का कारण मानते थे। पुरुष की वासनापूर्ति के लिए किसी भी बहिन का लज्जित एव ग्लानिपूर्ण जीवन बिताना उनकी दृष्टि मे अधर्म था[2]। पुरुष के समान नारी जीवन भी श्रेयस्कर और महत्वपूर्ण है, इसीलिए उसे दूषित कामनाओ की पूर्ति के उद्देश्य से साधन के रूप मे देखना उसे उसके शीर्ष स्थान से नीचे खीच लाना है। वे पहिले समाज सुधारक थे जिसका ध्यान विशेष रूप से वेश्यावृत्ति की ओर आकृष्ट हुआ था। आन्ध्र-प्रदेश मे प्रचलित देवदासी प्रथा के निवारण हेतु एक बार प्रार्थना करते हुए उन्होंने वहाँ के नवयुवको से कहा था—

'I ask you brothers and sisters, to send me an assurance, as early as possible, that there is not a single dancing girl in this part (Andhra) of the land. I charge these sisters who are sitting behind me to go about from place to place, find out any dancing girl and shame the man in shunning the wrong they are doing'[3].

उन्होंने इन नृत्य-बालाओं को देवदासी कहे जाने की बात का भी विरोध किया।

'By calling them Devdasis we insult God himself in the name of religion, and we commit a double crime

---

१—म० क० गाँधी, : यंग इन्डिया, दिनांक, २६-७-१९२८।
२— ,, ,, : ,, दिनांक, ११-५-१९२१।
३— ,, ,, : ,, दिनांक, ११-५-१९२१।

in that we use these listers of ours to serve our lust and take in the same breath the name of God[1].

गाँधी जी कहते थे कि इस दिशा मे किए गये सुधार कार्यों को जन वाणी देकर ही समाज मे प्रतिष्ठित किया जा सकता है। और उसके लिए उन्होने देश के नवयुवको को दिशा-निर्देश दिया।

(ऊ) राजनीति और सार्वजनिक कार्य क्षेत्र

गाँधी जी पहिले व्यक्ति थे, जिन्होने नारी को राजनीति मे भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। राजपूत शासन काल के पश्चात् बीसवी शताब्दी मे पहली बार महिला राजनैतिक क्षेत्र मे अवतीर्ण हुई। गाँधी जी द्वारा सचालित सत्याग्रह, वहिष्कार तथा असहयोग आन्दोलनों मे देश को महिला-वर्ग का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। यह सत्य है कि गाँधी जी पुरुष और नारी के भिन्न-भिन्न कार्य-क्षेत्रो की स्थिति मे विश्वास करते थे और उनका कहना था कि यदि नारी के कधे पर बन्दूक रख दी जाये, तो यह सभ्यता के अन्त का ही आरम्भ होगा। फिर भी महिला वर्ग मे राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव हो, उनमे सार्वजनिक जागृति की भावना को बल मिले, गाँधी जी ने सदैव ही इस बात का समर्थन किया। उनका विश्वास था कि किसी भी क्षेत्र मे नारी का सहयोग प्राप्त करने से कार्य को पवित्र भावना का अधिक बल प्राप्त होता है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के महान् कार्य मे सलग्न नारी-वर्ग के विषय में उन्होने कहा था, 'हमारे सघर्ष के लक्ष्य की पवित्रता को प्रमाणित करने के लिए इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रमाण की आवश्यकता नही है कि लाखो महिलाएँ सक्रिय रूप से इसमे अपनी सेवाएँ अर्पित कर रही हैं[2]। उनका कहना था कि स्वराज्य प्राप्ति के लिए स्त्री-पुरुष दोनों का सहयोग वाँछनीय है तथा शान्तिमय सघर्ष में, सम्भव है, महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त कर सकें। गाँधी जी चाहते थे कि महिलाओ का कार्य-क्षेत्र जीवन का प्रत्येक पक्ष स्पर्श करता हुआ चले क्योंकि भारतीय बालिका केवल वधू बनने के लिए ही उत्पन्न नहीं हुई है, उससे एक पुरुष की अपेक्षा, सर्व-सेवा मे अपना सर्वस्व समर्पित करने की अपेक्षा की जाती है। गाँधी जी का यह भी विश्वास था कि जब नारी किसी भी कार्य को पूर्ण निष्ठा के साथ सम्पादित करती है तो उसमें पर्वतों को भी हिला देने की शक्ति का आविर्भाव हो जाता है। वे कहते थे कि हमने अपने देश की महिलाओ का दुरुपयोग तथा उनकी अवहेलना की है[3]। उन्हे इस बात मे कोई भी शका नही थी कि पुरुषो द्वारा त्याज्य अपूर्ण कार्य को महिलाएँ ही पूर्ण करेंगी[4]। नारी के सार्वजनिक कार्य-

१—म० क० गाँधी, : यग इन्डिया, दिनाँक, २२-२-१९२७।
२— ,, : ,, दिनाँक, ११-८-१९२१।
३— ,, : ,, दिनाँक, २२-१२-१९२१।
४— ,, : ,, दिनाँक, २२-१२-१९२१।

क्षेत्र को इतनी विस्तृत भाव-भूमि प्रदान करते हुए भी गाँधी जी उसके गृह-स्वामिनी होने के स्वरूप को ही प्राथमिकता देते है। सर्व-प्रथम वह गृह-संचालिका है। पुरुष द्वारा अर्जित धन की व्यवस्थापिका तथा विभाजिका है। सुरक्षापूर्ण पारीवारिक जीवन की व्यवस्था उसी के हाथ मे है। जाति या वश उसी की देख-रेख मे विकसित होते हैं। अत सामान्य स्थिति मे स्त्री-पुरुष के कार्य-क्षेत्रों का विभाजन होना ही चाहिए[१]।

(ए) शिक्षा

गाँधी जी मानते थे कि शिक्षा व्यक्ति के मानसिक विकास में सहायक होती है, तथा शिक्षित होकर ही उसमे सही कर्त्तव्य-परायणता की भावना जागृत होती है। स्त्री-पुरुष की शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जो उनके अपने-अपने क्षेत्रो की कर्त्तव्य पूर्ति मे सहायक हो। स्त्री-शिक्षा की योजना बनाते समय, उनका कहना था, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह नारी-कार्य-क्षेत्र मे उसे ज्ञान दे सकने मे समर्थ हो। इसका यह अर्थ नही है कि स्त्री और पुरुष वर्ग मे शिक्षा प्राप्त करने सम्बन्धी कोई सुस्पष्ट रेखा निर्धारित कर दी जाये, परन्तु शिक्षा क्षेत्र मे सुनिश्चित योजना तो कार्यान्वित होनी ही चाहिए जो स्त्री-पुरुष को अपनी-अपनी दिशाओं मे सहयोग प्रदान कर सके। शिक्षा के माध्यम को लेकर उन्होने क्षेत्रीय भाषाओ को ही श्रेष्ठ माना है[२]।

(ऐ) नारी सम्बन्धी सामान्य भावना

गाँधी जी ने सदैव पुरुष और नारी की समानता पर विशेष बल दिया है। मानसिक धरातल पर सहयोगिनी के रूप मे नारी पुरुष के समान ही पूर्ण समर्थ है। साथ ही अपने क्षेत्र में उसे वह वैशिष्ठ्य प्राप्त है, जो पुरुष को अपने क्षेत्र में। और इस प्रकार से नारी और पुरुष दोनो का स्तर समान है[२]। उन्होने कही-कहीं पर पुरुष से नारी की श्रेष्ठता भी सिद्ध की है। वह त्यागमयी, सहनशील तथा मानवीय गुणो से पूर्ण है। विश्वास और ज्ञान का प्रतीक है[३] और इन शक्तियों के साथ उसे दुर्बल कहना उसके प्रति अन्याय है और यदि शक्ति का अर्थ पाशविक शक्ति है तब तो नारी सचमुच ही पुरुष से कम पाशविक है और यदि शक्ति का अर्थ नैतिक शक्ति है तब नारी पुरुष से कही अधिक श्रेष्ठ है[४]। नारी अपने स्वभाव मे त्यागमयी और सहनशीला है, इसीलिए उसे अपने कार्य-कलापों से पवित्र-भावना का निरूमण करना

१— म० क० गाँधी, : हरिजन, दिनांक, २४-२-१९४०।

२—'बम्बई, भगिनी समाज' में दिनांक २०-२-१९१८ को दिए गए भाषण का भावांश।

३—भगिनी समाज, बम्बई के वार्षिकोत्सव पर दिए गये भाषण से उत्कथित दिनांक २० फरवरी, १९१८। (म० क० गाँधी)

४—म० क० गाँधी, : यंग इन्डिया, दिनांक, १५-९-१९२१।

चाहिए और इसीलिए उसे सम्पति अधिकार प्राप्त करने जैसे लौकिक सुख की आॅकाक्षाओ पर विजय प्राप्त करनी चाहिए । इस प्रकार गाँधी जी सम्पति-अधिकार सम्बन्धी क्षेत्र मे नारी को प्रविष्ठ नही कराना चाहते, क्योकि ऐसा करने से उसकी महान् त्याग भावना पर आघात पहुँचता हैं ।

आधुनिक नारी को सामाजिक स्वीकृति दिलाने मे गाँधी जी का योगदान सराहनीय है । उन्होंने नारी के मातृत्व रूप की आराधना की है । माँ के रूप मे ही भारतीय नारी देश की सतति को सदाचारी, धर्म-भीरु, शक्तिशाली एव आत्म-विश्वासी बना सकती है । देश की बालिकाओ को मातृत्व की शिक्षा देना परम आवश्यक है । नारी मे सम्मान भाव की प्रतिष्ठा के लिए उनका कहना था कि सबसे पूर्व सामान्य महिलाओं को उनकी वर्तमान अध पतित स्थिति का ज्ञान कराना होगा । दयनीय सामाजिक जीवन की दु खपूर्ण वास्तविकता उनके सम्मुख प्रस्तुत करनी होगी और उसके उपरान्त उन्हे सामाजिक प्रतिष्ठा एव मान्यता प्राप्त करने की दिशा में प्रयत्न करने होगे

महिला क्षेत्र मे पुरुषो के कर्त्तव्यों का उल्लेख करते हुए उन्होने कहा था कि नारी-सम्मान की रक्षा प्रत्येक पुरुष का धर्म है । नारी को सम्मानपूर्ण स्वीकृति देने के उद्देश्य से हमे उच्चतर सामाजिक जीवन की प्रतिष्ठा करनी चाहिए क्योकि जहाँ शान्ति का वातावरण है, जहाँ सदैव ही अहिंसा की शिक्षा दी जाती है, वहाँ नारी अपने को असहाय, आश्रित और निर्बल नही समझेगी । यदि वह पवित्र है, तो वह कभी भी दयनीय नही होगी । उसकी पवित्रता उसमे शक्ति का सचार करती है । नारी को उसकी इच्छा के विरुद्ध अपवित्र करना असम्भव है[२] । मृत्यु से निर्भीक नारी को कोई भी अपमानित नही कर सकता[३] । इन्ही गुणों के कारण नारी पुरुष समाज के लिए श्रद्धेय है । हाँ, नारी उस दशा मे उपेक्षनीय है जब वह स्वय की इच्छा से अपवित्र और अपमानित होना चाहती हो[४] ।

गाँधी जी ने राष्ट्रीय कल्याण की कल्पना, राजनीति समाज-सुधार एव धर्म निष्ठा की समन्वित भावना मे की थी । अत उनके पुरोगमों मे धार्मिक आस्था का भी विशिष्ठ स्थान था । पूर्ण रूप से नैतिक विश्वासो पर ही उनके सामाजिक सिद्धान्त आधारित होते थे । स्वभाव मे निष्ठावान् और आदर्श-प्रिय होने के नाते वे अतिशय सयमित जीवन के पक्षपाती थे । संयम के द्वारा ही वे महान् लक्ष्यो की सफलता में विश्वास करते थे । परन्तु अर्ध-विकसित सामान्य जनता उनके इस सिद्धान्त को लेकर नही चल सकी । इच्छाओं का दमन कर शान्ति लाभ करने का

१—म० क० गाँधी, : यंग इन्डिया, दिनाँक, १०-४-१९३० ।
२— ,, : हरिजन, दिनाँक, १-९-१९४० ।
३— ,, : ,, दिनाँक, ३-११-१९४६ ।
४— ,, : ,, दिनाँक, १-३-१९४२ ।

सिद्धात समाज मे प्रचलित न हो सका। फिर भी सामाजिक क्षेत्र मे, विशेषतया महिला-वर्ग मे उनके द्वारा प्रतिष्ठित सिद्धात एव मान्यताएँ आधुनिक नारी को दिशा-ज्ञान प्रदान करने मे सहायक हुईं उन्होने सामाजिक सकीर्ण मान्यताओं को दूर करने का प्रयत्न करके जन-जीवन मे उस जागृति का अरुणोदय किया जिसके आलोक मे नारी पहली बार अपने अधिकार क्षेत्र का विस्तार अनुभव कर सकी। गाँधी जी की प्रेरणा एव प्रयत्नों से ही उसे सार्वजनिक जीवन मे स्वीकृति प्राप्त हुई। राष्ट्रीय आन्दोलनो मे सक्रिय सहयोग देकर उसे अपनी योग्यता प्रदर्शित करने क अवसर मिला। उसके अधिकारो की विस्तृत व्याख्या की गई। और सबसे विशेष उसे पुरुष के समकक्ष मान कर उसे महान् पवित्र भावना की रक्षिका माना गया। उसी के द्वारा शान्ति और अहिंसा के भावो को स्वर मिला। गाँधी-युग मे ही नारी बौद्धिक धरातल पर पुरुष के समान समझी गई और उसे विस्तृत कार्य-क्षेत्र के नवीन क्षितिज प्रदान किए गये। यह उनका ही प्रताप था कि नारी पहली बार यह अनुभव कर पाई कि पति की सेवा के अतिरिक्त भी, उसका, राष्ट्र तथा जाति के प्रति भी कोई धर्म है, उसे देशोन्नति तथा राष्ट्रीय भावना के विकास कार्य के लिए भी अग्रसर होना है तथा पारिवारिक सीमाओ मे आबद्ध अपने व्यक्तित्व को स्वतन्त्र बना कर सार्वजनिक क्षेत्रो मे राष्ट्रीय हित के निमित्त अपना समुचित सहयोग प्रदान करना है।

अन्य-सुधारक

राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक स्थिति के विकास क्षेत्र में आधुनिक युग मे बहुत से अन्य सुधारको का योगदान भी उल्लेखनीय है, जिन्होने पूर्व समाज-सेवियो के सुधार-कार्य को बढ़ाने तथा उसे परिपक्व रूप देने मे सहायता प्रदान की। पजाब में जन्मे महात्मा हंसराज (ज० १८६४, मृ० १९३८) इस परम्परा के विशिष्ठ समाज सेवी हैं। अध्यापक के रूप मे जीवनयापन करते हुएं आपने बालिकाओ को शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। पंजाब क्षेत्र मे आपके द्वारा निराश्रित विधवाओ के लिए कई विधवाश्रमो की स्थापना की गई, जिसमे फिरोज़पुर मे स्थापित 'अनाथालय' विशेष उल्लेखनीय है। प्रौढावस्था मे गाँधी-दर्शन से प्रभावित होकर आपका ध्यान अछूतोद्धार तथा विधवा-पुनर्विवाह की ओर आकृष्ट हुआ। आप विधवा-विवाह के समर्थक थे तथा पंजाब मे उनकी प्रेरणा से इस दिशा में यथेष्ट प्रगति हुई। इन्ही की समकालीन श्रीमती अबला बोस (ज० १८६४, मृ० १९५२) ने बगाल में महिला वर्ग के बीच शिक्षा-प्रचार के कार्य मे विशेष रुचि लीं। १९१९ मे इनके द्वारा 'नारी-शिक्षा-समिति' की स्थापना की गई। नारी-शिक्षा के इस प्रचार कार्य मे इन्हे बगाल सरकार ने महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की। इन्होने विधवाओ को आत्म-निर्भर बनाने की दिशा में उन्हे कुटीर उद्योग, शिल्प, कला आदि विषयो की शिक्षा देने की व्यवस्था की। ग्रामीण नारी-स्थिति के उत्थान-कार्य को लेकर भी आपका प्रयास

सराहनीय है। श्रीमती बोस द्वारा स्थापित 'महिला शिल्प भवन' मे सभी श्रेणी की महिलाएँ भिन्न-भिन्न विषयों मे प्रशिक्षित की जाती है। पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से नारी-जीवन की विभीषिकाओं को जन-साधारण के सन्मुख रखने तथा उनका समाधान प्रस्तुत करने की दिशा मे 'भारतीय समाज सुधारक' के सम्पादक श्री के० नटराजन (ज० १८६८, मृ० १९४८) का नाम दक्षिण भारतीय सुधारकों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इन्होंने उक्त पत्र मे प्रकाशित लेखो, अपने व्याख्यानों तथा व्यक्तिगत सम्पर्क के माध्यम से महिला-वर्ग में शिक्षा प्रचार का कार्य किया। विधवा-विवाह के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके इसको मान्यता दिलाने के लिए ठोस प्रयत्न किए। स्पष्टवादी वृत्ति वाले होने के कारण आपको कई बार कट्टर धर्मावलम्बियो का कोप-भाजन भी बनना पड़ा। आयरलैंड मे उत्पन्न 'मारगेरेट एलिजाबेथ कज़िंस' (ज० १८७८, मृ० १९५४) का नाम भारतीय समाज सेविकाओं में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आप १९१६ मे अपने पति के साथ मदनपल्लि में प्राध्यापिका होकर आई थीं। इस नगर मे अन्य महिलाओ के साथ कार्य करते हुए इन्हे भारतीय नारी की दयनीय अवस्था का ज्ञान हुआ। १९३१-३२ के राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने के फल-स्वरूप आप को भी कारावास हुआ। कारावास काल मे आपने महिला साथिनों के लिए एक पाठशाला की स्थापना की। श्रीमती कज़िन्स का नाम 'अखिल भारतीय महिला परिषद' के सस्थापक सदस्यो मे भी प्रमुख है। समाज सेविकाओं में सभी मानवीय गुणों से पूर्ण, सवेदनशील कवि हृदय प्राप्त सरोजिनी नायडू (ज० १८७९, मृ० १९४५) का नाम साहित्य के साथ-साथ सुधार-क्षेत्र में भी अमर है। वे अन्तर्जातीय विवाह की प्रबल समर्थक थी। उन्होंने स्वयं भी विजातीय विवाह किया। नारी अधिकारों के प्रति वे सदैव सचेष्ठ रही। बाल-विवाह प्रथा का उनके द्वारा सदैव ही विरोध किया जाता रहा। महिला मताधिकार के प्रश्न को लेकर अन्य प्रमुख महिलाओं के साथ वे १९१९ मे मि० मॉटेग्यू से मद्रास मे मिली। १९२० मे अन्तर्राष्ट्रीय परिषद के 'जनेवा अधिवेशन' मे उन्होने भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व किया। वे १९३० में अखिल भारतीय महिला परिषद की सभानेत्री बनी तथा १९३१ में गोलमेज सभा में भारतीय नारी वर्ग की प्रतिनिधि बन कर भाग लिया।

बम्बई प्रदेश मे समाज सुधार कार्य श्री एम० एन० जोशी (ज० १८७९, मृ० १९५५) द्वारा सम्पन्न किया गया। वे 'भारत सेवक समाज' तथा 'बम्बई प्रादेशिक समाज सुधार सस्था' के सक्रिय सदस्य रहे। जोशी जी की प्रेरणा से बम्बई प्रदेश में सहयोग संस्थाओं, बालिका विद्यालयों, औद्योगिक पाठशालाओं एवं महिला औषधालयों की स्थापना हुई। वे विधवा पुनर्विवाह, तथा नारी जाति में शिक्षा प्रचार के प्रबल समर्थक थे। इसी परम्परा में श्री निवास शास्त्री का नाम भी उल्लेखनीय है। बाल-विवाह प्रथा के विरोध तथा अन्तर्जातीय विवाह के समर्थन

इनका योगदान महत्वपूर्ण है। वे स्त्री-पुरुष की समान योग्यता पर विश्वास करते थे और उनका कहना था कि आज की सामाजिक स्थिति मे इतने विशाल नारी वर्ग को सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र मे अलग रखना बौद्धिक जागृति के मर्म पर आघात करना है। वे सह-शिक्षा तथा महिलाओ को अपनी रुच्यानुसार शिक्षा प्राप्त करने का समर्थन करते थे। वे विवाह को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मानते थे तथा सतति-निरोध के पक्षपाती थे। महिला के सम्पति-अधिकारो के विषय मे वे वैधानिक मान्यता पर विश्वास करते थे तथा उसके इस अधिकार का पक्ष समर्थन करते थे। प्रमुख रूप से राजनीतिज्ञ एव शिक्षा शास्त्री होते हुए भी उन्होने सामाजिक क्षेत्र मे महिला उन्नति सम्बन्धी जो भी कार्य किया, उससे उनका नाम महाराष्ट्र के मान्य समाज सुधारको मे अपना सम्मानपूर्ण स्थान बना लेता है।

उपर्युक्त समाज सेवी व्यक्तियो के अतिरिक्त भी कुछ महिला सुधारिकाएँ हैं जो आज भी महिला समाज की उन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं। समाज सेविकाओ के इस वर्ग मे श्रीमती डा० मुतु लक्ष्मी रेड्डी (ज० १८८६) का नाम दक्षिण भारतीय समाज सेविकाओ में सबसे पुराना है। चिकित्सक के रूप मे आपने दरिद्र महिलाओ की अपूर्व सेवा की है। आपका सम्बन्ध भारतीय महिला परिषद, मद्रास, शारदा गृह तथा अन्य कई मातृ तथा बाल-कल्याण सस्थाओं से है। १९३० मे 'अखिल भारतीय महिला परिषद' के लाहौर अधिवेशन मे आपको अध्यक्षा पद देकर सम्मानित किया गया था। आपने मद्रास विधान सभा के सम्मुख नारी अधिकारो के प्रश्न को उपस्थित किया। १९४९ से आप 'भारतीय महिला परिषद' की अध्यक्षा तथा 'मद्रास राज्य-कल्याण सलाहकार समिति' की सभानेत्री हैं। उत्तर-प्रदेश मे महिला जागृति का कार्य श्रीमती रामेश्वरी नेहरू (ज० १८८६) द्वारा सम्पन्न किया गया है। आपका सार्वजनिक जीवन १९०९ से आरम्भ होता है, जब आपने पहिले पहल इलाहाबाद मे 'महिला समिति' की स्थापना की और 'स्त्री दर्पण' की सम्पादिका के रूप में भारतीय नारी की समस्याओ को जन-वाणी का रूप दिया। १९३१ से १९३७ के मध्य आपने विदेशो मे भ्रमण करके वहाँ की जनता के बीच भारतीय आर्थिक सामाजिक एव नैतिक स्थिति विषयक व्याख्यान दिए। 'वे दिल्ली महिला सघ' की सस्थापक सदस्या थी तथा कई वर्षों तक इस सघ की अध्यक्षा रहीं। महिला सेवा के साथ-साथ 'बाल-सहायक सस्था' की स्थापना तथा गाँधी जी के साथ हरिजन सेवा क्षेत्र मे भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 'अखिल भारतीय महिला परिषद' की सक्रिय सदस्या के रूप मे श्रीमती रेणुका रे का नाम उल्लेखनीय है। ये महिलाओ को वैधानिक अधिकार दिलाने की प्रबल समर्थिका हैं। १९५३ में आपको 'अखिल भारतीय महिला परिषद' के वार्षिक अधिवेशन की सभानेत्री बनने का गौरव प्राप्त हुआ है। गाँधी जी के साथ-साथ और उनकी प्रेरणा से सुधार-कार्य की ओर आकृष्ट

ओर अग्रसर होने वाली महिलाओ मे राजकुमारी अमृत कौर (ज० १८८९) का विशिष्ठ स्थान है। 'अखिल भारतीय महिला परिषद' तथा 'लेडी इरविन कॉलेज' की सस्थापिका सदस्याओं के रूप मे आपका विशेष योगदान रहा है। आपको उपचारिका का कार्य सदैव भाया है। वे सवैधानिक रूप से नारी को विस्तृत अधिकार क्षेत्र प्रदान करने की बात का विशेष समर्थन करती थी। श्रीमती धनवन्ती रामाराव (ज० १८९३) एक अन्य दक्षिण भारतीय महिला हैं, जिन्होंने 'क्वीन्स मेरी कॉलेज' से अपना जीवन आरम्भ करके कुछ समय उपरान्त 'महिलाओ की भारतीय परिषद' मे प्रवेश कर सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया। नारी मताधिकार के सघर्ष मे श्रीमती रामाराव का योगदान महत्वपूर्ण है। १९२७-२८ मे आपको 'अखिल भारतीय महिला परिषद' की सक्रिय कार्य-कर्त्री रही। १९४६-१९४७ मे आप उक्त परिषद की अध्यक्षा बनी, तथा उसके उपरान्त महिला समाज के विभिन्न हित कार्य करने के लक्ष्य को लेकर आपने जापान और अमेरिका का भ्रमण किया, तथा वहाँ के महिला-समाज, उनके अधिकार एवं क्षेत्रो, तथा अधिकार प्राप्ति में सहायक सम्भव स्रोतों का अध्ययन किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आप कुटुम्ब सुधार कार्य मे व्यस्त है। गुजरात-क्षेत्र की महिला सुधारकाओ मे श्रीमती हसा मेहता (ज० १८९७) का नाम बहुत-सी महिला-संस्थाओ के साथ सम्बद्ध है। कई वर्षों तक भगिनी समाज बम्बई, की सभानेत्री. तथा 'भगिनी समाज पत्रिका' की सम्पादिका के रूप मे आपका योगदान विशेष सराहनीय रहा है। आप प्रौढ महिलाओं में शिक्षा-प्रचार करने तथा निर्धन महिलाओ को औद्योगिक शिक्षा देने के पक्ष मे है। २० वर्ष तक 'गुजराती स्त्री सहकारी मण्डल' की सभानेत्री के रूप मे आपने गुजरात प्रदेश में महिला सेवा कार्य को आगे बढाकर १९४५-४६ के 'अखिल भारतीय महिला परिषद' के वार्षिक अधिवेशन मे आपको सभानेत्री होने का गौरव प्राप्त हुआ। कुछ समय तक आप बडौदा विश्वविद्यालय के उप-कुलपति पद पर सुशोभित रही हैं। 'केन्द्रीय समाज कल्याण केन्द्र' की सक्रिय सदस्या श्रीमती हन्ना सेन ने भी नारी-शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रुचि ली है। आप 'लेडी इरविन कॉलेज की पहली शिक्षा सचालिका रही, तथा अब उक्त कॉलेज सघ की उपसभापति है। भारत विभाजन के पश्चात् आपने शरणार्थियों के पुनर्वास संबधी प्रश्न को हल करने में भी विशेष योग दिया है। श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित (ज० १९००) ने १९३२ से अपना राजनैतिक जीवन आरम्भ किया। समाज-सुधार कार्यों में आपकी विशेष रुचि रही है। 'अखिल भारतीय महिला परिषद' तथा 'अतर्राष्ट्रीय महिला परिषद' से आपका निकट का सम्पर्क रहा है। श्रीमती पंडित नारी अधिकारो के लिए सदैव ही सघर्षरत रही हैं। १९०३ में मध्य वर्गीय परिवार में उत्पन्न श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय का नाम भी सुधार क्षेत्र में अग्रगण है। अपने इंग्लैड आवासकाल में उन्होने भारत में समाज कल्याण की आवश्यकता का अनुभव किया। 'अखिल भारतीय महिला परिषद' की

सगठन मंत्राणी के रूप मे आपने यश अर्जित किया। आप पहली महिला हैं जो प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के चुनावो मे खडी हुई। 'सेवा दल' के महिला विभाग की अध्यक्षा के रूप मे भी आपको यथेष्ठ सफलता प्राप्त हुई। इस दल के तत्वावधान मे महिलाओ तथा बालिकाओ के लिए प्रशिक्षिण शिविर आयोजित करने का श्रेय भी आपको ही है। मुस्लिम महिला समाज मे सुधार कार्य के विस्तार का श्रेय श्रीमती फातिमा इस्माइल (ज० १९०३) को है। आपने १९३४ मे 'अजुमन-ए-इशलाने निस्वान' नामक शिक्षा सस्था मे बालिकाओ को शिक्षित करना आरम्भ करके सार्वजनिक जीवन मे पदार्पण किया। १९३६ मे आपको शिमला की 'अखिल भारतीय महिला परिषद' की मत्राणी बनाया गया। नारी समाज के लिए किए गये शिक्षा-प्रचार क्षेत्र मे आपका योगदान सराहनीय है। इसी प्रसग मे श्रीमती लीलावती मुशी का नाम भी उल्लेखनीय है, आप 'अखिल भारतीय महिला परिषद,' 'बम्बई प्रादेशिक महिला परिषद,' 'महिलाओ की राष्ट्रीय परिषद' 'समाज सुधार समिति' तथा बम्बई महिला सस्था' आदि कितनी ही महिला सस्थाओ से सम्बन्धित हैं। उक्त सस्थाओं को समय-समय पर आपके मत, सहयोग तथा निदेश प्राप्त होते रहते हैं। आप सदैव ही नारी-कल्याण सम्बन्धी किसी भी आयोजन की प्रतिष्ठा करने के लिए सदैव तत्पर रहती हैं। समाज सुधारिकाओ की इस परम्परा मे श्रीमती जरीना करीम भाई (ज० १९०९) का नाम मुस्लिम महिला-समाज मे शिक्षा-प्रचार कार्य के साथ सलग्न है। साथ ही 'बम्बई प्रादेशिक महिला परिषद' की सक्रिय कार्यकर्त्री के रूप मे आपने श्रमिक महिलाओ को मातृ-सेवा का लाभ प्रदान किया है। मिल तथा अन्य औद्योगिक कार्यों मे व्यस्त महिलाओ के बच्चो को पारम्भिक पाठशालाओं मे भेजने की व्यवस्था की तथा निम्न मध्य श्रेणी की महिलाओं की आर्थिक दशा सुधारने की दिशा मे उनके लिए औद्योगिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करने मे आपका योगदान विशेष सहायक रहा है। आप 'बाप ना गर' तथा 'केन्द्रीय समाज कल्याण समिति' की सक्रिय सदस्या हैं तथा सरकार द्वारा समाज कल्याण-कार्यों के लिए 'पद्म श्री' की उपाधि देकर आपकी सेवाओ को स्वीकृति प्रदान की गई है।

खण्ड—४

सुधार संस्थाओं

उन्नीसवी शताब्दी की भाँति इस काल मे भी बहुत-सी सस्थाओ की स्थापना हुई। प्रत्येक प्रदेश मे सार्वजनिक जागृति के परिणाम स्वरूप नारी संस्थाओ की एक बाढ-सी आ गई। इन विभिन्न सस्थाओ के बल, नारी वर्ग मे एक प्रकार के आत्म-विश्वास का प्रस्फुटन हुआ और वह स्वय भी अधिकार प्राप्त करन की दिशा म प्रयत्नोन्मुख हुई इस काल के सुधारको द्वारा नारी के संरक्षण और उसको सम्मानपूर्ण स्थिति प्रदान करने के क्षेत्र मे जो कार्य सम्पादित किए गये, उनको इन सुधार सस्थाओं द्वारा ही प्रौढ़ता प्राप्त हुई। सुधार-सस्थाओ के इस विकास काल में बहुत-सी सस्थाओं की स्थापना महिलाओ द्वारा भी की गई, तथा इनके माध्यम से उन्होन अपने आर्थिक, राजनैतिक एव सामाजिक अधिकारों को वैधानिक रूप से स्वीकृत दिलाने की चेष्टा की। इस युग मे राष्ट्रीय जागरण और स्वाधीनता आन्दोलन ने भी 'युग प्राचीन मानसिक तथा शारीरिक सघर्षों की रगड से चिर संतप्त' नारी हृदय मे नव-चेतना की चिनगारी प्रज्वलित कर दी। फलस्वरूप वह अपना वैयक्तिक-वैशिष्ठ्य प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हुई। २०वी शती में स्थापित स थाओं मे से कुछ ने राष्ट्रीय स्तर पर महिला-जागृति की भावना को विकसित किया तथा कुछ सस्थाएँ प्रादेशिक सीमाओं तक ही सीमित रही। राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने वाली सुधार संस्थाओं मे 'अखिल भारतीय महिला परिषद' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

अखिल भारतीय महिला परिषद (संस्थापित १९२७)

नारी-वर्ग में शिक्षा प्रचार करने के उद्देश्य से उक्त परिषद की स्थापना श्रीमती मारगेरेट कजिन्स की प्रेरणा और प्रयत्नो का परिणाम थी। महिला परिषद के १९२७ में हुए प्रथम अधिवेशन में इसीलिए प्राय: सभी पारित प्रस्ताव नारी-शिक्षा से ही सम्बन्धित थे। अपने प्रारम्भिक शिक्षा प्रचार कार्य की अपूर्व सफलता से अनुप्राणित इस संस्था ने सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेना तथा अपने कार्य-क्षेत्र का विस्तार करना आरम्भ कर दिया। 'किसी राजनैतिक संस्था से सम्बन्धित न होते

हुए भी इसने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन मे सहयोग प्रदान किया"[1] तथा अपने १३वें अधिवेशन मे इस बात की घोषणा की कि उक्त सस्था समस्त भारतीय जनो, विशेषतया महिलाओ एव बालको के हितो की रक्षा करने के उद्देश्य से उनकी समस्याओ पर चर्चा करने तथा उनकी सहायता करने के लिए स्वतन्त्र है[2]। सक्षेप मे, महिला कल्याण के लिए निष्ठापूर्वक कार्य करना, उनमे आदर्श नागरिक भावना का समावेश करना, शुद्ध शिक्षा-पद्धति का विकास तथा समाज सुधारो का योजना-निर्माण, महिलाओ के लिए समान अवसरो एव अधिकारो की प्राप्ति का प्रयत्न, राष्ट्रीय एकता के लिए भरपूर चेष्टा तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उच्चत्तर नैतिक भावना का सभावेश तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एव विश्व शान्ति के लिए सतत प्रयत्न, इस संस्था के उद्देश्य एवं लक्ष्य रहे।

इस परिषद द्वारा नारी समाज को शिक्षा-प्रचार के नए क्षितिज प्रदान किए गए। निराश्रित महिलाओ को आत्म-निर्भर बनाने के उद्देश्य से औद्योगिक प्रशिक्षण को प्रोत्साहित किया गया। सह-शिक्षा का समर्थन इसी संस्था के माध्यम से हुआ। अधिकाधिक महिलाओ को शिक्षा क्षेत्र मे प्रविष्ट होने के लिए प्रेरणा प्रदान की गई। कुटुम्ब सुधार योजनाएँ कार्यान्वित हुईं। सहकारी समितियो की प्रतिष्ठा, नारी को अनैतिक जीवन से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न, मातृ भवनों की स्थापना तथा महिला सघो का सचालन इस परिषद के व्यावहारिक कार्य-क्रमो मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महिला-क्षेत्र मे इस परिषद का योगदान 'द लेडी इरविन कॉलिज' की स्थापना के रूप मे भी महत्वपूर्ण है।

शैक्षणिक जागृति के साथ-साथ बाल-विवाह आदि परम्परागत सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध भी परिषद का अभियान सराहनीय है। इसके द्वारा नारी को सम्बन्ध-विच्छेद का अधिकार देने का समर्थन किया गया, तथा वैधानिक रीति से उसके व्यक्तित्व को उन्नतिशील बनाने की चेष्टा की गई। नारी-स्वातन्त्र्य-क्षेत्र मे अग्रणी इस परिषद द्वारा नारी के आर्थिक अधिकारो की व्याख्या भी की गई। भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे कार्य करने वाली महिलाओ की सुविधाओ के लिए प्रयत्न किये गये। महिलाओ के अनैतिक व्यापार का विरोध और राजनीतिक अधिकारों की माँग इस परिषद द्वारा ही आरम्भ की गई। इस परिषद का विशेष योगदान 'संतति निरोध' के समर्थन को लेकर है। यह इस काल की पहली सामाजिक परिषद है, जिसने देश की बढ़ती हुई जन संख्या से चिन्तित होकर 'कुटुम्ब सुधार' तथा

१—नीरा देसाई . वीमन इन माडर्न इन्डिया, पृष्ठ १४६।

२—'अखिल भारतीय साहित्य परिषद' के १३वें वार्षिक अधिवेशन की रिपोर्ट, पृष्ठ ६४।

३—नीरा देसाई · वीमन इन माडर्न इन्डिया, पृष्ठ १५०।

'संतति निग्रह' का समर्थन एवं प्रचार किया। ग्रामीण-क्षेत्रों मे आत्मोन्नति एवं आत्म-विकास का अवसर प्रदान करने की दिशा में परिषद का योगदान अविस्मरणीय है। इस समय समस्त भारतवर्ष मे परिषद की लगभग ३० प्रमुख तथा २०० साधारण शाखाएँ[1] भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे सुधार-क्षेत्र मे कार्यरत है जिससे महिला समाज की सर्वतोन्मुखी विकास-शक्ति को बल मिलता रहता है।

महिलाओं की भारतीय परिषद (संस्थापित १९१७)

भारतीय परिषद की स्थापना एनी बेसेंट की प्रेरणा से १९१७ मे हुई थी। इस परिषद का महत्व नारी के अधिकार एव कर्त्तव्यों की व्याख्या तथा समस्याओं के समाधान के लिए समुचित भाव-भूमि प्रदान करने को लेकर है। तत्कालीन सामाजिक कुरीतियो का अन्त करने, महिलाओ को नगर पालिकाओ एव व्यवस्थापिका सभाओ मे मताधिकार दिलाने, विधान सभाओ, स्वायत शासन संस्थाओ में महिला-प्रतिनिधि भेजने तथा राज्य-परिषद में मताधिकार दिलाने की दिशा मे प्रयत्न करने सम्बन्धी इस परिषद के कार्य सराहनीय है। भारतीय परिषद पहली नारी सस्था थी जिसने महिलाओं को उनके उत्तरदायित्वो से विज्ञ कराया। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा तथा धार्मिक शिक्षा को प्रत्येक बालिका के लिए इसी परिषद द्वारा आवश्यक समझा गया। इस परिषद द्वारा महिलाओं मे यह विश्वास पैदा करने की चेष्टा की गई कि भारत का भविष्य उनके सहयोग पर ही निर्भर है। पत्नी और माता के रूप में देश के भावी शासकों के चरित्र-निर्माण का भार केवल उन्ही पर है[2]। इस सुधार संस्था ने महिलाओं को संगठनात्मक रूप मे कार्य करने की प्रेरणा दी तथा इस बात पर विशेष बल दिया कि उन्हे स्वयं भी पुरुष के समान अधिकार, अवसर एवं सुविधाएँ प्राप्त करने की दिशा में निष्ठापूर्वक प्रयत्न करने चाहिए।

अखिल भारतीय शिक्षा कोष संस्था (संस्थापित १९२९)

महिला-वर्ग मे उन्नत शैक्षणिक स्तर निर्माण करने के उद्देश्य से 'अखिल भारतीय शिक्षा कोष संस्था' की स्थापना १९२९ मे की गई। इस सस्था द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं एवं बालिकाओं को शिक्षित करने की व्यवस्था है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में महिला-क्षेत्र में शिक्षा प्रचार को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से यह आर्थिक व्यवस्था करती है तथा महिला शिक्षिकाओ को प्रशिक्षित करके उन्हें राष्ट्रीय-सेवा के लिए, प्रस्तुत करने का भार भी इसी के ऊपर है। महिलाओं को औद्योगिक क्षेत्र मे प्रशिक्षित कर उन्हे आत्म-निर्भर बनाने मे भी इस संस्था का योगदान उल्लेखनीय है।

स्नातिका संघ (संस्थापित १९४९)

'स्नातिका संघ' विश्वविद्यालयीन स्तर पर शिक्षा प्राप्त महिलाओं को

१—सोशल वेल फेयर ऑफ इन्डिया : पृष्ट ६५५।
(भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित)

२—चाँद : मासिक : १९३४, नवम्बर अंक, पृष्ठ ६।

शैक्षणिक, सास्कृतिक एवं सामाजिक चेतना के विकसित करने एव उदार आदर्शों की ओर उन्मुख होने के लिए उच्चत्तर भाव-भूमि प्रदान करता है। ससार की समस्त महिलाओं को एक्य की महान् भावना मे आबद्ध कर, उनके सर्वतोन्मुखी विकास की उपलब्धि इस सघ का महान् लक्ष्य है। व्यावहारिक क्षेत्र में बालिकाओ तथा वृद्धाओ के लिए देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में इसके द्वारा रात्रि शालाएँ आयोजित की जाती हैं। इस सघ की सदस्यता केवल विश्वविद्यालयो की स्नातिकाओ तक ही सीमित है।

कस्तूरबा गाँधी मेमोरियल ट्रस्ट (संस्थापित १९४५)

कस्तूरबा गाँधी जी की मृत्यु के उपरान्त उनके स्मृति-चिह्न स्वरूप उनके नाम पर एक कोष का निर्माण हुआ, जिसका उपयोग ग्रामीण क्षेत्रो मे, विशेषतया ग्रामीण-महिलाओ की स्थिति सुधारने मे किया गया। इस ट्रस्ट द्वारा सम्पादित विशेष कार्यों मे महिलाओ मे शिक्षा-प्रचार तथा चिकित्सा सम्बन्धी प्रशिक्षण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उक्त ट्रस्ट द्वारा बच्चों तथा महिलाओ की आर्थिक सहायता के लिए भिन्न-भिन्न अवसरो पर मनोरजक कार्य-क्रम आयोजित किए जाते है। समाज सुधार के हेतु सस्थाओं का सगठन तथा महिलाओ को ग्रामीण क्षेत्रो मे कार्य करने के लिए प्रोत्साहन एवं प्रशिक्षण इस ट्रस्ट का प्रमुख उद्देश्य है।

समाज कल्याण संस्था (संस्थापित १९५३)

आधुनिक युग की समाज सुधार सस्थाओ में भारत सरकार द्वारा स्थापित समाज कल्याण संस्था का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस सस्था का उद्देश्य अन्य प्रकार के समाज सुधारको के अतिरिक्त सार्वजनिक महिला क्षेत्र मे जागृति उत्पन्न करना भी है। कुटुम्ब-सुधार तथा विभिन्न दिशाओ मे महिला प्रशिक्षण इसके विशिष्ट पुरोगम हैं। ग्रामीण महिला वर्ग को उन्नतिशील करने के लिए सभी राज्यों मे समाज सेविकाओं की नियुक्ति की गई है। ग्रामीण-क्षेत्रों मे सुधार-विकास केन्द्रो की स्थापना इस दिशा मे पहली महत्वपूर्ण चेष्टा है। बालवाड़ी में ग्राम्य बालक-बालिकाओं को शिक्षित करने की व्यवस्था है। महिलाओ के लिए भिन्न-भिन्न उद्योग-केन्द्रों की स्थापना हुई है, जिससे ग्राम्य-जीवन की आर्थिक स्थिति मे सुधार किया जा सके। इस योजना के अन्तर्गत १९५७ तक १३०० ग्राम सेविकाएँ तथा ३९ दाइयाँ प्रशिक्षित हो चुकी थी तथा १०४५ ग्राम सेविकाएँ तथा २५४ दाइयाँ प्रशिक्षण प्राप्त कर रही थीं[1]।

नगरो में महिला-कल्याण के उद्देश्य से नगर-कुटुम्ब-सुधार केन्द्रों की स्थापना की गई है। लघु उद्योग-धंधों का विकास किया गया है। जिससे महिला आत्म-निर्भर होकर प्रतिष्ठा का जीवन बिता सकें। दिल्ली, हैदराबाद, विजयवाड़ा तथा पूना में इस भावना को अधिक बल प्राप्त हुआ है। निराश्रित महिलाओ के लिए अनाथालय निर्माण करने की व्यवस्था भी इस संस्था के पुरोगमों में है। इसके अनुसार प्रत्येक

१—इन्डिया, ५८।

राज्य में ५ आश्रमों की स्थापना की जाएगी। इन आश्रमो में आश्रय प्राप्त महिलाओ को प्रशिक्षित करके उन्हे ग्राम-सेविका के रूप मे ग्राम-सुधार कार्यों मे लगाने की योजना भी इस सस्था द्वारा कार्यान्बित होने की सम्भावना है। उपर्युक्त सस्था पहली राष्ट्रीय सस्था है जो स्वय सरकार द्वारा आरम्भ की गई है, तथा जिसने राष्ट्रीय स्तर पर सभी वर्ग की महिलाओ के व्यक्तित्व-विकास के लिए निर्मित योजना को कार्यान्वित करने का भार अपने ऊपर ले लिया है।

प्रादेशिक तथा स्थानीय संस्थाएँ

राष्ट्रीय चेतना के इस नवीन युग मे समाज कल्याण सम्बन्धी राष्ट्रीय सस्थाओ के साथ-साथ प्रादेशिक स्तर पर भी सस्थाओ की स्थापना होकर महिला समाज सुधार भावना को बल और प्रोत्साहन मिला है। समाज-सुधार की परम्परा पहिले-पहल, जैसा कि हम देख चुके है, बगाल से आरम्भ होकर समस्त भारतवर्ष मे व्याप्त हुई। २०वी शताब्दी मे भी राम मोहन राय, विवेकानन्द, दयानन्द तथा केशव सेन आदि महान् सुधारको की सुधार भावना को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से बगाल मे कुछ प्रादेशिक सस्थाओ की स्थापना हुई। 'ब्रह्म समाज महिला गृह[१],' कलकत्ता (स० १९०६), 'नारी-शिक्षा समिति[२],' कलकत्ता (स० १९१९), 'सरोज नलिनी दत्त मेमोरियल इन्स्टीट्यूट[३]' कलकत्ता (स० १९२५) तथा दया भगिनी सस्था, कलकत्ता[४], (स० १९२९) आदि स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व की सस्थाएँ हैं। इन सस्थाओ द्वारा महिला-समाज मे शिक्षा के विकास, गृह-उद्योग सम्बन्धी विकास कार्य, औद्योगिक प्रशिक्षण तथा हस्त-कला आदि की शिक्षा दी जाती है। 'नारी-शिक्षा समिति' द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का प्रचार किया जाकर ग्रामीण बालिकाओ को आत्म-निर्भर बनाने की दिशा में प्रयत्न किया जाता है, साथ ही इस सस्था के द्वारा प्रौढ शालाएँ, मातृ सेवा प्रशिक्षण शालाएँ, विधवाश्रम तथा शिल्प भवन का भी सचालन कार्य सम्पन्न हुआ है। 'मेमोरियल इन्स्टीट्यूट' द्वारा महिला-वर्ग के सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक पक्ष के विकास एव उन्नति का प्रयत्न उल्लेखनीय है। शिक्षा प्रशिक्षण शाला, विधवाश्रम तथा औद्योगिक शिक्षा केन्द्र के संचालन के साथ-साथ महिला सम्बन्धी एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन इस सस्था की अपनी विशेषता है। इसी प्रसंग मे संत बर्तौलोमिया तथा सत विनसेंजा जेरोसा द्वारा मातृ-सेवा तथा महिला क्षेत्र में दूसरे

१—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया : भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ ७६।

२— „ „ पृष्ठ ७६८।

३— „ „ पृष्ठ ७६९।

४— „ „ पृष्ठ ७७३।

उपकारी कार्यों को सम्पादित करने के उद्देश्य से स्थापित दया भगिनी संस्था अपने सुदीर्घ एव स्वस्थ प्रयत्नो के लिए प्रशसनीय है।

इस प्रदेश मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद महिला सुधार कार्यो मे सलग्न श्रीमती कमला राय द्वारा स्थापित 'बेनी मन्दिर महिला शिक्षा सस्था'[1], (स० १६४८), श्रीमती सुजाता देवी द्वारा स्थापित 'बगीय पाल्लि सगठन सस्था'[2] (स० १६४८) एव 'बगाल महिला सघ' तथा 'बाल-कल्याणी गृह'[3], (स० १६५०) आदि सस्थाएँ विशिष्ठ हैं। इनके द्वारा निराश्रित बालक-बालिकाओ का सरक्षण तथा पोषण होता है और उनको आत्म-निर्भर बनाने के उद्देश्य से औद्योगिक दिशा मे प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की जाती है। बंगीय पाल्लि सगठन सस्था का योगदान 'देश बन्धु बालिका भवन' के संचालन कार्य को लेकर विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

बगाल की ही भाँति उत्तर-प्रदेश मे सुधार-सस्थाओ के माध्यम से सुधार कार्य को विकसित करने का श्रेय विशेष रूप से देहरादून, वाराणसी और लखनऊ की सुधार संस्थाओं को है। देहरादून मे 'श्रीमती श्रद्धानन्द अनाथ वनिताश्रम'[4] (स० १६२४) तथा 'अखिल भारतीय महिलाश्रम'[5] (स० १६४५) महिला सुधार क्षेत्र मे अग्रगणी हैं। इन आश्रमो द्वारा अनाथ महिलाओं के लिए आश्रम शिक्षा तथा औद्योगिक प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था की जाती है। 'श्रद्धानन्द अनाथ आश्रम' देहरादून के आर्य समाज से सलग्न संस्था है। बनारस मे महिला-सुधार के क्षेत्र मे बहुत-सी संस्थाओं के नाम लिए जा सकते हैं। 'श्री काशी अनाथाश्रम'[6] (स० १६१८), 'आर्य अनाथाश्रम'[7] (स० १६२१), 'मातृ मठ'[8] (स० १६२१) 'आर्य समाज अनाथालय'[9] (स० १६२२), 'नलिनी नारी शिक्षा समिति'[10] (स० १६२७), 'रानी राम कुमारी वनिताश्रम'[11] (स० १६२७),' 'काशी अनाथालय'[12] (स० १६२८), 'मुस्लिम

१—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया': भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित : पृष्ठ ७७० ।
२—वही, „ पृष्ठ ७७४ ।
३— „ „ पृष्ठ ७७१ ।
४— „ „ पृष्ठ ७५७ ।
५— „ „ पृष्ठ ७५८ ।
६— „ „ पृष्ठ ७६२ ।
७— „ „ पृष्ठ ७६० ।
८—मुसाफिर सिह 'वाराणसी में समाज कल्याण'
९—वही,
१०—'सोशल वेल फेयर इन इन्डिया' पृष्ठ ७६१ ।
११— „ „ पृष्ठ ७५९ ।
१२—मुसाफिर सिंह : 'वाराणसी में समाज कल्याण'

यतीमखाना[१]" (स० १९३३), 'महिला मण्डल[२]" (स० १९३४), 'काशी आदर्श अनाथालय[३]" (स० १९५१), 'आर्यावर्त अनाथ सेवाश्रम[४]" (स० १९५१, 'दीन महिला उद्योग केन्द्र[५]" (स० १९५१) तथा 'नारी दीक्षा विद्यालय[६]" (स० १९५४) आदि सुधार सस्थाओ ने निराश्रित महिलाओ की सहायता, उनके संरक्षण तथा उनके दृष्टिकोण को विकसित भाव-भूमि प्रदान करने मे जो योग दिया है उसके लिए महिला समाज विशेष उपकृत है। लखनऊ मे इसी आशय की सस्था 'मुस्लिम सेवा गृह[७]" (स० १९५१) है जो आपति-ग्रस्त मुस्लिम महिलाओ के हितो की रक्षा करने तथा उनको आत्म-निर्भर बनाने की दिशा मे प्रयत्नशील हैं।

इसी परम्परा मे राजस्थान मे हुए सुधार-कार्यों की योजना इस प्रदेश के सुधार-इतिहास मे महत्वपूर्ण है। इस प्रदेश मे अशिक्षा एव सामाजिक एव राष्ट्रीय जागृति के अभाव के परिणामस्वरूप समाज सुधार-कार्यों की ओर जनता का ध्यान बहुत बाद मे आकृष्ट हुआ। १९वी शताब्दी मे यहाँ सुधारको का भी अभाव रहा। इस अभाव की आशिक पूर्ति २०वी शती मे पडित हीरालाल द्वारा १९३५ मे जयपुर से ४५ मील दूर, 'वनस्थली विद्यापीठ' को जन्म देकर हुई। इससे पूर्व इनके द्वारा वनस्थली ग्राम मे, 'जीवन कुटीर' नामक सस्था का सचालन होता था। विद्यापीठ का का ध्येय 'भारतीय सस्कृति और राष्ट्रीयता के पाधार पर कुशल गृहिणी तथा सफल नागरिक तैयार करना है[८]'। इसमे सभी राज्यो की बालिकाएँ प्रवेश पा सकती है। पंचमुखी शिक्षा क्रम—शारीरिक व्यावहारिक...गृह कार्य सम्बन्धी तथा औद्योगिक शिक्षा......ललित कला विषयक, नैतिक तथा बौद्धिक—इस विद्यापीठ की अपनी विशेषता है। ग्रामीण प्रौढाओं के लिए रात्रिशाला की व्यवस्था भी इसके कार्य-क्रमों में प्रमुख हैं। इन शालाओ मे विद्यापीठ की छात्राएँ शिक्षण कार्य करती हैं। शैक्षणिक-विकास के साथ ही अन्य समाज सेवा के विभिन्न कार्य-क्रमों का आयोजन भी विद्यापीठ द्वारा किया जाता है। विद्यापीठ का वास्तविक उद्देश्य 'अपने शिक्षण कार्य के द्वारा पूर्व की आध्यात्मिक विरासत और पश्चिम की वैज्ञानिक उपलब्धियों के समन्वय के लिए प्रयत्न करना है[९]'। इसी प्रसंग मे १५ अगस्त १९४७ को श्री सिद्ध राज जी ढढ्ढा की प्रेरणा से जोधपुर क्षेत्र में रानी नामक स्थान पर 'मरुधर महिला

१—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया : पृष्ठ ७६२।
२—मुसाफिर सिंह : वाराणसी मे समाज कल्याण।
३—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया पृष्ठ ७६१।
४— ,, ,, पृष्ठ ७६१।
५— ,, ,, पृष्ठ ७६२।
६—मुसाफिर सिंह वाराणसी में समाज कल्याण।
७—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया, पृष्ठ ७५८-७५९।
८—वनस्थली विद्यापीठ विवरण पत्रिका, पृष्ठ १।
९—वनस्थली विद्यापीठ : एक झाँकी, पृष्ठ १।

शिक्षण संघ' की स्थापना 'महिला समाज की आध्यात्मिक, बौद्धिक, शैक्षणिक, साँस्कृतिक एवं शारीरिक उन्नति के लिए जीवनोपयोगी आदर्श शिक्षा का प्रबन्ध करने[१], के उद्देश्य को लेकर हुई है। साथ ही महिलाओं मे सहयोग, आत्म-निर्भरता एव स्वावलम्बन की भावना का उद्रेक, समाज सुधार के लिए उनकी स्थिति तथा महिला एवं बाल-कल्याणी केन्द्रों की स्थापना इस सघ का लक्ष्य है। सघ द्वारा संचालित 'मरुधर बालिका विद्यापीठ' मे छात्राओ को आध्यात्मिकता, त्याग तथा सुचरित्र जीवन-यापन करने की प्रेरणा, सादगी प्रधान सस्कृति के आधार पर उनके चरित्र निर्माण की योजना तथा उन्हे सबला, सुगृहिणी, सुशिक्षिता तथा कलाकार बनाने का लक्ष्य[२] विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इस दिशा मे बिहार मे डा० गणेश दत्त सिंह द्वारा स्थापित 'श्री हिन्दू अनाथ और विधवा पाठशाला[३],' पटना (स० १९२७), 'भारतीय विधवाश्रम[४],' पटना (स० १९४३) तथा 'श्रीमती प्रभावती नारायण द्वारा सस्थापित, महिला चरखा समिति[५] का योगदान महत्त्वपूर्ण है। 'विधवा पाठशाला' मे विधवा महिलाओ को आत्म-निर्भरतापूर्ण एव सम्मानित जीवन व्यतीत करने का अवसर देने के उद्देश्य से औद्योगिक क्षेत्र मे प्रशिक्षित किया जाता है। नारी कल्याण और पुनर्विवाह को प्रोत्साहन देने के क्षेत्र में दूसरी उल्लेखनीय सस्था 'भारतीय विधवाश्रम' है। इसमें औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए भी व्यवस्था है। 'महिला चरखा समिति' द्वारा महिला समाज में साँस्कृतिक एव सामाजिक जागृति, औद्योगिक प्रशिक्षण एवं सार्वजनिक हितकार्यों में योगदान प्रमुख हैं। निराश्रित महिलाओं को आश्रय तथा उनके खान-पान की व्यवस्था भी समिति द्वारा की जाती है।

बिहार की भाँति उड़ीसा में श्री उत्कल मणि गोपबन्धु दास तथा राय बहादुर साखीचन्द के सम्मिलित प्रयत्नों से स्थापित 'अनाथाश्रम[६]' पुरी (स० १९२०), 'प्रातीय सरकार द्वारा संचालित 'मधुसूदन मातृ तथा शिशु सदन[७]' (स० १९२३) तथा श्रीमती वसंत कुमारी द्वारा सस्थापित, 'वसंत कुमारी विधवाश्रम[८]' (स० १९३०) महिला सुधार क्षेत्र में कार्य रत हैं। महिलाओं को आत्म-निर्भर तथा उन्नत

१—मरुधर महिला शिक्षण सघ, का संविधान, पृष्ठ १।
२—मरुधर बालिका विद्यापीठ का संक्षिप्त परिचय : पृष्ठ ३-४।
३—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया, पृष्ठ ६८७।
४— „ „ पृष्ठ ६८८।
५— „ „ पृष्ठ ६८८।
६— „ „ पृष्ठ ७४४।
७— „ „ पृष्ठ ७२३।
८—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया, पृष्ठ ९४४।

सामाजिक जीवन की स्थिति प्रदान करना इन संस्थाओ का लक्ष्य है। 'वसंत कुमारी विधवाश्रम' में चिकित्सिक सहायता प्रदान करने की भी व्यवस्था है। यह आश्रम कलकत्ता की 'सरोज नलिनी दत्त मेमोरियल इन्स्टीट्यूट' से सलग्न है।

दिल्ली राज्य मे इस आशय की प्रमुख सस्था 'नारी रक्षा समिति[1]' (स० १९४३) है जिसके सस्थापक सदस्य श्रीमती रामेश्वरी नेहरु, राजकुमारी अमृतकौर, श्रीमती इन्दिरा गाँधी, देश बन्धु गुप्ता, लाला योधराज, सी० कृष्णनन् नेयर तथा सुदामिनी मेहता हैं[2]। इस समिति का प्रमुख उद्देश्य पतित महिला समाज को वैधानिक रीति से उच्चत्तर स्तर एव मान्यता दिलाने की दिशा मे प्रयत्न करना तथा उनके प्रति सर्वसाधारण मे सम्मानित दृष्टिकोण का निर्माण करना है। इस समिति द्वारा संचालित 'शरण भवन' में उद्धार की हुई महिलाओ को औद्योगिक क्षेत्र मे प्रशिक्षित किया जाता है।

इस सुधार-प्रगति के युग मे सौराष्ट्र प्रदेश मे भी सुधार-सस्थाओ की स्थापना हुई है। 'श्री आनन्दवाडा अनाथालय[3],' जामनगर (स० १९०३), श्री कान्ता स्त्री विकास गृह[4] (स० १९४५) तथा 'विकास विद्यालय[5]' (स० १९४५) इस दिशा मे प्रमुख सुधार सस्थाएँ हैं। 'अनाथालय' मे शिक्षा-दान के साथ-साथ निराश्रित कुमारी बालिकाओ के विवाह की व्यवस्था भी की जाती है। 'विकास-गृह' द्वारा असहाय महिलाओं को सरक्षण तथा औद्योगिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। 'विकास विद्यालय मे नारी-समाज की सामाजिक एव आर्थिक विषमताओ के कारण जानने तथा उनके समाधान प्रस्तुत करने की दिशा मे प्रयत्न होता है। 'विकास खादी उत्पादन केन्द्र' की व्यवस्था भी 'विद्यालय' की समिति द्वारा ही होती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जूनागढ मे 'विकास गृह[6]' (स० १९४८) की स्थापना हुई है जिसमे निस्थापित महिलाओ को आश्रय तथा उनके बच्चो को शिक्षित करने का प्रबन्ध है।

बम्बई प्रदेश मे १९वी शती की भाँति इस शताब्दी में भी प्रादेशिक स्तर पर बहुत-सी सुधार-सस्थाओ का संगठन एव विकास हुआ। इस काल की प्रारम्भिक सस्थाओं में 'स्त्री जोरोस्ट्रीयन मण्डल[7]' (स० १९०३) तथा 'सर रतन टाटा इन्स्टीट्यूट[8]' (स० १९२८) द्वारा पारसी महिलाओ की आवश्यकताओ की पूर्ति तथा

१—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया : पृष्ठ ७१७।
२— „ „ पृष्ठ ७१७।
३— „ „ पृष्ठ ७४८।
४— „ „ पृष्ठ ७४८।
५— „ „ पृष्ठ ७५०।
६— „ „ पृष्ठ ७५१।
७—नीरा देसाई वीमन इन माडर्न इन्डिया, पृष्ठ १५८।
८—वही, पृष्ठ १५८।

अधिकारो की रक्षा के क्षेत्र में दिया गया सहयोग प्रशंसनीय है। गृह विज्ञान तथा औद्योगिक शिक्षा का विकास निर्धन पारसी महिलाओ की आर्थिक तथा चेकित्सिक सहायता तथा महिलाओ के लिए विस्तृत सार्वजनिक सामाजिक स्थिति का निर्माण इन सस्थाओ का प्रमुख कार्य-क्रम है। दूसरी सुधार संस्थाओ मे 'सेवा सदन सोसायटी[1]' बम्बई (स० १६०८), 'गुजरात हिन्दू स्त्री मण्डल[2]' (स० १६०८), 'पूना सेवा सोसायटी[3]' (स० १६०८), 'द चिमन नाई महिला औद्योगिक सस्था[4]' (स० १६१४), 'भगिनी समाज[5]' (स० १६१६), 'बीजापुर अनाथालय[6]' (स० १६१६), 'बम्बई राज्य महिला सघ[7]' (स० १६२०), 'सत केथेराइन होम[8]' (स० १६२२), 'हिन्दू महिला अनाथाश्रम[9]', पूना (स० १६२७), 'श्रद्धानन्द अनाथ महिलाश्रम[10],' बम्बई (स० १६२८), 'ज्योति सघ[11],' अहमदाबाद (स० १६३४), 'अनाथ महिलाश्रम[12],' कोल्हापुर (स० १६३७), 'विकास गृह[13],' (स० १६३७) तथा अब्दुल्ला दाऊद बावला मुस्लिम महिला अनाथालय[14]' के नाम प्रमुख है। इन सस्थाओ द्वारा उपर्युक्त प्रदेशो की अन्य महिला सस्थाओ की भाँति महिला जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओ पर विचार करके उनको उन्नति-शील सामाजिक स्थिति मे सम्मानपूर्ण स्थान देने का प्रयास किया जाता है। सुधार संस्थाओ के विकास से इस प्रदेश के महिला वर्ग मे सर्वतोन्मुखी जागृति का विस्तार हुआ है, जिसके आलोक मे नारी ने अपने विस्तृत अधिकार क्षेत्र को पहिचाना है, तथा अपने व्यक्तित्व को स्वतन्त्र भारत के विभिन्न स्तरीय वातावरण मे सफल बनाने का प्रयास किया है।

उपर्युक्त प्रदेशो की भाँति आन्ध्र, मद्रास, मैसूर तथा त्रावनकोर कोचीन आदि राज्यो मे भी महिला-सुधार सस्थाओ का जन्म हुआ है, जिनके माध्यम से इन क्षेत्रो मे नारी-जागृति की भावना का विकास होकर उनके हितो की रक्षा करने की दिशा

१—'सोशल वेल फेअर इन इन्डिया,'. पृष्ठ ७०४।
२—नीरा देसाई : 'वीमन इन माडर्न इन्डिया' : पृष्ठ १६०।
३—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया : पृष्ठ ७०४।
४— ,, ,, पृष्ठ ७०२।
५—नीरा देसाई : 'वीमन इन माडर्न इन्डिया : पृष्ठ १५८।
६—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया . पृष्ठ ७०६।
७—नीरा देसाई : वीमन इन माडर्न इन्डिया : पृष्ठ १५७।
८—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया : पृष्ठ ७१२।
६— ,, ,, पृष्ठ ७०२।
१०— ,, ,, पृष्ठ ७०५।
११—नीरा देसाई, वीमन इन माडर्न इन्डिया पष्ठ १६२।
१२—सोशल वेल फेयर इन इन्डिया : पृष्ठ ७१०।
१३—नीरा देसाई : वीमन इन माडर्न इन्डिया पृष्ठ १६३।
१४—'सोशल वेल फेयर इन इन्डिया,' पृष्ठ ७०१।

मे प्रयत्न किए गये है। आन्ध्र प्रदेश मे राय बहादुर कान्दुकुरी वीरेसलिगम पान्तुलु द्वारा सस्थापित 'हितकारिणी समाज[1]' (स० १६०६), 'श्री बाला सरस्वती स्त्री-समाजम्[2],' 'आन्ध्र महिला सभा[3],' (स० १६४८) तथा 'बेगम मौलाना अबुलकलाम आज़ाद मेमोरियल गर्ल्स इन्स्टीट्यूट[4]' (स० १६१६) आदि सुधार सस्थाएँ सुधार-क्षेत्र मे विशेष रूप से कार्य रत है। 'हितकारिणी समाज' द्वारा विधवाश्रमो का निर्माण एव सचालन बालक-बालिकाओ के लिए शिक्षा प्रचार तथा औद्योगिक प्रशिक्षण आदि कार्य सम्पादित किए जाते हैं। 'श्री बाला सरस्वती स्त्री समाजम्' द्वारा नारी को आर्थिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक स्वीकृति दिलाने की दिशा मे किए गये प्रयत्न प्रशसनीय है। 'मेमोरियल गर्ल्स इन्सटीट्यूट' द्वारा बालिकाओं की शिक्षा, नारी कल्याण के लिए आयोजना, अनाथालयो का सचालन तथा मातृ-मन्दिरो का सगठन एव सचालन होता है। 'महिला सभा' द्वारा भी औद्योगिक प्रशिक्षण कार्य होता है। इस सभा द्वारा सचालित विद्यालय मे छात्रावास की भी व्यवस्था है।

मद्रास प्रदेश मे सुधार कार्य को श्रीमती बेंकट सुब्बा राव द्वारा स्थापित 'मद्रास सेवा सदन[5]' (स० १६२६) तथा श्रीमती मुलुलक्ष्मी रेड्डी द्वारा स्थापित 'अवाई गृह तथा आश्रम[6],' (स० १६३०) के सुधार प्रयत्नों द्वारा विशेष बल दिया है। इसी प्रकार मैसूर राज्य में 'मजलिसी रिफाहुल मुसलिमीन कन्या अनाथालय[7]' (स० १६०७), 'अबलाश्रम[8]' बगलोर (स० १६१४), 'गुरुकुल सेवा सघ[9]' (स० १६२८), 'सेवा सदन[10]' 'बगलोर (स० १६३०),' तथा राघवेन्द्र स्वामी द्वारा स्थापित 'अनाथ सेवाश्रम[11]' मल्लाधिहल्लि (स० १६४३) के द्वारा निराश्रित महिलाओ का आश्रय देने, उनमे शिक्षा प्रचार करने, औद्योगिक क्षेत्र मे प्रशिक्षित करने, धार्मिक मनोवृत्ति का विकास करने, गृह-संचालन सम्बन्धी निर्देश देने तथा राष्ट्रीय सेवाओ के लिए उनका मार्ग प्रशस्त करने सम्बन्धी विषयों को लेकर विशेष

१—'सोशल वेल फेयर इन इन्डिया,' पृष्ठ ६७८।
२— ,, ,, पृष्ठ ६८१।
३— ,, ,, पृष्ठ ६८२।
४— ,, ,, पृष्ठ ६८०।
५— ,, ,, पृष्ठ ७३२।
६— ,, ,, पृष्ठ ७३३।
७— ,, ,, पृष्ठ ७४०।
८— ,, ,, पृष्ठ ७३६।
९— ,, ,, पृष्ठ ७४२।
१०—'सोशल वेल फेयर इन इन्डिया' पृष्ठ ७४०।
११— ,, ,, पृष्ठ ७४१।

कार्य किया गया है। त्रावनकोर कोचीन मे भी श्रीमती राम वर्मा द्वारा स्थापित 'एर्नाकुलम् वीमन्स एसोशियेशन एण्ड क्लब'[1] (स० १६१६) नारी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सुधारों की व्यवस्था करने मे विशेष रूप से प्रयत्नशील है। क्लब मे समय-समय पर महिला सम्बन्धी व्याख्यान आयोजित किए जाते है। दूसरी सस्था कोतयम स्थित 'महिला अनाथालय'[2] (१६२३) है, जिसमें अपहृ्टत बालक-बालिकाओं का भरण-पोषण किया जाता है तथा आरम्भिक शिक्षा दी जाती है। श्रीमती माधई अम्भा द्वारा स्थापित 'वनिता समाजम् कथई मण्डल'[3] (स० १६४३) महिला विषयक गाँधी जी के विचारो को स्वरूप प्रदान करने हेतु सचेष्ट है। नारी वर्ग मे स्वच्छता, स्वास्थ्य तथा औद्योगिक जीवन का विकास इस मण्डल का प्रमुख उद्देश्य है।

उपसंहार

महिला-जागृति में सहायक उपर्युक्त उपादानों की सक्षिप्त विवेचना कर लेने के पश्चात् निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि इस काल मे महिला वर्ग को प्राप्त सामाजिक, राष्ट्रीय एव आर्थिक स्वीकृति की पृष्ठ-भूमि मे इस काल के समाज-सेवियों, राजनीतिज्ञो तथा शिक्षा-शास्त्रियो का योगदान विशेष रूप से सहायक रहा है, जिन्होने परम्परागत नारी स्थिति मे अभूतपूर्व परिवर्तन कर उसे नवीन मान्यता और महत्व प्रदान किया[4], तथा जिसका यह दृढ विश्वास था कि भारत की प्रगति भारतीय महिला के साथ सुसम्बद्ध है यदि भारत अपने अतीत गौरव की प्राप्ति करना चाहता है तो उसे नारी को राष्ट्रीय उत्थान के इस महान् कार्य मे सहयोग देने के लिए पूर्व स्वीकृति देनी होगी[5]।

१—'सोशल वेल फेयर इन इन्डिया,' पृष्ठ ७५४।
२— " " पृष्ठ ७५२।
३— " " पृष्ठ ७५४।
४—'वीमन ऑफ इन्डिया' : पृष्ठ ३२। (भारत सरकार द्वारा प्रकाशित)
५— " " पृष्ठ ३२।

१६वी शताब्दी में उदार-पन्थी सुधारको द्वारा नारी के नवोत्थान की जिस प्रेरणा को कार्य-क्षेत्र प्रदान किया गया था, बीसवी शताब्दी मे गाँधी जी की राष्ट्रीय विचारधारा तथा उनके नारी-सम्बन्धी पुरोगमो से उस अतीत प्रेरणा मे एक नवीन प्रकरण का आरम्भ हुआ, जिसके फलस्वरूप महिला वर्ग मे राष्ट्रीय चेतना विकसित हुई। महिला-क्षेत्र मे राष्ट्रीय चेतना की यह प्रेरणा काँग्रेस के सस्थापक सदस्यो मे प्रमुख श्री ह्यूम द्वारा पहिले ही मुखरित हो चुकी थी।

'Political reformers of all shades of opinion should never forget that unless the elevation of the female element of the nation proceeds PARI PASSU with the work, all their labour for the political entranchment will prove vain[१].

इसी प्रेरणा को गाँधी जी और उनके सहयोगियों द्वारा निश्चित दिशा प्रदान की गई। यह सत्य है कि उन्होने पुरुष और नारी के भिन्न-भिन्न कार्य-क्षेत्रो की स्थिति स्वीकृति की है, किन्तु दोनो वर्गों के अधिकारो की व्याख्या समान तथा प्रजातन्त्रात्मक भाव-भूमि पर ही हुई है[२]।

इस काल मे जहाँ एक ओर राष्ट्रीय आन्दोलन विदेशी सत्ता के विरोध मे बल प्राप्त कर रहा था, वहाँ दूसरी ओर देश मे पूँजीवादी और जमीदारी व्यवस्था को विनष्ट करने के लिए निम्न वर्गीय समाज के प्रयत्न आरम्भ हो गये थे। फलस्वरूप आन्दोलनो के इस विस्तृत कार्य-क्षेत्र में नारी का कार्य-क्षेत्र और भी विशाल हो गया। यदि नगरो मे वह राष्ट्रीय आन्दोलनो मे भाग लेती थी, तो ग्रामों मे जमींदारी व्यवस्था के विरुद्ध चल रहे अखिल भारतीय किसान आन्दोलनो मे भी सहयोग वाँछनीय समझा गया। मानसिक चेतना के युग मे जैसे-जैसे नारी सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करती गयी, वैसे-ही-वैसे उसमे अपनी स्थिति को उन्नत करने तथा अपने अधिकारों को प्राप्त करने की प्रेरणा भी बलवती होती गई। साथ-ही-साथ उसकी नागरिक भावना का भी विकास होता चला गया[३]। 'असहयोग तथा अवज्ञा 'आन्दोलन', 'दाँडी यात्रा' तथा 'भारत छोड़ो' आदि राष्ट्रीय आन्दोलनो मे उसका योगदान इसी नागरिक भावना के विकास का सूचक है। इस प्रकार इन राष्ट्रीय आन्दोलनों के विकास से भारतीय नारी आन्दोलन का विकास हुआ[४]।

१—मरडॉक जान द्वारा 'ट्वेल्व इयर्स ऑफ इन्डियन प्राग्रेस,' पृष्ठ ३६ पर उत्कथित।
२—नीरा देसाई : 'वीमन इन माडर्न इन्डिया,' पृष्ठ १३७।
३—ओ मैंले : 'माडर्न इन्डिया एण्ड द वेस्ट' पृष्ठ ४७६।
४—नीरा देसाई : वीमन इन माडर्न इन्डिया,' पृष्ठ १४६।

राष्ट्रीय आन्दोलनो मे प्रोत्साहन पाने तथा सार्वजनिक क्षेत्र मे अवतीर्ण होने के परिणाम स्वरूप भारतीय महिला मे आत्म-विश्वास की भावना का प्रस्फुठन हुआ। फलत परम्परागत कुरीतियो के मूलोच्छेदन के लिए वह कटिबद्ध हुई। उसमे शिक्षा का विकास हुआ। उसकी वैयक्तिकता शोषण के प्रति विरोध का स्वर उठा, तथा वैधानिक सहायता प्राप्त कर, समान स्थिति तथा अवसर की प्राप्ति का मार्ग खोजने लगी। इस युग की महिलाओ ने पुरुष की दया और सहानुभूति की पात्रा न बन कर स्वयं भी अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया, तथा सफल हुई। नारी आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ मे लेकर उन्होने अपनी क्षमता, कार्य-शीलता एवं कर्त्तव्य परायणता तथा अधिकारो के प्रति जागरुकता का परिचय दिया तथा राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था, और राजकीय और समाज सेवाओ के सभी क्षेत्रो मे प्रवेश कर दिया कि वे बौद्धिक बल मे पुरुष समाज से किसी भी प्रकार से हीन नही हैं। 'उन्होने अपने स्वतन्त्रता संघर्ष के आन्दोलन को स्वय सचालित कर समस्त भारतवर्ष मे राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तर पर अनेकानेक सुधार सस्थाओ की स्थापना की'[2]। इस प्रकार इस नव-युगीन नारी ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सहयोग देने के साथ-साथ अपनी सामाजिक चेतना का भी विकास किया, तथा अपने प्रत्येक दुर्बल-पक्ष को सबल लनाने की दिशा के प्रयत्न किए। इसी काल मे पहली बार मध्य वर्गीय महिलाओ को सामाजिक कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर प्राप्त हुआ। तथा मुस्लिम महिलाओ द्वारा सुधार-कार्य का श्री गणेश किया गया। नारी ने अपनी स्थिति को सम्मानित पद पर आसीन करने के लिए वैधानिक अधिकारो की माँग की। अपने वर्ग की पतित बहिनों के उद्धार के लिए उनके द्वारा आश्रम एव सुधार सस्थाओ की स्थापना हुई। नगर क्षेत्रो के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रो मे भी ग्राम-सेविकाओं द्वारा सुधार-कार्य को प्रोत्साहित किया गया। सरकार की ओर से आदि-जातीय महिलाओ मे भी उनको स्वस्थ दिशा देने के उद्देश्य से प्रयत्न किए जा रहे हैं। १९वी शती मे इस आन्दोलन का क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित था, अब इस काल में उसकी सीमा का विस्तार राष्ट्रीय स्वरूप मे हुआ तथा सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता प्राप्त है। स्वय अर्जित धन की वह स्वामिनी है, और इसलिए अपने भरण-पोषण के लिए पुरुष पर अवलम्बित न रह कर उसने एक बार फिर से स्वाभिमान युक्त स्थिति को प्राप्त कर लिया है, और इसीलिए आज उसका कार्य-क्षेत्र खेत-खलिहान और पारिवारिक सीमाओ तक परिबद्ध न रह कर विस्तृत हो गया है। उसके लिए शैक्षणिक संस्थाओं, चिकित्सालयो, राजकीय सेवाओं, विभिन्न कार्यालयो तथा विज्ञान शालाओ आदि सभी दिशाओ मे प्रवेश-द्वार खुले हैं और वह अपनी रुचि और योग्यतानुसार किसी भी क्षेत्र मे कार्य करने के लिए स्वतन्त्र है।

२—नीरा देसाई : 'वीमन इन माडर्न इन्डिया,' पृष्ठ १४६।

नारी-समाज द्वारा अर्जित इतनी उपलब्धियों के साथ-साथ इस नव-जागरण के आलोक में नारी स्थिति के अन्य पक्ष की चर्चा भी अपेक्षित है। नारी-वर्ग को प्राप्त सैद्धान्तिक समानता उसे पूर्ण रूप से सामाजिक स्तर पर सम्मानित पद प्रदान नही कर पाई है। उसका सम्पूर्ण जीवन आज भी पुरुष पर पूर्णतया आश्रित है। अपनी इच्छानुकूल वह विवाह कर सकने में असमर्थ है। विवाहोपरान्त उसकी स्थिति मे कोई विकास नही होता[1]। वह आज भी पुरुष की इच्छानुसार अपना पथ निर्दिष्ट करती है। विधवा-विवाह समाज-मान्य होते हुए भी व्यावहारिक भाव-भूमि पर अव्यावहारिक है। बाल-विवाह की समाप्ति के उपरान्त अब काफी अवस्था तक विवाह न होने की दूसरी समस्या उत्पन्न हो गई है। अन्तर्जातीय विवाहों के प्रति आज भी स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास नही हुआ है। नारी की आर्थिक स्थिति भी उन्नत नहीं हो पाई है। धनोपार्जन-क्षेत्र मे वह पुरुष से बहुत पीछे है[2]। विवाहिता महिलाओं द्वारा अपनी आय को अपनी सुविधानुसार उपयोग करने का अधिकार नहीं है। उनकी भाँति उनके द्वारा अर्जित धन भी पुरुष की सम्पति है[3]। अविवाहित महिलाएँ अथवा विधवाएँ यदि घर से बाहर धनोपार्जन के लिए कोई कार्य करती हैं तो उन्हे बहुधा अपने पुरुष अधिकारियों की पाशविक वृत्ति का शिकार बनना पड़ता है : कई अवसरों पर वे आत्माभिमान की रक्षा नही कर पाती। जन-सख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि भी नारी का पुरुष की अपेक्षा दुर्बल होना ही सिद्ध करती है[4]।

सुधार संस्थाओं के इस विकास काल में इन संस्थाओं द्वारा एक विशिष्ठ वर्गीय महिलाओं को ही सम्मान की प्राप्ति हुई है। नारी के प्रति लोक-सम्मान की भावना अभी तक संकीर्ण धाराओ मे आबद्ध है। इन संस्थाओं द्वारा अपहरित महिलाओं की रक्षा, निराश्रित महिलाओ का पालन-पोषण एवं आर्थिक सहायता, उनकी शिक्षा, प्रशिक्षण एवं विधवाओ तथा अवैधानिक शिशुओं का संरक्षण आदि जो भी सुधार-कार्य सम्पन्न किए जाते हैं, वे सब नारी की दयनीय, दुर्बल और हीनावस्था का ही रहस्योद्घाटन करते हैं। पाश्चात्य महिला संस्थाओं की भाँति भारतीय महिला सस्थाएँ उच्चत्तर मानसिक भाव-भूमि के लिए किसी प्रकार का अवसर प्रदान नही करती। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विचार विमर्श तथा कल्याण भावना का विकास करने की दिशा में बहुत कम संस्थाओं द्वारा प्रयत्न किया जाता हैं, और जो प्रयत्न होते भी है, उनमे

१—चन्द्रकला हाते : 'हिन्दू वीमन एण्ड हर फ्यूचर,' पृष्ठ २२२।
२—जाथर और बेरी : 'इन्डियन एकानामिक्स्,' पहली पोथी, पृष्ठ ४६।
३—चन्द्रकला हाते : 'हिन्दू वीमन एण्ड हर फ्यूचर' पृष्ठ २२४।
४—थामस : 'वीमन एण्ड मेरिज इन इन्डिया,' पृष्ठ १६५।

सैद्धान्तिकता की मात्रा इतनी अधिक होती है, कि उनका व्यावहारिक पक्ष विनष्ट हो जाता है। एक प्रकार से ये भारतीय सस्थाएँ मात्र प्रस्ताव पास करने तथा कुछ निराश्रित महिलाओ के भरण-पोषण और शिक्षा की व्यवस्था करने तक ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेती हैं। इनका कार्य-क्षेत्र अभी तक नगरो तक ही सीमित रहा है। भारत ग्रामों का देश है अत ग्रामीण महिलाओ को उन्नत करने तथा उनकी स्थिति में विकास करने की बात बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। समाज सेवियों तथा सुधार सस्थाओ द्वारा अभी इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया जा सका है। श्रीमती मारगेरेट कज़िन्स इन ग्रामीण महिलाओ को स्थानीय पचायतो मे स्थान देने का पक्ष समर्थन करती हैं—

Village women must rise to insisting on their inclusion on local Panchayats. If men seek the advice of women of the family, about money matters in personal affairs, they must take it about the village affairs and the public affairs which also effect women's interest[1].

राष्ट्रीय विकास योजनाओ के इस काल मे भारतीय महिलाओं का भविष्य उन ९० प्रतिशत लोगो के साथ मे सलग्न है जो खेतो तथा अधेरी फेक्टरियो मे कार्य करते हुए अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

'The future of women in India lies with those 90%, who toil and labour in the fields and dark factories and the amount of consciousness that can be roused in them to the rights of their class, for it is with them that the right of their sex are bound up and the measure of the power and influenee they weild will be determind by the strenth of the class they belong to,'[2]

परन्तु इतनी न्यूनताओं के होते हुए भी इस युग में प्राप्त स्वतन्त्र भारत के महिला-वर्ग को ब्रिटिश कालीन नारी समाज की अपेक्षा अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए कही अधिक विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया है, जिसकी किसी भी प्रकार से उपेक्षा नही की जा सकती। शिक्षा के विकास ने उसकी आर्थिक स्थिति को प्रभावित किया है तथा आत्म-निर्भर जीवन बिताने के क्षेत्र को स्वरूप किया है। वे अपने लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में निरन्तर अग्रसर हैं।

१—मारगेरेट कज़िन्स : इन्डियन वीमनहुड टुडे, पृष्ठ १७१।

२—इक़बाल सिंह तथा राजा राव, : व्हीदर इन्डिया (स०) पृष्ठ १७४-१७५

प्रकरण—४

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में नारी

प्रकरण—४

उत्थान-काल

(१८५७-१९००)

दूसरे अध्याय में हम कह आए हैं कि भारतीय समाज पाश्चात्य प्रभाव में आकर अपनी बोझिल, संकीर्ण एव रूढ़िगत व्यवस्था के प्रति विद्रोही हो उठा था। पुरानी परिपाटी पर प्रस्थापित आदर्श नवीन आनीत सस्कृति के आलोक में धूमिल से पडने लगे थे। दूसरी ओर भारतीयता के पोषक महान् समाज सुधारकों द्वारा सामाजिक पुनरुत्थान की भावना को बल प्राप्त हो रहा था और इस प्रकार इन दोनो वर्ग के विचारकों एवं सुधारकों द्वारा वर्तमान के प्रति खीझ उत्पन्न होकर सामाजिक उत्कर्ष की चेष्टा दृढ़ता के सोपान की ओर अग्रसर हो रही थी। सामाजिक क्षेत्र मे सुधार और उन्नयन की यह भावना तत्कालीन हिन्दी साहित्यकारों की लेखनी से भी उद्भूत होकर जन-साधारण के मस्तिष्क मे नवीन विचारों के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने लगी। किसी भी देश और काल में साहित्य और समाज को परस्पर बिच्छिन्न शिविरो में विभाजित करके उनका अवलोकन, अध्ययन और अनुशीलन नही किया जा सकता, क्योकि कवि सबसे बडा समाज-शास्त्री होता है। एक सीमा तक कलात्मक श्रम की प्रयोगवादिता से सहमत होते हुए भी वह अपनी सृजन-शक्ति को आगे चल कर सामाजिक उपयोगिता के उन प्राकृतिक स्रोतों में प्रवाहित करता है जहाँ चल कर साहित्य के समस्त काव्यात्मक और सौन्दर्यात्मक प्रयत्नो की परिणति एक क्रियात्मक और श्रेणी संघर्ष की शक्तियो से प्रसूत क्रान्ति प्रदर्शन मे होती है[1]।

'उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध तक हिन्दी की प्रधान और एक प्रकार से एक मात्र साहित्यिक सम्पत्ति, काव्य विषयो, भावों, विचारों, रूपो, भाषा तथा शैली की दृष्टि से ताजगी और नवीनता प्रदर्शित नही करती। उसकी दशा एक चिर नवीन स्वच्छ और शक्तिशाली जलधारा के किनारे कटकर बन जाने वाली उस क्षीण धारा के समान थी जो बन्द, मटमैली, शात और दूषित जल से भरी रहती है। और जिसमें कभी-कभी प्रधान धारा की ओर से स्वच्छ जल की लहरें भी तरंगित हो उठती हैं[2]।

१—रामेश्वर शुक्ल अंचल : लाल चूनर की भूमिका, ये कविताएँ में।
२—लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : आधुनिक साहित्य (तृ० स०) पृष्ठ २३।

इसीलिए नई चेतना और जागृति के इस नवीन युग से पूर्व हिन्दी कविता विलास भवनो की शिल्पित नायिका एव श्रृगार कुजो के मध्य वैयक्तिक कुठित भावनाओ की प्रेयसी बन कर शान्ति पूर्ण ऐश्वर्यमय समाज मे वासना का अभूतपूर्व अभिनय कर रही थी। भक्ति-युगीन का वल्लभ कुल की पूज्य राधा, सेनापति, आलम, देव, घनानन्द, दास, तथा पद्माकर आदि रीतिकारो द्वारा लौकिक धरातल पर उतारी जाकर सामान्य प्रेयसी के रूप मे ऐन्द्रिय आकर्षण के प्रचार कार्य मे लगी थी, फलत जीवन के सघर्ष, उसके सुख-दुख तथा समता-विषमता आदि वास्तविकताओ से साहित्य का कोई सम्बन्ध न रह गया था। और वैविध्य के अभाव मे स्थिर हो कर वह जन-समाज के लिये अनिष्ट का कारण बन रही थी। ऐसी ही परिस्थितियो के बीच नवीन सामाजिक सस्कारों से हिन्दी कविता का सम्पर्क स्थापित हुआ। परिणामस्वरूप साहित्य की धारा, जो अब तक जन जीवन की तलहटियो से विच्छिन्न, कृत्रिम नालियो मे प्रवाहित हो रही थी फिर से सामाजिकता के कगारो को छूती हुई बहने लगी। विदेशी शक्ति द्वारा भारतीय जीवन के सचालन कार्य ने भारतीय भूमि मे नए माप-दण्डो की आयोजना स्थापित कर लोक व्यवहार, सास्कृतिक पुनरुत्थान एव राजनीति के क्षेत्र मे जिन नवीन आदर्शों को प्रस्थापित किया उनके प्रभाव से हिन्दी साहित्य भी अछूता नही रह सका। हिन्दी साहित्य मे राजनीतिक चेतना एव सामाजिक जागृति का प्रथम गुरु-मत्र भारतेन्दु ने फूंका और अपने साथ साहित्यकारो के एक स्कूल को लेकर उन्होने विषय-क्षेत्र मे युगान्तर प्रस्थापित किया और इस प्रकार 'शताब्दियो से भक्ति या श्रृगार, चुम्बन और आलिगन, रति और विलास रोमॉच और स्वेद, स्वकीया और परकीया की लडियो मे जकड़ी हुई हिन्दी कविता को भारतेन्दु ने सर्व प्रथम विलास भवन और लाल कुजों से बाहर लाकर लोक जीवन के राज पथ पर ला खड़ा कर दिया। हिन्दी कविता मे भारतेन्दु ने सर्व प्रथम समाज के वक्षस्थल की धडकन को सुना। ....सामाजिक क्षेत्र मे जाति-पाँति के टटे और खान-पान के पचडे और बाल-विवाह और नैतिक पक्ष मे पारस्परिक कलह और विरोध, उद्यम हीनता और आलस्य, भाषा, भेष-भूषा की विस्मृति तथा राजनीतिक क्षेत्र मे पराधीनता और दासता...जीवत के ये भिन्न-भिन्न स्वर उनकी वेणु से प्रसूत होने लगे।'

(सुधीन्द्र) हिन्दी कविता में युगान्तर, प्रं॰ स, पृष्ठ २६

भारतेन्दु पितृ-अर्जित वैष्णव सस्कारो को लेकर साहित्य-क्षेत्र में अवतरित हुए थे। मध्य काल से चली आ रही रीति-कालीन कविता की उन पर छाया पडी थी और साथ ही नए युग की नव-चेतना की पुकार भी उसके कर्ण कुहरो मे गूज रही थी इसीलिए भारतेन्दु साहित्य इन त्रिविध धाराओं की संगम-स्थली बन पड़ा है, और इसीलिए अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और

द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पडते थे, दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी मे। एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति मे झूमते हुए नई भक्त-माल गूँजते दिखाई देते, दूसरी ओर मदिरो के अधिकारो और टीका-धारी भक्तो के चरित्र की हँसी उडाते और स्त्री-शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है[1]।

भारतेन्दु की समकालीन सभी साहित्यकार भारतेन्दु को अपना पथ-प्रदर्शक, नेता, तथा गुरु मान कर चले। इसी कारण उनके द्वारा भी रीति-कालीन परम्परा का निर्वाह तथा समाजोपकारी साहित्य की सृजना साथ-साथ हुई है। उपर्युक्त काल वास्तव मे पूर्वी तथा पश्चिमी सभ्यताओ का सघात काल है, उस काल के समाज सुधारकों, विचारकों एव साहित्य सेवियो के सम्मुख प्रमुख रूप से समाज सुधार की नवीन चिन्ताएँ विद्यमान थी। काव्य सृजन के क्षेत्र मे भले ही भारतेन्दु ने 'घुँघरारे लटकारे कारे बिथुरे सुथरे केस, एडी लो लाम्बे अति सीमित नव जलधर के भेस[2] कहकर रीतिकालीन नखशिख वर्णन परम्परा का निर्वाह किया हो, चाहे 'छरी सी छकी सी जड़ भई सी जकी सी घर, हारी सी बिकी सी सो तो सब ही धरी रहे[3]' द्वारा नायिका के माँसल प्रेम की उष्णता एवं विरह दशाओ को प्रदर्शित किया हो और चाहे—

'सखि मेरे सैया नहिं आए बीति गई सारी रात
दीपक-ज्योति मलिन भई सजनी होय भयो प्रभात[4]'

और

'एक साँझ मैं थी अकेली गलियों आती
लिए अंचल नीचे घर-हित दिआ बाती
आए इतने मे सखि मेरे बाल सघाती
उन दीप बुझाय लगाय लई मोंहि छाती
मैं औचक रह गई, कियो जोई मनमानी
पिय प्यारे की मैं कह लो कहो कहानी[5]'

१—रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, ग्यारहवाँ संस्करण पृष्ठ ४२३-४२४।

२—भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग १) पृष्ठ ८।

३— ,, ,, पृष्ठ ४५७।

४— ,, (भाग २) पृष्ठ ४७। (प्रेम मलिका)

५— ,, (भाग २) पृष्ठ १९६। (प्रेम तरंग)

सुनाकर लौकिक भाव-भूमि पर उतर आए हो, परन्तु फिर भी नवीन सामाजिक चेतना एव जागृति से प्रभावित उनके स्वर जहाँ भी उच्चरित हुए हैं, उनमे जागरण का शंखनाद है, आबद्ध व्यक्तित्व सामाजिको के लिये प्रगति का नवीन सदेश हैं और नवीन मान्यताओ को ग्रहण करने का प्रभावशालिनी पुकार है 'रीति-कालीन कवियों की तरह वे साहित्य के कठघरे मे बन्द नही रहे। उन्होने साहित्य मे जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति की चाल चलाई"[1]। 'उन्होने साहित्य और जीवन का सम्बन्ध स्थापित कर परस्पर विच्छेद की गहराई को पाट दिया[2]।'

प्राचीन और नवीन के इस सधि काल मे सामाजिक-उद्‌बोधन के क्षेत्र में जिन नवीन विचार धाराओ को जन्म मिला उनमे नारी भावना भी प्रमुख थी। रीति-कारो ने जिस नारी मे केवल माँसलता, उत्तेजना और हास-परिहास ही देखा, सधि युग के इन साहित्यकारों ने उसे प्रणय की उस लौकिकभाव-भूमि से ऊँचा उठा कर उसकी सामाजिक स्थिति, उसकी समस्याएँ, उसकी विवशता और अश्रु भी देखे उसके विभिन्न रूपो एव वर्गों की ओर भी दृष्टिपात किया, आर्य-समाज तथा ब्रह्म-समाज के सुधार-प्रचार कार्यों तथा बगाली भाषा के प्रगतिशील साहित्य से हिन्दी साहित्यकार भी प्रभावित हुए और उन्होने वाणी के माध्यम से नारी स्थिति के उन्नयन में योग प्रदान किया। संधि काल मे किए गये नारी-चित्रण को हम सामान्यत: निम्निलिखित वर्गों मे विभाजित कर सकते है।

१. रीति-कालीन नायिका चित्रण।
२. नारी का सत् रूप।
३. असत् रूप मे नारी।
४. नारी स्थिति सम्बन्धी सुधारवादी दृष्टिकोण।
५. विभिन्न सम्बन्धो मे नारी।
६. विभिन्न वर्गो मे नारी।

रीति-कालीन नायिका चित्रण

इस उत्थान युग में जिन साहित्यकारों द्वारा नारी में रीतिकालीन नायिका को देखा गया है उनमे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा बदरीनारायण 'प्रेमघन' प्रमुख है। वैष्णव धर्म से प्रभावित हरिश्चन्द्र मे राधाकृष्ण भक्ति की पूर्ण निष्ठा विद्यमान है। इस युगल के सम्मुख उनका मस्तक सदैव नत है। 'भक्त सर्वस्व' उनकी इस समर्पण भावना का उज्ज्वल प्रतीक है। अपनी इस रचना की प्रस्तावना मे उन्होने स्वय इसकी पुष्टि की है।...'यद्यपि इसकी कविता काव्य के सब गुणों से (सत्य ही) हीन है, तथापि इसका मुझे सोच नही है, क्योकि यह ग्रन्थ मैंने अपनी कविता प्रगट करने

१—रामरतन भटनागर : 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र,' पृष्ठ २२।
२—किशोरी लाल गुप्त : 'भारतेन्दु तथा अन्य सहयोगी कवि,' उपक्रम, पृष्ठ २।

और कवियो को प्रसन्न करने को नही लिखा है केवल अपनी वाणी पवित्र करने और प्रेम रग मे रगे हुए वैष्णवो के आनन्द हेतु लिखा है[१] ।'

भक्ति भावना के इतने चरम उत्कर्ष के साथ-साथ उन्होने 'प्रेम मलिका' मे अपने आराध्य को रीतिकारो के नायक-नायिकाओ की कोटि मे ला खडा किया है। 'प्रेम मलिका' की राधा अपने नेत्रो पर वश नही रख पाती। लोक लाज की सीमाओ मे बदिनी होते हुए भी कृष्ण की ओर खिच ही जाती है[२]। इस लाज के बन्धन को तोड़कर जहाँ 'आलम' की नायिका यह कहती हुई दिखाई देती है—

'लाज तजि जिहि काजु सखि
इन लोगन मे बसि आपु हसाऊँ।
'आलम' आतुरता अति ही
तिहि लालचु हौ तुम्हारे सग आऊँ।
कान्ह मिले तो मया करि चाहत
हौ न कछू जिय हू की सुनाऊँ।
देखनु को अखियान महा सुख
जो असुवानि सो देखन पाऊँ[३]।

वहाँ भारतेन्दु की नायिका उस लोक लाज पर अपशब्दों की वर्षा करती हुई दृष्टिगोचर होती है, जिसने उसे मदन मोहन के साहचर्य से वचित कर दिया है—

'अरी सखी, गाज परो ऐसी लोक लाज पे मदन मोहन
संग जान न पाई
हो तो झरोखे ठाढी देखत ही कछु, आए इते मे कन्हाई
ओचक दीठ पड़ी मेरे तन, हसि कछु बंसी बजाई
हरीचन्द मोहिं बिवस छोडि कै,
तन मन धन प्रान तीनो संग लाई[४]।

लोकिकता के इस वर्णन क्षेत्र में, 'प्रेमघन' सेनापति की भाँति भारतेन्दु से एक पग आगे है। होलिका उत्सव मे यौवन की ड्योढ़ी पर नवागता किशोरी के रूप वर्णन मे जहाँ सेनापति ने—

१—व्रज रत्न दास : भारतेन्दु ग्रन्थावली (सं०) (भाग २), पृष्ठ ४, (भक्त सर्वस्व)
२—भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग २), पृष्ठ ४६, (प्रेम मलिका)
३—नगेन्द्र : रीति श्रृंगार (सं०) पृष्ठ ८४।
४—भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग २) पृष्ठ ४७। (प्रेम मलिका)

'नवल किशोरी मोरी केसरि तँगोरी छैल
होरी मे रही है मद जोबन के छकि कै
चपे कैसी ओज, अति उन्नत उरोज पीन
जाके बोझ खीन कटि जाति है लचकि के'[1]।

कहकर नायिका के अग-प्रत्यगो को आकाँक्षित आँखों से देखा है वहाँ प्रेमधन—

'कुच कठिनाई की कहो तो कौन समता है
करद कटाछ्न की काट किहि तोर है
मृदु मुस्क्यानि की मजा और माधुरी अधर
पिय को सजोग सुख और किहि ठोर है'[2]।

द्वारा अनुभवात्मक भाव-भूमि पर रमते विचारते दिखाई पड़ते हैं। उनकी 'प्रेम पीयूष वर्षा' तथा 'लालित्य लहरी' मे नायिका का साँगोपाँग वर्णन, विरह, मिलन, आकाँक्षा आदि सभी भावनाएँ रीति-कालीन काव्य परम्परा की प्रेरणा से उद्भूत प्रतीत होती है। प्रेमघन मे भी वेष्णव मूलक भक्ति निष्ठा भारतेन्दु की ही भाँति विद्यमान थी, किन्तु लगता है कि भक्ति-निरुपण की अपेक्षा शृगार चित्रकारी मे उनका मन अपेक्षाकृत अधिक रमा है और इससे भी अधिक सफलता उन्हे नवीन भावनाओ का चित्रण करने मे मिली है। प्राचीन रीति परम्परा के सफल कवि होते हुए भी उनके अधिकाश साहित्य मे नवीन जागृति के प्रति आकर्षण,[3] सामाजिक समस्याओ के प्रति विक्षोभ[4] और अतीत के प्रति निर्मल पवित्र[5] कल्पना बिखरी पडी है। समाज द्रष्टा इन साहित्यकारो द्वारा रीति कालीन परम्परा के निर्वाह को लेकर डा० वार्ष्णेय के शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि समय की तीव्र गति से मानसिक प्रगति सदैव पिछड़ी हुई रही है। यह भी साहित्य रचना का एक कारण है। समाज के मध्यम वर्ग ने उसे बनाए रखने की चेष्टा की। प्राचीन गौरवशाली साहित्य की परम्परा में होने के कारण उसका महत्व अवश्य है परन्तु वह मृत प्राय. हो चुका था। उसका अन्त हिन्दी साहित्य की एक महान् घटना है[6]। फिर रीति परम्परा का

१—नगेन्द्र : रीति शृगार (स०), पृष्ठ ३६।
२—प्रेमधन सर्वस्व (भाग १), पृष्ठ २०२।
३—वही, (भाग १), पृष्ठ २००। (जीर्ण जनपद)
४—(अ) वही, (जीर्ण जनपद ६१६-६२०),
(ब) वही, (हार्दिक हर्षादर्शक) पृष्ट २८१।
५—वही, (स्वदेश विन्दु) पृष्ठ ६३१।
६—लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय (आधुनिक हि० सा०) पृष्ठ ३४२।

निर्वाह करते हुए भी इन साहित्यकारो द्वारा जान बूझ कर सीमा उल्लघन करने की चेष्टा नही की गई है और यह नूतन परिस्थितियो का प्रभाव है। इस नवीनता से आकर्षित, इसके साथ-साथ अपने मनोविकारो का सामजस्य, इस काल की अपनी विशेषता है।

नारी का सत्-रूप

इस काल मे साहित्यकारो की दृष्टि नारी के सत् रूप की ओर भी उन्मुख हुई। नारी की हीनावस्था और विषाद युक्त परिस्थिति के इस प्रहर मे उसकी स्थिति को सम्मानपूर्ण पद देने तथा सामाजिक क्षेत्र मे उसके अस्तित्व की प्रतिष्ठा प्रस्थापित करने की दिशा में जो प्रयत्न किये गये, नई पीढी उससे अत्यधिक प्रभावित हुई। भारतीय नारी के अतीत आदर्शो को इसी काल मे प्रोत्साहित किया गया। 'स्त्री, समाज की अधिष्ठात्री देवी के रूप में पूज्य हुई। महिलाकुल मे सतीत्व को उस जाज्वल्यमयी प्रभा का प्रकाश देखा गया जिसके कारण भारतवर्ष भूमण्डल का आदर्श गुरु रहा है'[1]। प्रेमधन ने 'स्वदेश विन्दु' के अन्तर्गत प्राचीन महिलाओ का गुणगान किया और उनमे निहित लज्जा, दया, धर्म, पति सेवा आदि बन्दनीय महान् गुणो के सम्मुख अपना मस्तक नत किया[2]। राधाकृष्ण दास ने नारी हृदय मे अन्तर्निहित शक्ति-रूप का उद्घाटन किया। 'महारानी पद्मिनी' नाटक मे पद्मिनी अलाउद्दीन द्वारा प्रणय आकाक्षा प्रदर्शित की जाने पर क्रोध पूर्ण स्वर मे उसे फटकारती है...'दुख यही है कि तेरे हाथ में शस्त्र नहीं है, तो तुझ से इस पृथ्वी की रक्षा करती। तेरे पापो का फल तुझ को देती, यदि तुझ मे कुछ भी सामर्थ हो तो आ शस्त्र ले और मुझ से लड। देख क्षत्राणियों का सतीत्व भग करना कैसा होता है प्यारी किस मुँह से कहना होता है'

(राधाकृष्ण दास—महारानी पद्मिनी नाटक पृष्ठ ४२, ४३)

शक्तिमयी होने के साथ-साथ नारी अपने हृदय मे प्रेम की एक निष्ठा को भी धारण किए हुए है। किशोरीलाल गोस्वामी के 'राजकुमारी' उपन्यास की सुकुमारी मानिक की प्रेयसी बन कर, उसके उपरान्त किसी अन्य से विवाह करने की कल्पना भी नही करती। मानिक के मन की आशका को वह एक स्थल पर 'तुम पागल हो, कुलवंती लडकियों का कही दो बेर व्याह होता है।' कह कर निर्मूल तथा निराधार बना देती है[3]।

चेतना और दिशा-विकास के इस काल मे नारी प्रेम को अपना अधिकार

१—किशोरीलाल गोस्वामी : आदर्श सती, (द्वि स०) पृष्ठ १२३।

२—प्रेमघन सर्वस्व (भाग १) पृष्ठ ६३१ (स्वदेश विन्दु)

३—किशोरील गोस्वामी : राजकुमारी, (द्वि० स०) पृष्ठ ४६।

प्रमभती है। सत्यवान् पर आकर्षित सावित्री की सहेली जब उसे उसके इस मनोरथ से निवृत करने का प्रयत्न करती है तो वह उसे फटकार बताती हुई कहती है, निवृत करोगी[1] धर्म पथ से। सत्य प्रेम से और इसी शरीर मे।'

(भारतेन्दु ग्रन्थावली . सती प्रताप)

भारतेन्दु ने उपर्युक्त नाटक मे सावित्री के चरित्र मे उस महान् नैतिक भावना का आरोपण किया है जिसके कारण वह मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेती हैं। सावित्री के चरित्र मे नारी का सत् रूप स्पष्टतया मुखरित हुआ है। गोस्वामी जी के उपन्यास 'स्वर्गीय कुसुम' मे तथाकथित पतिता कुसुम के मन मे भी नारी चरित्र की निर्मल, कोमल क्रान्ति विद्यमान है अपनी दयनीय एव घृणात्मक परिस्थिति के मध्य भी उसकी नारी का सत् स्वरूप अनेक अवसरो पर प्रकट होता है। वेश्या होते हुए भी स्नेह के धरातल पर नैतिक नारी की सी एक निष्ठा उसमे विद्यमान है तभी तो वह कहती है—'अब चाहे जान जाय तो भले ही जाय, पर जीते जी रडी के नाकस पेशे को तो मैं कभी न करूँगी, और या तो मैं यों ही मर जाऊँगी, या किसी ऐसे शख्स के साथ आशनाई कर लूंगी, जिसके साथ सारी उमर कट जाय[1]।' वेश्या जीवन की भयावहता को जान चुकने के बाद वह अपने उस्ताद से भी पेशा करने के लिये मना कर देती है[2]।

नारी का असत् रूप

नारी के सत् रूप की अभिव्यजना के साथ-साथ रीति परम्परा के प्रभाव से कही-कही नारी स्थूल शृगारिकता के क्षेत्र मे भी उतारी गई है, तथा उसके प्रति आदर्श भावना का पतन हुआ है और परिणाम स्वरूप वह केवल काम-क्रीडा-सुख प्राप्ति की साधन-मात्र बन कर रह गई है। 'प्रेम पीयूष वर्षा' मे प्रेमघन द्वारा स्थूल शृगार की जो चित्रपटी प्रस्तुत की गई है उसका एक उदाहरण अवलोकनीय है :—

फाग में सोही सुहाग भरी
सखियान के संग सों जैसहि छूटी
त्यों घनप्रेम भरे गह्यो मोहन
खेंचत मोतिन की लर टूटी
बाल रंग्यो तन लाल गुलाल सो
गाल मल्यो रस सम्पति लूटी
नैननि सों असूवा बरसे
सिसके सिकुरी जनु बीर बहूटी[3]।

1—किशोरीलाल गोस्वामी (स्वर्गीय) कुसुम, (द्वि सं०) पृष्ठ २१।
2- ,, ,, पृष्ठ २८-३०।
3-प्रेमघन सर्वस्व (भाग १) पृष्ठ २२२।

हत्या को प्रस्तुत गगा से अपनी करुण दशा की कथा कहती हुई अपने हृदय की दुर्बलता-सरलता-पर दुख प्रकट करती है[1]। भारतेन्दु ने नारी जीवन को इस करुणा से उबारने का प्रयत्न किया है। 'नील देवी' की भूमिका मे उन्होने अपनी इस भावना को स्पष्ट रूप से प्रकट किया है —

'इससे यह शंका किसी को न हो कि मैं स्वप्न मे भी यह इच्छा करता हूँ कि इन गोरॉगी युवती समूह की भाँति हमारी कुल लक्ष्मी गण भी लज्जा को तिलाँजलि देकर अपने पति के साथ घूमे, किन्तु और बातों में जिस भॉति अग्रेज युवतियॉ सावधान होती है, पढी लिखी होती है, घर को काम काज सँभालती है, अपनी जाति और अपने देश की सम्पति-विपत्ति को समझती है, उसमे सहायता देती हैं और इतने समुन्नत मनुष्य-जीवन को व्यर्थ गृह-दास्य और कलह मे ही नही खोती, उसी भॉति हमारे गृह देवता भी वर्तमान हीनावस्था का उल्लघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करे, यही लालसा है।'

: भा० ग्र० (१) पृष्ठ ५१९। 'नील देवी' :

समझदारी आने पर जिस नारी ने अपनी स्थिति को वासना और कामना की पंकिल परिस्थिति मे घिरा हुआ पाया है, ऐसी नारी के प्रति किशोरीलाल गोस्वामी ने पूर्ण सहानुभूति प्रकट की है और उसे वह शक्ति प्रदान की है जिससे वह अपने आत्म-सम्मान की प्रतिकूलता के प्रति प्रतिशोध का स्वर ऊँचा कर सके 'स्वर्गीय कुसुम' मे इन्होने वेश्यावृत्ति और देवदासी प्रथा का खुला विरोध किया है। ये दोनों परम्पराएँ पुरुष की वासना वृत्ति और उच्छ्टखल प्रवृत्ति का परिणाम हैं[2] 'कुसुम' एक स्थल पर कहती है :—

'देवदासी प्रथा व्यभिचार और वेश्यावृत्ति की जड है, और उसे किसी व्यभिचारी महात्मा ने चलाया है'[3] इसी प्रसग मे वह कर्ण सिंह से फिर कहती है— जिस प्रथा से व्यभिचार और वेश्यावृत्ति की दिन दूनी और रात चौगुनी बढवार हो जा रही है, उस प्रथा को धर्म का अग मानना—यह कैसा विचार है। जो देव मन्दिर धर्म के प्रधान स्थान है और जिन देव मन्दिरो की परिचर्या के लिये लोग अपनी कन्याओं को अधिष्ठाता देवताओ की दासी (देवदासी) की पदवी पाकर उन कन्याओं के साथ उन मन्दिरों से पुजारी, महन्त, पंडे या ऐसे और भी बहुतेरे लोग जैसा घृणित भयानक, और पैशाचिक पाशविक अत्याचार किया करते हैं, इन बातो पर कभी आप या आप ही के समान और भी धर्म प्राण महानुभावों ने कुछ विचार किया है'[4].

१—किशोरी लाल गोस्वामी : सुख शर्वरी, पृष्ठ ३२।
२— „ „ 'स्वर्गीय कुसुम,' पृष्ठ ११९।
३— „ „ „ पृष्ठ १३७।
४— „ „ „ पृष्ठ १३८।

इस स्थल पर यह विचारणीय है कि इस काल के समाज सुधारको ने नारी समाज के इस पतित पक्ष के उद्धार के हेतु किसी प्रकार की सक्रिय चेष्टा नही की थी। उनका ध्यान दूसरे प्रकार के सुधारो पर ही विशेष रूप से केन्द्रित था। परन्तु हिन्दी साहित्यकार ने समाज द्वारा पतित, प्रताडित एवं प्रतिलाँछित इस नारी के लिये न्याय की माँग की, और सामाजिको का ध्यान समाज की इस असहनीय बुराई की ओर भी आकृष्ट किया।

इस काल के साहित्यकार ने वैधव्य की ओर भी दृष्टिपात किया। विधवाओं का आधारहीन जीवन, अन्न वस्त्र की समस्या, कुल मर्यादा के आडम्बर को बनाए रखने के लिये उनका तपस्विनी वेश और व्रत, तथा ज्ञान के प्रकाश के अभाव मे उनका मृत्यु सा-जीवन—सभी कुछ उसने अपनी सजल आँखो से देखा[१]। और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उसने विधवा विवाह का समर्थन किया। उसने घोषणा की कि, 'पुर्नविवाह के न होने से बड़ा लोकसात होता है, धर्म का नाश होता है, ललनागण पुश्चली हो जाती हैं, जो विचार कर देखिए तो विधवागण का विवाह कर देना उनको नरक से निकाल लेना है[२]। 'दु.खिनी बाला' का रचयिता भी इस विषय मे सहमत है—इस भारतवर्ष मे बहु-विवाह, बाल-विवाह के होने और विधवा विवाह के न होने से कैसी हानि है।.......हम लोगो द्वारा यह कुरीति जितनी उठे, उतना ही हम अपने को धन्य समझे[३]। श्रीधर पाठक ने बाल-विधवा के अवसादो को, उसकी दयनीय परि-स्थितियो एवं उसके शून्य भविष्य को निहारा है[४]। इनकी रचनाओ मे जिन बातो की अत्यधिक पुनरावृत्ति मिलती है उनमे कायस्थ निन्दा, बाल-विवाह का विरोध तथा पुर्नविवाह का समर्थन ही मुख्य है[५]। पाठक जी ने देश सुधार का विचार[६] नामक कविता 'पश्चिमोत्तर महात्म्य'[७] नामक लेख मे बाल-विवाह का विरोध तथा विधवा विवाह का समर्थन किया है। बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' के माध्यम से विधवा विवाह के समर्थन मे कई लेख लिखे है[८]। एक स्थल पर पुर्नविवाह का पक्ष समर्थन करते हुए उन्होंने लिखा है—क्या यह (विधावा विवाह) उस महान् कर्म की अपेक्षा

१—प्रेमघन सर्वस्व (भाग १) पृष्ठ २८१।
२—भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग १) पृष्ठ ७३।
३—राधाकृष्ण दास · दु खिनी बाला, पृष्ठ १।
४—श्रीधर पाठक : हिन्दी प्रदीप, (जुलाई १८८५) पृष्ठ १९-२०।
५—राजेन्द्र प्रसाद शर्मा द्वारा (हिन्दी गद्य के निर्माता) बालकृष्ण भट्ट में पृष्ठ २०१ पर उत्कथित।
६—हिन्दी प्रदीप : : मई से जुलाई १९०१ मे प्रकाशित।
७—वही, मई १८८४, पृष्ठ ८।
८—हिन्दी प्रदीप : मई १८८१, पृष्ठ २२, अगस्त १८८१, पृष्ठ ४।

बुरा है जो विधवा लोग गुप्त व्यभिचार करा, प्रति वर्ष सैकडो गर्भपात कराय दोनों कुलो को दूषित करती हैं[१] ।

इतना होते हुए भी कुछ साहित्यकार पुर्नविवाह का स्पष्ट विरोध करने में असमर्थ रहे है । स्वय भारतेन्दु ने 'जो विधवा विवाह करती है उसको पाप तो नही होता, पर जो नही करती, उसको पुण्य अवश्य होता है[२] । कह कर बालकृष्ण भट्ट या श्रीधर पाठक की तरह से पुर्नविवाह का तीव्र समर्थन नही किया है। किशोरीलाल गोस्वामी ने वैधव्य की पवित्रता पर विशेष बल दिया है । 'सचमुच बुग्राजी (जो बाल विधवा थी) का मन बहुत ही पवित्र, उदार और प्रशस्त था। उनका चरित्र अत्यत निर्मल, पुनीत और आदर्श था और उनका उद्देश्य अति मनोहर, उन्नत और वात्सल्यरस-पूरित था ।'

(माधवी माधव, पृष्ठ १२)

उपर्युक्त कथनों की पृष्ठ-भूमि मे भारतीय समाज की रूढ धार्मिक प्रवृत्ति विशेष बलवती दिखाई पड़ती है । पाश्चात्य आलोक को स्वीकृति प्रदान करते हुए भी नवीन साहित्यकारों मे प्राचीन परम्पराओ का खुला विरोध करने का साहस नही था । एक ओर तो नवीन मान्यताओ से प्रभावित दिखाई पडते थे, एवं दूसरी ओर प्राचीनता का मोह भी उनकी प्रतिभा को अपने मे बाँधे था । इस उलझन मे वे प्रगतिशील मान्यताओ की ओर मन से आकर्षित हुए भी कथनी मे उससे पिछड़े हुए ही रह जाते थे ।

पुर्नविवाह-समर्थन के साथ-साथ भट्टजी ने अनमेल विवाह का भी विरोध किया । परिवार में फैली अशान्ति के मूल मे अनमेल विवाह भी प्रमुख कारणो में से एक है । इस विषय मे एक स्थल पर उन्होंने लिखा है—'दृष्टि फैलया कर देखित तो इसी अनमेल चित्त के विवाह के कारण कौन सा ऐसा घराना है जहाँ दिन रात का दाँता किट-किट नही हुआ करती[३] ।'

अवस्था में कम पति को पाकर पत्नी अपनी भरी जवानी नेहर मे ही बिता देती है । उसे दुःख होता है कि विवाह के समय उसकी अनुमति क्यों नही ली गई और इस अनमेल विवाह के परिणाम स्वरूप उसका पूर्ण जीवन अपने पिता को कोसते और अपने भाग्य का रोना रोते ही बीतता है[४] । दूसरी ओर एक बालिका का विवाह वृद्ध से कर दिया गया है। वृद्ध से उसका व्यवहार उससे केवल इसीलिए अच्छा है कि उसके किशोर शरीर से वह अपने वृद्ध तन की पिपासा शान्त करने की आशा लगाए है । वह उसे 'जरतारी सारी लंहगा और चोली' का प्रलोभन देता है,

१—हिन्दी प्रदीप : मई १८७९, पृष्ठ १-२ ।
२—भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग १) पृष्ठ ७४ ।
३—हिन्दी प्रदीप : अगस्त १८८६, पृष्ठ ३२ ।
४—प्रेमघन सर्वस्व (भाग १) ५४५-५४६ ।

लेकिन किशोरी की किसी किशोर को पाने की कामना इन भौतिक वस्तुओं से अधिक श्रेष्ठ है इसीलिए वह कहती है—

'आगि लगे तोहरी जर तारी-सारी लहंगा चोली रामा
हरि हरि तुहऊँ के घरि खाय नाग कहूँ काला रे हरी।
... ...
जब लग चढे जवानी हम पर तब तक तूं मरि जाव्य (रामा)
हरि हरि तब हमार फिर होय कवन हवाला रे हरी
फेरि कैसे मन मिले कह . तो मुरदा ओ जिन्दा कै रामा'[1]।

अनमेल विवाह की भाँति बाल-विवाह के प्रति भी साहित्य सेवियो का आक्रोश प्रकट हुआ है। भारतेन्दु ने 'भारत दुर्दशा' मे सत्यानाश फौजदार द्वारा 'बालपन मे व्याही, प्रीति बलनास कियो सब' कहला कर तत्कालीन प्रचलित इस प्रथा पर अच्छा कटाक्ष किया है। इन्ही की भाँति प्रेमधन ने भी 'वर्षा विन्दु' अतर्गत बाल-विवाह पर व्यगात्मक उक्ति प्रस्तुत की है।

नई दूल्ही बनाय, गोदी तोहके उठाय
मुँह चूमब खेलाय, मोरे बारे बारे बलमूं।
पावे पावों न उठाय छाती, बाल पिय पाय
गोरी कह तो सरमाय, मोरे बारे बलमूं।
प्रेमधन अकुलाय, रस बिना बिलखाय
कहे खिल्ली सी उडाय, मोरे बारे बलमूं[2]।

'हिन्दी प्रदीप' की सचिकाओ मे भट्टजी का बाल-विवाह प्रथा के प्रति तीव्र विरोध प्रतिलक्षित होता है। उनके मतानुसार बाल-विवाह के परिणाम स्वरूप असमान दम्पतियो की अभिवृद्धि समाज को नरकमय बना देती हैं। ये असमान दम्पति ही अनाचार और भ्रष्टाचार के प्राकृतिक जनक होते हैं। 'यदि बाल-विवाह बन्द कर दिए जायें तो पुरुषों की मृत्यु सख्या इतनी घट जाये कि शायद विधवा-विवाहों की आवश्यकता ही न पड़े'[3]। 'बाल-विवाह विषयक एक चीज़' मे श्री प्रताप नारायण मिश्र ने भी इस सामाजिक कुप्रथा की भर्त्सना की है। उनका कहना है कि 'शीघ्र बोध के कारण जिन श्लोकों को प्रमाण मान कर हिन्दू भाई इस घोर कुरीति पर फिदा है, जिनके लिये नई रोशनी वाले बिचारे काशीनाथ पर फटकेबाज़ी करते है, उनका ठीक-ठीक अर्थ ही कोई नहीं विचारता, नही तो उनमें तो महा निषेध वरंच भयानक रीति से बाल्य-विवाह का निषेध ही है'[4]। इसी प्रकार राधाकृष्ण दास

१—प्रेमधन सर्वस्व (भाग १) पृष्ठ ५४७-५४८।
२—वही, पृष्ठ ५४५।
३—हिंन्दी प्रदीप · अक्टूबर से दिसम्बर १८९०, पृष्ठ १९।
४—प्रताप नाराण मिश्र ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) पृष्ठ ११४।

की 'दु खिनी बाला' में सरला के मुख से जन्म पत्री मिला कर विवाह योजना तथा बाल्य-विवाह प्रथा के दुष्परिणाम बताए गए है, सरला तत्कालीन नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती हुई कहती है—'हाय ! हमारी यह दशा क्यो हुई—जन्म पत्र और बाल्य-विवाह से। यदि जन्म-पत्र न होता तो क्यों ऐसे मूर्ख से मेरा विवाह होता ? यदि बाल्य-विवाह न होता तो क्यों न मैं स्वयं अपनी भलाई बुराई को समझ कर अपनी इच्छानुसार पति करती[1]।'

बाल-विवाह की भाँति कुलीन वशो मे प्रचलित बहु-विवाह की विभीषिका और दुष्परिणामो पर भी तत्कालीन साहित्यिको की दृष्टि ठहरी है।

सत्यानाश फौजदार 'करि कुलीन के बहु-व्याह बल धीरज मार्यो[2]' कहकर देश की दुर्बलता का चित्र उपस्थित किया है। बहु-विवाह के परिणाम स्वरूप नारी की सम्मान-स्थिति में कितना पतन हो जाता है यह 'प्रेमघन' से भी छिपा न रह सका। उन्हे इस बात का दुख है कि सामाजिक अवनति के इस काल मे रंडुए, त्यागी और दीन सभी गृहस्थ बन बैठे है, अर्थात् नारी की प्राप्ति इन सबके लिये एक साधारण सी बात हो गई है[3]। साथ हो कही-कही पर कन्या विक्रय प्रथा के प्रति भी खीझ प्रकट की गई उल्लिखित होती है[4]।

इस उत्थान काल में कतिपय लेखको द्वारा वैवाहिक प्रश्न को लेकर स्त्री-पुरुष की स्वतन्त्र इच्छा का समर्थन भी किया है। 'स्त्री' शीर्षक अपने लेख मे प्रताप नारायण मिश्र यह कहते दिखाई पडते है कि 'इससे उत्तम यही है कि विवाह केवल वर और कन्या की इच्छा से होना ठीक है, नही तो दोनो की जीवन-यात्रा में बाधा पड़ना सम्मत है[5]'।

मुस्लिम सभ्यता से गृहीत पर्दा प्रथा के प्रति भी विरोधी प्रवृत्ति इस काल की रचनाओं मे यत्र-तत्र लक्षित होती है। भट्टजी का विचार है कि पर्दा प्रथा भ्रष्टाचार को कम करती ही नही, उसे बढाती है। उन्होंने लिखा है, 'रात बहू कौरे जॉय दिन कौवा देखि डराँय' भट्टजी का कहना है कि हिन्दू वास्तविक बेपरदगी को तो रोकते नहीं हैं जो नदियों के स्नान घरों के निकट सदा सुलभ है या मन्दिर मे जिसके प्रदर्शन के सुन्दर रंग मंच है केवल घर मे पर्दा करने से क्या लाभ और सो भी केवल पति का, जिसका पर्दा करने की कभी आवश्यकता ही नही है[6]।

१—राधा कृष्ण दास : दु:खिनी बाला (च० स०) पृष्ठ ८।
२—भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग १) पृष्ठ ४७५। (भारत दुर्दशा)
३—प्रेमघन सर्वस्व (भाग १) पृष्ठ १५७।
४—किशोरीलाल गोस्वामी, 'स्वर्गीय कुसुम' पृष्ठ १६२।
५—प्रताप नारायण मिश्र ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) पृष्ठ २०१।
६—राजेन्द्र प्रसाद शर्मा : 'हिन्दी गद्य के निर्माता : बालकृष्ण भट्ट' पृष्ठ २६४। साथ ही, हिन्दी प्रदीप, जुलाई १८८२ पृष्ठ २०।

उपर्युक्त सामाजिक कुप्रथाओ की आलोचना करने के साथ-साथ समस्त साहित्यिको ने समाज-सेवियो की ही भाँति एक स्वर से नारी शिक्षा के प्रचार पर बल दिया है। भारतेन्दु ने नारी के शिक्षित होने की अनिवार्यता को स्पष्ठ किया है—'नारी पढे बिन एक हू काज न चलत लखाइ।' फिर माता द्वारा बालक को खान-पान तथा खेलने के समय दी गई शिक्षा का महत्व गुरू द्वारा प्रदत्त शिक्षा से कही अधिक होता है। अत. शिक्षिका होने के लिये स्वय शिक्षिता होना अनिवार्य है 'हमारी ललनाओ की हीन दशा' (हिन्दी प्रदीप, जनवरी १८९१ पृष्ठ १४-१७) के अन्तर्गत भट्ट जी ने स्त्रियो का पक्ष लेकर पुरुषो से अपना रूढ दृष्टिकोण परिवर्तित करने की माँग की है। उनका विश्वास है कि शिक्षित नारियाँ पुरुषो के लिये सहायक सिद्ध होगी। उनके कथनानुसार 'स्त्री-शिक्षा खूब फैलनी चाहिए। उत्तम स्त्रियाँ सचमुच वह अमूल्य रत्न है कि पति सदा उनको अपने हृदय पर धारण किए रहे[१]।' वे निश्चयपूर्वक इस बात पर बल देते है कि, 'जिस दिन हमारी सीधी सादी ललना समाज मे शिक्षा का असर पैदा हो गया, जैसा बगाल मे हो चला है उस दिन फिर ये मन्दिर और देव-स्थान हिन्दुस्थान की एक पुरानी बात मात्र रह जाएगी[२]। पाठकजी ने भी 'देश सुधार का विचार' के अन्तर्गत स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया है[३]। प्रताप नारायण मिश्र ने 'पतिव्रता' के अन्तर्गत नारी के लिये भारतीय परम्परा की शिक्षा का समर्थन किया है। वे भारतीय नारी को पाश्चात्य शिक्षा प्रदान करने के पक्ष मे नही हैं[४]। उन्होने नारी के लिए उस शिक्षा की व्यवस्था करनी चाही है, जिससे वे पातिव्रत धर्म का निर्वाह कर सके।

'स्त्रीगण को शिक्षा देवें कर पतिव्रता यश लेवें[५]।'

समुचित व्यवस्था न होने पर खेद भी प्रकट किया है[६]।

किशोरीलाल गोस्वामी कन्याओ को पाठशाला भेजने के स्थान पर घर पर ही हिन्दी और सस्कृत की शिक्षा देने के पक्ष मे हैं[७]। पाश्चात्य और पोर्वात्य रचनाकारो की मनोवृत्ति मे परस्पर मतभेद भी दिखाई पड़ता है। और विचारों के पारस्पारिक मतभेद को यह प्रताप नारायण मिश्र मे सर्वाधिक प्रतीत होती है। एक

१—हिन्दी प्रदीप . सितम्बर १८८४, पृष्ठ १७।

२—वही, अप्रैल से जून १८९१, पृष्ठ २९।

३—हिन्दी प्रदीप मई से जुलाई १९०१।

४—प्रताप नारायण मिश्र ग्रन्थावली (भाग १) पृष्ठ १९०।

५—रामरतन भटनागर द्वारा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में पृष्ठ ५० उत्कथित।

६—प्रताप नारायण मिश्र ग्रन्थावली (भाग १) पृष्ठ २०१।

७—मालती माधव, पृष्ठ ७५।

स्थान पर उन्होंने बाल्य-विवाह का विरोध किया है तो अन्य स्थल पर वे अपना मत परिवर्तन इस प्रकार कर लेते हैं......'यह तो बाल्य-विवाह के द्वेषी महाशय भी माने होगे कि यदि शारीरिक, मानसिक व सामाजिक बाधा उत्पन्न होती है तो छोटी आयु के समागम से होती है न कि विवाह मात्र से। सो उस (स्वल्पायु सहवास) की शास्त्र में कही आज्ञा ही नही है, केवल कन्यादान के लिये अनुशासन है। उससे और सहवास से वर्षों का अन्तर पड़ जाता है[1]।' इसी प्रकार अपने 'स्त्री,' शीर्षक निबन्ध के अन्तंगत उन्होने विवाद मे वर-वधू की इच्छा को स्वीकृति दी है। परन्तु बाल्य-विवाह' में वे ठीक इसके विपरीत कहते दिखाई पड़ते है—'जो लोग कहते है कि वर कन्या की इच्छा से होना चाहिए उन्हे यह भी उचित है कि पच्चीस वर्ष का पुरुष और सोलह वर्ष की स्त्री विद्या तथा बुद्धि चाहे जितनी रखती हो पर सासारिक अनुभव से पूर्ण दक्षता प्राप्त नही कर सकती...अत· वर कन्या की अपेक्षा उनके जनक जननी की इच्छा अधिक श्रेष्ठ है[2]। स्त्री-शिक्षा की ओर भी उनका ध्यान आकृष्ट हुआ है। उनके मतानुसार उनके लिये व्याख्यान भी आयोजित करने चाहिए परन्तु स्त्री जाति को स्त्री धर्म की शिक्षा पर्दे के साथ ही देना उनकी दृष्टि मे श्रेयस्कर है[3]। युग के सबसे प्रगतिवादी लेखक होने पर भी भारतेन्दु की लेखनी से सती होने का भाव व्यजित हो पडा है। 'वैदिक हिंसा न भवति' मे नील देवी अमीर को मार कर कहती है—'मेरी यही इच्छा थी कि मैं इस चॉडाल को अपने हाथ से वध करूँ। इसी हेतु मैंने कुमार को लडने से रोका, सो इच्छा पूर्ण हुई। (और आघात) अब मैं सुखपूर्वक सती हूँगी[4]" परन्तु इस कथन को युग छाया ही समझना चाहिए। सती प्रथा के समर्थन में उपर्युक्त वक्तव्य नहीं दिया गया है, यह निश्चित है। इस प्रकार समाज सुधार की इस प्रबल धारा मे जहाँ कही रूढिवादिता या प्राचीनता की क्षीणकाय रेखाएँ दीख पडती है वह सब आदि युग से चली आ रही उन परम्पराओं के प्रभाव का परिणाम है। उनको पूर्व संस्कारों से प्रभावित कुछ साहित्कार निर्दयतापूर्वक झटका देकर अपने बंधन मुक्त करा सकने में असमर्थ रहे हैं फिर भी उनकी रचनाओं मे युग चेतना का प्रखर प्रकाश है जिसे कभी भी दृष्टि ओझल नहीं किया जा सकता।

विभिन्न स्वरूपों में नारी

इस काल के साहित्यकारों ने नारी को उसके विभिन्न स्वरूपों में भी देखा है।

१—प्रताप नाराण मिश्र ग्रन्थावली (भाग १) पृष्ठ ४८४।
२— „ „ „ पृष्ठ ४८२।
३— „ „ „ पृष्ठ १६०।
४—भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग १) पृष्ठ ५४५।

अपनी निष्ठा पर अटल रहने वाली 'चन्द्रावली' प्रेयसी के समुज्ज्वल आदर्श को प्रस्तुत करती है। उसे नेह का परिणाम विछोह के रूप मे असहाय है। अपने प्रेमादर्श की दुहाई देती हुई वह अपने झूठे आश्वासन देने वाले प्रिय से इतना ही कह पाती है—

'हरिचन्द' भये निरमोही इते निज
नेह को यों परिनाम कियो
मन माही जो तोरन ही की हुती
अपनाइ कै क्यों बदनाम कियो।

(भा० ग्र० १ : चन्द्रावली नाटिका : पृष्ठ ४२८)

'चन्द्रावली' के समान ही विवाह से पूर्व भी सत्यवान के प्रति सावित्री का अटूट प्रेम लक्षित होता है। उसके लिये सत्य प्रेम का पथ ही धर्म पथ हो जाता है। गोस्वामी कृत 'राजकुमारी' मे भी प्रेयसी की इस निष्ठा के दर्शन होते हैं। सुकुमारी अपने प्रिय मानिक की बिगडी हुई दशा से अधक विज्ञ होकर भी एक बार उससे प्रेम करने के पश्चात् केवल उसी से प्रेम करती चलती है। (राजकुमारी : पृष्ठ ५)

पत्नीत्व के आदर्श की भावना इस युग मे अधिक प्रभावशाली ढग से व्यक्त हुई है। 'पतिव्रत' धर्म से नारी सब प्रकार से समर्थ है। उसकी कीर्ति स्वर्ग से भी गाई जाने की कल्पना की गई है।

: भारतेन्दु ग्रन्थावली (१) पृष्ठ स० ६७६ (सती प्रताप)

'पत्नी का सुख एक मात्र पति की सेवा है। जिस बात में प्रियतम की रुचि हो उसी मे सहधर्मिणी की रुचि हो' (वही, पृष्ठ ६८८)

प्रतिव्रता नारी में संसार में सुखों का मूल निहित है[1]। नारी के लिये पति ही संसार मे अनन्य देवता है[2]। उससे बिना वह आहार तक नही कर सकती, इससे उसका धर्म बिगड़ता है[3]। वह पतिपरायण सती साध्वी नारी के रूप मे ही पूज्य है[4]।

इस प्रकार इस काल मे नारी के पत्नीत्व स्वरूप की मर्यादा को पति पुरुष

१—नारी समजग मे नहिं सुख मूल, पतिबरता नारी मिलबे सम दुख नहिंपायो मूल,
: भा० ग्र० (१) पृष्ठ ६६६ (सती प्रताप)

२—(अ) 'पति सम जग मे नहिं कोउ देव'
भा० ग्र० (१) पृष्ठ ६६६, (सती प्रताप)

(ब) 'निश्चय ही स्त्री के लिए पतिव्रत से बढ़कर कोई धर्म नही है, न पति से बढ़कर कोई देवता है :—प्रताप नारायण मिश्र ग्रन्थावली, (१) पृष्ठ १८६।

३—प्रताप नारायण मिश्र ग्रन्थावली (१) (कलि कौतुक रूपक)

४—बाल कृष्ण भट्ट : नल दमयन्ती।

की सेवा एवं आज्ञापालन से पृथक देखने की चेष्टा नही की गई। पति के व्यक्तित्व से विलग उसका अपना कोई व्यक्तित्व नही है। यह पुरुष की दासी है, पति का सुख उसका सुख है। नारी मे पतिव्रत धर्म को प्रस्थापित करने के लिये कठोर चारित्रिक पवित्रता को प्रतिष्ठित किया गया। उसकी स्वतन्त्र वैयक्तिकता पति से अलग अपना कोई महत्व नही रखती और इस तरह पति की सेवाओ मे सदैव तत्पर नारी ही पत्नीत्व की आदर्श समझी गई।

माता के रूप मे नारी को भगवान के समान पूजा की अधिकारिणी समझा गया तथा सदैव ही उसके मगल की कामना की गई। पुत्रवती माता को विशेष आदर दिया गया।

'धनि धनि भाग जसोदा तेरो। जायो जिन अविनासी बाल'

. प्रेमघन सर्वस्व (१) (जन्माष्टमी की बधाई) पृष्ठ ४६०

माता यदि अपने व्यक्तिगत जीवन मे कैसी ही क्यो न रही हो, परन्तु अपनी सन्तान की आँखो मे वह सदैव ही पवित्र, पूजनीय और श्रद्धेय है। गोस्वामी जी की 'आदर्श सती' मे न्यायाधीश द्वारा पूछे जाने पर लाडली माँ बसन्ती के विषय मे उपर्युक्त भाव का समर्थन करती हुई दिखाई पडती है।—वह कहती है...

'चाहे वे (माँ) कैसी ही रही हो, पर आखिर तो वे मेरी माँ ही थी। इसलिये मे उनके चाल-चलन के बारे मे अपनी जबान से कुछ नही कहा चाहती।'

(आदर्श सती पृष्ठ १२८।)

'महारानी पद्मिनी' मे माँ शक्ति के रूप मे प्रस्तुत की जाती है। देश की रक्षा के लिए वह प्रसन्नता से अपने पुत्रो को बलि दे देती है[1]। 'सौ अजान एक सुजान' की रमा का चरित्र माता की श्रद्धायुक्त भावना से पूरित है। नारीगत दुर्गुणो की छाया उसकी चारित्रिक उच्चता के सम्मुख नहीं ठहर पाती[2]।

जिस प्रकार पत्नी को अपने पति के कठोर अनुशासन मे रहने की बात उपर्युक्त पंक्तियो मे कही गई है। उसी प्रकार इस काल के साहित्यकारो ने कन्या क माता-पिता के नियन्त्रण में दिशा प्राप्त करने की भावना का समर्थन किया है। उसके जीवन को संचालित करने का, उसके लिये सभी प्रकार के निर्णय देने का अन्तिम अधिकार उसके अभिभावको को ही है, इस विषय मे कन्या का अपना व्यक्तित्व, अपनी आकाक्षा तथा अपनी वाणी कुछ भी अर्थ नही रखती[3]।

१—राधाकृष्ण दास : महारानी पद्मिनी (नाटक)।
२—बालकृष्ण भट्ट : सौ अजान एक सुजान (द्वि० स०) पृष्ठ ४१।
३—सखि ! यही जगत की चाल जिति है क्वारी
उनके सब ही विधि मात-पिता अधिकारी
जैहि चाहे ताकहूँ दान करें निज बारी
यामें कछु कहनो, तजनो लाज दुलारी

: भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग १) पृष्ठ ६८६।

इस काल मे पत्नी और कन्या को इतने कठोर अनुशासन मे रखने का समर्थन शायद इसी कारण किया गया है कि ये साहित्यिक भारतीय नारी मे पाश्चात्य सस्कृति और नवीन विचार धारा मे निहित तथाकथित उच्छृखलता की भावना का समावेश नही होने देना चाहते थे। सभी न्यूनताओ को जान कर भी भारतीय सस्कृति और भारतीय सस्कारो से उनका स्वाभाविक एव अटूट सम्बन्ध था। नारी समाज के लिये आत्मोन्नति का पथ-निर्देश करते हुए भी यह नही भूलना चाहते थे कि नारी स्वभाव से कोमल, भावुक तथा सवेदनशील है और इसीलिये जीवन मे सतुलन बनाए रखने के लिये उसे पुरुष समाज द्वारा निर्देशित पथ पर ही चलना श्रेयस्कर है। इसी कारण इस काल की रचनाओ मे, सामाजिक क्षेत्र मे पुरुष और नारी को समान भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित नही किया गया। स्वभाव की भिन्नता मे दोनो के लिये कार्य-क्षेत्र प्रदान किए। फिर भी सामान्य जीवन मे दोनो के परस्पर सहकार की आवश्यकता समझी गई।

विभिन्न वर्गो में नारी

इस काल मे सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप विभिन्न वर्गीय नारियो के विषय मे यद्यपि अधिक नही कहा गया है फिर भी प्रसग वश कही-कही पर उनका विवरण प्राप्त होता है। कुलीन वर्गीय नारियो का जीवन ऐश्वर्य और विलास के मध्य शृगारिक सृष्टि का परिचायक है। वे प्रेम करती है, उनका प्रिय से विछोह होता है, वे कलपती हैं, प्रिय को प्राप्त करती हैं और अन्त मे दोनो का मिलन हो जाता है। लगता है कि जैसे वे प्रेम करने के लिये ही उत्पन्न हुई हैं। भारतेन्दु की चन्द्रावली, गोस्वामी की लवगलता, आदर्श सती की लीलावती तथा 'राजकुमारी' की सुकुमारी आदि इसी कोटि की सभ्रान्त परिवार की महिलाएँ हैं। उन्हे सामाजिक स्वतन्त्रता की स्वीकृति नही मिली है। इसीलिए प्रिय को सदेशे दासियो द्वारा भेजे जाते हैं तथा एकान्त मे लुक-छिप कर मिलन व्यापार की क्रीडा का महान् समारोह जुटाया जाता है। राज-परिवार कुलीन महिलाओं में साहित्यकारो ने शक्ति, शौर्य और तेज के दर्शन किए हैं। राधाकृष्ण दास की 'महारानी पद्मावती' इसका प्रमाण है। परन्तु यह अतीत गौरव की पुनरावृति की चेष्टा मात्र है वास्तव मे इस कोटि की महिलाओ का चित्रण करते समय लेखो पर रीति-कालीन छाया के स्पष्ट दर्शन होते है।

मध्य परिवार में नारी की स्थिति सदैव से ही दयनीय रही है। अशिक्षा, कलह, विद्वेष के बीच मध्य-वर्गीय नारी का जीवन दिन-प्रति-दिव अवसान की ओर अग्रसर होता चलता है। 'निस्सहाय हिन्दू' मे मदन मोहन की पत्नी द्वारा नारी-स्थिति विषयक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'चारो ओर दुख ही दुख है, कहाँ तक वर्णन करूँ। देखिए चाचीजी तो ऐसी दुख देती है कि बड़ा ही कष्ट होता है। जो कहीं उन्होने मेरे हाथ मे कोई पुस्तक

देखी तो फिर देखिए कैसी बिगडती है, वह यही कहती हैं कि, जब देखो तब किताबें लिए रहती है । न सीना, न पिरोना, ई कुल बोरन कहाँ से आई चौका लगावे के[1] ।'

किन्तु साथ ही मध्य परिवार मे स्नेह भावना से अधिवेष्ठित अपनत्व और घरेलू सुख की ओर से भी उदासीन नही रहा गया है स्त्रियाँ गृहस्थी के काम-काज से छुटकारा पाये दुधमुँहे बालको को खेला रही है । कोई-कोई नवोढा 'अपनी हमजोली सखी सहेली से गत रात मे अनुभूत अपने प्राणनाथ के प्रेमालाप की कथा सुना रही है[2] ।

इस काल मे निम्न वर्गीय स्त्रियो की उल्लिखित दशा सामाजिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से उन्नत कही जा सकती है । वे स्वतन्त्रतापूर्वक घूम सकती है, उत्सवो मे भाग ले सकती हैं । लोगो के बीच मे बैठ कर हाट लगा सकती है । भारतेन्दु की 'अधेर नगरी' के कुँजडिन और मछली वाली इसी वर्ग की स्त्रियाँ हैं । उनमे अपने स्वामी के प्रति अपूर्व निष्ठा एव अक्षुण्ण सेवा भावना विद्यमान है । गोस्वामी कृत 'आदर्श सती' की 'बतसिया' इसी प्रकार की सेविका है जो स्वय को अपनी स्वामिनी लीलावती के चरणो की धूल समझती है । गूजरी के रूप मे चित्रित वह 'कहर काम की करद' के समान भी 'अजब घाव' करने वाली प्रतीत होती है[3] । वह भी उसके नारीत्व का एक स्वरूप है । साथ ही निर्धनता और अभाव मे अन्य दुर्गुण भी उसमे विद्यमान है । शिक्षा-विहिना नारी सभ्यता के अर्थों मे नितान्त पिछडी हुई है । ऐसी ही स्थिति की स्त्रियो का स्वभाव लडाई है ।' घर गृहस्थी के सब काम, पिसोनी-कुटौनी से छुट्टी पाय, जब तक दाँत न किर्रं लें और आपस मे झोटी झोटा न कर ले तब तक कभी न अघाय[4] ।'

इस प्रकार विभिन्न श्रेणियों, स्वरूपों एव सम्बन्धो मे विभक्त इस काल की नारी-स्थिति का चित्रण करने के पश्चात् लगता है कि उपर्युक्त काल मे साहित्य शिल्पियो द्वारा नारी उत्थान की भूमिका ही चित्रित की जा सकी थी तथा प्राचीन और नवीन समाज सुधार आन्दोलन के अरुणोदय ने इन प्रभृति कलाकारो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था और इसीलिए ये लोग प्राचीन और नवीन तथा पौर्वात्य और पाश्चात्य आदर्शों में सामंजस्य स्थापित करते हुए नारी को सामाजिक चेतना की भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित कर सके थे । हिन्दी साहित्य क्षेत्र में नारी स्थिति विषयक जागृति का बीजारोपण और प्रस्फुटन इस काल की महत्वपूर्ण घटना है ।

१—राधाकृष्ण दास . निस्सहाय हिन्दू, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५६ ।

२—बालकृष्ण भट्ट : सौ अजान एक सुजान, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ २२ ।

३—प्रेमघन सर्वस्व : (भाग १) पृष्ठ ४६६ ।

४—बालकृष्ण भट्ट : भट्ट निबधावली (भाग १) चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ १८ ।

...२

जागृति-काल (१६०१-१६२०)

उपर्युक्त उत्थान-काल के अन्तर्गत सामाजिक पुनरुत्थान के आलोक मे साहित्यिक नारी-स्थिति का विवेचन करने के पश्चात् जब हम अगले बीस वर्षों के भारतीय इतिहास एवं राजनैतिक गतिविधियो का अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि इस काल मे राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना की विकास-भावना पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध की अपेक्षा अधिक तीव्र-भाव-धाराओ मे प्रवाहित हुई है। १६वी शती के अन्त तक काँग्रेस का कार्य-क्षेत्र अपने वार्षिक अधिवेशनो में प्रस्ताव पारित करने तथा कुछ सामान्य विषयो के निमित अग्रेज सरकार के सम्मुख याचिका प्रस्तुत करने तक ही सीमित था। परन्तु बीसवी शताब्दी के आरम्भिक वर्षों से ही एक नवीन जागृति का अरुणोदय हुआ, जिसके परिणाम-स्वरूप काँग्रेस के अधिकारो की माँग अधिक विस्तृत होती गई और साथ ही उसमे क्रियाशीलता का प्रादुर्भाव भी हुआ। १६०४ में लोक सभा मे प्रत्येक प्रान्त से दो सदस्यो के सीधे प्रतिनिधित्व की माँग हो गई[1]। १६०५-१६०६ मे समय-समय पर अधिक अधिकारो एवं स्वायत शासन की माँग को दोहराया गया। १६०५ मे बग-भग की घटना को लेकर सम्पूर्ण देश में एक प्रकार से विद्रोह और चेतना की लहर दौड़ गई। इसी चेतना के परिणामस्वरूप १६०६ के 'मिन्टो-मारले' सुधारो का आयोजन हुआ। १६१० से १६११ तक जिलों तथा नगरपालिकाओ की सदस्यता के लिए पृथक निर्वाचनों के विरोध ने राष्ट्रीय चेतना को बल प्रदान किया[2]। १६१५-१६ के बीच काँग्रेस द्वारा स्वायत शासन की माँग को बल देकर बार-बार दोहराया गया।। फलस्वरूप १६१७ मे माटेग्यू द्वारा उत्तरदायी सरकार की स्थापना करने के विचार की घोषणा की गई। १६१७ मे कलकत्ता अधिवेशन में नारी को स्थानीय संस्थाओ के निर्वाचन सम्बन्धी अधिकार तथा

१—बी. पी. सीतारमैया : हिस्ट्री ऑफ द इन्डियन नेशनल काँग्रेस, पहली पोथी, पृष्ठ २५।

२—वही, पृष्ठ २७।

शैक्षणिक-क्षेत्र में समान अवसर देने सम्बन्धी विचार प्रकट किये गये[1]। इस प्रकार मे राष्ट्रीय चेतना के क्षेत्र मे नारी की पुनरुत्थान वादी भावना भी जागृति के एक नए स्तर पर अधिष्ठित हुई। उसके उपरान्त १६१६ के 'माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार' की आयोजना से असन्तुष्ट राष्ट्रीय कॉंग्रेस ने गाँधी जी के नेतृत्व मे १६२० से सत्याग्रह आन्दोलनो का नवीन पथ ग्रहण किया, जिससे राष्ट्रीय चेतना विकसित हुई।

गाँधी जी द्वारा आरम्भ किये गये इन आन्दोलनो मे नारी को सामाजिक क्षेत्र के विस्तार मे अपनी वैयक्तिकता के विकास का अवसर मिला और वह भी राष्ट्रीय उत्थान एव स्वतन्त्रता प्राप्ति के आयोजनो मे पुरुष के समान कार्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण होने लगी। नारी की राष्ट्रीय चेतना का पूर्ण विकास बीसवी शती के दूसरे दशक के बाद ही होता है, परन्तु विलास के परमाणु इस जागृति-काल (१६०१-१६२०) मे ही स्पष्ट दिखाई पडने लगते हैं।

राजनैतिक चेतना के इस प्रहर मे १६वी शताब्दी मे स्थापित सुधार सस्थाओ द्वारा भी नारी स्थिति के विकास की दिशा मे सफल प्रयत्न हुए। इस सदर्भ मे आर्य-समाज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारतीय आदर्शो पर आधारित माप-दण्डो की योजना, नवीन जागृति का आग्रह, अन्धविश्वासों और रूढियो के विनाश का प्रयत्न और सफलता तथा नारी समाज मे शिक्षा, सस्कृति और सामाजिक स्वीकृति के विकास की चेष्टा इस 'समाज' की अपनी विशेषता है। आर्य-समाज की ही भाँति ब्रह्म-समाज, ब्रह्म-विद्या समाज आदि सस्थाओं द्वारा भी नारी-स्थिति के विकास का प्रयत्न इस जागृति काल तथा आगे तक भी बना रहा। १६१७ मे स्थापित 'महिलाओं की भारतीय परिषद्' ने नारी को अपने विकास की दिशा मे नए क्षितिज प्रदान किए। पाश्चात्य आदर्शो की कल्पना और तत्पश्चात् व्यवहार द्वारा भारतीय समाज मे जिस पुनर्निर्माण की भावना का विकास हो रहा था, उससे नारी जाति के प्रति भी सुधारको का ध्यान अधिक से अधिकतर आकृष्ट हो रहा था। उसकी वैधानिक एव सामाजिक अयोग्यता की परम्परागत धारणा को समूल विनष्ट करके उसे राजनैतिक, सास्कृतिक एव सामाजिक क्षेत्र मे समान अवसर प्रदान करने के नवीन आदर्शो को प्रस्फुटित और विकसित किया गया। भारतीय राष्ट्रीयता ने प्रारम्भ से ही प्रजान्तत्रात्मक भावना को प्रसारित किया, जिसके क्षेत्र-विकास में लिंग, जाति एव प्रदेश की भिन्नता को अस्वीकार करते हुए वैयक्तिक विकास के निमित समान भाव-भूमि की योजना की गई[2]। इसीलिए महिला समाज को भी अपने

१—बी. पी. सीतारमैया · हिस्ट्री ऑफ द इन्डियन नेशनल कॉंग्रेस, पहली पोथी, पृष्ठ ५२।

२—ए. आर. देसाई : सोशल बैकग्राउन्ड ऑफ इन्डियन नेशनलिज्म (द्वि. स०) पृष्ठ २१२।

व्यक्तित्व के विकास मे नवीन विद्वत् समाज की उदार आधुनिक मान्यताओ से पूर्ण सहयोग और प्रेरणा प्राप्त हुई।'

इस काल मे पाश्चात्य सस्कृति की प्रेरणा से प्रस्फुटित बुद्धिवाद की नई चेतना ने प्राचीन अन्धविश्वासो का विनाश कर, प्रस्तुत उपकरणो से प्रयोगात्मक रीति पर चलते हुए नवीन सिद्धान्तो का प्रतिवादन किया। इस नवीन युग-चेतना और युग सस्कृति के आलोक मे हिन्दी साहित्य रचना के आदर्शों मे भी आमूल परिवर्तन करते हुए, 'देश की नवीन परिस्थितियो ने आधुनिक युग मे स्वतन्त्रता, देश-प्रेम तथा समाज-सुधार की भावनाओ को जन्म दिया, जिससे साहित्यकारो को नवीन विषय उपलब्ध हुए और जिनकी उन्होने अपने साहित्य का आधार बनाया[1]।' इस काल के साहित्य मे तत्कालीन परिस्थितियो से प्रभावित होकर, प्रचलित प्रवृतियो मे सुधार एव सहयोग, अधोगामी रूढियो के प्रति विद्रोह तथा उज्ज्वल भविष्य की ओर सकेत आदि भावनाओ का प्रकाश भली भाँति देखने को मिलता है[2]।'

पूर्व पृष्ठो में विवेचित उत्थान-काल के अन्तर्गत सुधार भावना एक विशिष्ठ वर्ग तक ही सीमित रही, रूढिगत समाज को परिपाटियों एवं धारणाओं से आक्रान्त दलित वर्ग की ओर उस काल के लेखको का ध्यान अधिक आकृष्ठ न हो सका, इसके विपरीत जागृति-काल मे साहित्यकार का दृष्टि-विस्तार हुआ तथा उसके द्वारा राष्ट्रीय जागृति के आलोक मे सामाजिक सुधारो को एकाकार कर देखने का प्रयत्न किया गया। उसने भारतीय नारी की करुण-स्थिति की ओर दृष्टिपात किया और साथ ही नारी सम्बन्धी नवीन आदर्शों की कल्पना भी की। उत्थान काल तक चलते आए नारी के मॉसल, उत्तेजक और असत् रूप के प्रति उपेक्षापूर्ण भावना का विकास इसी काल मे हुआ। अब उसके व्यक्तित्व में साहस, शौर्य, सत-सौन्दर्य और इनसे महत्वपूर्ण नैतिकता आरोपित की गई। इस काल के साहित्यकार ने जीवन की यथार्थता को तो चित्रित किया ही, साथ ही अपनी कल्पना के नए आदर्श भी प्रस्तुत किए, जो समाज को तत्कालीन राजनैतिक चेतना के पार्श्व मे नवीन दिशा निर्देश देने मे सहायक सिद्ध हुए। इस क्षेत्र मे इस युग का लेखक विशेष रूप से सजग औ सतर्क रहा है तथा 'सामान्य मानवता के जीवन तथा अनुभूतियों का चित्रण[3]' उसक अभूतपूर्व सफलता और विशेषता रही है।

परन्तु, इस प्रकार, यदि एक ओर देश-काल के अनुसार कार्य करने की प्रेरण हिन्दी साहित्यकारों की अनुभूति से निःसृत हो सामाजिक क्षेत्र में अपना भाव-विस्तार व

१—गगा बख्श सिंह : द्विवेदी युगीन निबन्ध साहित्य, पृष्ठ ३७।
२—वही, पृष्ठ ३७।
३—डा० सुधीन्द्र : 'हिन्दी कविता में युगान्तर,' पृष्ठ २००।

रही थी—उसके माध्यम से राष्ट्रीय भावनाओ के समानान्तर सामाजिक क्षेत्र—विशेषकर नारी वर्ग—का यथार्थ चित्रण हो रहा था, और साथ ही पथ-निर्देश करने के उद्दश्य से नवीन आदर्शों की योजना भी अनुप्राणित हो रही थी, तो दूसरी ओर स्फुट रूप से नारी के भक्ति और रीतिकालीन स्वरूप को भी अकित किया जा रहा था। इस प्रकार की रचना की पृष्ठ-भूमि मे पुरातन परम्पराओ के निर्वाह और उनके प्रति साहचर्य जनीन मोह की भावना ही प्रमुख थी। अत इस काल मे भी महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे आदर्शवादी साहित्यकारो के मार्गदर्शन मे साहित्यिक विकास का कार्य होते हुए भी यत्र-तत्र नारी के प्रति उपेक्षापूर्ण भावना अथवा स्थूल रीति शृगार की परिपाटी अपने तिरोहित होते हुए रूप मे कही न कही अभिव्यक्ति हो ही गई है।

हिन्दी साहित्य मे नारी सम्बन्धी जिस नैतिकता का विकास इस काल मे देखने को मिलता है, वह स्वयभूत नही थी। वास्तव मे नारी की सामाजिक स्थिति मे इतना आमूल परिवर्तन नही हो गया था कि साहित्यिक क्षेत्र मे वह अनायास ही इतने भाव-स्तर पर अधिष्ठित हो सकती। इस युग मे भी नारी की सामाजिक स्थिति मे किसी भी क्रान्तिकारी परिवर्तन की उद्भावना नही हो गई थी, उसकी स्थिति न्यूनाधिक रूप मे पिछले काल की भाँति ही दयनीय, दु खपूर्ण एव करुण थी, रन्तु जागृति-काल मे उसकी इस शोचनीय अवस्था के प्रति न्याय करने की भावना बलवती हुई, परिणामस्वरूप उसके सत् रूप को महान् आदर्श की प्रतिष्ठा मे प्रति-वैष्ठित कर साहित्यिक भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया। यह उक्ति अगले पृष्ठों मे नारी की 'वस्तु स्थिति' तथा 'नवीन आदर्श' शीर्षको मे अन्तर्गत की गई नारी विवेचना को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर स्पष्ठ हो जाता है। उधर राजनैतिक सक्रियता एव राष्ट्रीय जागरण के फलस्वरूप स्वतन्त्रता प्राप्ति की दिशा मे नारी के सहयोग की कल्पना भी आकार ग्रहण कर रही थी। इसीलिए इस काल की साहित्यिक नारी मे शुद्ध नैतिकता एवं महान् आदर्शो की भावना के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना की भावना को भी अभिव्यक्त किया गया। जागृति-काल की नारी-भावना को इस रूप मे चित्रित करने का एक और भी कारण है। इससे पूर्व साहित्य मे नारी को अति स्थूल एव लौकिक भाव-भूमि पर चित्रित करके उसके महान्तम गुणों एवं सत् रूप को दृष्टि ओझल किया जा रहा था। इसके विरोध-स्वरूप इस काल मे राम नरेश त्रिपाठी, प० महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिली शरण गुप्त, 'हरिऔध' तथा नाथूराम शंकर आदि प्रभृति साहित्यकारो ने नारी के उस उज्ज्वल पक्ष की कल्पना की जिसे रीति-कालीन शृगारिक कवियो की नायिका के विरह-मिलन, काम-क्रीड़ा एव गुल्म, द्रुम-कुंजों की अतिशयता मे प्रकट होने का अवसर ही प्राप्त नही हुआ। इस तरह इस काल का साहित्य प्रतिक्रियात्मक साहित्य भी कहा जा सकता है। इस काल की नारी, इसीलिए, साहित्यकान की

नैतिक सहानुभूति से आविर्भूत होकर उच्चादर्श की दिशा मे अग्रसर होती प्रतीत होती है। समाजगत नैतिकता के आलोक मे नारी वर्ग का यह पर्यवेक्षण इस काल की नारी सम्बन्धी भावना को विशिष्ठता प्रदान करता है।

जागृति-कालीन साहित्यिक नारी चित्रण का अवलोकन निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत अधिक स्पष्ट रूप से किया गया है

(१) वस्तु स्थिति
(२) नवीन आदर्श
(३) सुधार-भावना
(४) नारी—विभिन्न सम्बन्धो मे
(५) विभिन्न वर्गों मे नारी
(६) नारी के विविध रूप
(७) प्रतीकात्मक नारी-भावना
(८) राष्ट्रीय चेतना और नारी।

वस्तु-स्थिति

प्रगति काल के साहित्यकारों ने सामाजिक जागरुकता के आलोक मे उपेक्षित विषयों की ओर अपनी रुचि दिखलाई अत· 'साहित्यिक जीवन की युग चेतना में पूर्ण नवीन अभिव्यक्तियाँ प्राप्त हुई[१]। उन्होने तत्कालीन परिस्थितियो के बीच सामाजिक जीवन की विषमताओ का विशेष अध्ययन एव चित्रण करने मे बडी सूक्ष्मता से काम लिया है। महिला-वर्ग की वस्तु-स्थिति को भी उद्घाटित करने मे भी इस काल के साहित्यकार पूर्ण उत्साही रहे। इस काल का कवि महिला समाज की असहाय अवस्था का ध्यान करके दुख से आविभूत होकर उसकी सुदशा के लिए भगवान से प्रार्थना करता है[२]। सामाजिक बन्धनो में नारी इतनी विवश है कि वह इच्छित वर की प्राप्ति नहीं कर सकती। विवाहोपरान्त वह पूर्ण परतन्त्र है। पुरुष-वर्ग अपने ऐश्वय की चकाचौंध मे नारीत्व का क्रय करता है[३]। और इस प्रकार सामाजिक क्षेत्र मे महिला सम्मानपूर्ण जीवन की मान्यताओ से रहित, अपनी कोमल ममता और अपनत्व के शव को ढोती फिर रही है।

जैसा कि नारी की सामाजिक स्थिति की विवेचना करते हुए देखा जा चुका है कि इस काल मे सुधार सस्थाओ का यथेष्ठ विकास हुआ इन सुधार संस्थाओ की स्थापना और विकास ही इस बात का प्रमाण है कि महिला वर्ग की स्थिति दयनीय

१—देखिए :—प्रिय प्रवास, (हरिऔध), मिलन (रामनरेश त्रिपाठी)
२—द्वारिका प्रसाद गुप्त · आत्म समर्पण, पाँचवाँ सर्ग, पृष्ठ ५७।
३—अयोध्यासिह उपाध्याय . 'अधखिला फूल'।

इसी कारण उसमे सुधार की महत्ती आवश्यकता थी। महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र' वास्तव मे इस जागृति-काल के ही चित्र है। सामाजिक स्थिति अपने यथार्थ रूप मे अभिव्यक्त हुई है। काव्य से गद्य की ओर उनकी उन्मुखता है। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ चित्रों मे क्रमश बाल-विधवा की परिवारगत वस्तु-स्थिति, विमाता के दुर्व्यवहार की करुणतम झाकी एव कर्त्तव्यपरायण परन्तु शापित एवं प्रताडित भारतीय नारी के चित्र प्रस्तुत किए गये हैं, जो सभी चारित्रिक गुणो से पूर्ण होते हुए भी पुरुष समाज के अन्याय, शोषण और उनके द्वारा की गई पुरावस्था की लम्बी, कभी समाप्त न होने वाली करुण कथा की छाया विस्तृत करते चलते है[१]। उनकी सामाजिक स्थिति का अध्ययन कर ऐसा लगता है कि जैसे 'भारतीय समाज उनकी अभिशप्त परवशता की पृष्ठभूमि मे अन्तिम साँसें' गिन रहा हो। पुत्री का जन्म सम्पूर्ण परिवार मे 'दरिद्र निराशा' व्याप्त करने के लिए पर्याप्त होता है—

'उस समय परिवार मे कन्याओ की अभ्यर्थना नही होती थी। आगन मे गानेवालियाँ, द्वार पर नौबत वाले और परिवार मे बूढे से लेकर बालक तक सब पुत्र की प्रतीक्षा मे बैठे रहते थे। जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया, वैसे ही घर के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई[२]।

पुत्री के जन्म की ही भाँति विधवा का जीवन भी इस काल के इतिहास मे अपनी करुणा के ही स्वरूप को लेकर चला है। विधवा मारवाडिन की दशा का संवेदनशील वर्णन इस कथन की पुष्टि के लिए पर्याप्त है[३]—

'वृद्ध एक ही समय भोजन करते थे, और वह तो विधवा ठहरी। दूसरे समय भोजन करना ही यह प्रभाणित कर देने के लिए प्रर्याप्त था कि उसका मन विधवा के सयम प्रधान जीवन से ऊब कर किसी विपरीत दिशा मे जा रहा है।'

O O O

'उस १९ वर्ष की युवती की दयनीयता आज समझ पाती हूँ, जिसके जीवन के सुनहरे स्वप्न गुडियों के घरोदे के समान दुर्दिन की वर्षा में केवल बह ही नही गये, वरन् इसे इतना एकाकी छोड़ गये कि इन स्वप्नो की कथा कहना भी सम्भव नही हो सका'।

इस काल की नारी बहु-विवाह, अनमेल विवाह तथा वैधव्य की परम्परागत जटिलताओं मे इतनी हतोत्साह प्रतीत होती है कि उसमे समुचित दिशा पा सकने की बात को सोच सकने का भी ज्ञान नहीं है। महादेवी वर्मा ने अपने पाँचवे चित्र मे उस

१—महादेवी वर्मा : देखिए, 'अतीत के चलचित्र'।
२—वही, देखिए, पहला चित्र।
३—वही, देखिए, दूसरा चित्र, पृष्ठ २७-२८।

विधवा बहिन की करुण कहानी को प्रस्तुत किया है जिसका भाई अपनी विधवा बहिन को अपने घर मे एक सामान्य आश्रय दे सकने मे असमर्थ है। नारी जीवन के दुर्भाग्य की इससे अधिक दयनीयता शायद सम्भव नही है। निदान वह इन सबको सहते रहने की अभ्यस्त हो गई है कि उसके प्रति की गई किसी भी प्रकार की प्रवचना उसे असामान्य नही लगती।

नारी-वर्ग की वस्तु-स्थिति का दिग्दर्शन हमे श्रीधर पाठक की 'हैमत,' तथा 'महिला परिषद् के गीत'[१] आदि रचनाओ मे तो होता ही है, परन्तु इस भावना को अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति द्विवेदी जी के 'कान्य कुब्ज अबला विलाप' (कान्य कुब्ज, अक ८, १९०६) मे मिली है—

महा मलिन से मलिन काम हम करती हैं दिन रात।
दुखी देख पति, पिता पुत्र को, व्याकुल हो कृश करती गात।
हे भगवान हाय! तिस पर भी उपमा कैसी पाती है।
'ढौल तुल्य ताडन अधिकारी' हमी बनाई जाती है।

द्विवेदी जी की ही भाँति नाथूराम शकर शर्मा ने भी निराश्रय महिलाओ की दयनीय दशा को सजल नेत्रो से देखा है—

विधवा रिस रोक रो रही हैं
लाखो कुल कानि खो रही हैं
जारो के गर्भ धारती हैं
जानती हैं और मारती हैं

(सरस्वती, मई अक, १९०६)

राष्ट्रीय कवि मैथिली शरण गुप्त ने 'भारत भारती' की कृषक पत्नियो के अथक परिश्रम को असफल होते देखा है, उनके प्रति पुरुष वर्ग की उपेक्षा देखी है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह तथा कन्या विक्रय होते देखा है। उनका विश्वास है कि नारी की वर्तमान उपेक्षा के परिणामस्वरूप ही आज हम अध पतन की सीमा को लाँघ चले हैं। आज की हमारी दुरावस्था का कारण उस पवित्रतम निष्ठावान श्रद्धेय नारी के अन्तस् से निकला अभिशाप ही है जिसके प्रति हमने सदैव ही उपेक्षा और अन्याय की प्रवृत्ति बरती है—

'ऐसी उपेक्षा नारियो की जब स्वय हम कर रहे।
अपना किया अपराध उनके शीश पर धर रहे।
भागे न क्यो हम से, भला फिर दूर सारी सिद्धियाँ।
पाती स्त्रियाँ आदर जहाँ, रहती वहाँ सब ऋद्धियाँ।

१—सरस्वती मासिक . दिसम्बर १९०५।

उनकी दुर्दशा[1] का वर्णन कर सकना भी कवि के लिए कष्टकर है—

'नारी जनो की दुर्दशा हमसे कही जाती नही,
लज्जा बचाने को अहो ! जो वस्त्र भी पाती नही ।

o o o

पाले हुए पशु पक्षियो का ध्यान तो रखते सभी ।
पर नारियो की दुर्दशा क्या देखते हैं हम कभी ।।

सामाजिक स्वीकृति के अभाव मे नारी को गृह सीमाओ के भीतर आबद्ध कर उसके मन-बहलाव के लिए पुरुष ने आभूषणो के खिलौनो की आयोजना की । कालान्तर मे साहचर्य और परम्परा के परिणामस्वरूप वही निर्जीव खिलौने उसे रुचिकर लगने लगे, और एक समय आया जब वे निर्जीव आभूषण ही उसके सर्वस्व हो गये । कवि ने इस व्यंग मे भी उसकी भारी दयनीयता ही प्रकट की है—

है ध्यान पति से भी अधिक आभूषणो का अब उन्हे ।
तब तुष्ट हो तो हो कि मढ दो मण्डनों से जब उन्हे ।।
(भारत भारती, पृष्ठ १३६)

इस प्रकार जागृति काल की नारी अपने सामाजिक पद मे अत्यन्त दयनीय और कुण्ठा-ग्रस्त रही है । फिर भी उसे समाज की कल्याणकारी शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है और उसके उस स्वरूप के प्रति साहित्यकार श्रद्धारत रहा है । उसके दयनीय व्यक्तित्व मे नवीन आदर्शों की प्रतिष्ठा पर, उसे सामान्य भाव-भूमि से उच्चतर धरातल पर लाने का प्रयास इस काल के साहित्यिक की प्रमुख लालसा रही है ।

नवीन आदर्श

इस काल के साहित्यकार महिला वर्ग की वस्तु स्थिति का चित्रण करके ही नही रह गये, साथ ही वे नारी के प्रति सामान्य निर्देश एव नवीन आदर्शों की कल्पना करना भी नहीं भूले । नारी के सामान्य रूप का चित्रण जहाँ भी हुआ है, वहाँ वह विवेकशून्या, बुद्धिहीना एव पुरुष की आश्रिता के रूप मे ही वर्णित हुई है[2] । लेकिन रीति-कालीन साहित्य की प्रतिक्रिया, नवीन राष्ट्रीय एव सामाजिक चेतना एवं युग के साथ चलने की प्रेरणा आदि नवीन उद्‌भूत भावनाओ के परिणामस्वरूप

१—मैथिली शरण गुप्त : भारत भारती, पृष्ठ ८६ तथा १३८ ।

२—'स्त्री जग में स्वछन्द चारिणी कभी न यश पाती है, तरुवर के आश्रित होकर के लतिका रस पाती है । (रामचरित उपाध्याय) रामचरित चिंतामणि, ११ वाँ सर्ग)

नारी को नैतिक आदर्शो से पूर्ण समाज की मुख्य शक्ति के रूप मे उपस्थित करने का प्रयास भी इस काल के साहित्यिको द्वारा पूर्ण निष्ठा और जागरूकता के साथ हुआ है। नैतिक आदर्शों का आरोपण 'प्रियप्रवास' की राधा तथा 'मिलन' की विजया मे हुआ है, जो प्रिय के विरह मे 'निसि दिन बरसत नैन हमारे' न कह कर समष्टि के सुख-दुख मे अपने कर्त्तव्य की रूप-रेखा खोजती है। सूर की राधा की भाँति 'हरिऔध' की राधा भी प्रेमिका अवश्य है, किन्तु वह स्वार्थमय मोह की गली को छोडकर, नि स्वार्थ प्रणय के प्रशस्त राजमार्ग पर बढती है, उसके प्रणय मे ही परहित भावना लक्षित होती है[1]। इस काल मे भक्ति और रीतिकालीन उद्भूत एव प्रचलित रति व्यजना की धारा द्विवेदी जी के कठोर अनुशासन द्वारा सहसा ही रोक दी गई थी। 'उनके युग की प्रेम-प्रधान कविताओं मे घोर शृगारिकता असयम व्यक्तित्व, वासना आदि के स्थान पर शिष्टता, सयम, व्यापकता, लोक-पावनत्व आदि का समावेश हुआ[2],' और इसी कारण नारी के उज्ज्वल स्वरूप की कल्पना को आधार मिला। प्रिय विरह मे कातर नायिका 'सर्व भूत हिताय' के सिद्धान्त को लेकर स्व-दुख कारता का पर-दु ख कातरता मे विकास कर लेती है जिसके फलस्वरूप उसके 'जीव' मे अनुपम महा विश्व का प्रेम जाग उठता है, क्योकि उसे ज्ञात है कि उसके प्रिय भी लोक-मगल कार्य मे लगे है, फिर वह ही पीछे कैसे रह सकती है।' इस प्रकार विश्व वेदना मे ही उसकी आत्म-वेदना का पर्यावसान होता है[3]। वह एकान्त प्रेमिका नही है, उसका हृदय दुख से अधिक विचलित होकर सवेदनशील हो उठा है। इसीलिए तो उसमे पथ के श्रन्त पथिको के, लज्जाशील पथिक महिला के, मधुप मधुपी के, क्लान्ता कृषक ललना के सुख-दु ख की भी अनुभूति है...कवि 'हरिऔध' का यह मानववाद है[4]।

आदर्श की स्थापना के इस प्रयत्न मे नारी के अबला रूप को सबला स्वरूप मे देखने के दृष्टिकोण का विकास 'मिलन' की विजया मे हुआ है। वह विजया जो—

'शक्ति नहीं जो नाथ ! तुम्हारा,
सुन भी सकू प्रयाण।
रहते प्राण न जाने दूँगी,
मेरे जीवन प्राण।'[5]

१—शैल कुमारी आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना, पृष्ठ ६०-६१।
२—उदय भानु सिंह : महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, पृष्ठ ३०५।
३—'हरिऔध' : प्रिय-प्रवास : पचदश सर्ग।
४—सुधीन्द्र : हिन्दी कविता मे युगान्तर, पृष्ठ ५०४।
५— ,, ,, ,,

कहकर अपने प्रिय को अपने ही मे बाँधे रखना चाहती थी, कालान्तर में—

चिर सगिनी तुम्हारी मैं हूँ
मेरे जीवन नाथ
जहाँ-जहाँ जाओगे मै भी
सदा रहूँगी साथ। (मिलन, पृष्ठ १७)

और मृत्यु के क्षणो मे भी—

'मैं सगिनी सदा हूँ प्यारे
बोली हँस कर बाल
कण्ठ समर्पित हुए उभय के
बाहु भाल तत्काल,' (वही पृष्ठ २५)

सीरा चिर-सहयोगिनी रूप में आदर्श की प्रतिष्ठा करती है। आगे चल कर वह स्वय ही देश सेवा का व्रत धारण ही नही करती, वरन् अन्य जनों के लिए भी प्रेरणा का श्रोत बनती है। वह सोचती है—

'सेव धर्म मुख्य है जग मे
लोक शान्ति-प्रद काज' (मिलन, पृष्ठ ७०)

और इसीलिए—

'लिए त्रिशूल हाथ में करने
चली देश-उद्धार
गाँव गाँव मे लगी घूमने
सेवा व्रत उर धार' (वही, पृष्ठ ७२)

जिसके फलस्वरूप उसका स्वर नवयुवकों के लिए समुचित कर्त्तव्य-परायणता की वस्तु बन जाता है—

'उसके गान श्रवण कर
कायरपना बिसार
होते थे स्वदेश सेवा में
करने को तैयार।' (वही, पृष्ठ ७३)

विजया के नारीत्व के भाँति जागृति-कालीन नारी स्वयं ही अपने महत्व की प्रतिष्ठा नहीं करती, वरन् पुरुष भी उसकी प्रतिष्ठा को स्वीकृति प्रदान करता है—

'तू ही मेरी एक मात्र है सम्पदा
दीप शिखा सी मार्ग दिखलाती रह सदा।
(मैथिली शरण गुप्त, : किसान, पृष्ठ ३०।)

सुधार भावना

जागृति कालीन साहित्यकारो ने नारी सम्बन्धी नवीन आदर्शों की स्थापना के साथ-साथ उनकी वस्तु स्थिति को सुधारने सम्बन्धी निर्देश भी दिए। महिला वर्ग की सामाजिक उपेक्षा तथा रूढिगत धारणाओ के कारण उसकी हीनावस्था इस काल के साहित्यिक विषय बने। सामाजिक सकीर्णताओं मे दलित 'शोकार्त बाल-विधवाओं।'[1] की ओर इस युग के साहित्यकार की दृष्टि पड़ी तथा उसने विधवा-विवाह को धर्म सगत बतलाया[2]। इतना ही नही, बल्कि इस युग का कवि पुर्नविवाह को नारी का अधिकार घोषित करता है—

हकदारो का यो बहरे खुदा हक़ न गँवाओ
मझधार मे है नाव जरा ओर दिखाओ
बेवाओ की शादी मे न अब देर लगाओ।
अमर नाथ मोहसिन (सरस्वती १९०६) जनवरी . मे उत्कथित।

समाज मे विधवाओ की अवस्था इस दयनीयता को प्राप्त है कि वे वैधव्य की अपेक्षा सती हो जाने को श्रेयस्कर समझती है। वैधव्य की प्रताडना को लेकर वह जीना नही चाहती—

फिर भला जीकर नरक के दुःख को सहना भला।
या बिनश्वर देह तज कर स्वर्ग मे रहना भला[3]।

विधवा समस्या पर प्रेमचन्द की पूर्णा[4] और विरजन[5] की वस्तु-स्थिति से अच्छा प्रकाश पडता है। 'विरजन' एक व्यक्तित्वहीन, कुचली हुई आत्मा की भाँति वैधव्य का उपहासपूर्ण जीवन व्यतीत करती है 'पूर्णा' को समाज क्रीडा और मनोविनोद का साधन बनाने की चेष्टा करता है, क्योकि पति की छाया के अभाव मे वह निराश्रय और असहाय है। लेखक ने इस समस्या को उपस्थित कर, संकीर्ण मष्तिष्कों को न्याय की कौसटी पर बुद्धि प्रयोग के लिए दिशा निर्देश किया है। इसी

१—सुखि सुहागिन करे कत संग केलियाँ,
जीवन की सुख-सुधा पिये अलबेलियाँ,
दुखी बाल-विधवाओं की है जो गती
कौन सके बतला, किसकी इतनी मती।
(श्रीधर पाठक बालविधवा)

२—महावीर प्रसाद द्विवेदी द्विवेदी काव्य माला, (विधवा विलाप), पृष्ठ २१०।

३—मैथिली शरण गुप्त : रंग मे भग, पृष्ठ १४।

४—प्रतिज्ञा की पात्रा।

५—वरदान की पात्रा।

प्रकार बहु-विवाह के प्रति भी विरोध का स्वर उच्च है। प्राचीन संस्कृति के एक नायक लक्ष्मण से इस प्रथा का विरोध कराया गया है—

बहु-विवाह विभ्राट, क्या कहूँ
भद्रे मुझ को क्षमा करो,
तुम कुशल हो, किसी कृति को
करो कही कृत्य-कृत्य, वरो।

(मैथिलीशरण गुप्त : पचवटी, पृष्ठ ३३)

तत्कालीन समाज में प्रचलित अनमेल विवाह से नारी का जीवन किस प्रकार भयावह विडम्बना-मात्र बन कर रह जाता है, इसकी घनी छाया भी साहित्य में लक्षित हुई है[1]। कवि इस अनमेल विवाह की कुप्रथा पर सुन्दर व्यग करता है—

बाल-विवाह रोक हम देते, यदि हमको मिलते अधिकार
वृद्ध-विवाह का किन्तु देश मे कर देते हम खूब प्रचार।

(राम चरित्र उपध्याय)

इस अनमेल विवाह के कारण ही विधवाओ की वृद्धि होती है। कवि उनकी दशा से विचलित होकर अपनी कलुष सामाजिक परम्पराओ के प्रति एक उसाँस भर कर रह जाता है—

'प्रति वर्ष विधवा-वृन्द की सख्या निरन्तर बढ रही
रोता कभी आकाश है, फटती कभी हिल कर मही
फिर भी नही हम छोडते हैं बाल-वृद्ध विवाह को[2]।'

दहेज तथा परदा आदि कुप्रथाओ पर भी उसका आक्रोश प्रकट हुआ है—

यह दहेज की आग सुवंशों ने दहकाई
प्रलय वह्नि सी वही आज चारों दिशि आई
घर उजाड़ बन बना रही, कर रही सफाई
ताप रहे हम, मुदित समझते होली आई[3]।

और परदे के हास्यास्पद परिवेष्ठन मे भी नारी कितनी दयनीय है—

नख शिखान्त ओढे जब नारी
निकले होकर पंथ सचारी
दिखती है तब वह बेचारी
मानो प्राणी द्विपाद चारी[4]।

१—मीर : बूढ़े का व्याह, श्रीकृष्ण लाल द्वारा 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' पृष्ठ ६१ पर उत्कथित।
२—भारत भारती · पृष्ठ १४०।
३—'गया प्रसाद शुक्ल' सनेही : सरस्वती, अगस्त १९१४।
४—केशव राम फड़से—परदा : मर्यादा, अक्टूबर, १९१४।

दूसरे पक्ष मे, वह कन्या विक्रय की प्रथा से कवि क्षुब्ध हैं—

बिकता कही पर है जहाँ, बिकती तथा कन्या कही
क्या अर्थ के आगे हमें, अब इष्ट आत्मा भी नही।

समाज में फैली हुई वेश्या-वृत्ति की ओर भी लेखक का ध्यान आकृष्ट हुआ है। वह कुप्रथा का उत्तरदायी पुरुष को ठहराया है। 'सेवा सदन' (प्रेमचन्द) के वकील साहब 'सुमन' के विषय मे एक स्थान पर कहते हैं—

'यदि मैं उसे घर से न निकाल दिया होता तो इस भाँति उसका पतन न होता। मेरे यहाँ से निकल कर उसे और कोई ठिकाना न रहा और क्रोध और कुछ नैराश्य की अवस्था मे वह यह भीषण अभिनय करने पर बाध्य हुई।' पृष्ठ ८७।

नारी की आर्थिक विवशता ही उसे इस भयानक पाप की राह पर चलने के लिए बाध्य करती है। वह परिस्थितियो से हार कर ही दुराचार का आश्रय लेती है—'स्त्री हारे दर्जे दुराचारिणी होती है। अपने सतीत्व से अधिक, उसे संसार मे और किसी वस्तु पर गर्व नही होता, न वह किसी चीज़ को इतना मूल्यवान समझती है।' (प्रतिज्ञा, पृष्ठ ८७-८८)

अन्यथा, तथाकथित इस पतिता नारी मे भी सम्मानित महिलाओ की भाँति धार्मिक श्रद्धा और जीविकोद्धार की उत्कट अभिलाषा होती है। 'उन्हे केवल एक सहारे की आवश्यकता होती हैं, जिसे पकड़ कर वे बाहर निकल सकें।'

(सेवा सदन, पृष्ठ ३११)

इसी प्रकार नारी की हीनावस्था को आर्थिक समस्या के साथ सम्बद्ध कर, देखने का प्रयास इस काल से आरम्भ हो जाता है और साहित्यकार इस विश्वास की प्रतिष्ठा करने लगता है कि जब तक नारी को आर्थिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक उसके लिए सामाजिक क्षेत्र मे समान स्वीकृति की कोई भी सम्भावना नही है। इसी आशय को लेकर कवि नारी के चरित्र मे उन महान् गुणो के प्रस्थापन की मंगल कामना करता है, जिनके माध्यम से उसे समाज मे सम्मानपूर्ण स्थिति की प्राप्ति हो।

विदुषी उपजें समता न तजें, व्रतधार भजें सुकृति वर को।
सधवा सुधरे, विधवा उबरें सकलक करें न किसी घर को।
दुहिता न बिके, कुटनी न टिकें, कुल बौर छिके तरसे दर को।
दिन फेर पिता, घर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को[1]।

(नाथू राम शंकर)

इस काल की सामयिक पत्र-पत्रिकाओ मे भी नारी-वर्ग की सामाजिक स्थिति सुधार-विषयक अनेक लेख प्राप्त होते हैं। उनकी परधीनता, असहाय अवस्था,

१—सुधीन्द्र द्वारा 'हिन्दी कविता में युगान्तर' पृष्ठ २२२ पर उत्कथित।

पति परम्परा से चले आये अत्याचार तथा उनमे बौद्धिक चेतना की आवश्यकता आदि विषयों पर इस काल मे प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है[1]।

उपर्युक्त कुप्रथाओ के विनाश की चेष्टा के साथ-साथ स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता पर भी इस युग मे पर्याप्त लिखा गया है। कवि सामान्य नारी मे गुणों की कमी को अपना ही (पुरुष का ही) दोष मानता है क्योंकि पुरुष-वर्ग ही उसे अधकार मे रखे हुए है—

'क्या दोष उनका किन्तु, जो उनमें गुणो की है कमी
हा, क्या करे वे जब कि उनको मूर्ख रखते है हमी।'
(भारत-भारती, पृष्ठ १३६)

उनका अज्ञानता की इस अधकारपूर्ण परिधि से केवल शिक्षा के आलोक मे ही बाहर लाया जा सकता है—

'जब तक विद्या पुरुषो सम पावेंगी दुहिता न मम
तब तक मेरी उन्नति अलभ है आकाश कुसुम सम।'
(मिश्र बन्धु : भारत विनय—स्त्री।)

बाबू छेदा लाल ने भी 'अबलोन्नति पथ माला' में नारी-शिक्षा के प्रचार पर बल दिया है क्योकि महिलाओं की दुर्गति का मूल कारण उनका अक्षित होना ही है—

'आज अविद्या की मूर्ति सी हैं सब श्रीमतिया यहाँ
दृष्टि अभागी देख ले उनकी दुर्गतिया यहाँ।'
(गोपाल शरण सिंह)

इस काल के साहित्यकार का विश्वास है कि नारी वर्ग मे शिक्षा के प्रचार से मनुष्य अपने इहलोक और परलोक के साधनों की प्राप्ति कर सकने मे समर्थ हो सकता है—

'भाइयो ! उन सम्पूर्ण साधनों को सिद्ध करने मे प्रधान कारणो मे से एक सबसे बड़ा कारण स्त्रियों को शिक्षित होना है। जो-जो साधन मनुष्य के लिए परलोक

१—(अ) सत्येन्द्र : स्त्रियों की पराधीनता, मर्यादा, मई १९१३।
(आ) गोपाल शरण सिंह : दहेज की कुप्रथा से हानिया, सरस्वती, जुलाई १९१४।
(इ) जनार्दन भट्ट (हिन्दुओं में बाल-विवाह), सरस्वती, फरवरी १९१९।
(ई) अध्यापक पूर्ण सिंह · 'कन्या दान' सरस्वती, अक्टूबर, १९०९।
(उ) पुरुषोत्तम प्रसाद : 'स्त्री-शिक्षा', भारतेन्दु, दिसम्बर, १९०५।

तथा इस लोक के लिए आवश्यक है, वे सम्पूर्ण साधन स्त्रियों के शिक्षित होने से ही प्राप्त हो सकते हैं[1]।

शिक्षित नारी के लिए सब कुछ सम्भाव्य है—

'क्या नही कर सकती भला यदि शिक्षिता हों नारियां
रण, रग, राज्य सुधर्म-रक्षा कर चुकी सुकुमारिया।'

(भारत-भारती, पृष्ठ १३७)

साथ ही वह यह भी भविष्यवाणी करती है—

'विद्या हमारी भी न तब तक काम मे कुछ आएगी।
अर्द्धांगिनियों को भी सुशिक्षा दी न जब तक जाएगी।'

(भारत-भारती, पृष्ठ १७५)

इस प्रकार से जागृति काल के साहित्यकाल मे नारी-वर्ग को जागृत करने के प्रति बलवती भावना विद्यमान है और वह उसे सामाजिक क्षेत्र मे उन्नत, स्वस्थ, सम्मानित एवं शिक्षित देखने का आकाक्षी है।

नारी-विभिन्न सम्बन्धों में

इस काल मे नारी के चित्रण, जैसा कि पिछली पक्तियों मे कहा जा चुका है, सामान्यत आदर्श और नैतिकता की ही भाव-भूमि पर हुआ है। विभिन्न सम्बन्धों के रूप में भी उसे इसी भाव की अभिव्यक्ति मिली है और लगभग सभी सम्बन्धों में (कन्या को छोड कर) उसे महत्ता का उत्कर्ष प्राप्त हुआ है। जागृति-युगीन नारी प्रेयसी बन कर प्रिय के पथ की बाधा नहीं, वरन् प्रेरणा बनती है। उसमे निष्क्रियता का अंश भी नहीं मिलता। अपने प्रिय की लक्ष्य-पूर्ति के लिए वह सदैव सहयोगिनी के रूप में सन्नद्ध है। इतना ही नहीं, अपने प्रिय की अनुपस्थिति में वह उसके अधूरे कार्य को पूर्ण करने मे ही अपने जीवन की सार्थकता मानती है—

'अब कर्त्तव्य यही है। पूरा
करूँ वही उद्देश्य।
जिस की पूर्ति हेतु उद्यत थे
मेरे प्रिय प्राणेश।'

(राम नरेश त्रिपाठी, : मिलन, पृष्ठ २१)

उसमे सवेदनशीलता, वात्सल्य एवं व्यावहारिकता की भी कमी नहीं है। प्रिय प्रवास की करुणा धारा ने उसमें इन नवीन समाज-हितकारी वृत्तियों को अंकुरित एवं पल्लवित कर दिया है, और इसीलिए वह रीति-कालीन नायिका की भांति

१—बाबा भगवान दीन शुक्ल : 'स्त्री-शिक्षा का उपाय,' इन्दु, किरण ११ सम्वत् १९६६ पृष्ठ १९१।

उसाँस भरने, विरह कथा कहते रहने तथा 'निसि दिन' प्रिय का मग जोहते रहने की अपेक्षाकृत कार्यावली मे निरत रहने की प्रतिज्ञा करती है—

'ऐसी हूँगी निरत अब मैं पूत कार्यावली में,
मेरे जी मे प्रणय जिससे पूर्णत. प्राप्त होवे।'

(प्रिय प्रवास, पृष्ठ २५८)

इसके साथ-साथ वह प्रकृति के दूसरे उपकरणों से भी जन-उपकारी भावों एव कार्य-कलापों की अपेक्षा करती है—

जीते जाते अगर पथ मे क्लान्त कोई दिखावे
तो जा के सन्निकट उसकी क्लान्तियों को मिटाना।'

(प्रिय प्रवास, राधा-पवन से)

इस काल की प्रेयसी की सबसे बडी विशेषता विश्व-वेदना मे आत्म-वेदना के पर्यावसान को लेकर है। वह कुसुम, जुही, चमेली तथा वन्य-जीवो मे जैसे अपनी ही वेदना का साक्षात्कार करती है। उसी से अनुप्राणित, प्रिय के प्रति, उसकी असीम निष्ठा व्यक्त होती है—

'जैसे तू है परम प्रिय के रंग मे पुष्प डूबा,
वैसे-वैसे जलद तन के रग मे रगूँगी।' (प्रिय प्रवास)

प्रेयसी की भाँति पत्नी भी पुरुष के लिए शक्ति और प्रेरणा का स्रोत है। उसके लिए आसक्ति का कारण नही। क्षत्राणी पत्नी का तो जैसे यही गौरव है—

क्षत्राणियों के अर्थ भी सब से बड़ा गौरव यही
सज्जित करे पति पुत्र को, रण के लिए जो आप ही।

(मैथिली शरण गुप्त : जयद्रथ-बध, पृष्ठ ६)

पति को लेकर ही वह सनाथा हो सकती है। पति ही उसका सर्वस्व है—

माता पिता आदि भले ही और निज जन हो सभी।
पति के बिना पत्नी सनाथा हो नही सकती कभी।

(वही, पृष्ठ २५)

उसके सुखी जीवन की आकांक्षा करना वह मरते-मरते भी नही भूलती। जन्म-जन्मान्तरों तक वह उसी की होकर रहना चाहती है[1]। उसकी एकनिष्ठा भारतीय आदर्श से अनुप्राणित है—

"मैं आर्य बाला हूँ, मैंने गान्धारी और सावित्री के कुल में जन्म लिया है। जिसे एक बार मन से अपना पति मान चुकी, उसे नहीं त्याग सकती।"

(प्रेमचन्द : वरदान, माधवी का कथन, पृष्ठ १५८)

इतनी निष्ठा के साथ जिसे वह अपना पूज्य देवता मानती है, उसके द्वारा

१—मैथिली शरण गुप्त : किसान, पृष्ठ ४०।

यदि उसकी सेवाओं का उचित मूल्य न मिलकर तिरस्कार और प्रताडना मिलती है, तो वह विद्रोह करना भी नही चूकती । समय पड़ने पर वह भी अपने गौरव की रक्षा कर सकने में समर्थ है—

'स्त्री पुरुष के पैरो की जूती के सिवा और है ही क्या ? पुरुष चाहे जैसा हो, चोर हो, ठग हो, व्यभिचारी हो, शराबी हो—स्त्री का धर्म है कि उसकी चरण रज धो-धो कर पिये । मैंने कौन-सा अपराध किया था, जो उन्हे मनाने जाती ।'

(प्रेमचन्द : प्रतिज्ञा, पृष्ठ ५५)

वह अपने अधिकारों के प्रति भी निष्चेष्ट नही है—

'बाप का घर था जब था, अब यही घर है। मैं अदालत से लडकर ५०० रु० महीना ले लूंगी, लाला, इस फेर मे न रहना । पैर की जूती नही हूँ कि नई थी तो पहना, पुरानी हो गई तो उतार फेका ।' (प्रतिज्ञा : सुमित्रा का कथन, पृष्ठ ६६)

इस प्रकार पत्नी रूप मे उसमें श्रद्धा, एकनिष्ठा एवं सहयोग का भाव तो है ही, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता भी कम नही है । वह साम्य के धरातल पर पुरुष के साथ उसके बराबर चलने की सामर्थ्य रखती है, और यह उसके स्वरूप-विकास की शृंखला मे एक विशेष कड़ी है ।

माता के रूप मे नारी असीम ममतामयी है । पुत्र के लिए—उसकी सुरक्षा के लिए वह सर्वस्व न्योछावर कर सकती है। 'प्रिय-प्रवास' की यशोदा मे मातृ-स्वरूप की अतुल ममता मुखरित हुई है—

जो चाहेगा नृपति मुझ से दण्ड दूंगी करोड़ों
लोटा थाली सहित तन के वस्त्र भी बेच दूंगी
जो मागेगा हृदय वह तो काढ़ दूंगी उसे भी
बेटा, तेरा गमन मथुरा न मैं आँखों लखूंगी ।

(पंचम सर्ग, पृष्ठ ५०)

o o o o

हा, ऐसे ही अब वदन को देखती कौन होगी
ऊधो, माता-सदृश ममता अन्य की है न होती ।

(दशम सर्ग, पृष्ठ १२२)

साथ ही साथ वह पूज्या भी है, और समाज का समादर भी उसे प्राप्त है... ।

परन्तु इस काल में जहाँ कहीं भी कन्या का स्वरूप वर्णन किया गया है, वहां उसके दुर्भाग्य पर करुणा का वर्षण ही हो सका है । उसकी दलित भावनाओं की

विवश मूकता उसको किसी भी प्रकार की स्वीकृति प्रदान नही करती। 'ठहरौनी' आदि कुप्रथाओ मे उसके भविष्य को परिसीमित कर दिया गया है—

यह कुरीति कुल ललनाओ का
कोमल हृदय जलाती हैं।
मनस्ताप से उन के तन को
तप्ताअगार बनाती है।
बीस वर्ष की होने पर भी
अविवाहित रह जाती हैं।
मुँह से यद्यपि कुछ न कहती है।
अति दुसह दुख पाती है।

(ठहरौनी) सरस्वती, १९०६, पृष्ठ ४४०।

मूक पशु की भाँति उसकी वेदना मन से बाहर निकलने का मार्ग नही ढूंढ पाती। उसके सरक्षक ही उसकी विपत्ति का कारण बनते हैं। सहायता के लिए दयनीय पुकार के अतिरिक्त उस विवश, अशिक्षित और सस्कार परिबद्ध कन्या के पास है ही क्या। कवि ने उसकी उस दयनीय अवस्था को निहारा है—

बेटिया छिलते कलेजे को कभी
सामने आ खोल भी नही सकती
आह ! क्यो हम फेर दे उन पर छुरी
जो कि मुँह से बोल भी सकती नही।'

(अयोध्या सिंह उपाध्याय (बेटियां) सरस्वती १९२०, अगस्त अक)

और साथ ही सहानुभूति भी प्रदान की है—

'लडकियो को न बेतरह लूटें,
आह ! उनका लहू न हम गारे।
वे अगर हाथ का खिलौना हैं,
तो न उन को खेला-खेला मारे।' (वही)

विभिन्न वर्गों में नारी

इस काल मे साहित्यकारो का ध्यान विशेष रूप से निम्न मध्य वर्ग की समस्याओ तक ही केन्द्रित रहा। उच्च शिक्षित वर्ग को लेकर साहित्य रचना नहीं के बराबर हुई। मध्य वर्गीय नारी का चित्रण 'सुधार भावना' के अन्तर्गत किया जा चुका है। सुधारों की योजना करते समय कवि या लेखक का केन्द्र-बिन्दु मध्य वर्ग ही रहा है, क्योंकि पुरातन परम्पराओं एवं कुप्रथाओं का सबसे अधिक दैन्य इसी वर्ग को भुगतना पड़ा है। परन्तु मध्य वर्गीय नारी से भी अधिक दयनीय अवस्था निम्न

वर्गीय नारी की है जो दिन रात अथक परिश्रम करने पर भी भूख की समस्या को सुलझा लेने मे असमर्थ है—

'गोबर उठाती, थापती हैं, भोगती आयास वे
कृषि काटती, लेती परो है, खोदती है घास वे
गृह कार्य जितने और है, करती वह सम्पन्न हैं
तो भी कदाचित ही कभी भर पेट पाती अन्न हैं।'

(भारत-भारती, पृष्ठ ६५)

महादेवी वर्मा ने 'अतीत के चलचित्र' मे 'भक्तिन'[१] 'दूबरी' 'बिबिया' तथा 'लक्ष्मा' आदि के चित्र प्रस्तुत किये है जो निम्न वर्गीय नारी की वस्तु-स्थिति को प्रकाश मे लाते हैं। जिनके जीवन की एक-एक घटना मे दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था की एक लम्बी करुण कहानी छिपी है[१]। जहाँ के समाज में नारी को कही भी सम्मानपूर्ण स्थिति की उपलब्धि नही है[२]। ऐसा लगता है जैसे उसकी जीवन-छाया में दुख स्थाई रूप से घर कर गया है[३]। फिर भी वह मानवी गुणो से पूर्ण है। उसमे पत्नी के रूप मे निष्ठा जीवित है। पति की मृत्यु के बाद वह दया का आश्रय नही, वरन् स्वावलम्बी जीवन जीना चाहती है[४]। उसमे कर्त्तव्यपरायणता, उत्सर्ग भावना तथा सेवा भाव की प्रमुखता है। वह रोते-रोते ही जीती है और इसी जीने में जैसे उसके सम्पूर्ण जीवन की सार्थकता सिमट कर उसकी अर्धनग्न क्षुब्ध एव पीडित आत्मा के केन्द्रीभूत हो गई है। फिर भी नियामक के प्रति उसके मन मे अपूर्व आस्था जीती है। वह उसी पर अपना सर्वस्व छोड़ कर ससार क्षेत्र मे कार्य-निरत रहना चाहती है—

कुलवन्ती ने कहा कि अब धीरज धरो
जिसमे यह ससार चले, ऐसा करो
और किसे अब यहाँ हमारा ध्यान है
ऊपर नीचे वही एक भगवान है।

(मैथिली शरण गुप्त : किसान, पृष्ठ २४।)

नारी के विभिन्न रूप

विभिन्न सम्बन्धों एवं वर्गों के नारी चित्रण के साथ-साथ इस काल की नारी को सत् और असत् रूपो मे भी अभिव्यक्ति मिली है। पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि इस काल मे साहित्यकारों का लक्ष्य आदर्श एवं नैतिकता की स्थापना था।

१—महादेवी वर्मा : अतीत के चल-चित्र का आठवां चित्र।
२—वही, दसवां चित्र।
३—वही, ग्यारहवां चित्र। (लक्ष्मा का जीवन)
४—वही, सातवा चित्र।

अतः नारी को उज्ज्वलतर चित्रित करने के प्रयत्न मे साहित्यकार ने अपूर्व आदर्शवादिता के प्रदर्शन का अभिनय किया। 'हरिऔध' की राधा, रामनरेश त्रिपाठी की विजया, आदि इस युग की अपूर्व नारी कृतिया है, जिनके माध्यम से आदर्शवादिता, राष्ट्रीयता एव नारी के उज्ज्वलतर सत् स्वरूप की प्रतिष्ठा की गई है। सभी गुण जैसे उसके चरित्र मे पूँजीभूत हो जाते हैं—

'सद्वस्त्रा सदलकृता गुणमुता सर्वत्र सम्पादिता
रोगी वृद्ध जनोपारनिरता सच्छास्त्र चिन्तापरा
सद्भावातरिता अनन्य हृदया सत्प्रेम सपोषिका
राधा थी सुमना प्रसन्नवदना स्त्रीचाति रत्नोप्रभा।'
(प्रिय-प्रवास, पृष्ठ ३७।)

'मिलन' की विजया मे भी इसी सत् स्वरूप का विकास हुआ है। जिसका वर्णन 'विभिन्न सम्बन्धो के अन्तर्गत नारी भावना की विवेचना करते समय किया जा चुका है। 'रग मे भग' (गुप्त) की नव-वधू अपने त्याग और वीरत्व के कारण ही श्रद्धेय हो जाती है।

नारी के इस सत् स्वरूप के साथ-साथ छुट-पुट रूप में उसके असत् रूप की भी अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार के स्वरूप-दर्शन का कारण प्राचीन भक्ति एव रीतिकालीन परिपाटी का निर्वाह या उसके प्रति मोह रहा है। इस रूप मे उसके प्रति कटु उपेक्षापूर्ण भावना ही व्यक्त हुई है—

अनृत साहस, छद्म प्रगल्भता
अदयता, अविवेक, अशौचता
यदि न ये अबला उर मे रहे
फिर उसे कवि निन्दित क्यो कहे।
(रामचरित उपाध्याय) राम चरित्र चिन्तामणि, पृष्ठ ६६।

... ...

निज प्रयोजन ही प्रिय है उन्हे
पर प्रयोजन अप्रिय है उन्हे। (वही, पृष्ठ ८२)

साथ ही सभी सम्बन्धों मे वह अविश्वसनीय भी है—

'स्वपति को, गुरु को निज तात को
तनय को अपने प्रिय गात को
समय पा न हने कब कामिनी। (वही, पांचवाँ सर्ग)

इस काल मे जहाँ रीतिकालीन शृगारात्मक भावना को अभिव्यक्ति मिली है। वहाँ 'यथार्थता और व्यक्तित्व उपेक्षित हुए हैं।' देव, घनानन्द आदि रीतिकारों की

ही भाँति इस काल का कवि भी किशोरावस्था को यौवन के द्वार पर पदार्पण देख अत्यन्त आकर्षित हो, अस्थिर हो उठता है—

चरनत छाड़ि चचलाई अब नैनन मे
अपनो बनाय रही रुचिर यंगार है
राजहस त्यो ही धीरताई मंजु नैनन की
चरनन बीट रही अपनो अगार है
जाय रही सधन जघन उर जन पर
कटि को प्रदेश त्यागि गुरुता अपार है
तापे दीठि डार, मन थिर रहि जाय कैसे
थिर जब नाही, ताको तन सुकुमार है।

(बलदेव प्रसाद मिश्र : : शृगार शतक : वयसन्धि, पृष्ठ ३।)

मिश्र जी की ही भाँति 'हरिऔध' जी ने 'विनोद बयालिसा' मे तथा द्विज बलदेव प्रसाद ने 'प्रेम तरग' मे नारी को इसी स्थूल, काम-प्रेरक एव ऐन्द्रिक सुख की पीठिका के रूप में देखा है जिससे जीवन-क्षेत्र के सभी उपयोगी कर्त्तव्य आवृत हो गए है।

प्रतीकात्मक नारी-भावना

इस काल मे नारी भावना के एक नवीन रूप का भी उदय था। और वह है नारी का प्रतीकात्मक रूप राष्ट्र को माता के रूप मे उपस्थिति करना इस काल के कवि की अपनी विशेषता है—

भारत माता, अपने इन पुत्रो को पहले का सा बल दे
हे भारती ! दया कर क्षण मे सब की दुर्बलता तू दल दे।

(श्रीधर पाठक : भारती वीणा, पृष्ठ ५० ।)

भारत 'धरनी' की वन्दना करते हुए कवि ने उसे माता के समान सभी सद्‌गुणो से युक्त माना है। इस काल में पहली बार प्रकृति पर भी नारी भाव को आरोपित किया गया है। यह प्रतीकात्मक भावना भी नारी को नारी रूप मे अधिष्ठित कर उसका वन्दन किया गया है। यह प्रतीकात्मक भावना भी नारी को सम्मानित पद देने के उद्देश्य से ही व्यक्त हुई है। यह अकुर विकास काल (१९२१-१९३७) मे प्रस्फुटित एव पल्लवित हुआ है।

राष्ट्रीय-चेतना और नारी

नारी स्थिति का यह जागृति काल वास्तव में भारत की राष्ट्रीय चेतना का काल है। इस काल के साहित्यकार मे स्वजातीय प्रेम, दासता के प्रति विद्रोह, सर्वहारा वर्ग की ओर सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिपात, नैतिक पक्ष का प्रबल समर्थन, आर्थिक

जीवन की विषमता के प्रति विक्षोभ तथा सास्कृतिक जीवन की यथार्थता एवं अकल्याणकारी रूढ़ियो का चित्रण करने की भावना बलवती है[1]। नारी को राष्ट्रीय भावनाओं के साथ आबद्ध करने का प्रयास भी इस चतुर्दिक चेतना का परिणाम है। नारी आर्य जाति की ज्योति, जीवन और सजीवनी बन विश्व की अजेय शक्ति के रूप मे अवतरित हुई है[2]। वह भी पुरुष की भाँति अपने देश के सुख-दुखो की समान अधिकारिणी है, इसीलिए आज राष्ट्र-निर्माण के महान् पर्व मे कवि उसका आवाहन करता है—

आर्य स्वदेश सुख दुख सगिनी, अखिल श्रेय सचारिणी
आर्य जगत मे जननि पुनः निज जीवन ज्योति जगाओ।

... ...

करो सार्थ कमनीय नाम अहो आर्य कुल कामिनी
आर्य प्रेम की पुन्य पताका, आर्य गेह की स्वामिनी[3]।

साथ ही प्राचीन महिला रत्नो के चरित्र उपस्थित करके नारी समाज को स्वदेश भक्ति और सेवा की ओर उन्मुख करने की प्रेरणा देने का प्रयत्न भी किया गया है। इस काल का कवि नारी की शक्ति पर पूर्ण विश्वासी है। वह उसे अबला नही मानता—

'बस, नाम जो अबला इन्हे मुनियो ने दिया है।
महिलाओं के सग भारी सा अन्याय किया है।
जाचा नही, किस धातु का नारी का हिया है।
अमृत की मधुर धार है, या विष का बिया है।
(बाबा भगवान दीन · वीर पंच रत्न, वीर माता अलूपी)

उसकी दृढ़ आस्था है कि नारी ही पुरुष को कर्त्तव्य का बोध करा सकती है—

'हर घर मे प्रकट कीजिए विदुला सी सुमाता
सिखला के बना दे, हमें कर्त्तव्य की माता।' (वीर पंच रत्न)

राष्ट्रीय चेतना के इस अरुणोदय में कवि नारी को स्वदेशीय प्रेम तथा विदेशी बहिष्कार का पाठ देना भी नही भूलता—

'है भामिनियो! कुल कामिनियो
ये चूड़ियाँ हैं परदेशियों को

१—देखिये, 'हिन्दी कविता मे युगान्तर' का अन्तरंग-दर्शन।
२—श्रीधर पाठक : भारत गीत—आर्य महिला, पृष्ठ ११३।
३—वही, पृष्ठ ११४।

कलंक हैं भारी पहनो इन्हें जो
छोड़ो जरा तो मन मे लजाओ।'
(गिरिधर शर्मा, सरस्वती १६०६, पृष्ठ ४२१।)

देश की रक्षा के लिए जाते हुए भाइयो को अपनी बहिनो से प्रेरणा प्राप्त होती है—

'बहनें कहती थी हे भाई
बैरी का अभिमान चूर्ण कर
विजयी योद्धा के बानक मे
इसी राह होकर जाना घर।'

इस प्रकार 'नारी मे न केवल वीरता ही है, वरन् वीरत्व संचार करने की शक्ति भी है। पुरुष को देश की स्वतन्त्रता के लिए युद्धोतेजना और प्रेरणा देने का चातुर्य भी है। इस प्रकार वह केवल गृह की सीमाओ मे बद्ध पुरुष की काम पूर्ति का साधन नहीं रह जाती[1]।'

उपसंहार

हिन्दी साहित्य मे उत्थान तथा जागृति-युगीन नारी-स्थिति का चित्रण उस की स्थिति के विकास क्रम को स्पष्ट कर देता है। उत्थान-काल मे जहाँ नारी के प्रति भक्ति तथा रीति-कालीन उपेक्षात्मक तथा शृंगारात्मक भावना की अभिव्यक्ति तथा सुधार प्रचुर मात्रा मे हुई है, वहाँ जागृति काल मे नारी को प्रेरणा और आदर्श मान कर उसे नैतिक भाव-भूमि पर देखने का प्रयत्न ही अधिक प्रतीत होता है। जागृति-कालीन नारी को साहित्यकार की नैतिक सहानुभूति की उपलब्धि उस कोटि तक हुई है, जहाँ वह अपने को आदर्श के शीर्ष पर स्थित हुई पाती है। उत्थान-काल में नारी के शृंगारिक स्वरूप का बाहुल्य है, जब कि जागृति-काल में, सामान्यतः सभी साहित्यकारों द्वारा शृंगार भावना तिरस्कृत हुई है। इस काल मे स्थूल शृंगार के स्थान पर नारी के निर्मल, पवित्र एवं श्रद्धायुक्त सत् रूप की ही प्रतिष्ठा का आयोजन अधिक हुआ है। साथ ही नारी की सामाजिक वस्तु-स्थिति पर करुणा और सहानुभूति पूर्ण भावना प्रकट की गई है। इस प्रकार से नारी भावना विषयक इस काल का साहित्य करुणा की भाव-भूमि पर लिखा गया साहित्य है। नारी के प्रति प्रदर्शित करुणा और सहानुभूति का बाहुल्य उसे वास्तविक प्रतिष्ठा और सम्मान देने मे असमर्थ रहा है।

अतः जहाँ भी नारी के आदर्श की स्थापना की गई है वहाँ आदर्शवादिता स्वाभाविक न होकर आरोपित एवं वास्तविकता से कुछ भिन्न कोटि की लगती है। इसीलिए वह व्यावहारिकता के अधिक निकट न होकर काल्पनिक ही अधिक है।

१—शैल कुमारी : 'आधुनिक हिन्दी कविता मे नारी भावना' पृष्ठ ५७।

जागृति-काल के नारी चरित्रों में नैतिकता का आरोपण हिन्दी साहित्य की अपूर्व घटना है, यह हम कह आए हैं। परन्तु अपने संस्कारों से ऊपर उठ सकने में असमर्थ साहित्यकार नैतिकता के इस आदर्श का निर्वाह कर सकने में असफल, उसे अस्वाभाविकता की सीमा तक खींच ले गए हैं, अतः नारी का चित्रित आदर्श चरित्र एवं महान् नैतिकता तर्क और व्यवहार की कसौटी पर खरे नही उतर पाते। जागृति-काल में शृंगार की अवहेलना भी उत्थान-काल की प्रतिक्रिया का ही परिणाम है।

फिर भी नारी को नवीन, स्वस्थ और लक्ष्यपूर्ण दिशा देने का प्रयास इस काल की भारी विशेषता है। राष्ट्रीय जागृति ने इस काल में नारी को प्रभावित किया है, इसमे संदेह नहीं। अब पहली बार हिन्दी साहित्यकार ने नारी में प्रेरणा शक्ति और आदर्श की स्थापना की, तथा उसको रीति-कालीन घोर शृंगारिक वीथिकाओं से उबार कर सामाजिक आदर्शों और राष्ट्रीय मान्यताओं के उस राज-मार्ग पर ला खडा कर दिया, जहाँ से आगे चल कर वह साहित्य, समाज और संस्कृति में प्रतिष्ठापूर्ण पद की अभिव्यक्ति यथा समान भाव-भूमि एवं कार्य क्षेत्र पा सकने में समर्थ हो सकी।

प्रकरण—५

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में नारी

(क्रमशः)

...३. विकास-काल
(१९२१-१९३७)

...४. नव्य-काल
(१९३८-१९५७)

प्रकरण—५

...३ विकास-काल

(१९२१-१९३७)

जागृति-काल मे जिन सामाजिक आदर्शों एवं मान्यताओ की कल्पना की गई, उन्हे विकास-काल मे समुचित विकास का अवसर मिला राजनीतिक क्षेत्र के अब गाँधी जी का स्वर प्रतिष्ठित हो चुका था उन्ही की प्रेरणा और आदेश से १९२० मे असहयोग आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ, जिसने १९२२ मे सविनय अवज्ञा आन्दोलद का स्वरूप धारण किया। अब भारतीयो द्वारा प्रान्तीय धारा-सभाओ तथा स्थानीय सस्थाओ मे प्रवेश करने के लिए प्रयत्न होने आरम्भ हो गए थे। सरकारी शिक्षण-सस्थाओ का निषेध एव विदेशी-बहिष्कार, राष्ट्रीय-भावना का स्वरूप दृढ कर रहा था। १९२४ तक आते-आते भारतीयो के मन मे स्वराज्य प्राप्ति की भावना प्रबल हो उठी थी, राष्ट्रीय जागृति की इस लहर ने साहित्यिक क्षेत्र और महिला-वर्ग को भी प्रभावित किया, और इसी देश-प्रेम और देश-सेवा के प्रण के साथ-साथ नारी स्वय भी अपनी खोई शक्ति पाने की दिशा मे अग्रसर हुई—

'बहिनो, जग इतिहास मे हमे प्रतिक्षण सिखलाता
जो रखता है शक्ति, वही जग मे सुख पाता।
निर्बलता को त्याग वीर-रमणी व्रत धारो
मानव जीवन पाय देवियो, हृदय न हारो।

(यशोदा देवी) बहिनो से—चाँद, १९२५, पृष्ठ ४१२।

शक्ति प्राप्त करने के साथ-साथ वह नवयुग की ओर, जो युग-जर्जर प्रलय अस्त कर, कचन विहान लिए आएगा, आशा की स्नेहिल आँखो से निहारती है—

'मैं नहीं चाहती सध्या के
युग-युग की जर्जर गान
हाँ, मधुर उषा आगमन सुना
कैसा होगा कंचन विहान।'

(तोरन देवी लली—जागृति : 'गायक' पृष्ठ ६९)

सन् १६२४ से १६२६ तक राष्ट्रीय आन्दोलनो मे इस प्रकार की स्थिरता सी रही। परन्तु १६३० मे जब 'सम्पूर्ण स्वराज्य' की घोषणा कर दी गई तब एक बार फिर राष्ट्रीय आन्दोलन मे तीव्रता आई, और उस परिस्थिति मे नारी ने समान सहयोग देकर अपनी समग्र शक्ति और योग्यता का प्रमाण दिया[1]। १६३१ मे गाँधी-इरविन समझौते के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन के इस वेग मे जो थोडी-सी शिथिलता आई, वह सरकार के दमन चक्र, जनता की क्षुब्ध-प्रतिक्रिया एव राष्ट्र सेवियो के अदम्य उत्साह के परिणाम स्वरूप नई शक्ति के रूप मे परिवर्तित हो लक्ष्य-प्राप्ति के प्रागण मे प्रतिलक्षित हुई। इस बार महिला समाज का और भी अधिक विश्वास से आह्वान किया गया और स्वतंत्रता प्राप्ति के इस महान् प्रयत्न मे उसे भी सहयोगिनी और सहचरी का स्वरूप प्रदान किया गया। चिर हतभागिनी नारी के इस नवीन यथार्थ जागृत-स्वरूप का साहित्यकार ने भी अनुमोदन किया—

री, आसू के दिन बीते
अब भाग जगे चिर रीते
ओ चटुल स्वप्न तुम जीते
अब सत्य सिंधु को चिर हतभागिनी
चली रिक्त घर भरने।

(गिरीश चन्द्र पन्तः प्रस्थान, सरस्वती १६३४ पृष्ठ ५६४)

राष्ट्रीय प्रगति के साथ-साथ भारतीय औद्योगिक विकास की दृष्टि से भी यह काल विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इससे पूर्व (१६१४ तक) भारत मे जूट और कपास के कारखाने ही प्रस्थापित हो सके थे। मशीन निर्माण अनभिज्ञ था। इस काल में लोह और इस्पात के उद्योगों के साथ-साथ अन्य छोटे-छोटे उद्योग भी बडी शीघ्रता से प्रगति करने लगे। दो विश्व-युद्धों के बीच भारत में औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ, जिसके परिणामस्वरूप स्वदेशी के विदेशी-बहिष्कार की भावना को बल प्राप्त होकर राष्ट्रीयता के विकास में अभिवृद्धि हुई।

प्रथम विश्व-युद्ध के फल-स्वरूप भारतीय समाज में आर्थिक विषमता व्याप्त हो चला थी। भौतिक असफलताओं ने व्यक्ति की भावनाओं को अन्तर्मुखी बनाकर सामाजिक जीवन से विरक्त कर दिया। साहित्य मे यह अन्तर्मुखी प्रवृति स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का आग्रह लेकर प्रकट हुई। परन्तु युग की उद्‌बुद्ध चेतना ने उस आर्थिक परिधि में भी जीवन और उन्नयन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण का निर्माण किया। दूसरी और पश्चिम की स्वच्छन्द विचारधारा से प्रभावित साहित्यकार स्वतन्त्र एवं युक्त प्रेम-भावना भी उस आयोजना में प्रण रत थे, जो जागृति-काल में

१—'कांग्रेस का इतिहास' भाग ४, देखिए पृष्ठ ३५२।

द्विवेदी आदि आदर्शवादी साहित्यकारो की नैतिक मान्यताओ के बोझ मे कुठित हो गई थी। इस युग मे भी जागृति-कालीन नैतिकता का अकुश साहित्यकारो पर हावी था, परन्तु साथ ही मन की शाश्वत सौन्दर्य भावना स्वरूप प्राप्त करने के लिए आकुल थी। इम काल मे प्रकृति और नारी के अतीन्द्रिय सौन्दर्य द्वारा अप्रत्यक्ष रूप मे नारी सौन्दर्य को अभिव्यक्ति प्रदान की गई तथा जिसमे उपभोग की भावना को प्रश्रय न देकर कौतूहल और विस्मय की भावना को चित्रित किया गया। आत्म-बद्ध, अर्न्मुखी एव अतीन्द्रिय अमासल सौन्दर्य का यह चित्रण हिन्दी मे छायावाद के नाम से अभिमत हुआ। इस सौन्दर्य-भावना के मूल मे नारी ही है। अत इस काल मे नारी-भावना से सत् माधुर्यपूर्ण स्वरूप की प्राप्ति हुई जिसमे न तो रीतिकालीन स्थूल शृगारिकता ही थी, और न जागृति कालीन कठोर नैतिक का बन्धन ही। इस भावना ने 'नवीन सौन्दर्य चेतना' जगा कर समाज की अभिरुचि का परिष्कार किया[१]।

पश्चिम के स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित और अनुप्राणित इस वैयक्तिक एव नितान्त एकान्तिक कविता धारा मे जहाँ नारी के सत्, निर्मल और माधुर्यपूर्ण रूप को नवीन रगो मे चित्रित किया गया, वहाँ साथ ही तत्कालीन सामाजिक उद्‌बोधन एव राष्ट्रीय चेतना की भी अवहेलना नही की गई। एक ओर यदि मानव मन की यह शाश्वत प्रणयन-नारी के अन्य-पक्ष—समाजगत स्थिति, उसकी समस्याओं, विषमताओं तथा उनके समाधान आदि की सम्भावनाओं को भी पूर्ण निष्ठा के साथ ग्रहण किया गया। इस प्रकार से इस काल मे चित्रित नारी भावना यदि एक ओर कवि की कल्पना से उद्‌भूत होने के कारण, उसकी प्रतिमा का परिणाम और इसीलिए अपने मूल रूप मे व्यक्तिगत है, तो दूसरी ओर सामाजिक जागृति और राष्ट्रीत क्षेत्र मैं सहकार के कारण उसे विस्तृत सामाजिक जीवन की भी स्वीकृति मिली है और उसका क्षेत्र पहिले युग की अपेक्षा अधिक विस्तृत हो गया है।

हिन्दी साहित्यकार द्वारा विकास कालीन नारी की निम्नलिखित विभिन्न रूपों मे अभिव्यक्ति प्रदान की गई—

१—वस्तु-स्थिति।
२—नवीन आदर्श।
३—सुधार भावना।
४—विभिन्न रूपों मे नारी।
५—प्रतीकात्मक नारी भावना।
६—विभिन्न सम्बन्धों मे नारी।
७—विभिन्न वर्गों मे नारी।
८—तथा सार्वजनिक प्रगति और नारी।

१—नगेन्द्र : 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृतियाँ,' छायावाद, पृष्ठ १६।

वस्तु-स्थिति

नवीन आदर्शो के इस उद्‌बोधन काल मे नारी को उच्चतर, सम्मानित और श्रद्धायुक्त भाव-भूमि पर अधिष्ठित करना इस काल के साहित्यकारो का लक्ष्य रहा है ,। छायावादी रोमान्टिक प्रवृति से प्रभावित कवियो ने उसमे माधुर्य, प्रेरणा और शक्ति की स्थिति मानी है, यह सत्य है। परन्तु इसके साथ-साथ यह भी सत्य है कि उसकी समाजगत वस्तु-स्थिति इस काल मे भी पूर्वावस्था जैसी ही दयनीय और करुण बनी रही। वैधव्य से पीडित नारी को अपने ही घर मे दासी का स्वरूप ग्रहण करना पडता है[१]। सहोदरा के जीवन की यह कितनी बडी करुणा है। नारी अपने त्याग और सेवा के कारण ही[२] इतनी निर्बल हो गई है कि उसे जीवन भर पुरुष वर्ग से अपमानित और प्रतिलाछित होना पड़ता है। देवताओ की अर्जना के योग्य नारी पतिता और हेय होकर दानवो के समाज मे अपनी दयनीय जीवन बिता रही है—

'आह, निर्दोष सौन्दर्य की यह कली
अर्चना योग्य जो देवताओ को रही
आज पॉव तले दानवो के पडी
हेय होकर विवश ठोकरे खा रही।
(श्याम सुन्दर खत्री . पतिता, माधुरी १९२७, पृष्ठ १२८)

इतना ही नही, अपने समस्त विश्वास को अपनी विशुद्धता आत्मा के साथ समर्पित करने के पश्चात् भी वह पुरुष की दृष्टि मे अविश्वसनीय है—

अविश्वास, हा अविश्वास ही
नारी के प्रति नर का
नर के तो सौ दोष क्षमा है
स्वामी है वह घर का।
(मैथिली शरण गुप्त : द्वापर, पृष्ठ ३६)

इसी अस्वीकृति और अनादर की अवस्था मे वह अविश्वास की मारी केवल मर ही सकती है[३]। क्योकि इससे कुछ अधिक उसके वश मे है ही नही। सामाजिक परम्पराओ की इस रूढिवादिता मे विवाह का सुवर्ण अवसर भी उसके लिए विष भार बन कर आता है—

'अर्द्ध निशा थी, मेरे सिर मे तभी गया सिन्दूर दिया।
या मम सिर पर विश्व-भार रख बाल-भाव था दूर किया।'
(ठाकुर गुरुभक्त सिह—वनश्री : सिन्दूर, पृष्ठ ७९)

१—प्रेमचन्द। निर्मला, देखिए रुक्मणि का चरित्र।
२—वही, कायाकल्प, पृष्ठ ४४४।
३—मैथिली शरण गुप्त . द्वापर, पृष्ठ २७।

सामाजिक परम्पराओ के मध्य इस प्रकार के शापित व्यक्तित्व का भार लिए चलते रहना उसके लिए कितना कष्टकर है। वह वास्तव मे शक्तिहीना है। इसीलिए उसका आक्रोश परास्त हो, करुणा मे विगलित हो जाता है—

शत-शर बिद्धा हरिणी हूँ, मदकल दलिता कदली हूँ
जड से उच्छिन्न लता हूँ, मै कुचली हुई कली हूँ।

पुरुष-वर्ग द्वारा आरोपित दृढ मर्यादा मे रहते-रहते नारी उसकी अभ्यस्त हो गई है और अब उस नियत सकीर्णता से निकलने की बात भी सोचने से उसका मस्तिष्क शून्य हो गया है—

'हमारे समाज ने अपनी अबला स्त्री के चारों ओर सूक्ष्म स्पष्ट रेखाएँ खीच कर उसके लिए जो स्थान नियत कर दिया है, जो दृढ मर्यादा चिर काल से बाँध दी है, उसे हम किस प्रकार दूर से देख सकते हैं। हमारी नारी उस तरह अपने को उससे अलग कर, नही देख सकती... ..वह शिक्षित हो, अथवा अशिक्षित। उस सकीर्ण कारा मे रहने-रहते उसे अपनी सकीर्णता का अनुभव नही होता।'

(सुमित्रा नन्दन पन्त—पाँच कहानियाँ · अवगुण्ठन, पृष्ठ, १०२-१०३।)

सामाजिक अस्वीकृति के साथ-साथ उसे पुरुष की सम्पति के रूप में ग्रहण किया गया[१]। वैसी ही सामान्य सम्पति के रूप मे, जिस प्रकार की सम्पति हम 'गुलाम को, कुत्तों को अथवा अन्य जानवरो को कह सकते है[२]। इसीलिए तो उसे नैराश्य और विवशता का जीवन बिताना पडता है[३]। अपनी स्थिति के प्रति कभी-कभी उसके मन मे आक्रोस उत्पन्न होता है और वह उस पिंजरमय वातावरण से निकल कर नीले खुले हुए आकाश मे पख खोल कर स्वतन्त्र विहग सी उडना चाहती है—

'मैं नही युवा होना चाहती। बुआ! छी! देख चिडिया कितनी ऊँची उड़ जाती है। मैं चिडिया होना चाहती हूँ...पख खोल कर वह आस्मान मे जिधर चाहे उड़ जाती है...मैं चिडिया बनना चाहती हूँ।'

(जैनेन्द्र कुमार— त्यागपत्र' मे मृणाल का कथन)

महिलाओं की दयनीय स्थिति का कारण आर्थिक पराभव है। जीविका के लिए पुरुष पर आश्रित रहने की परम्परा उनके विकास के अवसर अवरुद्ध कर देती हैं। पेट की भूख को भरने के लिए उन्हे पुरुष को तुष्ट करना पडता है। अत. वे जीवन के प्रागणा मे घृणित व्यापार का समारोह रचाती है[४]। कवि ने उसकी इस

१—भगवती चरण वर्मा तीन वर्ष, पष्ठ ९७-९८।

२—वही, देखिए अजित का कथन, पृष्ठ ९९।

३—देखिए, जैनेन्द्र के 'त्याग पत्र' की मृणाल, तथा सियाराम शरण गुप्त के 'नारी' की जमुना।

४—शोभाराम जी धनुसेवक . वेश्याविनय, चाँद १९२५, पृष्ठ ३६६।

परवशता को देखा है। उसने समाज के विस्तार मे पीडित विधवाओ की दुर्दशा ग्रस्त[1] होते देखा है। देवदासियो के रूप मे पूजको का आनंद बढाते[2] और उनके अधरो के हास को उनकी आँखो मे रोते हुए देखा है[3]। अपनी अवस्था मे नारी सभी दुखो का मूल समझी जाती है। वह पगो की धूल-सा उपेक्षित जीवन जीती है[4]। बस, अपनी मूक वेदना को मूर्त स्वरूप दिए वह साहित्यकार की सहानुभूति की पात्रा बनती है—

सजनि, कौन तुम नियति तूलिका-चित्रित जीवनमयी पुतली सी।
अरी, कौन तुम झझा झुलसी कोमल वदना कुन्दकली सी।
(ज्वाला प्रसाद, माधुरी १९३५, पृष्ठ ६१५)

इस काल मे नारी के असहाय रूप की दयनीयता पर लगभग सभी प्रमुख लेखनियाँ उठी है। उपेक्षा के अभिशाप से नारी शायद सबसे अधिक करुण है। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि सामान्य नारी की सामाजिक स्थिति पुरुष के कठोर अकुश से आच्छादित है उसे कही भी अवकाश, अवसर तथा उन्नति के प्रकाश की प्राप्ति नही है। साहित्यकार ने उस अश्रुमयी की इस सामाजिक अवस्था पर अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट की है[5]।

नवीन आदर्श

जागृति काल मे पूर्व-काल की प्रतिक्रिया स्वरूप नारी सम्बन्धी जिन महान् आदर्शो की स्थापना हुई, विकास काल मे उनका चरम उत्कर्ष देखने को मिलता है। इस काल की नारी मे वासना से रिक्त पूर्ण सत् भाव के दर्शन होते हैं। रीतिकालीन शृगारिकता एव स्थूल मासलता के जाल-पाश से स्वतन्त्र हो, अब वह काम को ललकार कर कहती है—

'नही भोगिनी यह मै कोई, जो तुम जाल पसारो,
बल हो तो सिन्दूर बिन्दु यह, यह हरनेत्र निहारो
रूप दर्प कदर्प तुम्हे तो मेरे पति पर वारी
लो मेरी यह चरण धूलि, उस रति के सिर पर धारो।'
(मैथिली शरण गुप्त साकेत, पृष्ठ २६२)

१—पद्माकर अवस्थी देश सेवा, चाँद १९२६, पृष्ठ ४२५।
२—शोभाराम देवताओ की दुर्दशा, चाँद, १९२६, पृष्ठ १४७।
३—वही, देखो, चाँद, १९२७, पृष्ठ ६४२।
४—आरसी प्रसाद सिंह · वैधव्य वेदना, चाँद १९३४, पृष्ठ ६६७।
५—देखिए चाँद १९३२, पृष्ठ १०६, १९३३, पृष्ठ, ५१५, १९२४, पृष्ठ ३७९, तथा १९३७ पृष्ठ १३७।

पत्नीत्व की निष्ठा का इससे महान् आदर्श और क्या हो सकता है 'साकेत' की सुमित्रा जीवन के प्रति किए गये अन्याय को सहन नही किया चाहती—

. .'राघव, शान्त रहोगे तुम
क्या अन्याय सहोगे तुम ।'

इस काल का कवि नारी को पुरुष की प्रेरणा का स्वरूप प्रदान करना चाहता है । वह चाहता है कि युग चेतना के इस प्रहर मे, नारी, अभिनव शृगार एव कलित कुँजो के लसिन प्रदेश से निकल कर पति के हाथ मे खड्ग दे, उसे राष्ट्र-सेवा में भेजने वाली कर्त्तव्य परायण प्रिया के रूप मे उपस्थित हो[1] । वह उसमे उन्नति की पूर्ति, तथा जागृति की स्फूर्ति की प्रतिष्ठा करता है[2] । पति की पथ-निर्देशिका तथा वीरो की शिक्षिका भी नारी ही है । उसका महान् हृदय शील, सौजन्य, सहनशक्ति एव सेवा व्रत के अपार अक्षय गुणो से पूर्ण है[3] । उसका वसुधा पर स्नेह सुधा वर्षण करने वाला मातृ-रूप पूजा की वस्तु है[4] । उसके नारीत्व मे ससार के समस्त गुण, सुख के समस्त उपकरण एव ज्ञान आदि पुँजीभूत हो गए है[5] आज का कवि उसे पथ का विघ्न बन कर चेतना के देश मे चलने का दिशा-ज्ञान देता है—

'बनती क्यो पथ का विघ्न अटल
उठ, इठला, इतरा मचल-मचल
चेतनता की चचल पुतली
इतनी जड़ क्यो, तू तो जगम ।'
(गोपाल सिंह नैपाली : गीत, सरस्वती १९३४, पृष्ठ ३०१)

इसी प्रकार हरिऔध ने 'वैदेही वनवास' की सीता मे उन समस्त उदात्त गुणो का समावेश कर दिया है जिसे वे राष्ट्रीय एवं सामाजिक आन्दोलन युगीन नारी मे आवश्यक समझते हैं साथ ही 'रसकलश' मे किया गया अभूतपूर्व नायिक भेद[6] नारीत्व के आदर्श की स्थापना मे सहज योगदान प्रदान करता है । नारी की आदर्श कर्त्तव्य भावना का उज्ज्वलतर उदाहरण गुप्त जी की उर्मिला के उन्माद की अवस्था मे चित्रित हुआ है, जब उसे लक्ष्मण अपने सम्मुख खड़े सम्मुख जान पड़ते है । वह

१—शकुन्तला देवी गुप्त : प्रस्थान, चाँद १९२९, पृष्ठ ८४० ।
२—रामचरित उपाध्याय : प्रबला, वही, चाँद, पृष्ठ ५६२ ।
३—बैजनाथ सिह सारथी . अबला, सरस्वती १९३३, पृष्ठ ४०४ ।
४—प्रभातकुमार : रमणी, सरस्वती १९३३, पृष्ठ १५५ ।
५—निराला : गीत सरस्वती, १९३४, पृष्ठ ३४१ ।
६—देखिए, हरिऔध का रस कलश ।

लक्ष्मण को अपनी दुर्बलता का कारण मान कर अनायास हा कह उठती है—

'प्रभु नही फिरे, क्या तुम्ही फिरे।
हम गिरे, अहो! तो गिरे, गिरे।'

इस काल मे नारी पर आरोपित यह आदर्शवादिता केवल कोरी आदर्शवादिता ही नही थी, सामाजिक और राष्ट्रीय क्षेत्र मे कुछ महिलाओ द्वारा इसे व्यवहृत भी किया जा रहा था। 'पथ के साथी' मे महादेवी जी का सुभद्राकुमारी चौहन के विषय मे कहा गया निम्नलिखित उद्धरण इस तथ्य की पुष्टि करता है— 'पति की अनुगामिनी, अर्धांगिनी आदि विशेषताओ को अस्वीकार कर, उन्होने भाई लक्ष्मण सिंह जी को पत्नी के रूप मे ऐसा अभिन्न मित्र दिया, जिसकी बुद्धि और शक्ति पर निर्भर रहकर जिसका अनुगमन किया जा सके[१]।' और स्वय सुभद्रा जी का मत था—

'मनुष्य की आत्मा स्वतन्त्र है, फिर चाहे वह स्त्री शरीर के अन्दर निवास करती हो चाहे पुरुष शरीर के अन्दर। इसी से पुरुष और स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग रहता है...बन्धन कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यो न नियत किए गये हो, है बन्धन ही, और जहाँ बन्धन है, वहाँ असन्तोष है तथा क्रान्ति है[२]।'

इसी भाँति 'स्वप्न' की सुमना के चरित्र का विकास भी हुआ है। देश-सेवा के निमित उसके हृदय की भावना किसी ठोस कर्त्तव्य के बहाने बाहर फूट निकलना चाहती है—

'पर उत्साहमयी सुमना का भावुक कीर्ति-रसिक उन्नत मन।
एक गूढ पीडा से पीडित, रहता था उद्विग्न प्रतिक्षण।
औरो का आनन्द, हर्ष सुख उसके लिए पराया था धन।
निजी हर्ष के लिए सदा वह, व्याकुल रहती थी मन ही मन।'

(राम नरेश त्रिपाठी, स्वप्न, पृष्ठ ४३।)

नारी के आदर्शमयी के रूप मे अपने कारण पति को कर्त्तव्य विमुख नही देख सकती। नारी की इस महान् भावना का आरोपण,' सुमना' मे सुन्दर ढग से हुआ है—

नारी के कारण से जग मे
यदि हो पति अपयश का भाजन
तो सचमुच है घोर पाप का
फल स्वरूप यह नारी तन।' (स्वप्न, पृष्ठ ५०)

राजनैतिक सघर्ष और अधिकार प्राप्ति के इस अभ्युदय काल मे साहित्यकार ने नारी के विशिष्ठ वर्ग मे बढती हुई अधिकार भावना के परिणामो को भी दृष्टि

१—महादेवी वर्मा, पथ के साथी, पृष्ठ ४५।
२—वही, पृष्ठ ४४।

ओझल नही होने दिया है। उसने उनके अधिकार-क्षेत्रो की व्याख्या करते हुए उसकी महत्ता और आदर्श को सुरक्षित रखा है—

'देवियो ! मैं प्राणियो के विकास मे स्त्री के पद को पुरुष के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ। यदि हमारी देवियाँ सृष्टि और पालन के देव मन्दिर से हिसा और दानव के कलश क्षेत्र मे आना चाहती है तो उसमे समाज का कल्याण न होगा।'

(प्रेमचन्द गोदान, डा० मेहत्ता का कथन)

राष्ट्रीय चेतना और समान भावना के इस बढते हुए प्रहर मे नारी की समझ मे यह बात नही आ पाती कि एक प्राणी का दूसरे प्राणी पर क्यो कर अधिकार हो सकता है सृष्टि के सम्मुख सभी की तो स्वतन्त्र सत्ता है। 'चित्रलेखा' की चित्रलेखा' कुमारगिरि की ओर आकर्षित होने के उपरान्त बीजगुप्त से कहती है—

'अधिकारी हो इतना नही जानती थी। मनुष्य पर मनुष्य का क्या अधिकार है, यह मैं कभी नही जान सकी।' (भगवती चरण वर्मा) चित्रलेखा, पृष्ठ ७१।)

इसी परम्परा मे राष्ट्रीय कवि ने नारी को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे स्वावलम्बन का बल प्रदान किया। नारी 'आदिभौतिक पक्ष मे रति का प्रतिरूप है, वह विश्व की मधुर कल्पना है और भारतीय परम्परा मे पुरुष की अनिवार्य आवश्यकता के रूप मे प्रगट हुई है। साथ ही बौद्धिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी वह उच्च है'[1]। पुरुष पर उसका आभार सदैव से ही रहा है—

'दीन न हो गोपे, सुनो
हीन नही नारी कभी,
भूत दया मूर्ति वह मन से शरीर से
क्षीण हुआ वन मे क्षुधा से मैं विशेष जब
मुझ को बचाया मातृ-जाति ने ही खीर से।'

(यशोधरा, पृष्ठ १०५)

साथ ही वह अपनी अधिकार सीमा एवं शक्ति से भी अनभिज्ञ नही है। स्वय को समान भाव-भूमि पर अधिष्ठित करती हुई वह कह सकती है—

'तुच्छ न समझो मुझ को नाथ
अमृत तुम्हारी अजलि मे तो भाजन मेरे हाथ।
तुल्य दृष्टि यदि तुमने पाई
तो हम मे ही सृष्टि समाई
स्वयं स्वजनता मे वह आई
देकर हम स्वजनो का साथ।' (यशोधरा, पृष्ठ १२८)

१—त्रिलोचन पाण्डेय : गुप्त जी के नारी पात्र, साहित्य सदेश, १९५५-५६, पृष्ठ ३०५।

नारी को महत्ता के शीर्ष पर अवस्थित करने के उद्देश्य से आज का साहित्य-कार नारी की, मात्र नारी के रूप मे नही, वरन् अनेक सम्बन्धो के रूप मे व्याख्या करना चाहता है। नारी मे उसकी नग्न मूर्ति से आगे कुछ और भी है—

नर के बाँटे क्या नारी की
नग्न मूर्ति ही आई ?
माँ, बेटी या बहिन हाय ! क्ला
सग नही वह लाई।' (द्वापर, पृष्ठ ३०)

o o o o

या,

'स्त्री को स्त्री सज्ञा देकर पुरुष को न छुटकारा है, न होगा। उसे कुछ न कुछ और भी कहना होगा। माता कहो, बहिन कहो, पत्नी कहो, उपपत्नी कहो, प्रेमिका कहो ..कुछ न कुछ अपनापन जतलाए बिना मात्र स्त्री सज्ञा का प्रयोग करके बस स्त्री द्रव्य से छुट्टी तुम को नही मिलेगी। (जैनेन्द्र कुमार 'सुनीता' पृष्ठ १०)

साथ ही उसे सामाजिक स्वीकृति प्रदान करने के बाद उसके अधिकार क्षेत्र मे सामजस्य स्थापित करना भी आवश्यक समझा गया है, ऐसा सामजस्य, जिसमे उसका कर्त्तव्य क्षेत्र एकागी न रह जाये—

'स्त्रियो के उज्ज्वल भविष्य को अपेक्षा रहेगी कि उसके घर और बाहर मे ऐसा सामजस्य स्थापित हो सके, जो उसके कर्त्तव्य को केवल घर या बाहर तक ही सीमित न कर दे।'

(महादेवी वर्मा—शृखला की कडिया घर और बाहर पृष्ठ ९५)

सुधार भावना

विकास कालीन साहित्य मे नारी-सम्बन्धी सुधार-भावना को प्रेमचन्द और महादेवी वर्मा के रूप मे विशेष व्याख्याता प्राप्त हुए हैं। 'निर्मला' की निर्मला और गबन' की रतन और 'गोद'[1] की किशोरी अनमेल विवाह के परिणाम स्वरूप जीवन की विभीषिकाओं का सामना करती हुई अन्त मे टूट-टूट कर बिखर जाती है। इस प्रकार की विवाह-स्थिति मे उसका व्यक्तित्व अपने आप मे कितनी अपार करुणा को मुखर करने लगता है...'अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सर झुकाकर देह चुराकर निकलती थी, उसकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। उसे वह प्रेम की वस्तु नही, सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रसन्नता पलायन कर जाती थी।'

(निर्मला पृष्ठ ३७)

—लेखक—सियाराम शरण गुप्त।

इस प्रकार के अनमेल विवाहो की पृष्ठ भूमि मे प्रेमचन्द प्रचलित दहेज प्रथा एवं माता पिता की असावधानी को ही विशेष कारण मानते हैं। नारी की सामाजिक महत्ता को बनाए रखने के लिए इन दुष्कर परम्पराओ का विनाश आवश्यक है। 'निर्मला' की चिता को आग देते समय उपन्यासकार जैसे बिवाह परम्परा को भस्म कर देना चाहता है।'

पुरुष के परम्परागत अत्याचारो से नारी पीडित है इस काल मे उसके अहं भाव को बल मिलता है, और वह पुरुष के अत्याचार के विरुद्ध सम्बन्ध विच्छेद की बात सोचने लगती है।

'तलाक की प्रथा यहाँ हो जाने दो, फिर मालूम होगा हमारा जीवन कितना सुखी है।' (प्रेमचन्द . कर्मभूमि की सुखदा का कथन, पृष्ठ २०५)

सुधार भावना से प्रेरित प्रेमचन्द का उद्देश्य 'रूढिजर्जर और शोषित पीडित समाज में नया बल भरते रहना है,' भले ही कोई पात्र जीवन की जटिलता का भार वहन करने मे टूट जाय, इसकी, उन्हे चिन्ता नही है। समाज मे स्वत चेतना जागे, वह स्वय आत्माभिमान के आवेश मे नई दिशाओ को प्राप्त करने के लिए उठ खडा हो, यही उन्होने अपेक्षा की है। नारी को सम्मान की प्रतिष्ठा मिलनी ही चाहिए, ऐसा उनका अनुरोध रहा है—

'स्वदेश की अभी तक किसी ने व्याख्या नही की, पर नारियो की मान रक्षा उसका प्रधान अग है, और होना चाहिए। (रगभूमि, पृष्ठ ४२४)

नारी का वैधव्य नारी के लिए उस अपराध के समान है 'जिसके कारण उसे मृत्यु दण्ड से भी भीषण दुख भोगते हुए तिल-तिल घुल कर जीवन के शेष, युग बन जाने वाले क्षण व्यतीत करते होते हैं'[1]। इस घुटन के मध्य साहित्यकार के मन मे पुरुष वर्ग के प्रति एक आक्रोश भावना प्रश्न बन कर उपजती है—

'विधुर, विवाह पर विवाह क्यो करत जात
विधवा क्यो विधवा सदैव रहि हहरति
जन क्यो कजनता किए हूँ ना कुजात होत
जनि-जनि लाल है जननि, काहे थहरति।'[2]

इस रूढि विरुद्ध मानवतावादी दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि मे साहित्यकार नारी को पौरुषी अत्याचारों से मुक्त करना चाहता है। समाज पर कटु व्यग करते हुए वह संकीर्ण मान्यताओ के घेरे मे बन्द धर्म संरक्षकों का उपहास करने से भी नही चूकता उन धर्म रक्षको का उपहास करने से...जिनकी मान्वता है...

१—महादेवी वर्मा . शृंखला की कडियाँ, पृष्ठ ४२।
२—अयोध्या सिंह उपाध्याय : मर्म पीड़िता, चाद १९२६, पृष्ठ २४।

भरा करे वह क्या हुआ, हमको क्यो कुछ दाह है
अटल सनातन धर्म मे पातक विधवा विवाह है।

(कुँअर जगत नारायण : पातक विधवा विवाह है, चाद १९२७, पृष्ठ ५८०)

साथ ही वह उनको सावधान करता हुआ कहता है—

इस हिन्दू समाज मे जब तक विधवाएँ दुख पायेगी
हमसे वे अपमानित होगी, जीवन घृणित बितायेगी।[1]

और इसीलिए यदि घृणा-विस्तार से समाज की रक्षा करनी है, तो हमे विधवाओ को सम्मानित दृष्टिकोण देना होगा। इसीलिए कवि मे विधवाबाला को, अपनी वस्तु-स्थिति का सम्पूर्ण करुण चित्र एवं मानवता मलभ सधुर सहानुभूति प्राप्त हुई है।

'वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीप शिखा सी शान्त भाव मे लीन
वह क्रूर काल ताडव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छुटी लता सी-दीन
दलित भारत की विधवा है।

(निराला : भारत की विधवा)

विधवा जीवन मे सुधार के साथ-साथ सुधार-भावना से आकर्षित साहित्यकार का ध्यान पर्दा-प्रथा की हानियो की ओर भी आकृष्ट हुआ है। उसकी दृष्टि मे पर्दा और रावण एक ही पक्षी के दो पखो के समान है जो मनुष्य की पाशविक आकाक्षाओं के चिह्न स्वरूप है[2]। साथ ही वह यह भी मानता है कि 'परदे के कारण महिलाओं के स्वास्थ्य तथा उनकी शिक्षा सम्बन्धी उन्नति मे बडा व्याघात पड रहा है। इस प्रथा का मूलोच्छेद करने के लिए हमे अपनी समस्त शक्ति का उपयोग करना चाहिए[3]। परदे के अवरुद्ध वातावरण से बाहर आकर जग-जागृति में अपने को खोजने का निमन्त्रण इस काल की नारी को वैशिष्ठ्य प्रदान करता है—

'ओ धाले, जग जागृति मे अस्तित्व खोज ले अपना।
प्राचीरो के आगन में क्यो, देख रही है सपना।

(चाद १९३५, पृष्ठ ४२)

साहित्यकार समाज में कल्याण की दृष्टि रचना चाहता है। पवित्र और मधुर भावना का विस्तार उसके उस स्वप्न की भाँति है, जिसे वह साकार करने के

१—देवी प्रसाद गुप्त : हिन्दुओं, सावधान, चाद १९२९, पृष्ठ ८३७।
२—सुमित्रा नन्दन पन्त, : पाँच कहानिया, अवगुन्ठन, पृष्ठ १०२।
३—देखिए, मातृमण्डल, सरस्वती १९३०, पृष्ठ ३०३।

लिए प्रयत्नशील है। उसकी इस कल्पना के रुचिर प्रदेश मे आर्थिक विषमताओ से प्रताडित एव सामाजिक रूढिवादिता से ग्रसित नारी किस प्रकार घृणा युक्त जीवन का निर्वाह करते हुए जीती रह सकती है[१]। वह वेश्यावृत्ति के मूल कारणों को खोजता है, तब उसे ज्ञात होता है कि वेश्यावृत्ति का कारण 'अर्थ पिशाचो स्वार्थ तथा बर्बरता मे है जो जीवित रहने के लिए आदमी को अपना शरीर तक बेच देने के लिए विवश करते है।' (भगवती चरण वर्मा तीन वर्ष, पृष्ठ २११)

नारी जननी है, लेकिन साथ ही वह रक्षिता भी है, और अपनी रक्षा के लिए आर्थिक मान्यता के अभाव मे वह पुरुष पर अवलम्बित है, इसीलिए वह गुलाम है, और इसीलिए वह सामाजिक स्वीकृति-विहीना है।

इस काल के साहित्यकार ने उसके जीवन का गहन अध्ययन किया और उसने पाया कि 'उनके जीवन का विकास एकागी होता है उनके हृदय की कल्याणमयी सुकोमल भावनाएँ प्राय सुप्त सी रहती है और उनकी जीवन-शक्ति प्रकाश देने तथा जगत मे उपयोग कार्य करने वाली विद्युत न होकर, ऐसी विद्युत होती है जिसका पतन वृक्षो के पतन का पूर्वगामी बन जाती है।'

(महादेवी वर्मा शृखला की कडिया, पृष्ठ ९४)

और स्त्री की विवशता का लाभ उठाने के लिए उसने उसे भिन्न-भिन्न रूप दिए—'उसने कही इस स्त्री को देवता की दासी बनाकर पवित्रता का स्वाग भरा, कही मन्दिर मे नृत्य कराकर कला की दुहाई दी और कही केवल अपने मनोविनोद की वस्तु मात्र बनाकर अपने विचार मे गुण ग्राहकता ही दिखाई।'

(महादेवी वर्मा . शृखला की कडिया, पृष्ठ ९४)

सौन्दर्य के हाट मे अपने सौन्दर्य का विक्रय करने वाली इन भावना कुचली नारी-विभूतियों के उद्धार हेतु कवि पुरुष को संयमी और विषयारिक्त बनने की दिशा देता है—

'...'विषय के दास न बनते, स्ववश मे इन्द्रिता रखते
तो लक्षो भगिनियो को ये न गणिका रूप मे लखते।

(शोभा राम : वेश्या विनय, चाद १९२५, पृष्ठ ३६६)

साथ ही नारी को भी अपनी आदरपूर्ण स्थिति के लिए प्रयत्न करना है। उन्हें सुशिक्षिता, सम्मानयुक्ता और सुमाता बनना है—

'सत् शिक्षा से पूर्ण सुशिक्षित हो पतियाएँ
नही निरादर सहे, मान मनुजोचित पाये।'

(वही, वनिता विनय, चाद १९२९, पृष्ठ ६८५)

१—प्रेमचन्द : गोदान, देखिए पृष्ठ ४४४।

महिलाओं मे शिक्षा प्रचार के साथ-साथ इस विकास काल मे सह-शिक्षा का भी अनुमोदन किया गया—

'बालक बालिकाओं की सम्मिलित शिक्षा पर मुझे विश्वास है। विशेषतया कालेजो मे तो इसका उपयोग होना ही चाहिए... .. मैं विश्वास दिला सकती हूँ कि जहाँ कही भी इसका उचित रूप मे प्रयोग किया गया है, इसके द्वारा अच्छा ही फल देखने मे आया है। इससे हानि की बहुत कम सम्भावना है।'

(श्रीमती रजवाड़े के भाषण का अश—सरस्वती १९३० पृष्ठ ४२६)

इस युग मे नारी की सामाजिक समस्याओं के अन्तराल मे प्रवेश कर, उनके मूल कारणो एव समाधानो को खोजने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया गया तथा ऐसे तथ्य प्रस्तुत किए गए, जिनमे सभी समस्याओं के मूल मे पुरुष वर्ग का विस्तृत अहभाव, अत्याचार एव पाशविक प्रवृत्ति ही विशेष रूप से लक्षित हुई। इस प्रकार इस काल मे सुधार योजनाओं को सवर्था नवीन मान्यताओं के साथ प्रतिष्ठित किया गया, जिसका प्रभाव पूर्व युगो की सुधार भावना की अपेक्षा अधिक विस्तृत और सशक्त रूप से पडा।

विभिन्न रूपों में नारी

विकास काल नारी को पूज्य भावना, पवित्र और मधुर कल्पना का स्वरूप प्रदान करने के क्षेत्र मे उत्कर्ष का काल है। इस प्रसग में इसे हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल कहना चाहिए। जैसा कि इस अध्याय के आरम्भिक पृष्ठो मे कहा जा चुका है कि इस काल मे पाश्चात्य साहित्य की रोमान्टिक प्रवृति का प्रभाव छायावाद का नामकरण लेकर हिन्दी साहित्य मे अभिव्यक्त किया गया। रोमान्टिक कवियो में विशिष्ठ वर्ड्सवर्थ की प्रकृति-प्रियता, कालरिज का जीवन की सम्पूर्ण इकाई के साथ सत्य एव दार्शनिक भावना का निरूपण करने का प्रयास, बाइरन का रूढि के प्रति विद्रोहात्मक स्वर, शैली की मानवता के प्रति मधुर प्रेम की भावना तथा कीट्स की अनुपम सौन्दर्य वादिता—इन सभी प्रवृतियो को नारीत्व मे समाहित कर, जिस शृगारमयी मधुर कल्पना को साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया गया, उसके आलोक मे नारी विषयक एक नवीन भावना उद्भाषित हुई, जिसमे न तो रीति-युगीन स्थूल मासलता ही थी और न संधियुगीन करुणा और दया का भाव ही, और न जागृति-कालीन अस्वाभाविक एवं अव्यवहारिक नैतिकादर्श का चरम उत्कर्ष ही। इसके विपरीत इस काल की नारी भावना प्रकृति के साथ सामजस्य पाकर अपने स्वरूप मे मधुर हो उठी है। उनकी प्रत्येक चेष्टा कवि के मन को एक अपूर्व और श्रद्धायुक्त भावना के साथ गुना कर देती है। इस नवीन स्वरूप की पृष्ठभूमि मे शायद उसके व्यक्तित्व का र प्रकृति के साथ सामंजस्य हो जाने का रहस्य ही छिपा हो, जो अपने आप में

स्वय सौन्दर्य और शक्ति स्वरूपा है और उसी मे प्रतिबिम्बित हो, शायद नारी भी धन्य हा उठी हो—

'ओ जगत की स्वामिनी, भामास्विनी तुम धन्य
तुम प्रकृति के मुकुर का प्रतिविम्ब-रूप अनन्य।'
(बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' · नारी विशाल भारत १६३० । पृष्ठ ५०५)

इसीलिए कवि को नारी मे स्नेह सुन्दरता और सुकुमारता के दर्शन होते हैं, जो उसके लिए स्वर्गागार है—

'स्नेहमयि, सुन्दरतामयि
तुम्हारे रोम-रोम से नारि
मुझे है स्नेह अपार
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि
मुझे है स्वर्गागार।'
(पन्त . पल्लव, पृष्ठ ८१)

नारी के सब से कुछ उसे अपार स्नेह है—

'तुम्हारे गुण है मेरे गान
मृदुल दुर्बलता ध्यान
तुम्हारी पावनता अभिमान
शक्ति, पूजन सम्मान।' (वही, पृष्ठ ८१)

और इस स्नेह के मध्य प्रकृति का सौन्दर्य भी उसे नारी मे दीखने लगता है—

'देखता हूँ जब पतला
इन्द्रधनुषी हल्का
रेशमी घूंघट बादल का
खोलती है कुमुद कला
तुम्हारे ही मुख का ध्यान
मुझको करता तब अन्तर्धान।' (पल्लव, पृष्ठ २१)

इस सौन्दर्य भावना की वृद्धि कवि ने उसे रहस्यमयी बना कर दी है—

'सजनि, तुम किस मधुवन की
कोमल कुसुम सकली हो
मजु मरालो के किस कुल मे
हसिनी, कहो पली हो
(रत्नाम्बरदत्त चन्दोला : सुकुमारी, सरस्वती १६२८, पृष्ठ ६७४)

'सुकुमारी' के लिए 'हसिनी' का सम्बोधन नारी मे कितनी पवितत्रा भर देता है, और इस स्वरूप मे किसी को अपने हृदय का दान देना भी किसी के लिए अवलम्ब प्रस्तुत करना हो जाता है, किसी की कुत्सित इच्छाओ की पूर्ति करना नही—

'लता लजीली किस तरुवर को
हृदय दान तुम दोगी
किस के जीवन सागर की तुम
तरणि, सुमुखि, बनोगी।'
(रत्नाम्बरदत चन्दोला : सुकुमारी, सरस्वती १६२८, पृष्ठ ६७४)

परन्तु, माधुर्य की इन लहरियों मे वह इतनी मृदुल नही हो गई है कि उसका गौरव युक्त प्रेरक एव शक्तिमय रूप विच्छिन्न अथवा अदृष्ट ही गया हो। 'वह अनुरागमयी पत्नी और त्यागमयी माता के रूप मे'[1] सदैव ही गौरवशालिनी है। वह पुरुष की प्रेरणा और जीवन का प्रकाश भी है'—

'आओगी, अपने प्रकाश से हिय का दीप जलाने
वर्षों की अधियाली में पूनो की रात खिलाने।'
(वीरात्मा : छायापथ, माधुरी सवत् १६६०, पृष्ठ ६८६)

चारित्रक गुणो में उसका धर्म-गीत सा स्वरूप पुरुष के लिए अपूर्व शान्ति की प्रेरणा सा प्रतीत होता है—

'करुणा सी मृदु, धर्मगीत सी
शुद्ध, कल्पना सी सुख संकुल,
शुभ्र उषा सी, दिव्य हास सी,
रूप सिन्धु सी, मणी सी मजुल।'

१—महादेवी वर्मा : शृंखला की कड़िया, पृष्ठ ११६।

मंजुलमयी होने के साथ-साथ वह भी शक्तिमयी है—

'जगती का समस्त प्रतिबन्धन
सागर की लीला लोडन।
नारि! तुम्हारी एक-एक
चितवन मे शत-शत भू-कम्पन।'

(आरसी प्रसाद सिंह नारी, विशाल भारत १९३६, पृष्ठ २७०)

...जो पुरुष के जीवन का आधार और पथ की सहचरी बनती है—

'इस उद्भ्रान्त पथिक के तुम हो
एक मात्र, प्रियवर आधार
सूना पथ, तुम बिन जीवन भी
सूने स्वर्ग, सौख्य ससार।'

(रमाशकर मिश्र : अवलम्ब, चाँद, १९२९, पृष्ठ ८०१)

जीवन के वैषम्य मे लम्बे युग से पिस कर नारी के अतुल शान्तिमय हृदय मे भी अत्याचारो के विरुद्ध विरोध की ज्वाला धधक उठी है। अपना नवीन रूप लेकर अब वह अपने भाग्य की प्रतिकूलता के विरुद्ध युद्ध किया चाहती है[1]। यह उसके शक्ति रूप की सार्थकता हैं। साथ ही पुरुष को दिशा देने के अर्थ मे वह अपनी प्रयोजनशीलता से भी अनविज्ञ नही है—

'क्योकि दुनिया को रेगिस्तान नही बनना है, क्योकि उसको लहलहा कर हरियाली हो उठना है, इसीलिए क्या पुरुषो के इस जगत मे विधाता ने हम स्त्रियो को नही रचा है।' (जैनेन्द्र कुमार : सुनीता मे सुनीता का कथन, पृष्ठ ६७)

इसीलिए आज का युग-लेखक उसका स्नेहमयी, देवी चण्डी और माया के रूप मे आह्वान करता है—

'युवको मे कहाँ से स्फूर्ति भरनी होगी? वे कहाँ से मद पाएँगे, जीवन की स्पृहा उनमे कैसे जागेगी? उसके लिए एक नारी की आवश्लकता है। वह देवी हो, वह चण्डी हो, वह माया है।'

(जैनेन्द्र कुमार . सुनीता' मे सुनीता का कथन, पृष्ठ १३६)

O O O

'भाभी, मैं देखता हूँ, उन्हे एक प्रतिमा चाहिए। एक नारी, चिरन्तन माता एक माया मूर्ति जहाँ से वे स्फूर्ति लें और जिसके मम्मुख वे शपथ लेकर आगे बढें।'

(वही, पृष्ठ १३८)

नारी के उपर्युक्त सत् रूप के अन्तर्गत उसे प्रेरणा और शक्ति का स्वरूप

१—हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा बन्धन, देखिए, श्यामा का चरित्र।

प्रदान करने के साथ-साथ कही-कही पर इस युग का साहित्यकार लौकिक भाव-भूमि पर भी उतर आया है और परिणाम स्वरूप नारी अपने सम्मान मे अपेक्षा कृत गौण हो गई है। नारी को इस रूप मे चित्रित करने की पृष्ठ-भूमि मे कवि की, पलायनवादी प्रवृति एवं जीवन की विषमताओं का सामना कर सकने मे असमर्थ, उनसे दूर भाग कर एकान्तवास की भावना ही अधिक प्रवल है। अपने सामाजिक जीवन की असफलता मे वह जन-रव से दूर, मधुबन के कुज मे परी सी प्रेयसी का आह्वान करता है—

'दूर जनपद रौर अविदित
लता निर्मित कुज मधुबन,
मैं धडकती याचना हो
मुखर तर स्रोतस्विनी हो
तब, परी सी उतर धीरे
सहज सुषमा मे छिपी सी
मानिनी, नभ वासिनी आना
प्रिये, चिर स्वामिनी हो।'

रामदुलारे गुप्त : तब, सरस्वती, १९३६, पृष्ठ ११६)

आज कवि के स्वर मे दु खवाद का स्वर उच्च है। अपनी अतृप्त अभिषाषों पूर्ण कर सकने की विवशता मे, वह प्रेयसी को साथ लिए मनखोल कर रो भर लेना चाहता है—

'इच्छा का इधर रजत पथ, उधर हमारा कटक मय पथ,
जीवन की बिखरी विभूति पर, दो आसू हम रो चले।'

(अज्ञेय : 'चलो चले,' विशाल भारत १९३४, पृष्ठ ३२८)

वह नारी के आलिंगन मे जीवन के अन्य सिरे को पा लेने का प्रत्याशी है, क्योकि यथार्थ का यह पक्ष उसके लिए अधकार का दुर्भेद्य आगार है[1]। इसीलिए जन-कोलाहल से पीडित एव अशान्त वह सब से अलग कल्पना के लोक को पा लेने की अपेक्षा करता है[2]। और तब उस एकान्तिकता मे वह प्रेयसी को लेकर विलास की सृष्टि करना चाहता है—

'कवि की दुलारी आओ, झीने पीत पट ओढ
फूल सेज ऊपर पडा सुकवि काव्य लीन
हाथ में सुराही मदिरा की भर लाओ, और
जयमाल लाओ, फल लाओ काम के नवीन।'

(गुलाब . बसन्त समागम, माधुरी १९२६, पृष्ठ ३३९)

१—नरेन्द्र · उस पार, चाद १९३३, पृष्ठ २५९।

२—प्रसाद : स्वर्ण ससार, चाद १९३३, पृष्ठ १।

और अपनी असफलताओं की बेहोशी मे नारी उसके लिए मात्र मदिरामय ही रह जाती है—

'तेरा मेरा सम्बन्ध यही
तू मदिरामय, मैं तृषित हृदय
(बच्चन प्यास, माधुरी १९३६, पृष्ठ ५५)

पुरुष के साथ-साथ नारी भी हृदय का मकरन्द पान करने वाली तथा प्रेम की तृषा का ही स्वरूप बनती है—

'चूस-चूस मकरन्द, हृदय की सगिनी ! तू मधु बस्त्र सजा
और किसे इतिहास कहेगे, ये लोचन गीले-गीले ।'
(दिनकर : भ्रमरी, सरस्वती १९३५ पृष्ठ ३१३ ।)

o o o o

दिल के घोरे आ बैठो, तुम बनो प्रेम की प्यास
आँखो पर छा जाओ, जैसे अवनी का आकाश ।
(उपेन्द्र : अभिलाषा, सरस्वती १९३५, पृष्ठ ४४७)

उसकी चितवन सदैव ही पुरुष को लालायित बनाए रखती है[1] । केलिसदन उसका ठिकाना है[2] । उसके मदिर-मधुर अधरो की स्थिति केवल चुम्बित होने के ही लिए है[3] । उसकी इस मधुमय सुषमा को भूल जाना आज के निरीह पुरुष के लिए जैसे असम्भव बन गया है[4] ।

नारी मे इतनी मधुरता भर कर उपभोग की प्रवृति इतनी प्रबल शायद इसीलिए हो उठी है कि कवि जीवन से निराश है और जीवन को इस विषमता मे वह स्नेहपूर्ण दो क्षणो को हँस-बोल कर काट लेने का आकाक्षी है—

'आओ, दो दिन के जीवन मे
प्रेम भरे दो बोल बोल लो
जीवन के विषमय प्याले मे
स्नेह सुरस दो बूंद घोल लो ।'
दो दिन का नश्वर ससार'
(नरेन्द्र . मेरी समाधि पर, चाद १९३४, पृष्ठ ३७९)

o o o

१—रामकुमार वर्मा : मधुबन, चाद १९३१, पृष्ठ १६१ ।
२—कैलासपति त्रिपाठी, उपेक्षित, चाद १९२७, पृष्ठ ९६ ।
३—नरेन्द्र गीत, चाद १९३३, ष्ठ ५२३ ।
४—नरेन्द्र : असम्भव है असम्भव, चाद १९३६, पृष्ठ ५३ ।

अपनी वाणी मे रख लो
मेरे उर का सम्वाद।
आग्रो, सो जाओ, भूलो
इस जागृतपन की याद।'

(रामकुमार वर्मा : रूपराशि)

वह स्थूल शृगारमयी नारी जहाँ कुछ और नीचे उतर आई है, वहाँ शृगारिकता के स्थान मे उसका असत् रूप प्रतिलक्षित होने लगता है। प्रसाद की 'इडा' अपनी बौद्धिकता एवं व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावनाओ से पूर्ण, सघर्ष और हिंसात्मक कर्म की प्रेरणा बनती है, जो मनु के पुरुष को अतृप्त तथा उतप्त बनाती है, जहाँ केवल ज्वाला ही है, शान्ति तथा शीतलता नही। इसी प्रकार 'पचवटी' (मैथिलीरण गुप्त) की शूर्पणखा तथा 'साकेत' की कैकयी भी अपने स्वरूप मे असत् रूप ही प्रकट करती है। गुरुभक्त सिह की 'नूरजहाँ' की जमीला का चरित्र नारी के इस असत् रूप को निखार देता हैं। उसके चरित्र मे हिंसा, ईर्ष्या और षड्यन्त्र विकास पाते है। जहाँ प्रेम सात्विकता की प्रतिमूर्ति नही, एक उन्मादमय खिलवाड है, जहाँ सतीत्व और आदर्श के स्थान पर मासल-वासना का साम्राज्य है, साथ ही दुष्टता भी—

'कितनी बरसाते देखी हैं, हूँ हीर नही कच्ची लकडी,
मैं गा कर सेंध लगाती हूँ, फिर भी न गई अब तक पकडी।'

(पृष्ठ ५३)

चारित्रिक पतन की ओर उन्मुख 'प्रसाद' रचित 'प्रलय की छाया' की कमला भी अपने चरित्र मे इसी असत् रूप की व्याख्याता है। लेकिन सतोष का विषय है कि आरम्भ की असत् कमला अपने स्वभाव मे द्वन्द्वमयी, अधिकार वासना से पूर्ण और विध्वस के लिए तत्पर होती हुई भी अन्त मे इन शब्दो के साथ प्रायश्चित कर लेती है—

'आज सोचती हूँ जैसे पद्मिनी थी कहती
अनुकरण कर मेरा, समझ सकी न मैं।"

यह प्रसाद का आदर्शवाद है जो नारी को स्वभाव से असत् तथा जीवन-पर्यन्त असत् ही बने रहने में कभी विश्वास नही करता।

इस विकास काल मे असत् रूप को इस भूमिका के साथ-साथ कही-कही मध्य-युगीन नारी भावना भी दीख पड जाती हैं। जहाँ रमणी का रूप अपनी रमणीयता मे मात्र कामुकता का आधार है—

'रूप रमणी का रमणीय, लोक मोहकता का है सार
है प्रकृति भाल रुचिर सिन्दूर, काम कामुकता का आधार।'

(हरिऔध कल्पलता, सौन्दर्य, पृष्ठ ६२)

इस प्रकार की भावना का प्रस्फुटन 'हरिऔध' के 'रस-कलश', रामकुमार वर्मा की 'रूप-राशि' तथा गोपाल शरण सिंह की 'माधवी' मे यत्र-तत्र हुआ है। परन्तु यह रोमान्सवादी रुग्ण-भावना अधिक प्रश्रय प्राप्त नही कर सकी है। इस विकास काल मे भी इस प्रकार की रचना का कारण पूर्व धारणाओ एव मान्यताओ के प्रति क्षीण मोह की भावना ही है, जो किसी न किसी प्रकार पुराने खेमे के साहित्यकारो मे अब तक अवशिष्ठ रही।

प्रतीकात्मक नारी भावना

विकास-काल मे नारी भावना का प्रकृति के साथ सामजस्य हुआ। अत. प्रतीकात्मक भावनाओ मे परोक्ष रूप से नारी भावना ही व्यक्त हुई। साथ ही कही-कही रहस्यात्मक अनुभूति और दर्शन के समावेश से एक अपूर्व जिज्ञासा की सृष्टि की गई, जिसमे नारी और भी अधिक महत्वमयी बन गई। 'छाया का प्रतीक' लेकर कवि नारी विषयक अपनी उत्सुकता शान्त करना चाहता है—

कौन-कौन तुम परिहृत वसना
क्लान्त मना भू पतिता सी
वातहता विच्छिन्न लता सी
रतिश्रान्ता-व्रज बनिता सी।'

(पन्त : छाया, सरस्वती १६२५, पृष्ठ ५६)

और प्रकृति के सौन्दर्य से अपनी प्रेयसी को पूर्ण सौन्दर्यमयी देखने की लालसा भी उसमे है—

'तारिका सी तुम दिव्याकार
चन्द्रिका की झकार
प्रेम पखो मे उड अनिवार
अप्सरा सी लघु भार
स्वर्ग से उतरी क्या सुकुमार
प्रणय हसिनी क्या सुकुमार।'

(पत, तार के प्रति, सरस्वती, पृष्ठ ५१)

प्रतीकात्मक भावना के अन्तर्गत नारी के मधुर रूप को ही वाणी मिल पाई है। उसमे सभी कुछ छविमय, स्वर्गिक और प्रकाशमय है—

'आशीर्वाद सी झुकी स्वर्ग की, भू पर
पुलकित खग जग, अणु-अणु तृण-तृण छविधारी
हम सूक्ष्म शिराओ सी छाई दिशि-दिशि मे
बहती जिनमें जीवन आभा उजियारी।,

(पन्त . ज्योत्सना, पृष्ठ २८)

प्रकृति के उपकरणो का योग पत की 'नौका-बिहार' तथा 'भावी पत्नी के प्रति' तथा निराला की 'जूही की कली' आदि कविताम्रो मे तीव्र हो उठा है। जीवन के इस वैषम्य युक्त यथॉंथ वातावरण से दूर, प्रकृति की क्रोड मे जैसे सभी कुछ सुख, शान्ति, स्नेह और शीतलता के उपादान प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति का यह रुचिर वातावरण जैसे स्थूलता मे भी पवित्रता और माधुर्य भर देता है—

...घेर अग-अग की
लहरी तरग वह प्रथम तारुण्य की
ज्योतिर्मयी लता सी हुई मैं तत्काल
घेर निज वरु तन।'

(निराला, प्रेयसी, माधुरी, १६३५, पृष्ठ ५२२)

यही सौन्दर्य-भावना जब रहस्य के आँचल मे विरचित होती हे, तब माधुर्य के स्थान पर एक दार्शनिक गम्भीरता का समावेश हो जाता है। प्रथम चरण मे जिज्ञासा की भावना उदित होती है—

'परी! तुम कौन सुकोमल गात
खेलती जीवन-बन मे प्रात।'

(केदार नाथ मिश्र फूल बाला, चाद १६३३, पृष्ठ ६७७)

...और द्वितीय चरण मे अलौकिक प्रिय की भावना मधुर रहस्य का रूप धारण कर लेती है—

'विरह का युग आज दीखा, मिलन के लघु पल सरीखा।
दुख सुख मे कौन तीखा, मैं न जानी और न सीखा।
मधुर मुझको हो गए सब, मधुर प्रिय की भावना ले।'

(महादेवी वर्मा साध्य गीत, पृष्ठ ३१)

विभिन्न सम्बन्धों में नारी

विभिन्न रूपो मे नारी भावना की चर्चा करते समय हम कह आये हैं कि विकास-काल के साहित्यकार ने नारी मे स्नेह, सहयोग, प्रेरणा और शक्ति के दर्शन किए हैं। उसके इस गुणो को प्रेयसी, पत्नी, माता, कन्या तथा भाभी के रूप मे भी अभिव्यक्ति मिली है। दुःखवाद की मानसिक उत्पीर के इस काल मे नारी का प्रेयसी रूप कवि के लिए लालसा की वस्तु बना रहा है। उसको पा जाने की ललक जैसे थमने का नाम नहीं लेती—

'मेरी आँखों पर सुकुमारी की आँखों की चितवन हो
मेरी सासो मे उसकी सासों का सुरभित स्पन्दन हो।'

(रामकुमार वर्मा : रूपराशि, पृष्ठ ७)

अभावो के बीच मे पराजित उसके व्यक्तित्व के लिए नारी ही मुक्ति कथा है—

'मेरी करुणा, करुण बना दे
प्राण तुम्हारे गानो को
मधुर बना दे मेरी ममता
मधुरे ! तब मुस्कानो को
निज परिणय बन्धन में लिख दो
मेरी मुक्ति कथा सुन्दर।
(प्रभात गीत, चॉद १९३५, पृष्ठ ३३७)

इस काल की प्रेयसी अपनी आत्मा के पूर्ण समर्पण मे विश्वासिनी है[1]। वह अपने प्रिय का प्रिय के नाते ही अभिसार किया चाहती है[2], तथा पुरुष के जीवन को झकृत तथा सजग बनाने के प्रयास मे उसके प्राणो से एक्य स्थापित करती है[3]। उसके प्रेम मे एक निष्ठा विद्यमान है[4]। इस निष्ठा के सदर्भ मे उसमे निरपेक्ष और निष्काम प्रेम की उत्कर्षमयी भावना भी उदित हुई है।

'मैं उन्मत प्रेम की लोभिन, हृदय दिखाने आई हूँ।
जो कुछ हैं बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूँ।
चरणो पर अर्पित है इसको, चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो।
(सुभद्राकुमारी चौहान . मुकुल)

उसे अपने इस निष्काम प्रेम की सार्थकता पर अतुल विश्वास भी है—

'चरणो मे न पडे तो कहना
मुकुट रत्न मालाएँ
एक यही आशा लेकर है
बैठी ब्रज-वनिताएँ।' (द्वापर, पृष्ठ १९३)

अपने प्रिय के लिए आत्म-बलिदान भी वह सामान्य-सी बात समझती है—

'तुम पर कुछ आच न आए प्रिय जीओ मैं मर जाऊँ
दुर्दैव अनिष्ट करो क्यो ? मैं बलि हो उसे मनाऊँ।'

१—गिरीश चन्द्र पन्त : निवेदिता, चाद १९३५, पृष्ठ २३१।
२—अरविन्द : आह्वान, चांद १९३५, पृष्ठ २९७।
३—रामनाथ सुमन : मेरे प्राणो मे तुम बोलो, सरस्वती १९३५, पृष्ठ १०७।
४—सरला के पिता अच्छे बुरे का गणित जानते हैं, सरला प्रेम का गणित। वह इकाई के आगे कुछ देख ही नहीं सकती, उसकी वह इकाई सुबोध है। पन्त, उस पार, पांच कहानियाँ, पृष्ठ ४४।

प्रिय के सम्मुख जीवन के समस्त ऐश्वर्य, सुख साधन एव गरिमा तुच्छ है। वह प्रेमी के व्यक्तित्व मे ही विलीन हो जाना चाहती है—

'मेरे तुम शृगार अतुल हो अलकार आभूषण
हृदय पद्म कब खिला है, बिना प्रेममय पूषण
बिना तुम्हारे महल अटारी, केवल बन्दीखाना
उसमे रहने से अच्छा है बन-बन अलख जगाना
सग तुम्हारे पर्णकुटी यह होगी आनन्दकारी
करुँ निछावर एक चितवन पर विश्व-सम्पदा सारी।'

नारी के पत्नी रूप की सात्विकता, पवित्रता एव उच्च आदर्शवादिता को सर्वकाल एव सर्वदेशीय साहित्यकारो द्वारा समान मान्यता प्राप्त हुई है। इस काल मे पत्नी का स्वरूप उज्ज्वलतर एव आदर्श युक्त है। अब वह अपने स्थूल रूप सौन्दर्य मे अपने पति को बाधे रह कर उसे कर्त्तव्य विमुख नही करना चाहती। [वह स्वय चाहती है कि वह भी पति के पथ की सहयोगिनी और जीवन की प्रेरणा बने वह जिसको भी पति के रूप मे एक बार स्वीकार कर लेती है, उसी पर अपना अगाध विश्वास, असीम सेवा और अतुल निष्ठा न्योछावर कर देती है[1]। पति द्वारा साथ न ले चलने की उपेक्षा से विदग्ध अशान्त निर्झरी के से प्रवाह मे वह केवल इतना ही कह पाती है—

'जाय, सिद्धि पावें वे सुख से
दुखी न हो इस जन के दुख मे
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से
आज अधिक वे भाते,
सखि, वे मुझ से कह कर जाते। (यशोधरा)

इस आरोपित उपेक्षा के बाद भी उसमे इतना बल शेष है कि वह सतोष और आशा के स्वर मे अपने प्रिय की मगल कामना कर सकती है—

'जाओ नाथ, अमृत लाओ तुम मुझ मे मेरा पानी
चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी, मुक्ति तुम्हारी रानी।' (यशोधरा)

पत्नी मे पुरुष ने पूर्ण सात्विकता को साकार दिया है, और यह वास्तव मे उसके गौरवान्वित पद का विशेष माधुर्य है[2]। वह पति के लिए प्रेरणामयी है, जिसके

१—सुमित्रा नन्दन पन्त · दम्पति, पाच कहानिया, पृष्ठ ६५, देखिए पार्वती की चरित्र, साथ में, 'अवगुठन' का सरला का चरित्र भी।

२—रामनरेश त्रिपाठी, स्वप्न, देखिए सुमना का चरित्र।

माध्यम से पुरुज भव-सागर पार कर गया है—

'है सुमना, तेरा प्रियतम पवि
तेरी शुभ इच्छा का अनुचर
तेरा पुण्य प्रभाव प्राप्त कर
पार कर गया है भव-सागर।'
(रामनरेश त्रिपाठी स्वप्न, पृष्ठ ६४)

नारी सुलभ स्वाभाव के अनुसार वह भी अपने पति का साहचर्य चाहती है। तब वह अपने पुत्र का अवलम्ब लेकर एक सयमित मर्यादापूर्ण भावना लिए अपने प्रिय का आह्वान करती है, जो इस युग के पत्नीत्व का उत्कृष्टतम उदाहरण है—

'आओ, हे बनवासी
अब गृह-भार नही सह सकती।
देव, तुम्हारी दासी।
राहुल पल कर जैसे तैसे
करने लगा प्रश्न कुछ ऐसे
मैं अबोध उत्तर दूं कैसे
यह मेरा विश्वासी।' (यशोधरा, पृष्ठ ११८

पत्नी का शालीन, पुण्य पति परायण एव सक्रिय रूप 'बैदेही वनबास' व सीता मे लक्षित होता है। साथ ही पत्नीत्व के आदर्श को 'परिवर्तन' (ले० राधेश्या कथावाचक),' पाप परिणाम' (ले० जमुनादास मेहरा), 'मधुर मिलन' (ले० जगन्ना चतुर्वेदी) आदि नाटको मे प्रस्थापित कर सामाजिक जीवन मे पूर्ण नैतिकता प्रतिष्ठा की गई है। नारी का पत्नीत्व रूप कही-कही पर उसके मातृ-स्वरूप से उच्चतर भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित हो गया है—

'पहले पहल पयोधर देकर जिसके कोमल मुख में,
मग्न हुई अति नव्य अनिर्वचनीय अलौकिक सुख मे,
उसी सुमन संग्रह से शिशु के कसे बाहु-बन्धन को
खोल निठुरता से धाई थी मे विरहाकुल वन को।'
(रामनरेश त्रिपाठी, पथिक, पृष्ठ २

परन्तु इतने से नारी के मातृत्व स्वरूप की प्रतिष्ठा कम नही हो जात उसके हृदय में अपनी सन्तान के प्रति अतुल स्नेह विद्यमान है—

'भिगा दिया नन्हे बच्चे ने बिस्तर को जाड़े मे जो
सूखी जगह सुलाकर उसको, गई स्वयं गीले मे सो

जागी सोई उसकी सुध मे जननी उसी के ऊपर बार
कौन उऋण होगा माता से, धन्य-धन्य जननी का प्यार।'

(ठाकुर गुरुभक्त सिंह (वन श्री) जाडा, पृष्ठ २६)

o o o o

'मेरी मलिन गूदड़ी मे भी है राहुल सा लाल
क्या है अजन अग राग, अब मिली विभूति विशाल।'

(यशोधरा, पृष्ठ ३४)

अपनी स्नेह-भावना के इस उत्कर्ष पर वह स्वर्गिक सौख्य भी सुशोभित है—

है वह अतुल विश्वास हृदय गम्भीर है।'

o o o

'कोमल है वह कमल-कान्ति से भी अधिक,
है वह करुणा-धाय, धरा पर स्वर्ग है।'

(श्रीधर वात्सल्य . माता का हृदय, चाद १९२६ पृष्ठ ६१७)

माँ का मजुल हृदय अपनी सन्तान के प्रति सदैव ही सरलता का सुन्दरस्रोत है[1]। वह 'दयामयी, क्षमामयी, शुचि शान्तिमयी है,' आनन्द की सुर सरिता है, दुखो की विमला स्वरूप निवारिणी है—

'वह सरित सुलभ आनन्द की
उसका यश अवदात है
मधुर-मधुर मृदुल ममतामयी
मजुल मूरति भाल है।'

(आनन्द बिहारी लाल माता, चाद १९३३, पृष्ठ ५५४)

इतनी अपूर्व ममता के मध्य वह अपनी सन्तान से इस बात की भी अपेक्षा करती है कि वह जीवन क्षेत्र मे कर्त्तव्य-परायणता का पाठ सीखे, और इस तरह वह पुरुष के लिए मातृ-स्वरूपा प्रेरणा सी बनती है—

'माँ ने कहा है.. दूध की मेरे
लज्जा रखना रण मे है सुत।' (स्वप्न : पृष्ठ ११)

o o o

अपनी कोख पवित्र मान कर
वह कहती होकर आनन्दित
वीर कर्म का मेरे सुत के
तन पर है स्मृति चिह्न अलकृत।' (वही, पृष्ठ ४३)

१—शान्ति देवी कुसुम माँ का मन, चाद १९२६, पृष्ठ ९२।

मैथिली शरण की 'मीनल दे' और 'कुन्ती' मे माता का रूप अपनी ममता, स्नेह, उदारता और असीम सक्रियशीलता को लेकर उदित हुआ है। 'वैदेही वनवास' की सीता माता के रूप मे लव-कुश का स्नेह और सयम के साथ लालन-पालन करती है। वह विश्व-प्रेम-भावना की अधिष्ठात्री है। माता के सभी कर्त्तव्यो से विज्ञ है, और इस प्रकार मातृत्व का उच्च आदर्श प्रस्तुत करती है। इस प्रकार की आदर्श-वादिता के साथ-साथ 'यशोदा'[1] के रूप में माँ की करुणा और श्रद्धा के सगम पर एकाकार होती हुई उस अपरिमित ममत्व भावना के दर्शन होते हैं, जो भारतीय माता की अपनी सम्पति है। बस पुत्र की मगलकामना मे उसे पूर्ण तोष प्राप्त हो जाता है—'

'प्यारे जीवें, पुलकित रहे, और बने भी उन्ही के'[2]

विकास-काल के इस आलोक काल मे भी कन्या का स्वरूप पूर्व युगों की भाँति ही दयनीय और करुण रहा। इतना करुण कि दुख दैन्य के प्रतीक आसू की उपमा भी कन्या से ही दी गई—

'कन्ता जन्म के समान मेरा जन्म होता 'मधु'
जन्म जहाँ लेता, तहाँ दुख भर देता हूँ।'

(मधुसुदन चतुर्वेदी : आँसू, सरस्वती १९३१, पृष्ठ ४१७)

उसकी शोचनीय दशा पर उसे अश्रुपात करना पडा है—

'शोचनीय हालत हमारी पुत्रियों की सदा,
उर मे हमारे और शोक उपजाती है।'

(गोपाल शरण सिंह : भारत नारद सम्मिलन, सरस्वती १९२८, पृष्ठ ७१)

परन्तु इस असहाय और सकीर्ण सीमाओ मे वद्ध कन्या-वर्ग को इस काल का कवि निर्देश देना नही भूला है—

'यदि हों साहसमत कन्याएँ
तो क्यों वे जीवन खोयें
क्यों व्याही जावे वृद्धों से
और जन्म भर क्यों रोवें।'

(आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव नारी जीवन)

साथ ही इस युग में पहली बार उसकी स्थिति को आदर्शयुक्त भाव-भूमि प्रदान की गई—

१—हरिऔध . प्रिय प्रवास, (देखिए षष्ठम सर्ग)।
२—वही, पृष्ठ १३०।

हिन्दू माता चिरकाल से ही अपनी कन्या को गौरी और दुर्गा के रूप में प्रसव करती आई है ।' (सियाराम शरण गुप्त . गोद, पृष्ठ ३५)

इस युग मे साहित्यकार ने भाभी के रूप मे भी नारी को सम्मान आदर और पूज्य भावना से अभिसिक्त किया है । जैनेन्द्र कुमार का आदर्शवाद इस दिशा मे प्रगति करता है—

'भाभी' (वातायन मे सग्रहीत एक कहानी) मे भाभी का उज्ज्वल चरित्र विनय के लिए अन्नपूर्णा के रूप मे प्रस्तुत होता है—

'यह भाभी का प्यार था, जो माँ का प्यार नही होता । क्योकि उससे स्निग्ध होता है, स्त्री का प्यार नही होता क्योकि उससे निरपेक्ष होता है, बहिन का प्यार नही होता जो क्रमशः पुष्ट और परिपक्व होता है, यह जैसे सोता फूट निकला, हृदय मे से स्वत स्फुटित होता है । फिर भी यह सब कुछ होता है ।' (पृष्ठ १८३)

इस प्रकार नारी के इस स्नेह सम्बन्ध में पावित्र्यपूर्ण अपनत्व भावना की गुनगुनाहट अनुभव की गई तथा एक नवीन आदर्श के परिवेष्ठन मे उसे अभिव्यक्ति मिली ।

विभिन्न वर्गों में नारी

विकास-काल तक आते-आते समाज के एक विशिष्ठ वर्ग की महिलाओ में आत्म-सम्मान के प्रति जागरूकता आ गई थी । यह महिलाएँ विशेष रूप से सुशिक्षित एव कुलीन वर्ग की महिलाएँ थी, जिनमे सामाजिक चेतना का प्रादुर्भाव हो चला था और उस चेतना के आलोक मे बिखरी हुई सामाजिक चेतना के मध्य मे अपने अधिकार खोजने के लिए उत्सुक हो उठी थी । उनका सम्पर्क सामाजिक कार्य-क्रमों से लेकर राजनीतिक क्षेत्र तक विस्तार पा रहा था, तथा उनकी स्थिति को स्वीकृति प्राप्त हो रही थी । हिन्दी साहित्य मे भी इस विशिष्ठ नारी वर्ग की स्थिति को स्वीकार किया गया, और वह सम्मान तथा अधिकार रक्षा के निमित्त, पुरुष से प्रताडित होने पर, आत्म-निर्भर होने की बात सोचने लगी[1] राष्ट्रीय एव सामाजिक नवीन योजनाओ के आलोक मे वह उस सम्मिलित परिवार परम्परा का कडा विरोध करने लगती है, जिसने उसकी स्थिति को करुणा और वैषम्य की इस दिशा पर ला दिया है । 'गबन' की रतन ऐसा ही सोचती है—

'परिवार तुम्हारे लिए फूलों की सेज नहीं, काटों की शैया है । तुम्हारी पार लगाने वाली नौका नही, तुम्हे निगल जाने वाला जन्तु है ।'

(प्रेमचन्द संक्षिप्त गबन, पृष्ठ १८३)

१—प्रेमचन्द : गबन में रतन का चरित्र ।

गुरुभक्त सिंह की 'नूरजहाँ' मे गयास की पत्नी कुलीन वशीया नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह अपनो मे रह कर अपना सम्मान नही चाहती। वह उसके प्रति जागरूक है, इसीलिए गयास से प्रार्थना करती है—

'अपनो मे पानी मत खोओ, चुपके से अब चलो निकल
रोजगार कुछ यहाँ नही है, और प्रतीक्षा है निष्फल।
छोडे आस, विदेश चले हम, यहाँ नही कोई आधार
कही नौकरी कर लेगे, या कर लेगे कोई व्यापार।'

इस काल की कुलीन सम्मानित नारी मे बौद्धिक विकास के परिणाम स्वरूप अंर्तसघर्ष की भावना भी प्रतिलक्षित होती है (नव्य काल मे इस भावना का अधिक विकास हुआ है।) वह निष्ठा और विश्वास की भावना से परे जीवन की गुत्थियो को सुलझाने मे तर्क शक्ति का आश्रय लेती है। 'मुक्ति का रहस्य' (लक्ष्मी नारायण मिश्र) की आशा देवी, 'सुनीता' (जैनेन्द्र कुमार) की सुनीता आदि इसके प्रमाण है। अपने प्रिय कों प्राप्त करने के लिए भी वे अपेक्षाकृत स्वतन्त्र हैं। 'व्याह' ('वातायन' मे सग्रहीत) की ललिता अपने अभिभावक की इच्छा के विरुद्ध गरीब सिख-पुत्र का वरण करती है। मीरा के प्रेम का पक्ष लेकर विवाहिता को पर-पुरुष से प्रेम करने का अधिकार भी नारी देती है[1]। वैयक्तिक बातो के अतिरिक्त राष्ट्रीय क्षेत्र मे भी वे कार्यरत हैं[2]। उच्च शिक्षिका एव आधुनिकता के रूप मे वह साहित्यिक बाद-विवादो से लेकर सिगरेट पीने तक पुरुष का साथ दे सकती है[3]। इस काल मे उच्च वर्गीय शिक्षित महिला-वर्ग मे अधिकारजन्य जो भावना दुर्वह गर्व का रूप धारण कर रही थी, तथा प्रेम की भावना जिस प्रकार आर्थिक पृष्ठ-भूमि मे उसके लिए मन बहलाव का साधन-मात्र बन रही थी, उस ओर से भी साहित्यकार उदासीन नही रहा है। सात्विक प्रेम की उत्कृष्टता को अक्षुण्ण बनाए रखने तथा अधिकार मद मे भूली नारी को निर्देश देने के लिए उसे कहना ही पडा—

'इन सब से मैं केवल एक ही नतीजे पर पहुँचता हूँ, तुम पुरुष का धन लेती हो, पुरुष को अपना शरीर देने के बदले मे। है न ऐसी बात, और यह वेश्या वृत्ति है।'
(तीन वर्ष, पृष्ठ २२५)

पश्चिम की ओर लालायित आँखो से देखती हुई भारतीय नारी पर भी वह

१—सुनीता मे, देखिए सुनीता का कथन, पृष्ठ ५९।
२—देखिये, महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ,' पृष्ठ ५६।
३—भगवती चरण वर्मा : तीन वर्ष, देखिए प्रभा का चरित्र।

करने से नही चूका है—

'सीता सावित्री सी नारी
न हो यहाँ, यह साध हमारी
ग्रेजुएट होवें अबलाएँ
योरूप, अमरीका जाएँ
होवें वहाँ पहुच कर पास
भारत का भग जावे त्रास।'

(रामचरित्र उपाध्याय : बेडा पार, सरस्वती १९२८, पृष्ठ६४८-४९)

इस प्रकार शिक्षित एव उच्च-वर्गीय महिला समाज मे बढ़ती हुई दम्भ भावना के प्रति, उसे समुचित निर्देश देने के उद्देश्य से साहित्यकार को अपना कर्त्तव्य निर्वाह करना पडता है। वह उसे अधिकारो की सुविधा देना चाहता है। उसे समाज मे स्वीकृति और सम्मान मिलना चाहिए, राष्ट्रीय योजनाओ एव सामाजिक कार्य-क्षेत्र मे भी उसकी अपेक्षा है। परन्तु इन सब के साथ-साथ उसके अधिकारो एव कर्त्तव्यो का सामजस्य भी आवश्यक है।

सामाजिक रूढिवादिता एव परम्परा का सबसे बडा अभिशाप मध्य वर्गीय नारी के पल्ले पडा है। इस युग मे भी उसकी अवस्था पूर्व-काल जैसी ही रही है। समाज की नैतिक स्थिति जैसे उसके कधों पर टिकी है। घर की प्रतिष्ठा की वह सरक्षिका है। धर्म उसी के बल पर जीवित है। वह घर की लक्ष्मी है, बस इसीलिए अपनी स्थिति मे वह सब से अधिक निर्धन और निरीह है 'निर्मला' की निर्मला इस मध्य वर्ग की चक्की मे अपने व्यक्तित्व को पीस कर रूढ समाज की बुभुक्षा शान्त करती है। उसके लिए कही भी स्वीकृति नही है। जीवन को घुला-घुला कर ही जीवित रहना जैसे उसके भाग्य मे लिख दिया गया है। इस वर्ग की नारी को हर अवस्था मे पति-परायण आज्ञाकारी और सेविका के रूप मे रहना है[१]।' उसे अपनी इच्छाएँ, अभिलाषाएँ कुचलकर जीवित रहना पडता है, और इसके साथ ही शारीरिक क्लेशों को अन्त न होने से उसका सम्पूर्ण जीवन अज्ञान पशु के जीवन की स्मृति दिलाता रहता है[२]।

मध्य वर्गीय नारी की सामाजिक स्थिति के विपरीत निम्न वर्गीय नारी अधिक स्वतन्त्र एवं प्रसन्न है। जीवन की विभीषिकाओं को सहते हुए जैसे वह मुस्कराते रहना सीख गई है, और मधुर हास के वे कण उसके जीवन की अपनी निधि बन गए हैं। अभिशप्त भाग्य को लेकर भी जैसे उसके अधरो का हास रीत नही गया है। वह प्रफुल्ल-वदना कृषक बालिका के रूप मे अपनी सौम्यता से अपने

१—देखिए, सियाराम शरण गुप्त कृत 'गोद' में पार्वती का चरित्र।
२—महादेवी वर्मा : शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ २४-२५।

पास के वातावरण मे सौन्दर्य की कलकल बिखेरती रहती है—

'कृषक वधूटी खेत काटती, हस-हस कर लेकर हसिया
गाती गीत 'सुना दो मोहन प्रेम भरी अपनी बसिया'[1] ।'

o o o

मैली ओढनी सभाल, सुघर
गाँव की वधू, कुछ हल्के कर
काटती खेत, हसिया सर.सर
चुडियाँ रन-रन, तिरती मिठास
लोटता हास ।

(कुअरचन्द्र प्रकाश सिह . गीत, सरस्वती, पृष्ठ ३७ ।)

इसके साथ-साथ उन्हे सामाजिक स्वीकृति भी मिली है, तथा पुरुष वर्ग के साथ सम्पर्क स्थापना और स्वस्थ आमोद-प्रमोद का अधिकार भी—

'इनकी घर वालिया काम मे
नित्य योग है देती
नाच और गाने मे भी वे
सदा भाग हैं लेती,'

बौद्धिक विकास के अभाव मे उसमे विचार शक्ति की अपेक्षा कोमल, मृदुल एव निष्ठावान् भावनाओ की प्रबलता है, वह एकनिष्ठ प्रेयसी बन सकती है, प्रेम को व्यापार नही बना सकती[2] ।

इतना सब होते हुए भी वह अपनी वस्तु स्थिति मे कितनी दयनीय है. इसका सहज अनुमान 'गोदान' की धनिया के चरित्र से लगाया जा सकता हैं, जिसमे साहस, स्नेह, शौर्य एव निष्ठा होते हुए भी अभिशप्त वातावरण को विजित करने की शक्ति नही होती, और जिसके जीवन की लम्बी-दु:खपूर्ण गाथा आदि से अन्त तक करुणा और वैषम्य की घनी कुहासे के मध्य आवृत रहती है ।

सार्वजनिक जागृति और नारी

राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना के इस सुवर्ण प्रहर में जैसा कि पिछले पृष्ठों मे कह आए है, नारी की दयनीय अवस्था की ओर समाज सेवियो के अतिरिक्त साहित्य-सेवियों का ध्यान भी आकृष्ट हुआ। जीवन मे शान्ति और उत्कर्ष की प्राप्ति के लिए नारी का सहयोग आवश्यक समझा गया। उसका अपमान करके, और इस अपने अर्ध-भाग को निष्क्रिय बना कर पुरुष सुखी नही हो सकता, इस सत्य

१—गुरुभक्त सिंह · कुसुम कुज, पृष्ठ ३४ ।
२—जैनेन्द्रकुमार . परख, मे कट्टो का चरित्र ।

की प्रतिष्ठा की गई—

'नारी कल का मान मिटाता
गुण गौरव की धूलि उडाता।
क्या सुख पा सकता ?
जब तेरा अर्ध-भाग बेकार -'
(कर्ण हिन्दू ससार, माधुरी १९२८, पृष्ठ ८१४)

कवि का विश्वास है कि नारी को महिमा मडित करके ही युग-प्रभात को ज्योतित किया जा सकता है—

'प्रेम स्वर्ग हो घरा मधुर
नारी महिमा से मडित
नारी मुख की नव-किरणो से
युग प्रभात हो ज्योति।' (पन्त युगवाणी)

इसीलिए युग-प्रभात के इस नवीन प्रहर मे नारी सोते हुए राष्ट्र को जगाने के निमित प्रहरी का स्वरूप लिए है—

'सोते हुए देश को जगाती प्रहरी सी बनी,
जीवन सजीवन की शक्ति सी प्रदानी है।'

o o o

'तुम्ही हो ज्वालामुखी विनाश
क्रान्ति की हलचल युग निर्माण
तुम्ही हो महा प्रलय की रात
तुम्ही हो शक्ति विजय वरदान।'

नारी को उसके विशाल स्वरूप का ज्ञान दे, कवि उसमें आत्म-सम्मान और महत्ता का भाव भर देता है। तब अपनी शक्ति पर विश्वास करती हुई वह अपने विभिन्न स्वरूपों मे जागरण का नवीन गीत गुजरित करती है—

'हम नवल वधू, हम जगमाता,
हम मुग्ध सुन्दरी, सुकुमारी।'
हम महाशक्ति, हम महाक्रान्ति
रणचण्डी की तलवार हमीं
निज देश मान पर मिटती हैं बन
दुर्गा का अवतार हमीं।'
(शकुन्तला देवी खरे : नारी गान, चाँद १९३५, पृष्ठ २७)

इसी विश्वास ने उन्हें राष्ट्रीय योजना मे सैनानी स्वरूप भी प्रदान किया है—

'आश्विनी के ऊपर सुभव्य भाव भारिणी
कृत्तिका सी बामियो के ऊपर चढी हुई
वामाएँ अनेक, दीघ शूल लिए, दाहिने
हाथ मे लगाम धरे, बाएँ हाथ मे कसे
क्षीण कटि, जटित विचित्र कटि-बधो से
पीठ पर बाल छोडे, ढाल के से ढग के।'

(मैथिली शरण गुप्त : सिद्धराज)

...और राष्ट्रीयता के क्षेत्र में उसके योगदान की भी महत्ता स्वीकार की गई है—

...परन्तु यह होते हुए भी विशालहृदया नारिया पापी मनुष्य के सब अपराधो को क्षमा कर उसे स्वाधीनता दिलाने के लिए इस प्रकार आगे बढी और वीरता के ऐसे उदाहरण दिखाए कि ससार के इतिहास मे भारतीय नारियों की कीर्ति सुवर्ण अक्षरो मे लिखी जाएगी।'

(सत्यदेव परिव्राजक · नारी का अनादर, विशाल भारत १९३१ पृष्ठ ७३९)

इस मागलिक महान् समारोह मे नारी पुरुष के साथ-साथ चलती हुई नवीन स्नेह का सरस सूत्र स्थापित करती है—

'चल पडी बहन, चल पडे बन्धु, चल पडी जननि, चल पडे पुत्र,
पति चले, चली पत्नी उनकी, जुड गया स्नेह का सरस सूत्र।'

(सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी, दाडी यात्रा, पृष्ठ ७३)

इस काल मे पुरुष ही नारी को जागृति और दिशा-परिवर्तन की प्रेरणा नहीं देता नारी भी पुरुष की भावना के क्षेत्र से ठोस पृथ्वी पर उतार लाने के लिए प्रेरक होती है—

'तुम्हारी कविता उच्च कोटि की है। मैं इसे सर्वांग सुन्दर कहने को तैयार हूँ। लेकिन तुम्हारा कर्त्तव्य है कि अपनी इस अलौकिक शक्ति को स्वदेश के हित मे लगाओ। अवनति की दशा मे शृगार और प्रेम का राग अलापने की जरूरत नही होती, इसे तुम स्वीकार करोगे।' (प्रेमचन्द : रगभूमि, भाग १, पृष्ठ १५५)

राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ उसमे अब अपने अधिकारो के प्रति भी जागरुकता प्रतिलक्षित होती है। अन्याय तथा अत्याचार चाहे उसके पति द्वारा ही क्यो न किए गये हो, वह उनका प्रचण्ड विरोध करती है। वह हिन्दू महिला के

कर्त्तव्य को पशुओ की तरह मूक बने रह कर, पूर्ण करते रहना अपना धर्म नही मानती। वह पति की कुत्सित भावनाओ पर अकुश लगाने के लिए कटिबद्ध होती है[1]—वह आज पुरुष के हाथ की कठपुतली बनी रह कर उसके अत्याचारो को सहन करने के लिए प्रस्तुत नही है—

'हृदय नही क्या ललनाओ मे, पुरुषो की है वे कठपुतली
जो नाचा वे करे इशारे पर, जब खीचे वे सुतली।

O O O

हो कर्त्तव्य नारियो का कुछ तो, उतना ही है अधिकार
बहुत हो गया हृदयहीन पति का पत्नी पर अत्याचार।'

(गुरुभक्त सिंह ,नूरजहाँ,' मे मेहर का कथन)

आज के दिन अपने अधिकारो की माँग भी वह अधिकार पूर्ण शब्दो मे कर सकती है...'अब से कभी यह बात मुँह से न निकालना। अगर मैं आश्रिता हूँ तो तुम भी मेरे आश्रित हो। मैं तुम्हारे घर का जितना काम करती हूँ, इतना ही काम दूसरे घर में करूँ तो अपना निर्वाह कर सकती हूँ या नही, बोलो?'

(प्रेमचन्द · 'मगलसूत्र' मे पुष्पा का कथन, पृष्ठ १२)

इस प्रकार से विकास काल मे नारी को सत् माधुर्य और गौरवान्वित पद की प्राप्ति के साथ-साथ राष्ट्रीय योजनाओ मे पुरुष की सहचरी और स्वय अपनी जागृति और उन्नति के लिए प्रयत्नशील होने का गौरव प्राप्त हुआ है। विकास काल मे छायावादी प्रवृत्ति के कारण उसका यह सामाजिक स्वरूप चेतन होते हुए भी अधिक विकसित नही हुआ, परन्तु नव्य काल मे समाजवाद तथा मार्क्सवाद के बढते हुए प्रभाव-क्षेत्र मे नारी को इस आत्म-निर्भर एव स्वतन्त्र वैयक्तिकता विषयक भावना को विकास का समुचित क्षेत्र मिला, और इसीलिए वह जीवन के सभी क्षेत्रो मे पुरुष की सहचरी सहभागिनी के रूप मे प्रकट हुई। विकास काल के अन्तिम प्रहर मे हम नवीन चेतना और प्रगति के चिह्न स्पष्ट देखने लगते हैं, जब साहित्यकार मानव-जीवन को नई दिशा की ओर प्ररित करता है—

'मधुकर, छोड अब मधुगान
ढल गए सुख स्वप्न के पल, अस्त के दिनमान।'

(रामविलास शर्मा : गीत, सरस्वती १९३५, पृष्ठ २०८)

आर्थिक विषमताओं के नवीन वातावरण में जब वह मधु के गीतों की मधुरतान छोड़कर दुखियों की ओर उन्मुख है[2] तब वह स्वर्गिक कल्पना की मृगतृष्णा

१—विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक : पत्नी (कहानी), माधुरी १९२३, पृष्ठ २३४।
२—मितल : कवि गा दुखियो की आह, सरस्वती १९३७, पृष्ठ ४५३।

मे न खोकर ठोस धरती की बात करना चाहता है—

'मुझ से न स्वर्ग की बात करो, प्रिय लगता है ससार मुझे
मैं इसी भूमि पर बलिहारी, यह भी करती है प्यार मुझे।'
(गिरीश : स्वर्ग और ससार, सरस्वती १६३८, पृष्ठ ३१)

साहित्यकार के इस परिवर्तित दृष्टिकोण मे नारी को भी नवीन अभिव्यक्ति मिली, और नव्य-काल मे वह सभी बन्धनो से मुक्त जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के समान अधिकारमयी होकर प्रतिष्ठित हुई।

उपसंहार

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विकास-काल मे नारी को भिन्न-भिन्न सम्बन्धो एव रूपो मे सम्मान स्थिति प्रदान की गई। उसके सत् रूप मे जागृति-युगीन पवित्रता एव आदर्श के साथ-साथ माधुर्य-भाव की प्रतिष्ठा हुई, और उसे शान्ति प्रदायिनी स्वर्गिक सुख ही विधायित्री के रूप मे देखा गया। प्रकृति के साथ नारीत्व के सामंजस्य का विकास इस विकास-काल की अपनी विशेषता है। भौतिक सुखो की अप्राप्यता ने निराश सामाजिक जीवन मे जिस पलायनवादी प्रवृति को जन्म दिया, उसमें नारी का सत् रूप हुआ, और उसकी स्थिति-विषयक परम्परागत मान्यताओ में एक अपूर्व क्रान्ति प्रदर्षिशत हुई। अब वह न तो मध्य-कालीन नारी की भाँति केवल वासना की उत्तेजक मदिरा और पुरुष को विलासिता के पक मे डुबाए रखने वाली प्रेयसी ही रही और न जागृति-कालीन आरोपित आदर्शों की रुक्षता का भार सभाल कर पुरुष का दिशा निर्देश करने वाली अस्वाभाविक प्रेरक शक्ति ही, वरन् अब उसकी पवित्रता में मधुर सौन्दर्य का विनिमय करते हुए, उसे वैषम्यो एव असफलताओ के भार से जो पुरुष की पवित्रतम सहयोगिनी के रूप में एक नवीन स्वरूप देकर अधिष्ठित किया गया। परन्तु इस नबीन स्वरूप मे भी उसे जागृति काल में स्थापित भारतीय सस्कृति के आलोक मे देखने का प्रयास ही विशेष रूप से रहा, और जहाँ भी उसने पौर्वात्य आदर्शों की इस सीमा का अतिक्रमण किया, वहीं वह आलोचना की वस्तु बन गई।

इस काल मे रीतिकालीन स्थूल शृगारिक भावना का अन्त होकर नारी-सौंदर्य मे निर्मल मधुर भाव की स्थापना हुई, यह हम कह आए है। इस कोमल अवयवा नारी को दार्शनिक रूप मे भी देखने की चेष्ठा की गई, जहाँ वह भोग्य न रह कर चिंतन और जिज्ञासा की वस्तु बन जाती है, और इस प्रकार अपनी स्थिति के गौरव भार से उसमे गाम्भीर्य भावना अधिष्ठित होकर उसके भाव विस्तार को क्षेत्र प्राप्त होता है।

साहित्यिक क्षेत्र मे कविता के नवीन स्वरूप-विकास के साथ-साथ यह काल गद्य के विकास का काल भी है। गद्य मे सामाजिक समस्याओ, तथा उसके जीवन की विषमताओ को विस्तार के साथ उद्घाटन का अवसर इसी काल मे मिल सका है। इस काल के साहित्यकार ने उसकी वस्तु-स्थिति के प्रति तीव्र आक्रोश प्रकट किया है तथा परिवार, जाति और राष्ट्र के मध्य उसकी समान स्थिति एव समानाधिकारो की जोरदार वकालत की है। उसकी दयनीय अवस्था की पृष्ठ-भूमि मे पुरुष को दोषी ठहराया है, तथा उसे आत्म-निर्भर, आत्म-सम्मानित एव स्वतन्त्र होने का निर्देश दिया है। (इस भावना का समुचित विकास आगामी अध्याय मे विवेचित 'नव्य-काल' मे हुआ।) सामाजिक-क्षेत्र मे इस काल के साहित्यकार नारी के वाह्य सघर्षों का ही उद्घाटन कर सके, शायद शिक्षा के समुचित विकास एव विस्तार के अभाव मे अभी नारी मे उस बौद्धिक जागरुकता एव तकशक्ति का विकास न हुआ हो जो अन्तर्द्वन्द्वो की भावना को जन्म देती है। अत: इस काल मे चित्रित नारी-जीवन के सघर्ष मे वाह्य विषमताएँ ही चित्रित की जा सकी है, उसकी अन्तर्भावनाओ का सघर्ष और चित्रण जो नव्य-काल की विशेषता है, अभी केवल प्रस्फुटित ही हो सका है विकसित नही। जागृति-काल की भाँति इस काल मे भी नारी विषयक जिस सुधार भावना को स्वर प्रदान किया गया, उसमे सहानुभूति की भावना ही अधिक प्रतिलक्षित होती है। बहुत कम अवसरो पर नारी, स्वय कटिबद्ध हो, अपनी स्थिति की रक्षा के लिए अग्रसर हुई है। फिर भी, उसके प्रति उपेक्षापूर्ण भावना के विनाश, आदर्शों की कठोर शृखला मे शृखलित व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता एव नवीन माधुर्यपूर्ण स्वरूप की स्थापना तथा सामाजिक स्वीकृति प्रदान करने की दिशा मे साहित्यकार का प्रबल समर्थन, इस काल की नारी-भावना को लेकर अपनी अपूर्व विशेषताएँ है।

४...नव्य-काल

(१९३८-१९५७)

नव्य-काल

(१६३८-१६५७)

इस प्रकार विकास काल के अन्तर्गत 'नारी-भावना' का विकास द्रुत-गति से हुआ और नारी के क्रमागत स्वरूप में आमूल परिवर्तन हो गया। कल्पना-प्रधान कवियो ने समाज के इस तिरस्कृत अग के प्रति समस्त सहानुभूति बखेर दी और नारीत्व को पुरुषत्व से भी ऊँचा उठा दिया[1]। परन्तु नव्य-काल मे नारीत्व को अलौकिकता के छायावादी आदर्श वातावरण से उतार कर लोकिक, यथार्थ एवं बौद्धिक भाव-भूमि पर समत्व की आदर्श-स्थापना करते हुए चित्रित किया गया और नारी सम्बन्धी गत युग की मान्यताओं को यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रदान करने की चेष्टा की गई।

नव्य-काल राष्ट्रीयता का उत्कर्ष काल है, जागृति का जो शखनाद पिछले वर्षों में हुआ था, उसके परिणामस्वरूप, प्रत्युत्तर में सक्रियता की महान् भीर इस काल मे उमडी। विकास-काल मे सामाजिक विषमताओ से भयभीत होकर जिस पलायनवादी प्रवृति को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था, इस काल मे उसकी निस्सारता सिद्ध हो गई और कवि फिर से विश्व-मंच पर खेलती हुई मानव-की क्रुर-सभ्यता के विनाश के लिए देश का आवाहन करने लगा—

'प्रेम के गीत, गा मत भारत
बीत चुकी दुनिया इन की
विश्व मंच पर खेल रही है
क्रर सभ्यता मानव की।
(शिव रानी विश्नोई—'उद्गार,' चाद १६४३, पृष्ठ २८६)

अब कवि का ध्यान प्रकृति प्रेयसी से हट कर जीवन की यथार्थता पर, उसके बीच में कसमसाती और कराहती हुई मानवता पर केन्द्रित होने लगा। उसे जगत से प्राप्त व्यथा से मधुर सहानुभूति होने लगती है, क्योंकि यह व्यथा उसके अपने जीवन की है,

१—पं० नन्द दुलारे वाजपेयी—नवीन काव्य शैली, हंस, पृष्ठ २६६।

गिरती हुई स्थिति को थोडा सा सभाल लिया है। उसने नारी मे एक मूल-प्रेरणा के साथ-साथ 'जीवन की पोषिका' भी हो जाती है। किन्तु इसी काल के इस तीसरे विचारक बर्नार्ड शा ने नारी को काम-वासना के क्षेत्र मे अन्य मनोविज्ञान-शास्त्रियो के विपरीत 'सक्रिय' माना है। उनकी धारणा है कि प्रेम (वासना के उद्‌भव) के क्षेत्र मे नारी ही पहले प्रवृत होती है। 'स्त्री को पुरुष की आवश्यकता प्रकृति की प्रेरणाओ की पूर्ति के लिए है, यदि पुरुष विद्रोह करता है तो वह अपने परम्परागत-प्रेम और आज्ञाकारिता के अभिनय को त्याग कर प्राकृतिक रीति से, व्यक्तिगत आवश्यकताओं से बहुत दूर किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए, इस पर अधिकार स्थापित करती है[1]।'

इस काल मे यथार्थवाद की भावना को प्रकृतिवाद या नग्नवाद की कोटि तक खीच लाया गया। पश्चिम मे एमिल जोला, इब्सन थियोडोर ड्रेसर इस वाद के प्रमुख प्रचार कर्त्ता रहे। हिन्दी मे उपर्युक्त भावनाओ ने बच्चन, नरेन्द्र, अचल, रागेय राघव, अज्ञेय तथा यशपाल आदि प्रभृति साहित्यकारो को प्रभावित किया।

इस प्रकार से इस काल मे नारी भावना को विभिन्न सिद्धान्तों की पृष्ठ-भूमि मे देखा जा कर एक नवीन अभिव्यक्ति मिली। उसके हृदय की स्नेह-भावनाओ के परस्पर आदान-प्रदान पर आधारित न होकर, अर्थ व्यवस्था के मध्य, उससे अनुप्राणित होकर मुखरित हुई। इस नए मोड़ को भारत भूषण की 'सब से छोटी कविता' पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करती है—

तुम अमीर थी
इसीलिए हमारी शादी न हो सकी
पर, मान लो तुम गरीब होती
तो भी क्या फर्क पडता!
क्योकि तब...
मैं अमीर होता! (ओ अप्रस्तुत मन, पृष्ठ १०३)

जिस प्रकार राष्ट्रीय-भावना के उत्कर्ष ने नारी को समान स्वीकृति प्रदान की, उसी प्रकार मनोविश्लेषण विज्ञान की विचार प्रबुद्धता में नारी-मन के अन्त-संघर्ष को विकसित होने का अवसर मिला, और वह अधिकार भावनाओ से पूर्ण समान स्वीकृत और आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होकर भी एक प्रकार की घुटन अनुभव करती रही। वह यह सोचने पर बाध्य हो गई कि क्या वास्तव मे नारी का पुरुष से स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नही हो सकता, यदि हाँ, तो फिर आज सब कुछ पाकर भी, पूर्णतया स्वाश्रित होकर भी वह अनमयस्क क्यो है। इसी अन्तर्द्वन्द्व का अभी तक न

१—बर्नार्ड शा—प्रिफेसेज ७, पृष्ठ १५६। शैल कुमारी द्वारा 'आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना' के पृष्ठ १६६ पर उत्कथित।

तो वह कोई उपचार ही खोज पाई है और न कोई निश्चित सार्थक समाधान ही। इस अन्तर्सघर्ष की भावना को हम विभिन्न वर्गों मे नारी स्थिति की विवेचना करते समय भली-भाँति समझा सकेंगे।

उपर्युक्त-काल की नारी-भावना पर हम निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत विचार करेंगे—

१—वस्तु-स्थिति
२—समाजवादी तथा क्रान्तिवादी भावना
३—नवीन आदर्श
४—सुधार भावना
५—विभिन्न रूपो मे नारी
६—प्रतीकात्मक भावना
७—विभिन्न सम्बन्धो मे नारी, एवं
८—विभिन्न वर्गों मे नारी।

वस्तु-स्थिति

यद्यपि नव्य-काल मे समता और समाजवाद के सिद्धान्तो की जोरदार वकालत की गई, और नारी की स्वतन्त्र सम्मानपूर्ण वैयक्तिकता को सभी क्षेत्रो मे स्वीकार कर लिया गया, तो भी इसका लाभ एक बहुत ही विशिष्ठ वर्ग के अतिरिक्त सामान्य नारी-वर्ग को न हो सका। व्यावहारिक क्षेत्र मे नारी की समाजगत वस्तु-स्थिति मे पिछले काल की भाँति वैषम्य, करुणा, दयनीयता की मात्रा ही अधिक रही। उसके व्यक्तित्व मे समाज का इकाई होने का महत्व प्रदान नही किया गया। नर के इगितो से सचालित पुत्तलिका के समान ही उसकी स्थिति रही[१]। जीवन की विवशता के बीच वह पर-कटे पक्षी के समान निस्सहाय है[२]। वह पति की आकाक्षाओ के सम्मुख नत-शिर है तथा उसकी भोग्य और सम्पति मात्र है[३]। जीवन की विषमता के दलित वातावरण में उसका 'स्व' शव मे परिवर्तित हो जाता है[४]। उस उपेक्षिता

१—अग-अग उसका नर के वासना चिह्न से मुद्रित।
वह नर की छाया, इगित सचालित, चिर पद लुँठित,
o o o o
वह समाज की नही इकाई, शून्य समान अनिश्चित
उसका जीवन मान-मान पर, नर के है अवलम्बित।
(पंत, ग्राम्या, नारी, पृष्ठ ८५)

२—मेरे पर कटे हुए है, मेरे पैरों मे जजीरे कसी हुई है।
(हरिकृष्ण प्रेमी : छाया, ज्योत्सना का कथन, पृष्ठ २२)

३—वही, पृष्ठ २४,

४—वही, पृष्ठ ४५, देखिए, माया का कथन।

को अपने भविष्य से अनिश्चित, अपने दुर्भाग्य की अमर कहानी के भार को अपने वर्तमान मे ढोये चलना है, बस इतना ही वह जानती है—

मैं अभाग्य की अमर कहानी
आदि जानती, किन्तु न अन्त,
उस उपवन की कली, उपेक्षित...
हो जिसका प्रत्येक वसन्त।

(उर्मिला श्रीवास्तव, पूजन, सरस्वती १६४२, पृष्ठ १६)

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए पुरुष ने स्वार्थवश भले ही नारी का आह्वान समान भाव-भूमि पर किया हो लेकिन सामाजिक धरातल पर वह नारी को मात्र रूढि पोषित दृष्टिकोण से ही देख पाया है—

'स्त्री इस नीचे बहते हुए गंदे नाली के पानी से ज्यादा नही है। उसका मन, उसका शरीर गुलामी की सास्कारिक जंजीर से कस कर फस गये हैं और वह जी कर भी नही जीती। सेवा, शृंगार, सब झूठे दम्भ हैं, जिनकी छाया मे तह घुल-घुल कर मर रही है।' (मार्कण्डेय—पान-फूल (क० स०) वासवी की मा, पृष्ठ २४)

अथवा,

'स्त्री जीवन की पूर्ति नही, जीवन की पूर्ति का एक उपकरण और साधन मात्र है।'

o o o o

नारी है क्या। माताल वृक ठीक कहता है। वीर रुद्रधीर, कोमल पुष्पसेन, अभद्र मारिश और माताल वृक नारी के लिए सब समान है। जो योग्य बनने के लिए उत्पन्न हुई है। उसके लिए अन्यत्र शरण कहाँ?'

(यशपाल दिव्या, पृष्ठ ८७ तथा १०३)

पिछले युग में नारी बाल-विवाह की रूढि से ग्रसित थी, अब वह पूर्ण वयस्का हो जाने पर भी अविवाहित ही रह जाती है। तब उसे समाज के तिरस्कारो एव व्यंगों का शिकार होना पडता है[1]। इस काल मे सिद्धान्त-रूप से पुनर्विवाह के आदर्श की स्थापना हो चुकी है, परन्तु पुनर्विवाहिता पर गौरव नही किया जा सकता[2]। ससुराल में उसकी दशा सासादि के कटु व्यवहारो से और भी दयनीय है—

'नये व्याहे जवान यक्ष्मा मे उतने क्यों नही मरते, जितनी नई व्याही लडकियां? यह सासों की क्षुद्रता और निर्दयता है, जिसके कारण आज इतनी बहुएँ

१—अज्ञेय : शेखर—एक जीवनी (भाग २) देखिए शशि का कथन, पृष्ठ ७०।
२—यशपाल : देश द्रोही, देखिए, पृष्ठ १६५।

इस रोग के हाथो मौत के मुह मे जा रही हैं ।'

(उपेन्द्रनाथ 'अश्क' : पापी (एकाकी) में शान्ति लाल का कथन, पृष्ठ ७६)

इतना जान कर भी आज की नारी परम्परागत विवाह पद्धति की लीक पर चलने के लिए विवश है, विवाह के विषय मे उसकी इच्छा कुछ भी महत्व और अर्थ नही रखती[1] ।

उपर्युत पक्तियो मे नारी की वस्तु-स्थिति का सामान्य विवरण प्रस्तुत किया गया है । परन्तु भिन्न-भिन्न वर्गों मे नारी की वस्तु-स्थिति न्यूनाधिक रूप से भिन्न है । अभिजातीय वर्ग की नारी मे लौकिक सुखो के प्रति आसक्ति की भावना विद्यमान है । आधुनिक सभ्यता की लहर मे वह बहुत आगे तक वह गई है[2] । शिक्षा के विकास ने उसकी स्वच्छन्द प्रवृति को प्रोत्साहन दिया है । उसकी बौद्धिक जागृति 'प्यार' की शाश्वत भावना मे विश्वास नही किया चाहती उसके शब्दो मे...

'प्यार की जिन्दगी चन्द क्षणो की होती है पार्क उसका आदि है और पलग अन्त[3] । विवाह की व्याख्या भी वह इसी प्रकार करती है—

'शादी का आदि पलग और अन्त पालना है[4] ।'

वास्तव मे उक्त भावना नारी की कुठित आकाक्षाओ का परिणाम है । उच्चतर समाज मे उसके व्यक्तित्व को, उसकी सहज स्वाभाविक स्नेह भावना को आर्थिक माप-दण्ड पर तोला गया है । उसने जब-जब पुरुष पर अपनी निष्ठा समर्पित करनी चाही, उसे बदले मे सोना दिया गया, स्नेह नही, और जीवन की इसी विडम्बना के फलस्वरूप उसका दृष्टिकोण बदल गया और वह अपने व्यवहार मे स्थूल से स्थूलतर होती चली गई । इस मत की पुष्टि के लिए एक उदाहरण दृष्टव्य है—

'प्रत्येक व्यक्ति जो मेरे जीवन मे आया भविष्य के सुख स्वप्न पैदा करता आया । प्रत्येक व्यक्ति को मैंने भावी पति के रूप मे देखा । पर क्या हुआ ? वह व्यक्ति मुझे 'प्रेजेन्ट्स' दे सकता था, पर अपनी न बना सकता था । धीरे-धीरे मैं इसकी अभ्यस्त हो गई ।' (भगवती चरण वर्मा—'इन्स्टालमेंट' मे सग्रहीत 'प्रेजेन्ट्स' कहानी मे शशिबाला का कथन, पृष्ठ ११)

अभिजातीय वर्ग की नारी का इस कुन्ठा जन्य भाव के अतिरिक्त एक दूसरा पक्ष भी है, जहाँ वह अतिशय दयनीय है । धन की मार ने उसके कन्ठ को अवरुद्ध

१—उपेन्द्रनाथ अश्क : अलग-अलग रास्ते, देखिए राज और रानी की विवाह विषयक विवशता ।

२—लक्ष्मीनारायण मिश्र · मुक्ति का रहस्य, आशादेवी का चरित्र, पृष्ठ ३ ।

३—विनोद रस्तोगी : रुपया, रूप और रोटी, लिली का कथन, पृष्ठ १८९ ।

४— ,, ,, ,, पृष्ठ १८९ ।

कर दिया है। यशपाल की 'सुमति'[1] इसी प्रकार की प्रतीक है, जो भाग्य की अपार परवशता के मध्य जीवन जी रही है।

मध्य-वर्गीय नारी की वस्तु-स्थिति सदैव से ही दयनीय रही है। विवाह के पश्चात् उसकी शिक्षा का कोई महत्व नही रह जाता[2]। विवाह के विषय मे उसकी अपनी इच्छा कोई अर्थ नही रखती[3]। परिस्थितियो के मध्य उसकी बुद्धि भले-बुरे के के ज्ञान से भी वचित हो गई है। पति के घर सास का अह-पोषण ही जैसे उसका धर्म रह गया है[4] इस वर्ग की नारी के लिए पति ही जैसे मोक्ष का साधन है। वह किसी भी दशा में प्रतिकार नही कर सकती। सिद्धान्त रूप मे नारी को आधुनिक हवा से बचने को निर्देश दिया जाता है। उस पर पाश्चात्य प्रभाव एव गर्विता होने का आक्षेप लगाया जाता है परन्तु अपने घर की सीमाओ के भीतर क्या वह ऐसी ही दर्पमयी एवं अधिकार पूर्ण है। वह वास्तव में अपने पति को पूर्ण समर्पित है इस सीमा तक—यह जानते हुए भी, कि उसका पति वेश्यागामी है, उन्से घर मे लाता हैं—वह पति के साथ-साथ वेश्या की भी सेवा करती है, क्योकि वह धर्म-परायण मध्य-वर्गीय हिन्दू नारी है, जिसके लिए केवल पति सेवा का ही द्वार खुला है, और यह उसके करुण जीवन की पराकाष्ठा है[5]। इन्ही अवरुद्ध कारणो से उसके जीवन मे एक गहरी नैराश्यापूर्ण भावना शून्य का मूर्त रूप लेकर भीतर तक पैठ गई है। मध्य-वर्गीय नारी का सजीव चित्रण 'मेंग्रीन'[6] की मालती मे हुआ है जिसके जीवन में एक महान् विरक्ति, निष्क्रियता और उमस व्याप्त हो गई है, जो जीवित होकर भी जीवित नहीं है। इस वर्ग को नारी अपनी सामाजिक स्थिति मे पूर्णतया पुरुष पर निर्भर है –

'स्त्रियों का मरना जीना ही क्या, जब तक पुरुष प्रसन्न है, वे जीती हैं। पुरुष अप्रसन्न हो गये, मरना हो गया।'

(यशपाल : 'दादा कामरेड' मे यशोदा का कथन, पृष्ठ ११६)

मध्य वर्गीय नारी की भाँति ही सामान्य वर्गीय नारी अपनी स्थिति मे अत्यधिक दयनीय और करुण है। परन्तु उसमे मूकता न होकर वाचालता है, साथ ही पुरुष के प्रति आक्रोश की भावना भी विद्यमान है। वह पेट की भूख को भरने के लिए 'व्यभिचार' का आश्रय लेती है, आठ-आठ पति करती है, फिर भी अपने को

१—यशपाल · उत्तमी की मां (क० स०) मे पतिव्रता की सुमति।

२—राजेन्द्र यादव खेल खिलोने (क० स०) की नलिनी।

३—धर्मवीर भारती 'सूरज का सातवां घोडा' की जमुना।

४—अमृतराय : कस्बे का एक दिन (क० स०) 'आह्वान' मे ललिता की स्थिति पृष्ठ ३१।

५—उपेन्द्र नाथ अश्क · काले साहब (क० स०) की 'बगूले' मे वासन्ती।

६—अज्ञेय : 'जयदोल' (क० स०) मे सग्रहीत।

दोषी नही ठहराती, स्वयं की आखों मे नही गिरती। वह स्वर मे अपने निर्दोष होने की घोषणा करती हुई कहती है—

'मैंने कुछ नही किया है रे लेखक। क्यो नही पूछता उन सारे लोगों से जिन्होने मुझे ऐसा बनाया। देखता नही यह पडित, वह जमीदार का छोकरा और वह महाजन का छोटा भाई, सभी मेरे साथ भो चुके हैं, पर सब मुझे गाली देते हैं, और जब-जब मेरे पेट में बच्चा आता, इन्होने पचायत करके उसे नाजायज करार दिया और मुझे गाव से बाहर निकाल दिया।'

(मार्कण्डेय . पान-फूल (क० स०) में 'कहानी के लिए नारी-पात्र चोहिए' की जमुना का कथन।)

उसके लिए पर-पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध भी इतना महत्व नही रखता[1] जितना मध्यवर्गीय नारी के लिए। 'सेक्स' सम्बन्धी सामान्य वर्गीय नारी की वस्तु-स्थिति अभिजातीय वर्ग जैसी ही है। हा, शरीर को विक्रय कर सकने मे असमर्थ वह पुरुषो को डरा-धमका कर भी धन अर्जित कर सकती है। इस दृष्टिकोण से वह साहसमयी भी है[2]। सदैव ही साहस, श्रम और निष्ठा सामान्य वर्गीय नारी की सम्पत्ति रहे हैं। उसे पुरुष का सच्चा स्नेह मिल जाये, वह सब कुछ करने को तैयार है। 'आखिरी दाव[3]' की चमेली बम्बई मे जाकर 'प्रथा' के विरुद्ध जीविका उपार्जन के लिए पान की दूकान करती है, जो अन्य वर्गीय महिलाओ के लिए शायद असम्भव कार्य होता। मध्य वर्गीय पत्नी के विपरीत वह सास के ताने एक अनिश्चित सीमा तक सुनने की अभ्यस्त नहीं है। सहन-शक्ति का क्षय होते ही वह अपनी सास से कह सकती है—"और अब जो तुमने ज्यादा कुछ कहा तो तुम्हारा गला घोट दूँगी—यह याद रखना! सब्र की भी हद होती है।"

परन्तु इतना सब होते हुए भी वह अपनी आखों मे असीम करुणा का इतिहास छिपाये है। अपनी व्यथा मे मौन धैर्य की प्रतिमा-सी सदैव परिश्रम रत रह कर, जीवन में सुखों की ओर से उदासीन वह निरपेक्ष भाव से समाज के वक्ष पर अपनी दयनीय अश्रुधार को बहाती हुई चलती है[4]। जहाँ उसका समस्त प्रतिशोध, प्रतिहिंसा की भावना और वाचालता विगलित हो जाती है।

१—यशपाल 'तुमने क्यो कहा था, मैं सुन्दर हूँ' (क० स०) मे 'मिट्टी के आसू' की नायिका।

२—वही, 'कोकिला डकैत' की नायिका।

३—भगवती चरण वर्मा लिखित।

४—अमृता प्रीतम : 'पिजर' (उपन्यास) की पूरो।

समाजवादी तथा क्रान्तिवादी सम्बन्धी भावना

समाजवादी आदर्शो की प्रतिष्ठा के इस युग मे हिन्दी साहित्यकार का ध्यान समाज के बुभुक्षित एव मानसिक कुठाओं की पृष्ठ-भूमि मे अर्ध-विक्षिप्त और शोषित वर्ग की ओर अधिक आकृष्ट हुआ है। जिस छायावादी रोमान्स प्रवृति ने उसे जीवन की यथार्थता से विमुख कर कल्पना के स्वर्गिक सुखो के प्रदेश मे भुला रखा था, अब वह उसे, वितृष्णा के रूप मे दीखने लगी। जागरण के इस नवीन प्रहर मे उसका रुचि-क्षेत्र परिवर्तित हो गया। वह गाने लगा—

"मेरी छोटी दुनिया कंगालो की
उनके उर की पीर बहा लाता हूँ।
'रुन झुन' मे विश्वास नहीं करता हूँ
मधुर मिलन की आश नही करता हूँ।"

(मित्तल कवि की अन्तर्वेदना, सरस्वती, ४०, पृष्ठ २६०)

सामाजिक जीवन का यह दलित वर्ग जब अपने यथार्थ स्वरूप मे उसके सम्मुख आता है, तो वह इसकी उपेक्षा नही कर सकता। विलास के बन्धनो को ढीला कर उसकी सहायता के लिए सन्नद्ध होता है—

'तनिक ढीले तो करो तुम आज अपने प्रणय-बन्धन
सुन सकू नीरव क्षणो मे, विश्व-उर का करुण स्पन्दन
विश्व-उर की वेदना की, हृदय मे झकार भर लू।

(विद्याभास्कर शास्त्री . गीत, चाद १९४१, पृष्ठ १५०)

इस वर्ग की निरीह वाणी मे इतना दर्द भर गया है कि चाह कर भी कि वह क्षण भर अपनी प्रिया के पार्श्व मे रुका रहे, नही रुक पा रहा है—

'चाहता भी था कि रुक लू पार्श्व मे क्षण भर तुम्हारे,
किन्तु अगणित स्वर बुलाते हैं मुझे बांह पसारे
अनसुनी करना उन्हे भारी प्रवचन, कापुरुषता
मुह दिखाने योग्य रखेगी न मुझ को स्वार्थ-परता

(शिव मगल सिह 'सुमन') 'पर तुम्हे भूला नहीं हूँ।'

और इसीलिए वैषम्य से भरे इस वातावरण मे वह मधु की बात बन्द कर देने का संदेश देता है—

'बन्द करो मधु की रस जतियां, जाग उठा अब विष जीवन का'

(नीरज : विभावरी, पृष्ठ ६०)

आज की जागृति के क्षण मे लेखक जीवन की समस्याओं के उद्‌घाटन के हित ही लेखनी का उपयोग करने का सदेश देता है—

...न आज स्वप्न कल्पना सुरा छको।
न आज बात आसमान की बको,
स्वदेश पर मुसीबतें, सुलेखको।
उसे प्रदान आज लेखनी करो।

(बच्चन : धार के इधर-उधर, पृष्ठ ६६)

और इस प्रकार, इस अरुणोदय मे वह जीवन की प्राचीन रुढि-ग्रस्त अकल्याण-कारी मान्यताओ को समूल नष्ट कर समाज में प्रजातन्त्रात्मक भावना एव स्वस्थ मानवता की स्थापना करना चाहता है—

'नव चेतन आज मनुज करें धरणि पर विचरण
मुक्त गगन मे समूह शोभन ज्यों तारा गण,
मानव हो मानव—हो मानब मे मानवपन
अन्न वस्त्र से प्रसन्न, शिक्षित हो सर्व जन
खोलो परम्परा के कुरूप वसन नारी नर।

(पन्त : ग्राम्या, उद्‌बोधन, पृष्ठ १००)

समाजवादी समत्व के इस दर्शन-काल में नारी को भी नवीन भाव-भूमि पर परीक्षित किया गया। अब वह केवल प्रेम और लालसा के मन्दिर की छायावादी पूज्य प्रतिमा ही न रह कर पुरुष के साथ समान भाव-क्षेत्र की—अधिकारिणी हो, दूसरी प्रकार से व्यावहारिक आदर्शों की भीति पर पुरुष-वर्ग द्वारा अभिनन्दित हुई[1]। नारी-भावना विषयक यह क्रान्ति समाजवाद की अपूर्व देन है। अब वह जीवन की सम्पूर्ण विषमताओ मे सामजस्य की स्थापना करते हुए यथार्थ की भाव-भूमि पर जीवित रहने के लिए स्वस्थ समाधान की खोज मे रत है। 'उडान' अपने प्रेमियों की अतिवादी जीवन दृष्टियो से सहमी हुई माया अपना मत यो प्रकट करती है—

१—तुम नही भोग की ही वस्तु मुझ को, अस्तु तुम से
भीख मधु की भी मागता मन भी नही, अलि ज्यों कुसुम से।

O O O O

आज तक तुम फूल, तितली गीति थी—वह छोड़ता हूँ
प्रीति, कवि कृत प्रेयसी की प्रीति थी, वह छोड़ता हूँ
विश्व मधु का कुण्ड था, मन तरी, थे पतवार भुज द्वय
सुनो नारी! निरादर की रीति थी, वह छोड़ता हूँ।

(नरेन्द्र शर्मा : मिट्टी और फूल, पृष्ठ १३४)

'एक आकाश मे बसता है...दूसरा अंधियारे गहरे गड्ढे का वासी है। मैं दोनो से डरती हूँ, ऊँचाई या गहराई मेरा आदर्श नही। गहरे खड्डो या ऊँचे शिखरों से मै ऊब गई हूँ। मैं समतल चाहती हूँ। (अश्क कैद और उडान, पृष्ठ १५२)

इस माया के रूप मे नारी का विद्रोह मुखर हुआ है। वह स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सबन्धो मे एक नया आधार ढूंढना चाहती है। जिस से जीवन को सरल, प्रवाहयुक्त भावधारा के साथ एक दूसरे को समझते हुए बिताया जा सके।

समाजवादी चेतना की दूसरी देन समता का भाव है। अब नारी पुरुष के अत्याचारो के प्रति अपने विरोध का स्वर ऊँचा कर सकती है। इस युग की नारी स्वतन्त्र वैयक्तिकता की स्थापना मे कटिबद्ध है। पुरुष के अत्याचारो और सकीर्ण विचारधाराओं मे वह इतनी घुटन और उमस महसूस करती है, कि आत्म-निर्भरता का प्रण लेकर वह पुरुष की छोड कर भी जीने के लिए तैयार है[1] वह आज पुरुष-वर्ग के कुरूप पहलू से भली-भाँति परिचित हो गई है, वह पुरुष को विजित करने के लिए स्वय पुरुष जैसी कठोर नृशस और अत्याचारी बनने को भी बुरा नही मानती—

'जननी होते हुए भी स्त्री कितनी निरीह है, कितनी निराश्रय है। जिस पुरुष के लिए स्त्री सर्वस्व न्योछावर कर देती है, यातनाएँ सहती है, वही पुरुष पशु के समान हृदय-हीन प्राणी है। जब तक स्त्री अपना अधिकार न समझ लेगी, जब-तक स्त्री पुरुष के सर पर पैर न रख सकेगी, तब तक वह गुलाम रहेगी इतना मुझे विश्वास है।' (भगवती चरण वर्मा—दो बाके (क० स०) मे 'पराजय अथवा मृत्यु' की भुवनेश्वरी, अपने पत्र मे, पृष्ठ १०२)

इतनी सामाजिक चेतना के साथ-साथ नारी को राष्ट्रीय-क्रान्ति के क्षेत्र मे भी उपस्थित कर, उसका स्वरूप-विकास किया गया है। राष्ट्रीय-उद्बोधन के इस प्रहर मे कवि नारी से मधु की अपेक्षा आग की अपेक्षा करता है—

'चाहता मैं आज जलती आग, केवल आग तुम से।
चाहता मैं अब न प्याली मे सुरा सा झाग तुम से।'
(अचल, लाल चूनर, पृष्ठ २६)

क्योंकि—

'आज नव-युग का तरुण
त्यौहार द्रोही पर्व आया
क्या करेगी प्यार—केवल
प्यार मेरी क्षुब्ध काया

१—अश्क : 'अलग-अलग रास्ते' मे देखिए रानी का चरित्र।

आज जीवन औ' मरण के
बीच मे तुम सेतु बन कर,
दो मुझे तूफान अगले,
झेलने का शौर्य जयकर। (वही, पृष्ठ ३८)

और इसीलिए आज नारी के पायलो की झंकार तलवारो की झंकारो मे परिवर्तित हो गई है[1]। क्योकि समता की भावना से देखी जाने वाली नारी का भी तो देश के प्रति कुछ कर्त्तव्य है। इस नवीन आलोक मे उसके जीर्ण बन्धनो की शृखला टूट पडेगी, और वह भी उन्मुक्त विहगी-सी स्वतन्त्र हो जाएगी, इसीलिए राष्ट्रीय जागृति के प्रति वह भी उत्सुक है—

'देख प्राची मे उदय की
अरुणिमा कुछ छा रही है
मुक्त होने का सदेशा
नवल उषा ला रही है
फिर विहगिनी सी विचरना
अब मिटेगा क्लेश तेरा।'
(सत्यवती शर्मा 'भारत बाला से,' सरस्वती, १६४१ : पृष्ठ १०४)

नारी मे राष्ट्रीय भावना के विकास के प्रतीक स्वरूप इस काल मे कुछ ऐतिहासिक महिलाओ के चरित्र भी उपस्थित किए गये। 'रजत-रश्मि'[2] मे दुर्गावती की राजनीति को उपस्थित किया गया, और एक आदर्श की, कि भारतीय राजनीति को नारी की अपरिमित शक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है, स्थापना की गई। राजनीति मे नारी प्रवेश को, जैसा कि तीसरे अध्याय मे देख आए हैं, अधिक विकास का अवसर गाँधी जी की ही प्रेरणा से मिला। 'दडी प्रयाण' के समय कवि ने भी उनका आह्वान किया[3]। परन्तु इतनी जागरुकता के बाद भी राष्ट्रीय चेतना के इस प्रबुद्ध आन्दोलन मे भाग लेने विषयक नारी की कठिनाई एव विवशता को भी दृष्टि-ओझल नही किया जा सकता—

१—सोहन लाल द्विवेदी (हुँकार) त्रिपथगाथा, पृष्ठ ७२।
२—राजकुमार वर्मा लिखित।
३—आश्रम निवासिनी सकल ललनाएँ माएँ
बहनें, हमें हैं पशुता से युद्ध ठानना
लडना तुम्हे भी सत्याग्रह की लडाई घोर
अवसर आते निज धर्म पहचानना
(अनूप शर्मा : दण्डी प्रयाण, सरस्वती १६३६, पृष्ठ ५६)

'एकान्त वाटिका मे जाकर मैं देश जाति की अवनति का
कारण हल करने को बैठी, माँ की इस भीषण दुर्गति का
'वे' आकर बोले – गाँधी के जलसो मे आने-जाने से
छिन गई नौकरी भी मेरी, मुहताज हुए हम दाने को
मैं यह देखू, या वह देखू ।

(रत्न कुमारी, · 'मैं यह देखू या वह देखू' सरस्वती १९४२, पृष्ठ १०७)

फिर भी नारी का यह नवीन स्वरूप, जिसमे राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक विषमताओ के प्रति एक जागरूक भावना विद्यमान है, जो उसके मानस मे प्रगतिशील विचारो का उद्वेलन आरम्भ कर सकती है, इस नव्य-काल के इतिहास मे अपना विशेष स्थान रखती है, इसमे कोई सदेह नही ।

नवीन-आदर्श

नव्य-काल मे समता के जिस आदर्श की स्थापना के प्रयत्न की हम उपर्युक्त पक्तियो मे विवेचना कर आए है, उसी के सदर्भ मे नारी सम्बन्धी नवीन आदर्शो को भी प्रस्थापित किया गया । उसके प्रति विकास-काल मे जिस काल्पनिक आदर्श की स्थापना हुई थी, उसे समाजगत व्यावहारिक रूप देकर, अब उसके प्रति 'जीवन सगिनी' के रूप मे सम की भावना प्रतिष्ठित हुई—

'जीवन सगिनी है, जीवन धन
उसका भी सम ही है जीवन
हृदय-द्वय के सत्य मिलन मे
मानव नित विचरो हे !
अबला मुक्त करो हे ।

(महावीर सिंह : मुक्ति गीत, चांद १९४३, पृष्ठ ७८)

इस जीवन सगिनी को वह युग की प्रतिहिंसा के रूप मे देखना चाह कर, अपने साथ पथ की बाधाओ के मध्य से निकाल ले चलने का आकाक्षी है । आज की नारी प्रासादो के विलास वैभव से निकल कर सघर्षमय जीवन के राजमार्ग मे प्रवेश करती है—

'महलो के वैभव मे अब तक तुम छवि की छाया सी भूली,
रागो मे स्वर बन लहराईं, निशि मे शेफाली सी फूली,
कितनी अतृप्त परवशता थी, तुम चीर जिसे बाहर आईं,
कितनी ऊँची दीवारें थी, तुम छोड जिन्हे पीछे आईं,
आओ, युग की प्रतिहिंसा बन कर, मेरे साथ चली आओ ।
तुम मेरे साथ चली आओ ।'

(अचल : वर्षान्त के बादल, पृष्ठ ६५)

सघर्ष के इस प्रहर मे कवि को उस सगिनी की अपेक्षा है, जिसके पग दृढ़ता से धरातल पर जमे हों। आकाश-विचरणी प्रेयसी आज उसके लिए कोई महत्व की वस्तु नही रह जाती—

चन्द्र लोक निवासिनी ! नभ की परी।
गहन अन्तर से तुम्हारा योग ही क्या ?

... ...

तुम्हारा दान बिल्कुल व्यर्थ है
लौट जाओ—
मुझे तरु की शीतल छाह मे शान्ति पाने दो।'
(भारत भूषण अग्रवाल . ओ अप्रस्तुत मन, लौट जाओ चादनी की रात, पृष्ठ ४५)

इस काल के साहित्यकार का ध्यान उन रूढिगत परम्पराओं की ओर भी आकृष्ट हुआ है जो इस समता और विकास की भावना को सामाजिक जीवन के क्षेत्र में पनपने का अवसर नही दे रही है। नारी की वस्तु स्थिति को,

कि—'योनि मात्र रह गई नारी
निज आत्मा कर अर्पण।' (पन्त . युगवाणी)

वह अधिकार दिलाने के निमित्त चिल्ला-चिल्ला कर कहता है—

'योनि नही है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,'
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।'
(पन्त : ग्राम्या, पृष्ठ ८५)

समता के इस भाव के साथ-साथ नारी के छायावादी पूज्य, प्रेरक एव मुक्ति रूप आदर्श की परम्परा भी इस काल मे बनी रही—

नारी, तुम हो अधखुल बन्धन
नारी, तुम हो मुक्ति चिरतन
(शिव विलास सिंह नारी, सरस्वती ४७ पृष्ठ २५५)

वह पुरुष को मौन ममता का अभय दान दिए है, और उसकी स्मृति का मगल कवच पुरुष के लिए कल्याण का स्वरूप लेकर आता है—

है तुम्हारी याद का मंगल कवच कल्याण मेरा
दूर कर देता विषमता से, थके मन का अधेरा।

इतना ही नही, नारी के रूप सौन्दर्य मे उसके गुणो की सूक्ष्म सत् भावना का विस्तार भी हुआ है—

...'केवल लखते हो, केशों का कालापन घुघरालापन
जिस मे छिपी सती की ज्वाला, कभी करेगी जग पावन
नग्न भाल मे मन्न देखो, तुम बस चौडापन, चिकनापन
जिस मे लिखे रखे हैं, विधि ने पावनता के मत्र गहन।
(आनन्दि प्रसाद श्री वास्तव नारी, सरस्वती ३६ , पृष्ठ ४७०)

इस छायावादी भावना के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना की पृष्ठ-भूमि मे उसे एक नया स्वरूप भी प्राप्त हुआ हैं। वह सम्मानीय एव श्रद्धेय ही नही, किसलय सी कोमल ही नही, ज्वालामयी शक्ति-रूप भी है—

'यदि विजयी होकर लौटू मैं तो तुम मेरी जयमाला हो,
यदि कुछ अनर्थ हो, तो न सजल होना, नारी हो, ज्वाला हो।'
(चन्द्र प्रकाश शर्मा . सैनिक का पत्र, सरस्वती, १६४०, पृष्ठ ५०१)

इस काल की नारी भावना को विशद क्षेत्र प्राप्त हुआ है। नारी के प्रेयसी, मुग्धकारी रूप पर ही कवि नही ठहर जाता, वह इससे आगे भी कुछ देखना चाहता है—

'विशद स्त्रीत्व का ही मैं मन मे करता हूँ नित पूजन
जब आभा देही नारी आल्हाद प्रेम कर अर्पण
मधुर मानवी की महिमा से भू को करती पावन।
(पन्त : ग्राम्या, पृष्ठ ८१)

इसी विशद स्त्रीत्व के आदर्श स्थापन के लिए वह उसे विभिन्न रूपो मे देखता है—

'मा, भगिनी है, बन्धु मित्र है
सबसे सुन्दर बडा फूल है, हृदय हार के लिए।'
(चन्द्र प्रकाश वर्मा · नारी, चाद १६४४, पृष्ठ १६६)

नव्य-काल की नारी विषयक नवीन-आदर्श-भावना को लेकर सबसे अधिक महत्व पूर्ण वस्तु है—नारी के स्नेह की आर्थिक भाव-भूमि पर प्रतिष्ठा तथा उसकी भावनाओं का मनोविश्लेषण विज्ञान के साथ सामजस्य। इस युग मे इस मान्यता को विचार-क्षेत्र प्रदान किया गया कि यदि 'स्त्री भी वास्तविक समानता का दावा करती

हैं, तो उसे मानसिक स्वतन्त्रता पहले अर्जित करनी होगी[१],' और मानसिक स्वतन्त्रता का सम्बन्ध आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ स्वाभाविक रूप से सलग्न है। इस विचार धारा के अनुसार नारिया सोचती है—

'पति तो सभी को मिल जाते हैं, पर धन वैभव, ड्राइंग रूम और मोटर का क्या होगा[२]।

आज का लेखक स्त्री पुरुष के सम्बन्ध को शाश्वत नैसर्गिक और स्वाभाविक न मान कर, उसे आर्थिक व्यवस्था और परिस्थितियो की पीठिका मे ही देखता और प्रस्तुत करता है—

'यदि यह लड़की अत्यन्त कष्ट मे न होती और धन सिंह की सहायता इसकी असहाय अवस्था मे एकमात्र अवलम्बन न होती, तो क्या यह उससे प्रेम करती ? धनसिंह इसके जीवन का भौतिक अवलम्ब है।'

(यशपाल : मनुष्य के रूप, पृष्ठ ९७)

आर्थिक सघर्ष के इस युग के साहित्यकार रूप और रोटी को अलग-अलग देख पाने मे असमर्थ है। नारी का स्नेह और सौन्दर्य अर्थाभाव मे शून्य एवं निस्सार स्थिति की सृष्टि करता है—

'तू सुधा का स्रोत सखि ! पर आज तेरा चाद मुखड़ा
ललचता है देख रोटी का घिनौना एक टुकडा।'

(केसरी : भिखारिन, विशाल भारत, ३९, पृष्ठ ५४७)

उपर्युक्त आर्थिक आदर्श के साथ-साथ यौन सम्बन्धी आदर्शों मे भी आमूल परिवर्तन हुआ है। अभिजातीय शिक्षित वर्ग की प्रबुद्ध नारी इससे अधिक प्रभावित दिखाई पडती है। अब पुरुष के साथ यौन-सम्बन्ध मे उतना अनौचित्य नही समझा गया, जितना पिछले युगो मे समझा जाता था। पिछले युगो की यह मान्यता कि सारा धर्म सस्कृति, सम्मान और पवित्रता नारी के 'सैक्स' मे स्थित है, अब परिवर्तित होकर मानव स्वभाव की एक सामान्य, शाश्वत इच्छा के रूप मे प्रकट हुई। जैनेन्द्र की सुखदा[३], अज्ञेय की रेखा[४], यशपाल की उत्तमी[५] तथा भगवती चरण वर्मा की शशिकला[६] सभी न्यूनाधिक रूप से एक से अधिक पुरुषो से सम्बन्धित हैं। फिर

१—मार्कण्डेय : पान-फूल—'कहानी के लिए नारी पात्र चाहिए,' पृष्ठ १३४।
२—मार्कण्डेय : लक्ष्मी के विचार, पृष्ठ १४१।
३—'सुखदा' (उपन्यास) में सुखदा का चरित्र।
४—'नदी के द्वीप' (उपन्यास) की नायिका।
५—उत्तमी की मा (कहानी) की पात्रा।
६—प्रेजेन्ट्स (कहानी) की नायिका।

भी लेखक की दृष्टि मे उनमे से कोई भी—दुराचारिणी नही हैं। किन्तु इतना आगे बढते हुए भी भारतीय सस्कृति की रक्षा की गई है। नारी को अपने इस कर्म पर कभी भी गर्व नही होता। उसकी यौन सम्बन्धी कुठाएँ एक अजीब सी परिस्थिति मे फस कर, अन्तंसघर्ष करती हुई जैसे थक कर टूट जाती हैं। धर्म वीर भारती की सुधी[1] की विवशता, उसके आसू और बारम्बार चन्दर के चरणो का चुम्बन, उसकी कुंठाओ के आवेग और घुटन के मध्य उसकी पराजय ही लक्षित करते हैं[2]।

सुधार-भावना

नव्य-काल तक आते-आते महिला वर्ग मे शिक्षा का प्रचुर प्रचार हो चुका है। नागरी जीवन मे बाल-विवाह भी पहले की अपेक्षा कम हो गए हैं। विधवा-विवाह एव अतर्जातीय विवाह भी होने लगे हैं। परन्तु फिर भी रूढियो के प्रति मोह पूर्णतया नष्ट नही हुआ है। नारी द्वारा रूढ़ियों के विनाश का प्रयत्न सामाजिक स्थिति मे अब भी व्यवधान उत्पन्न करता है। उसका इस प्रकार प्रगति के पथ पर अग्रसर होना परम्पराओ के दास समाज को चौका देता है।

'इस अपने देश मे कोई भी स्त्री यदि अधविश्वासो और बेहूदी रूढ़ियो को छोड कर आगे बढेगी, तो लोग उस पर सदेह करेंगे। हम लोगों का नैतिक जीवन बहुत नीचे पहुँच गया है।' (लक्ष्मीनारायण मिश्र मुक्ति का रहस्य, पृष्ठ ६९)

इस काल मे अप्रत्यक्ष रूप से सुधार योजनाओ के लिए विचार-क्षेत्र प्रदान किया गया है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'अलग-अलग रास्ते' मे ताराचन्द के रूप में उस कट्टरपन्थी पुरुष-वर्ग को उपस्थित किया है जो अब भी नारी को शिक्षित करने विश्वास नही करता। मदन और राज अनमेल विवाह के अभिशापों को जीवन भर ढोते फिरते है। दोनो की भावनाओ मे कोई सामजस्य नही हो पाता।

विधवा को भले ही पुनर्विवाह की स्वीकृति मिल गई हो लेकिन सम्मानित जीवन की स्थिति तो कोसों दूर है। समाज द्वारा अपामन और प्रताडना के बीच वह उसके व्यवहार के लिए उसे सचेत करती है—

'मुझ को क्या ? दिन काट चलूंगी ओ मेरे निष्ठुर समाज,
किन्तु किसी दिन टूट पड़ेगी तेर सिर पर प्रलय गाज।'
(राम दुलारे शुक्ल : विधवा की आह, चाद १९४१, पृष्ठ १८

पुनर्विवाह को आज साहित्यकार नारी का सम्मान कहता है—

'यह नारी का सम्मान हुआ, मत कहो इसे विधवा विवाह।'
(गौबर्धनदास त्रिपाठी : विधवा-विवाह के प्रति, चाद १९४१ पृष्ठ १००

१—गुनाहो के देवता' की नायिका।
२—(अर्थ-संघर्ष और अन्तंसंघर्ष की इस भावना को 'विभिन्न वर्गों मे नारी' के अन्तर्गत अधिक विस्तार से देखा गया है।)

बाधित वैधव्य की प्रतिष्ठा करने वाले पुरातन पन्थी वर्ग पर वह व्यग्य करने से भी नही चूकता—

'......स्त्री और चीज है, उसको यह स्वतन्त्रता मिल ही कैसे सकती है, क्योकि उसका जीवन दो कौडी का होता है। पुरुष उसको खरीद जो लेता है। एक पति का सुख प्राप्त कर लेने के बाद वह दाम्पत्य सुख को पुन प्राप्त करने की अधिकारिणी रह ही कहाँ जाती है। ऐसा होने पर वह दूषित न हो जाएगी ?'

(भगवती प्रसाद वाजपेयी : दो बहनें, पृष्ठ २५)

वेश्याओ की स्थिति आज भी दयनीय है लेकिन उन्हे इस स्थिति मे पहुँचाने का श्रेय पुरुष को ही है।

(अ) 'नर काम-काँटो से घिरी
नर पशु पिपासा से सिंची
ये रूप की फुलवारिया
ये नारिया, ये नारिया ॥

(कन्हैयालाल दीक्षित वेशयाएँ, माधुरी १९४०, पृष्ठ ३१८)

(ब) इस व्यवसाय की जिम्मेदारी हम पर नही, तुम्हारे समाज पर है। समाज और धर्म के उन ठेकेदारो पर है, जो पुरुष के पाप पर तो उगली तक नही उठाते पर नारी की छोटी सी भूल को क्षमा नही कर सकते।'

(विनोद रस्तोगी रुपया, रूप और रोटी, पृष्ठ १९१, लिली का कथन)

वेश्या जीवन की इस विषमता को कवि ने असीम करुणा के भाव से देखा है—

'एक ही दिन मे जहाँ रूप की अपरूप कली
ब्याह भी करती है, और बेवा भी हो जाती है।'

(नीरज, : नीरज की पाती, (४) पृष्ठ १०)

जन सख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि से चिंतित होकर इस काल मे गर्भ निवारण एव परिवार नियोजन का भी समर्थन किया गया है—

'गर्भ निवारण प्राकृतिक आवश्यकता है। प्रकृति मे यह काम दूसरे तरीके से चलता है। सापिनी एक हज़ार अण्डे देती है। परन्तु फिर एक हज़ार बच्चे निकलते हैं तो स्वयं ही उन्हे पूछ से घेर, खाने लगती है...यही हाल मछलियो और दूसरे जीवो का है...गर्भ निवारण भी, मनुष्यो को उचित सख्या मे रख कर, उनके जीवन को सुखी बनाने का उपाय है।' (यशपाल · दादा कामरेड, पृष्ठ १३१)

इस प्रकार से सुधार भावनाओ को अभिव्यक्ति प्रदान करके उन्हे समाज मे सस्थापित करने की चेष्टा (भले ही उसका स्वरूप-परिवर्तन हो गया हो) की गई।

परन्तु इस काल के भारतीय जीवन मे राष्ट्रीय भावनाओ और राजनैतिक विचारो का ही अधिक प्राबल्य रहा है। अत. समाज सुधार की भावना कुछ मध्यम सी दिखाई पडती है। दूसरे, अब पहिले की अपेक्षा नारी की सामाजिक स्थिति मे, चाहे वह सिद्धान्त रूप में ही क्यो न हो, काफी विकास हो गया था। अत सुधारो के प्रत्यक्ष प्रचार के लिए प्रत्यक्ष रूप से अपेक्षाकृत कम कहा गया।

विभिन्न रूपों में नारी

नव्य-काल मे नारी भावना को जिन विभिन्न रूपो के अन्तर्गत अभिव्यक्ति मिली उनमे उनके सत् स्वरूप का माधुर्यपूर्ण, प्रेरक एव शक्ति रूप तथा असत् स्वरूप के अन्तर्गत मोहमयी, असयमी तथा वासना-जन्य-भावना ही अधिक अभिव्यक्त हो पाई है। साथ ही कवि-जीवन की पूर्व—युगीन असफलता की पीडा ने उसके सौन्दर्य मे जहाँ अपने को भूलने की चेष्टा की है वहाँ वह केवल पुरुष की वासना का क्रीडा-क्षेत्र बन जाती है, और उपभोग्य के स्तर से अधिक ऊँची नही उठ पाती। इस काल मे इन्ही तीन विशिष्ठ धाराओ मे नारी भावना को स्वरूप प्रदान किया गया है।

नारी मे छायावादी भाव धारा से अनुप्राणित अनुभूतियों मे कवि किरण के नूपुरो सी मधुरता देखता है।

तुम तो दिया की जोत सी
तुम तो झमकते झूमरो सी
अप्सरा के रूप सी
तुम तो किरण के नूपुरो सी

(अचल . लाल चूनर, पृष्ठ २३)

विषमता के विक्षुब्ध वातावरण मे वह जननी और देवी के स्वरूप मे सौख्य और अपनत्व का महिमा-मण्डन करती है[१]। उसके सत् रूप से प्रभावित मन की भावनाएँ उसके चरणो की दिव्य गगाधार मे मज्जित हो जाना चाहती है—

मुड चली हैं चरण वन्दन में, हृदय की साधनाएँ
o o o
शरण दो अपने चरण की, दिव्य गगाधार मे प्रिय[२]

१—सोहन लाल द्विवेदी : चित्रा, पृष्ठ १०-११, (ग्राम-वधू)।
२—वही, पृष्ठ २५, (आगमन)।

मधुरता के इस वन्दनीय सरूप सौन्दर्य मे कवि निर्मल तेज का भी वर्णन करता है—

प्राण, यह नव रूप,
पावक सा अखण्ड, सतेज यह निर्मल तुम्हारा रूप
नमित मै—
जैसे कि मेरे शीश पर छाई प्रकाशित पलो मे
नभ की सलोनी धूप ।'

(भारत भूषण अग्रवाल ओ अप्रस्तुत मन, पृष्ठ ५)

उसके मन की पवित्रता 'गगा की मुक्त धारा से कम नही है[1] ।' उसमे एक निष्ठा[2] है जो उसके उज्जवल पक्ष को और भी उज्जवल बना देती है । वह वस्तु-वादिता के इस नैतिक क्षेत्र से दूर प्रेम और दया की देवी है—

'वस्तु वादिता की दुनिया क्या मूल्य तुम्हारा आक सकेगी ।
तुम हो प्रेम दया की देवी ! तुम न बाधा आक सकोगी ।'

(चन्द्रप्रकाश वर्मा सैनिक का पत्र, सरस्वती १९४०, पृष्ठ ५०१)

इस देवत्व भाव के साथ-साथ वह पुरुष के जीवन मे 'पावन अर्चना के लिये अलौकिक जाज्वल्यमान आरती थाल[3]' की रश्मि-मालाओ को साथ लिये आती है, जिनमे उसके समर्पण की भावना केन्द्रीभूत हो गई है । पुरुष के अधियाले जीवन के लिये वह प्रेरणा का स्रोत भी है ।

'रात के कज्जल तिमिर मे झिलमिलाती
प्रात की कचन किरन सी कौन तुम हो ?'

(नीरज प्राण-गीत पृष्ठ २५)

इसी प्रेरणा के रूप मे कवि उसको देखता और सम्मान देना चाहता है—

'अधियारा जिससे शरमाए
उजियारा जिसको ललचाए
ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये ।'

(नीरज दर्द दिया है, पृष्ठ ४)

१—मार्कण्डेय . पान-फूल (क० स०) की 'वासवी की माँ' मे सीता का कथन, पृष्ठ २४ ।
२—वही, पृष्ठ ३२ ।
३—भगवती प्रसाद वाजपेयी : दो बहनें (उपन्यास) में आशा का चरित्र ।

नारी की पवित्रता और उसका माधुर्य' प्रात का तीर्थ और अधेरे देश मे पूनम का दर्पन[1] बन जाता है जहाँ से वह सौदर्य के साथ-साथ प्रेरणा का दान भी करने लगती है। उसकी मृदुलता मे शक्ति का सशक्त स्रोत भी प्रभावित होता है—

'तुम मजुल होकर जग मे, ले शक्ति अनोखी आई
बन कर दुर्गा काली सी, तूने है छटा दिखाई[2]।'

उसमे जीवन की विषम परिस्थितियो मे आपत्तियो से डटकर सामना करने की सामर्थ है[3]। नारी के इस शक्ति रूप का विकास 'पार्वती' मे भली भाँति हुआ है जहाँ आरम्भ से अन्त तक नारी शक्ति-स्वरूपा दुर्गा के रूप मे ही वदित की गई है। 'उसकी शक्ति को शिव के शीश पर सदा आसीन माना गया है। इतना ही नही, बिना शक्ति के 'शिव' रक्षा मे स्वय शिव भी असमर्थ है। वह मानव संस्कृति की निकष निर्मला तथा मगल माता के साथ-साथ सस्कृति की शोभा शक्ति भी है।' इस प्रकार इस सास्कृतिक महाकाव्य मे—

'युग-युग की आतकित और लाछित नारी
महिमा मडित हुई, प्राप्त कर गरिमा सारी[4]।'

नारी मे वह असीम शक्ति एव आस्था विद्यमान है जिसके बल पर वह पुरुष को पतन के पाताल से ऊपर उठा लेने की सामर्थ रखती है—

'मैं उन्हे पतन के पाताल से ऊपर उठा लाऊँगी। उन्हे ससार का पुण्य और पाप दोनो देखने दो। आग मे जल कर उनके खोट समाप्त हो जाने दो।'

(हरिकृष्ण प्रेमी : 'छाया' मे 'छाया का कथन, पृष्ठ ६०)

इस काल मे नारी के इस महान् स्वरूप की उद्भावना के साथ-साथ असत् अकल्याणकारी रूप को भी कही-कही व्यजित किया गया है। नारी मे यदि सत् वृतियों का असीमित भण्डार है तो नारकीय वासनाओ की स्थिति भी कम नही है।

'यदि कही नरक है इस भू पर, तो वह भी नारी के अन्दर,
वासना वर्त मे डाल प्रखर
वह अध गर्त मे चिर दुस्तार
नर को ढकेल देती सत्वर।' (पन्त ग्राम्या, पृष्ठ ८२)

१—नीरज . 'दर्द दिया है', गीत क्रमाक ३, पृष्ठ ७।
२—गोवर्द्धन दास त्रिपाठी : 'नारी' चांद १९४१, पृष्ठ २३१।
३—वृन्दावन लाल वर्मा देखिए 'मृगनयनी' मे निन्नी का चरित्र।
४—डा० रामानन्द तिवारी (पार्वती) महाकाव्य)।

वह वास्तव मे पुरुष की दुर्बलता है। एक तत्व-हीन मृगतृष्णा है—

'बहुत लिख चुका कामिनी के कटाक्ष सैनो पर
वहुत चुका हूँ रीझ किसी के सुरा भरे नैनो पर
पर इस मृग तृष्णा मे मुझ को तत्व नही मिल पाया
बहुत उड चुका, कोमल कलित कल्पना के डैनो पर।'

(सुरेन्द्र मोहन मिश्र कवि तो युग का निर्माता है, सरस्वती १६५२, पृष्ठ ३८०)

इतना ही नही वह उसे स्थूल प्रणय की खिलाडिन के रूप मे देखना भी नही भूलता—

'किन्तु नारी, सिर्फ नारी
हो, तुम्हे मैं जानता हूँ,
तुम प्रणय की हो खिलाडिन
मैं तुम्हे पहचानता हूँ।'

(अचल . लाल चूनर, पृष्ठ २४)

वह प्रणय के इस खेल मे इतनी भावुक और मासल सुख मे इतनी रुचिवान् है कि उसकी प्रकृति उस खालिस घी की सी हो जाती है कि जो पुरुष के सामीप्य की आच पाते ही पिघलने से नही बचाई जा सकती[1]। बर्नार्ड शा ने नारी की उस मकडी से तुलना की है जो प्रारम्भिक अवस्था मे अपने खाद्य (मक्खी) की प्रतीक्षा करती है किन्तु एक बार पकड मे आ जाने पर यदि मक्खी भागने का प्रयत्न करती है तो अपनी निष्क्रियता को त्याग कर उसे जाले मे लपेट कर असहाय कर देती है[2]। इसी भावना से अनुप्राणित साहित्यकार ने नारी को एक खूबसूरत बिल्ली माना है—' 'एक खूबसूरत बिल्ली जो आदमी को चूहे की तरह पकड लेती है। दुनिया को देखो शंकर देव।'[3]

परन्तु इतना होते हुए भी साहित्यकार ने नारी भावना के असत् रूप को उघाड़ कर ही नही छोड दिया है। सास्कृतिक आदर्शो की भी उसे रक्षा करनी है। अत: नारी के असत् रूप का पर्यवसान सत्रूप मे हुआ है और वह भारतीय नारी की स्वाभाविक महानता है। वैसे नारी अपने उत्थान और पतन दोनो की पराकाष्ठा का स्पर्श करती है, जब वह ऊँची उठती है तो बहुत ऊँची, कि सारा विश्व उससे बहुत नीचे रह जाता है, और जब गिरती हैं, तो बहुत नीचे, इतना कि कोई थाह भी न ले सके—

१—यशपाल : 'उत्तमी की मा', मे उत्तमी का प्रारम्भिक चरित्र।
२—बर्नार्ड शा—प्रिफेसेज, ७, पृष्ठ १५६।
३—हरिकृष्ण प्रेमी : छाया (नाटक) मे रजनी कान्त का कथन, पृष्ठ ४३।

'गिरी, तो आ गिरी पाताल के अधेरों मे
उठी तो छोर सितारों के छू लिये तूने ।'

(अश्क कैद और उड़ान के आरम्भ मे)

छायावादी जीवन की अतृप्त अभिलाषाओ ने जिस निराशा और ललक की उद्भावना की, उसमे कवि की अनुभूतिया प्रेयसी के स्थूल सौन्दर्य में ही सब कुछ प्राप्त करने की आशा लेकर केन्द्रित हो गई। पलायनवादी भावना नव्य-काल मे नरेन्द्र, अचल, बच्चन और आरसी प्रसाद सिंह के काव्य में तेजी के साथ मुखर हुई हैं। अपनी अतृप्त वासनाओ का पूर्ति-क्षेत्र रमणी को मान, जैसे उसे पा लेने, समेट लेने और उसमे खो जाने की चाह बलवती होकर इनके काव्य मे मुखरित हुई तो नारी का एक दूसरा रूप—रीतिकाल जैसा स्थूल रूप—प्रकारान्तर से फिर काव्य रचना का विषय बना। परन्तु नव्य-काल की स्थूलता को रीति-कालीन स्थूलता से माधुर्य एव सम्मान भाव को लेकर पृथक किया जा सकता है। इस काल के कवि मे अपनी प्रेयसी के प्रति पूर्ण सम्मान भावना, उसके प्रति समर्पित हो जाने की भावना विद्यमान है, जब कि रीति-कालीन मे जैसे नायिका का जन्म ही प्रणय का खेल खेलने के लिये हुआ है। वह स्वय आत्म-समर्पिता है। नायक की भोग्या है। नायक उस पर कभी समर्पित नही होता।

कवि चादनी की निर्मल शून्यता के वातावरण मे अपनी प्रेयसी की स्मृति करता हुआ खिली हुई निशा का जैसे कोई अर्थ ही नही मानता। चाद उसका उपहास करता हुआ उसकी वेदना को उभार देता है—

'आज ऐसी चादनी मे, प्राण यदि तुम साथ होती
जड धरा पर शशि कलाएँ, खिल सहज साकार होती।
आह, होती साथ यदि तुम, चाद यो सर पर न चढता
शून्य की सोलहो कलाएँ, दासिया बन पास होती।'

(नरेन्द्र चादनी मे, सरस्वती १९३८, पृष्ठ १९३)

वह नारी के उभार पाकर विकसते हुए रूप को असमर्थ आसक्ति ने देखता जान पड़ता है—

'षोडषी तुम हो गई अब पूर्ण हे सुकुमारि।
हो चला परिपूर्ण जीवन-वाहिनी का वारि
उमड़ श्रावण की नदी सा निकल, बह, निर्बन्ध
सखि ! तुम्हारे विकल यौवन का समागम अन्ध
लालसा रस से मदालस आज भूतल नारि।'

(आरसी प्रसाद सिंह षोडषी, माधुरी १९३९ पृष्ठ ७०५)

रूप के इस छरहरेपन को अपनी बाहुओ मे समेट लेने की आकाक्षा भी इस निराश, आसक्तिपूर्ण, बुभुक्षित कवि मे कम नही है—

'तुम दुबली पतली, दीपक की लौ सी सुन्दर
मैं अन्धकार
मैं दुर्निवार
मैं तुम्हे समेटे हूँ सौ-सौ बाहो मे, मेरी ज्योति प्रखर।'

(नरेन्द्र रूप शिखा, सरस्वती १९३९, पृष्ठ ५०५)

रूप की इस आसक्ति के साथ-साथ अनुकूल शान्त वातावरण उसकी इस वासना को उभार देता है और निशि के शान्त प्रहरो मे जैसे नारी ही उसकी मात्र भोग्य वस्तु बन जाती है—

'आई प्रिये रात
अब तो तजो मान
बहती मलय वात
पहले बुलाया निकट, अब किया दूर
कोमल हृदय पर अदय यह पदाघात
आई प्रिये रात।'

(सर्वदानन्द वर्मा आई प्रिये रात, सरस्वती १९४०, पृष्ठ १२३)

या,

भय न कर मुझ से, तनिक तू और आजा पास मेरे
तू खिसकती जा रही है
दूर हटती आ रही है
आग सी जो लपलपाती
तू दहकती जा रही है
आज आया चाहता, क्या बाग में मधुमास मेरे।'

(आरसी प्रसाद सिंह . सम्बोधन, सरस्वती १९४५, पृष्ठ ४०)

और उन्माद के प्रहरो मे वह सौन्दर्य के उपभोग मात्र को पाप मानने के लिये तैयार नही है— (धर्मवीर भारती : गुनाह का गीत)

रूप की यह ललक और प्रणयाकाक्षा अतीत की सुधियो के सग्रहीकरण का उपकरण बनती है—

'आज पिपासा के तारो पर छेड वही तृष्णा के गीत
आज निराशा की मीड़ो पर जाग उठे बरबाद अतीत
अपनी बेसुध मादकता मे कह दे सब जी की बातें
फिर से भूल उठें आखो मे सपने बन रीती रातें।'

(अचल : वर्षान्त के बादल, पृष्ठ २७)

विदा के क्षणों की भी रूपासक्ति उसमें ललक का उत्तेजन भरती है। संगीत की लहरी मे वह विदा का दुख भूल जाना चाहता है।

'आज विदा की बेला मे, जी भर आखो को भाए जा
कौन कहेगा बार-बार, तू गाती चल, गाए जा (वही पृष्ठ २८)

अचल की ही भाँति बच्चन के कवि मे भी निराशा, पलायनवाद और आसक्ति के विभिन्न चित्र देखने को मिलते है। देह के स्पर्श सुख पर उसकी लालायित दृष्टि जैसे टिकी रह कर सहन-शक्ति से शून्य हो गई है। और हार कर उसे अपने मन की वासना को प्रकट करना ही पड़ता है—

'पास आओ, चन्द्रमा के होठ चूमूं
कुतलो के बादलो के साथ घूमू
आज तुम पाताल को आकाश कर दो।'
(मिलन यामिनी, पृष्ठ २८)

अथवा,

अब तुम्हे डर लाज किस से लग रही है।
आख केवल प्यार की अब जग रही है
मैं मनाना जानता हूँ मान कर लो।'
(मिलन यामिनी, पृष्ठ ३३)

उसके लिए समर्पण का क्षण ही जैसे चरम सुखानुभूति का क्षण है, वहाँ सभी कुछ है—

...तृप्ति क्या होगी अधर के रसकणो से
खीच लो तुम प्राण ही इन चुम्बनों से
प्यार के क्षण मे मरण भी तो मधुर है (वही, पृष्ठ ४३)

उपर्युक्त रोमान्सवादी भावना, वास्तव मे कवि के दैन्य, उसकी कारुणिक अवस्था एव उसके अभाव ग्रस्त जीवन का ही रहस्योद्घाटन करती है। उसकी उच्छृंखलता में भी एक निरीह भावना विद्यमान है। उसके अपने आपको भूलने के प्रयत्न मे भी अपनी स्थिति के प्रति एक भीत चेतना उपस्थित है, जिसको वह यौवन, सौंदर्य एव वासना के झीने आंचलो मे छिपा सकने मे असमर्थ है। वह नारी को ठोस स्थूल शृगार की भाव-भूमि पर उतार लाया है, लेकिन वहाँ भी वह उसकी मनुहार करना, प्रणय के लिये उसकी सम्मति प्राप्त करना एवं उसे सम्मान देना नहीं भूलता। यही कवि की दयनीयता और भौतिक मासल भाव-भूमि पर भी नारी भावना की महत्ता का—प्रतिष्ठा का—पुष्ट प्रमाण है और इसी के आलोक मे नव्य-काल की प्रेयसी को रीति-कालीन नायिका से पृथक भी किया जा सकता है।

प्रतीकात्मक नारी-भावना

नव्य-काल की प्रतीकात्मक नारी-भावना सामान्य रूप से गत युग की अवशिष्ट पूंजी ही है। प्रतीको के माध्यम से अभावग्रस्त एव वासना कुठित कवि ने अपनी शृगार भावना को ही अधिक प्रकट किया है—

'गूँथी है जुगनुओ से मोरपखी किशमिशी चोली
दिए गुलनार माथे पर शफक की रेशमी रोली।'

(अचल : वर्षान्त के बादल, पृष्ठ ६)

अथवा,

'सृष्टि के प्रारम्भ मे मैंने
उषा के गाल चूमे।' (बच्चन . सतरगिनी)

उसकी वासना का उद्रेक इतना प्रबल है कि वह कालिदास की कला के लिये भी कुमारी बालिका के आलिंगन का रूपक प्रस्तुत करता है—

'किसी कुमारी के आलिगन सी कवि कला तुम्हारी
कर देती सचार तड़िता का ओ' सुरलोक बिहारी।'

(वर्षान्त के बादल, पृष्ठ ४४)

अपनी शृगारमयता को मुखरित करने के साथ-साथ कवि ने प्रतीको के माध्यम से नारी का सत्-रूप भी देखा है। पत की 'भारतमाता' का रूप द्रष्टव्य है—

'भारत माता,
ग्राम वासिनी।
चिंतित, भृकुटी, क्षितिज तिमिरांकित
नमित नयन नभ, वाष्पाच्छादित्
आनन श्री छाया- शशि उपमित
ज्ञान मूढ
गीता प्रकाशिनी।'

नव्य-काल का साहित्य यथार्थ के बहुत निकट है, अत छायावादी प्रवृतियो को इस युग में अधिक प्रोत्साहन प्राप्त नही हो सका। इस काल में तिरोहित होती हुई प्रतीकात्मक नारी-भावना भी छायावाद की ही देन थी, यह हम पिछले अध्याय मे देख आए हैं।

विभिन्न सम्बन्धों में नारी

विभिन्न सम्बन्धो के अन्तर्गत नारी-भावना प्रेयसी, पत्नी और माता के रूपमें अभिव्यक्त हुई है। नव्य-काल मे प्रेयसी के दो स्वरूप मिलते है। एक तो भाव जगत का,

जिसकी कल्पना कवियो द्वारा हुई है और दूसरा समाजगत, जिसे उपन्यासो और कहानियो मे चित्रित किया गया है। कुंठाओ का मारा कवि प्रेयसी को अपरिहार्य प्रेम का आलम्बन बनाता है[1]। प्रेयसी वह आकर्षण है कि उसके धागे मे बधा हुआ कवि उसके पास आसक्ति की पूर्णता का स्वप्न सजोये चला आता है—

'खीचती तुम कौन ऐसे बन्धनो से
जो कि रुक सकता नही मैं।'

(बच्चन मिलन यामिनी)

वह गीत की मधुरता को लिए उस पर समर्पित हो जाना चाहता है—

'एक यही अरमान गीत बन, प्रिय, तुम को अर्पित हो जाऊँ।'

(मिलन यामिनी, प्रथम भाग, गीत क्रमाक ६)

भाव जगत मे ही नारी का एक दूसरा प्रेयसी रूप भी है, जहाँ वह प्रिय की प्राप्ति के लिये कठोर साधना कर सकती है। उसकी सुकोमल अवयवता मे अपरिमित शक्ति निहित है। साधना शक्तिमयी का यह रूप 'पार्वती' मे उज्ज्वलतम आभा को लिये आता है—

'ग्रीष्म मे प्रज्वलित करके अग्नि ज्वाला धार
बैठ उनके मध्य, मुख पर अनमिल स्थित धार
विजित कर आदित्य की उज्जवल प्रभा उद्दाम
देखती अग्निमेष दृग से सूर्य को अविराम।'

समाजगत परिस्थितियो में प्रेयसी का जो रूप मुखरित हुआ है उसका सम्बन्ध विशेष रूप से अभिजातीय वर्ग की सुशिक्षित प्रबुद्ध मस्तिष्क महिलाओ से है जो सहचरी है, अनुचरी नही ; जिस पर पाश्चात्य प्रभाव पूर्णतया लक्षित है, जिसका स्नेह आर्थिक भाव-भूमि पर अकुरित, पल्लवित एव प्रफुल्लित होता है तथा जिसके लिये प्रिय की अपेक्षा धन ही अधिक महत्वपूर्ण है[2]। और इसीलिये उसके लिये यौन-सम्बन्धी पवित्रता अधिक महत्व नही रखती।

पत्नीत्व का आदर्श इस काल में भी उच्च रहा है। वह मनुष्य की शारीरिक क्षुधा पूर्ति का ही साधन नही, वरन् उससे अधिक उँची उठी हुई है—

'वेश्या देती है अपने आप को, और पाती है द्रव्य। पर पराश्रित कुलवधू अपने समर्पण के मूल्य पर दूसरे पुरुष को पाती है, किसी दूसरे पर भी अधिकार

१—देखिए, मिलन यामिनी (बच्चन) के मध्य भाग के गीत क्रमाक, ७, १०, १४, १६, २४, २५, और ३०।

२—देखिए (अ) अपने खिलौने, (भ० च० वर्मा) की सीमा।
(ब) मनुष्य के रूप (यशपाल) की मनोरमा।

पाती है। वेश्या का जीवन मोटी बत्ती और राल मिले तेल से पूर्ण दीपक की, प्रतिकूल परिस्थितियो मे, झुँझलाती लौ की भाँति, क्षणिक तीव्र प्रकाश कर शीघ्र ही समाप्त हो जाता है, कुलवधू का जीवन मध्यम प्रकाश से टिमटिमाते दीपक की भाँति है।

(यशपाल दिव्या, पृष्ठ १४०)

पति के लिये पत्नी अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने की क्षमता रखती है[१]। उसकी एक निष्ठा के सम्मुख समस्त सृष्टि का शिर नत है। पति के लिये वह अपने अभिभावको को छोडने का दुःख भी बाहर से रो कर ही प्रकट करती है, परन्तु अन्तमन मे वह प्रसन्न हो रही होती है। पन्त के हास्य मे वधू बनती हुई इस बालिका का चित्र देखिए—

'भीग रहा मीठे उमग से
दिल का कोना-कोना
भीतर-भीतर हसी देख लो
बाहर-बाहर रोना।'

परन्तु नारी का मातृ स्वरूप सर्वोत्कृष्ट है। उसके हृदय मे ममता का वह अगाध समुद्र आलोडित है, जो शैल शिलाओ को भी विगलित कर देता है, उनमे जीवन डाल देता है—

'मा ने बढ कर जैसे ही कण्ठ लगाया
हो उठी कटकित पुलक कर्ण की काया
सजीवन सी छू गई बीच कुछ तन मे
बह चला स्निग्ध प्रस्रवण कही से मन मे।'

(दिनकर : रश्मिरथी, पृष्ठ ६७)

स्नेह से सिक्त पूत धारा सदैव ही उसके आचल से बहती रहती है—

'भीगा-सा उसका अन्तस्तल
पग उसके कुछ चचल-चचल
आखो मे कोमल स्नेह, ज्योति, चेहरे पर मृदु उल्लास विमल
वह नारी है, वह मा है,

(विशाल भारत : १६४५, पृष्ठ २०६)

१—(अ) यशपाल : उत्तमी की माँ (क० स०) में 'करवा का व्रत' की लाजो।
(ब) अश्क : 'पापी' (एकाकी) मे छाया।
(स) अमृता प्रीतम . 'पिंजर' (उपन्यास) की पूरो।

मा की ममता और स्नेह से ऊपर उसकी त्याग भावना है। मा बनने से पूर्व उसे अपने सजाव श्रृंगार की चिन्ता रहती है परन्तु पुत्रमयी होने पर वह उसकी 'कमीज़ और शलवार' की ही चिन्ता करती है, अपने श्रृंगार के उपकरणो की नही"[1]। पुत्र वत्सला का समस्त श्रृंगार, धन ऐश्वर्य केवल उसकी कोख का लाल ही रह जाता है। जिस पर वह अपना सर्वस्व न्योछावर करके जैसे सब कुछ पाती चलती है।

पूर्वयुगीन असहाय कन्या को इस काल में जैसे एक क्षीणकाय विरोध करने का अवसर मिला है। अपने अभिभावको से वह अपने विवाह करने विषयक निर्णय पर प्रश्न करती है—

'मेरा ही विवाह होने वाला है इतना ज्ञात मुझे
किन्तु नही कुछ कहने का है स्वत्व कहो क्यो तात मुझे
झेल सकूँगी मैं यह पीडामय जीवन अब अधिक नही।
लेने को ये प्राण तुम्हे क्या मिला न कोई बधिक नही।'

(बलभद्र प्रसाद गुप्त : वृद्ध-विवाह, चाद १९४१, पृष्ठ ३७४)

शिक्षा के विकास ने निश्चय ही कन्या रूप का विकास किया है। आज वह उतनी निरीह, नि सहाय और अशक्त नही है, जितनी विकास-काल तक हम देख आए हैं। आज के प्रबुद्ध युग मे उसे भी अपनी स्थिति का ज्ञान हो चला है और वह अब दूसरों के निर्णय को मूक पशु की भाँति मानने को तैयार नही है।

विभिन्न वर्गों में नारी

नव्य-काल में विभिन्न वर्गों के अन्तर्गत नारी-भावना का अध्ययन करने मे एक विशेष प्रकार की कठिनाई होती है और वह है विभिन्न वर्गों की नारी को पृथक-पृथक उपवर्गों में विभाजित करने की समस्या। बौद्धिक जागृति के इस काल मे जब नारी ने शिक्षित होकर अपने 'स्व' की प्रतिष्ठा करनी चाही, और जब वह इस दिशा में अग्रसर हुई तो, कुछ दूर आगे बढ़कर उसे जैसे शंका हुई कि उसके द्वारा गृहीत पथ कहीं गलत तो नहीं है। उसके मस्तिष्क मे परस्पर विरोधी विचारों में संघर्ष हुआ है। उस में वह जितनी अधिक गहरी पैठती गई, उसे लगा कि वह उतनी ही अधिक उलझती जा रही है। उलझन विशेषतया कुलीन और मध्य-वर्गीय महिलाओं को लेकर ही है। निम्न वर्ग की महिलाएँ क्योंकि अशिक्षिता है, अत वे इस संघर्षमय भावना से स्वतन्त्र है, इस अन्तर्संघर्ष की भावना के मूल कारण हैं, पुरुष के समान सामाजिक जीवन एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने की लालसा, आत्म-निर्भर जीवन के आदर्श का स्वप्न और यौन-सम्बन्धी परवशता। कुलीन-वर्ग की नारी इन भावनाओ से अधिक प्रभावित और इसीलिए अधिक पीडित है।

१—उपेन्द्र नाथ अश्क : 'काले साहब' में संग्रहीत 'बगुले' की नज्जो।

आधुनिक पाश्चात्य सिद्धान्तो पर आधारित 'शिक्षा ने भारतीय महिला-वर्ग को पाश्चात्य महिला-वर्ग की स्वतन्त्र वैयक्तिकता एव आत्म-निर्भर जीवन व्यवस्था की दिशा में अधिक आकर्षित और प्रेरित किया है। इस भावना ने उसे अपने 'स्व' की प्रतिष्ठा के प्रति जागरूक किया है, और इसीलिए "वह व्यक्ति की सम्पति बनने मै विश्वास नही करती। एक स्त्री का एक आदमी से बध जाना उसकी गुलामी ही है[1]। और गुलामी किसी भी दशा मे श्रद्धेय या अनुकरणीय नही हो सकती। पुरुष यदि नारी के जीवन-विस्तार को अपने प्रेम और अधिकार की सीमित परिधि मे वाध लेना चाहे तो आज की प्रबुद्ध नारी उसे स्वीकार नही करती, वह उसका विरोध करती है। क्योकि उसे अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की रक्षा करनी है। पुरुषो की सकुचित मनोवृत्ति पर आघात करती हुई वह कह सकती हैं—,पुरुषो को सहने का अभ्यस्त होना चाहिए कि स्त्रियां भी अपना व्यक्तित्व रखती है। जो कोई उन्हे देख लेगा या छू लेगा, वे उसी की नही हो जाएँगी। जरा घर से बाहर भी निकलो। जरा और तरफ ध्यान दो। फिर केवल पुरुष के सदेह पर ही प्राण दे देने की इच्छा न रहेगी।' (यशपाल : दादा कामरेड, शैल का कथन, पृष्ठ १२०)

यह शिक्षिता नारी पति-पत्नी के अलग-अलग अस्तित्व पर विश्वास करती है[2]। उसके लिये सबसे विशेष वह स्वय है और उसके पश्चात् कुछ और। वह पुरुष के साथ-साथ चलने मे विश्वास करती है। उसका बौद्धिक ज्ञान राष्ट्रीय एव सामाजिक भावनाओं के विकास में भी उपयोगी होता है। दृष्टि-विस्तार के साथ-साथ उसका क्षेत्र भी विस्तीर्ण होता चलता है[3]।

अधिकार-भावनाओ के साथ-साथ सौन्दर्य प्रसाधन के लिए भी शिक्षित कुलीन-वर्गीय नारी पाश्चात्य महिला-वर्ग से ही प्रेरणा लेती है[4]। उसमे आत्म-प्रदर्शन की भावना भी विकसित होती है। एक बाह्य आडम्बर और प्रदर्शन-भाव उनकी प्रकृति मे जैसे पाश्चात्य प्रबुद्धता के साथ-साथ प्रवेश कर जाता है[5]। झूठी प्रतिष्ठा की भूख उन्हें अकुलाए रखती है[6]। गृहणी के सम्मानित रूप को वे धीरे-धीरे विस्मृत कर रही हैं[7]। और कोरी शिक्षा का अहम् भाव जैसे उनके उस भारतीय मर्यादित स्वरूप पर धूल उडा रहा है, जो शताब्दियो से भारतीय सस्कृति की अमूल्य निधि रहा है।

१—यशपाल : 'दादा कामरेड' मे देखिए शैल के विचार, पृष्ठ ३१, ३६, ४०।
२—उपेन्द्र नाथ अश्क · 'स्वर्ग की झलक' मे उमा।
३—यशपाल . दादा कामरेड की शैल, साथ ही देखिए 'देशद्रोही' की राज।
४—भगवती चरण वर्मा : (अ) 'अपने खिलौने' की मीना।
(ब) मनुष्य के रूप (यशपाल) की मनोरमा।
५—अमृतराय : (कठघरे, क० स०) मे सावनी समा, पृष्ठ ९२-१०३।
६—यशपाल · 'कम्बल दान' कहानी की मिसेज बलूरिया।
७—'स्वर्ग की झलक' की श्रीमती अशोक।

इस नवीन सामाजिक प्रतिष्ठा के अतिरिक्त इसी वर्ग की नारी का एक अन्य रूप भी है जो करुणास्पद है। जहाँ नारी अधिकार गर्विता न होकर अपने स्थिति-क्षेत्र मे निरीह, मूक एव विवश है जहाँ उच्चता का दम्भ निर्वाह करने मे उसे किसी सामान्य मानव से मिलने भी नही दिया जाता क्योकि इससे उसकी सामाजिक कुलीनता एवं प्रतिष्ठा की मान हानि होती है। 'पिजरा' ('स्वर्ग की झलक' मे सग्रहीत एक कहानी) की शान्ति तथा 'पतिव्रता' ('उत्तमी की मा' मे सग्रहीत) की सुमति इस प्रकार की महिलाएँ है जो चादी के वातावरण मे या तो अपनी स्वतन्त्रता खो बैठी हैं या एक अपमान जनक शैथिल्य सर पर लादे जीवन निर्वाह कर रही हैं। इस घुटन मे नारी की अपार परवशता प्रतिलक्षित होती है। उसे पुरुष की वासना का खिलौना मात्र बनना है, जहाँ उसकी बौद्धिक जागरूकता, उसकी स्वच्छन्द कल्पना सब शमित हो, एक उदासीनता की अवतारणा करती दिखाई पड़ती हैं। उसकी स्थिति एक व्यापारिक नारी से भी गई बीती है।

'इतने पर भी सुमति सेठ का बडा ध्यान रखती। मुंह की नागवार बदबू, जिसे फिल्मी अभिनेत्री १५ मिनट के लिये ५० हजार रु० मे बर्दास्त नही कर सकती, उसे सुमति जीवन भर के लिये बर्दास्त कर रही थी।' (पतिव्रता)

अभिजातीय व्यवस्था मे नारी का दूसरा स्वरूप है प्रेम के विषय को लेकर। उसके लिये प्रेम कोई पूत, स्वर्गिक एव हृदय की उच्चतम भावना नही है वरन् एक शारीरिक आकर्षण मात्र है। अभी तक पुरुषों ने अपनी वासना की तृप्ति के लिये उसे खिलौना समझा था, अब वह पुरुष को अपने मनोविनोद का साधन समझने लगती है और इसीलिए उसका संग्रह करती है।

'बस, आई कलेक्ट मैन'। कैसे-कैसे अजीब नमूने होते हैं।—चमडी के नीचे सब एक से। असभ्य, असंस्कृत, लोलुप, पशु।'

(शेखर—एक जीवनी (भाग २) मणिका का कथन)

वह प्रेम का सुदृढ आधार अर्थ को मानती है। प्रेम का पौधा वहीं प्लावित हो सकता है जहाँ उसे धन की खाद मिले[1]। साथ ही वह आत्मा की वस्तु न होकर पूर्ण रूप से भौतिक और स्थूल जगत की शाश्वत आवश्यकता है।

प्रेम प्रेम कुछ नही है, शरीर है और बुद्धि है; एक शरीर को पकडता है, एक पैसे को। बस यही प्रेम है'। और जब इस प्रकार प्रेम को आर्थिक महत्त्व प्रदान

१—(अ) भगवती चरण वर्मा : दो बाके, (क० स०) में संग्रहीत, विवशता की लाला।
(ब) वही, : अपने खिलौने (उपन्यास) की मीना।
(स) वही, : राख और चिनगारी, की गीता।

किया गया तो, उसकी पवित्रता एव विशालता के साथ-साथ नैतिक मापदण्डो मे भी परिवर्तन हो गया। अब प्रेम की एकनिष्ठा का सिद्धान्त झूठा ठहराया गया। स्त्री को वह पुरुष प्यार कर सकता है, उसे भोग सकता है जो उसे प्रसन्न कर सके, उसे सुख दे सके चाहे वह कोई भी क्यो न हो। पर-पुरुष सम्बन्ध से भले ही वह थोडी डरती हो, : क्योकि उसमे भारतीय सस्कारो के चिन्ह अवशेष हैं। परन्तु वह उसे बहुत बडा पाप नही मानती। पत्नी होने के बाद भी वह दूसरे पुरुष की भोग्या बन सकती है। इसे वह अपराध भी नही समझती[1]। वह क्षुद्र व्यभिचार को फैशनेबल रूप मे देखने की अभ्यस्त हो गई है। इस प्रकार नारी भावना के विभिन्न विकृत रूप इस वर्ग मे अर्न्तसघर्ष करते चल रहे है। अधिक स्पष्टता के लिये प्रस्तुत अवतरण पर्याप्त होगा।

'एक ओर कौल बहिनो के रूप मे नारी क्षुद्र व्यभिचार के फैशनेबल रूप, दूसरी ओर मणिका के रूप मे शक्ति का विकृत और भ्रष्ट रूप, जो ग्लानि-जनक था, पर तिरस्कार्य नही—उसकी उपेक्षा नही होती थी।—मणिका की—उसकी श्रेणी की आत्मा रोग ग्रस्त थी, किन्तु थी आत्मा, और वह रोग भी एक उसका अकेला नही था, वह आधुनिक आत्मा का रुझान ही था।'

: शेखर एक जीवनी, भाग २, पृष्ठ २० :

इस वर्ग की नारी का तीसरा पहलू है अन्तर्द्वंद्व। उसने पुरुषो को चुनौती दी। पुरुषो से अपने अधिकार प्राप्त किए। अपनी स्वतन्त्र वैयक्तिकता की प्रतिष्ठा की। वह आत्म निर्भर बनी, उसे आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। परन्तु क्या इतना सब होकर वह सुखी हो सकी ? इसका अधिक सही उत्तर शायद 'नही' ही है। 'बाहर-भीतर[2]' की सुशीला, भाग्यवती और कमलादेवी इसी प्रकार का सघर्ष करती हुई महिलाए हैं। अपनी स्वतन्त्र वैयक्तिकता के दम्भ मे उन्होने अपने पतियो अथवा प्रेमियो को खो दिया है, लेकिन सब कुछ पाकर भी क्या वे कुछ भी पा सकी ? इस अन्तर्संघर्ष का कारण है उनका भारतीय होना। भारतीय होकर वे भले ही पाश्चात्य सस्कृति और पाश्चात्य महिलाओ के समान अधिकारमयी बन जाए, परन्तु उनकी सी रुचि वे शायद कभी भी न अपना सकेगी। अन्तर्संघर्ष के इस क्षेत्र मे 'शेखर' की रेखा को लीजिए—

'मुक्ति आज नारी चाहती है—मुक्ति के लिये नौकरी, नौकरी के लिये मुक्ति, दोहरा धोखा है।'

रेखा पुरुष की दासी न होना चाह कर विवाह होने के पश्चात् भी स्वतन्त्र जीविका की खोज में निकलती है। लेकिन जीविका खोजने के लिए उसे चन्द्रमाधव

१—नागिनें और बुलबुले .. किशोर शाहू . में 'धुएँ की लकीरें' की गीता।
२—भगवती चरण वर्मा . 'इन्सटॉलमैन्ट' में सग्रहीत कहानी।

की सहायता की अपेक्षा होती है। अपनी 'कुठित बुझी हुई आत्मा को 'स्नेह से भरवाने' के लिये उसे भुवन को अपनाना पडता है। परन्तु भुवन उसे सदैव की निश्चिन्तता नही दे सकता, अत उसे डा० रमेश से विवाह करना पडता है। इस प्रकार अन्तर्द्वन्द्व, मन की पीडा और अर्ध-तृप्त 'सैक्स' की पिपासा को लेकर वह एक चक्र बनाती हुई फिर वही आ जाती है जहाँ से उसने आरम्भ किया था। शिक्षिता होते हुए भी वह भारतीय सस्कारो से पोषित नारी नैतिक उच्छृखलता को बहुत आगे तक नही खीच ले जा सकती और अन्त मे उसे इस मानसिक भ्रष्टाचार से ग्लानि हो उठती है। उसमे एक अपूर्व समर्पण भावना के निर्मल स्रोत का उदय होता है जिसकी शीतल लहरो मे उसकी अहकार अग्नि बुझ जाती है—

'नही सुही, मै खिलौने नही चाहती। खिलौनो से बहुत खेल चुकी। मैं तो अब स्वय एक खिलौना बनना चाहती हूँ (अगडाई लेती है) कोई खेलाए, घुमाए, इधर से उधर पटक दे, फिरा दे (अचानक सुहास की ओर मुडकर) सच।'

: अश्क पक्का गाना क० स० मे सग्रहीत 'बहनें' की रमा, पृष्ठ ५४

और यह भारतीय नारी का आदर्शवाद है, जो गिरकर भी उठने की क्षमता रखता है। नारी का जीवन समान भूमि पर पुरुष का, दूसरे का सहकार लेकर ही पनप सकता है, उसके बिना वह अधूरी है—

'अर्ध सत्य तुम, अर्ध स्वप्न तुम, अर्ध निराशा आशा
अर्ध अजित जित, अर्ध तृप्ति, तुम, अर्ध अतृप्त पिपासा
आधी काया आग तुम्हारी, आधी काया पानी
अर्धान्गिनी नारी! तुम जीवन की आधी परिभाषा।'

: नीरज : विभावरी, पृष्ठ ४९ :

भारतीय समाज मे मध्यवर्गीय नारी की स्थिति सदैव ही अनिश्चित, अपमानित तथा अभिशप्त रही है। उसका सार्वजनिक क्षेत्र से बहुत कम सम्पर्क रहा है। राष्ट्रीय जागरण के इस काल मे उसे कुछ स्वीकृति अवश्य मिली है। राजनैतिक वातवरण मे भी वह यदा-कदा दिखलाई पड़ जाती है और इस तरह घर की चाहर दीवारी के बाहर के ससार से भी वह धीरे-धीरे अपना परिचय बढाने के लिये अग्रसर होती है[1]। जीवन की आर्थिक विषमताओं ने उसे जीविका उपार्जन के लिये विवश कर दिया है।[2] बडे नगरों मे इस वर्ग की महिलाए सार्वजनिक कार्यकत्री भी हैं; उनमे शिक्षा का भी समुचित विकास हुआ है। परन्तु इस क्षेत्र मे आने के लिये उन्हे पुरुष से विद्रोह करना पडता है। यह एक अजीब सी बात लगती है कि सिद्धान्त रूप मे पुरुष नारी की सामाजिक समानता पर जोर

१—यशपाल · दादा कामरेड, की यशोदा।
२—यशपाल : मनुष्य के रूप, की पारो।

देता है, भाषण देता है, लेख लिखता है, परन्तु व्यावहारिक क्षेत्र मे बहुत कम, नगण्य अभिभावक अपनी महिलाओ को सार्वजनिक कार्यों के लिये भेजना चाहते है या उन्हे समान स्वीकृति देते है। 'दादा कामरेड' की यशोदा को सामाजिक क्षेत्र मे कार्य करने की ललक है और इसके लिये उसे अपने पति अमरनाथ से विद्रोह करना पड़ता है।

मध्यवर्गीय नारी के हृदय में समाज का भय बुरी तरह बैठा हुआ है। इस का कारण शायद यह रहा हो कि इस वर्ग की व्यवस्था मे सारे पुन्य, शक्ति, देवत्व एव नैतिकता की सैद्धान्तिक प्रतिष्ठा नारी मे कर दी गई है। यदि वह अपनी स्थिति से थोडा सा भी इधर उधर हिलती डुलती है तो लगता है जैसे सारा धर्म, सारी सस्कृति लड़खड़ा कर गिर पड़ेगी और इसालिए वह अपनी स्थिति के प्रति इतनी अधिक सजग है कि उस सजगता के मध्य उसके अपने व्यक्तित्व के विकास के अवसर भी नष्ट हो गए हैं। उसके प्रत्येक कर्म मे नैतिकता प्रतिष्ठित होती है। पर पुरुष के यहा एक रात रहने मात्र से उसे मृत्यु का आलिंगन करना पड़ता है।[१] निर्दोष होते हुए भी समाज-भय से अपमान सह लेना पडता है[२]।

पारिवारिक जीवन मे भी वह असमर्थताओ का भार लिए है। जहाँ जीवन के प्रति आकर्षण एवं लालसा नष्ट प्राय· हो गई है[३]। एक निरीह विवशता और उदासीन वायु मडंल के बीच मे जैसे उसका जीवन घिसट-घिसट कर जी रहा है। विकास के समुचित अवसरो से हीन उसका दृष्टिकोण पहले जैसा ही सीमित है, साथ ही उसमे कलह प्रियता, शंकालु प्रवृति तथा कर्कशता आदि दुर्गुणो का विस्तार है[४]। पुरानी गलित रूढियो पर उसे विश्वास है[५] और इस तरह पूर्व युगो की अपेक्षा किसी प्रकार से उसकी दशा अधिक सुधरी हुई नही कही जा सकती। आर्थिक दुर्व्यवस्था से पीडित समाज मे नारी ही सबसे बडा मनोविनोद है। इस भावना ने नारी स्थिति के पतन को थोडा और आगे बढाया है[६]।

इस प्रकार नव्य युग की मध्य वर्गीय नारी अपनी असमर्थताओ के बोझ से झुकी जा कर प्रबुद्ध चेतना के समाज को लालायित आँखो से देखती हुई, और अपनी विवशताओ तथा सीमाओ से परिसीमित, उस क्षितिज पर दृष्टिगोचर होती है जहाँ

१—यशपाल : 'तुमने क्यो कहा था कि मैं सुन्दर हूँ' मे सकलित 'आबरू' कहानी की शान्ति।

२—वही, देखिए 'गवाही' की तारा।

३—अज्ञेय : जयदोल . क० स०: में सकलित 'गेंग्रीन' की मालती।

४—भगवती प्रसाद वाजपेयी : निर्यातन · उपन्यास की उमा।

५—अमृतराय . कस्बे का एक दिन, में संकलित, 'आव्हान,' कहानी की बीरू की माँ।

६—अमृतराय : 'कठघरे' मे सग्रहीत, 'सावनी समाँ,' कहानी मे चन्द्रिका का परिवार।

आत्म, शमन की महान् साधना के पश्चात् जीवन की सुरूपता के प्रति एक उदासीन आसक्ति शेष रह जाती है।

मध्यवर्गीय नारी के विपरीत निम्नवर्गीय नारी मे सुख दुख और उत्साह, विवशता के रँगीन चित्र देखने को मिलते हैं। उसमे जीवन के प्रति आस्था, उस जीवन को चलाते रहने के लिये एक गति और पूर्ण कार्य निष्ठा लक्षित होती है। जानते हुए भी कि जीवन अभिशापमय है, दुर्दैव सदैव ही उसके साथ लगा है, वह जैसे दुख की असीमता मे मुस्कराते रहने की अभ्यासी हो गई है[१]। जीवन के प्रत्येक दिन में सुबह से शाम तक वह कार्यरत है। वह मजदूरी करती है[२], गाँव मे हाट लगाती है, पत्ते बेचती है[३], घास काटती है[४] और लोगो का कलुष साफ करती है।

'सुथरे पर यह दाग उभारे, उज्ज्वल पर यह धब्बे डारे,
इनको धोना अपना काम, भज ले सजनि, हरि का नाम।
छीयो राम, छीयो राम।
: धोबन का गीत, विशाल भारत १६५१, पृष्ठ २५७ :

कार्यरता इस परिश्रम विमुग्धा नारी मे सत् रूप का विकास होता है। उसके श्रम-विन्दु जैसे काम-भावना को धो डालते हैं—

जो बंटा रही तुम जग जीवन का काम काज।
तुम प्रिय हो मुझे, न छूती तुमको काम-लाज।
: पन्त : ग्राम्या, पृष्ठ ८४ :

वह अपने श्वेद कणों को बहा कर अपना पेट भरती है। किसी की दया पर आश्रित नही रखती। इसी लिए वह स्वाभिमानिनी है[५]। निर्धनता ने उसे

१—अ. लक्ष्मीनारायण लाल : बया का घोसला और साँप, की जमुना।
:ब: उपेन्द्रनाथ अश्क : पत्थर-अलपत्थर : की यासमन।
२—:अ: राजा राम खरे . मजदूरिन, सरस्वती १६३८, पृष्ठ ३४३।
:ब: मैं मजदूरिन चली काम पर लिए फावड़ा कुदाली।
मुझे देख कर विहंस उठी, वह प्राची मे ऊषा की लाली।
हीरादेवी . मजदूरिन का गीत, सरस्वती १६५२, पृ० ३१३।
३—कन्हैया लाल दीक्षित : पत्ते वाली, माधुरी, १६३८, पृ० ५७६।
४—हरि शकर शर्मा : घसियारिन, विशालभारत १६३६, पृष्ठ ५१६।
५—.अ. कान्ति चन्द्र सौरिक्सा : बटन वाली 'कहानी', सरस्वती १६३६, पृ० १२।
.ब: कोई सेंत का खाती हूँ जो लात-गारी सहूँ। रात दिन छाती पर बज्जर जैसा गागरा-बाल्टी ढोती हूँ। बन्न कर दूं तो सरने लगें रानी लोग।
: मार्कण्डेय: हंसा जाई अकेला, : क० स० : में सग्रहीत, कल्यानमन, कं मंगी, पृष्ठ २१।

सत्य और ईमानदारी के दो वर दिए हैं जो उसकी अमूल्य निधि है[1]। वधू के रूप मे वह पूर्ण निष्ठावान है, पति उसके लिये देवता है। सास स्वसुर की आज्ञा उसके लिये शिरोधार्य है।

'सास सुसर का कहा मानना। जहाँ बैठाए, वही बैठना, जहाँ उठाए वही उठना।'

:मार्कण्डेय देखिए 'हसा आई अकेला' . क० स०. की 'सोहमईला' .

निम्न वर्गीय नारी के जीवन पृष्ठो पर इतनी गहरी निष्ठा, साहस विश्वास और कर्त्तव्यपरायणता के साथ-साथ करुणा और निरीहता की कथा भी लिखी हुई है जो उसके भाग्य का अपरिहार्य अश है। एक बार विपथा होने पर फिर समाज मे उसके लिए कोई स्थान नही रह जाता—'उसके भ्रष्ट हो जाने से कुल कलकित हो जाता है। उस पर आरोपित यह नैतिकता उसके जीवन की दयनीयता को स्पष्ट करती है। जिस काम को करने से पुरुष का कुछ भी बनता-बिगडता नही, उसी को केवल एक बार भूल से कर लेने पर भी उसका जीवन हमेशा के लिये विनष्ट हो जाना है[2]। अपनी निर्धनता मे वह अधरो पर मलिन विषाद को लिए चलती है—

'नेत्र मे भिक्षुक का ससार
और होठो पर मलिन विषाद,
रुक्ष काले, बिखरे कृश केश।
जीर्ण चिथडो मे कम्पित गात।

: कन्हैयालाला दीक्षित : पत्तेवाली, माधुरी १६३८, पृष्ठ ५७६ :

और इतने बडे दुर्भाग्य के बीच उसे पति का स्नेह भी नही मिलता। अपनी इतनी महान् सेवाओ का उपहार उसे भारी मार मे मिलता है।

'रोज धोबी नही पीटता अपनी जोरू को ? मुंगरी से पीटते है मुगरी से।'

अमृतराय 'भोर से पहिले' मे संग्रहीत 'सत्यमेव जयते,' के रमलू को कथन

इस प्रकार जीवन की व्यस्तता के बीच मे वह अपने होठों पर मुस्कराती हुई अपने अन्तर मे रोती है। जिसके मौन आँसुओ को कोई भी सहानुभूति नही दे पाता।

इस वर्ग की नारी का ग्राम्य स्वरूप सुख दु खो की सुन्दर-सजल दृष्टि से देखा गया है, जिसमे प्रकृति की पवित्रता एवं सौन्दर्य विद्यमान हैं।

१—उपेन्द्रनाथ अशक . 'कहानी की लेखिका और झेहलम के सात पुल,' मे मौसी का चरित्र।

२—भगवती चरण वर्मा : आखिरी दाव, की चमेली के विषय मे रामेश्वर के विचार, पृष्ठ २५।

'पेड़ो पत्तों मे जो, लावण्य निखरता
वही खेल रहा उसके मुख मण्डल पर।'

या,

वन देवी जैसी आती चली नगर मे
हिरणी सी जाती ठिठक, सकुच कुछ लखकर।
: सोहन लाल द्विवेदी : चित्रा, ग्राम्य कन्या, पृष्ठ ६-७।

उसकी आँखो में वासना न होकर स्वागत का भोला भाव अंकित है—

'है कही वासना नही उधर
है कही कामना नही उधर
है आवभगत सी आँखो मे
जैसे पाहुन हो आया घर।'
: वही, ग्राम्य वधू, पृष्ठ १० :

उसमे उन्मुक्त हास की प्रवृति भी है—

'हंसती खल खल
अबला चंचल
ज्यो फूट पड़ा हो स्रोत सरल
भर फेनोज्ज्वल दशनों से अधरों के तट।
: पन्त : ग्राम्या, ग्राम्य युवती, पृष्ठ १७ :

उसका कार्यरत मुद्रामय सौन्दर्य भी अवलोकनीय है—

बीच खेत में सहसा उठकर
खड़ी हुई वह युक्ती सुन्दर
लगा रही थी पानी झुककर
सीधी करे कमर वह पल भर
खडी हो गई सहसा उठ कर
घेरे उसे जहाँ दल के दल
उठते हैं कुहरे के बादल।
: राम विलास शर्मा : रूप तरंग, कुहरे के बादल :

मधुरता की इतनी सृष्टि करने वाली इस ग्राम्य बाला के भाग्य मे दुर्दैव भी गहरा लिखा हुआ है—

दुखों से पिस
दुर्दिन मे घिस
जर्जर हो जाता उसका तन
ढह जाता असमय यौवन धन

बह जाता तट का तिनका
जो लहरो से हस खेला कुछ क्षण ।
: पन्त : ग्राम्या, ग्राम्य युवती, पृष्ठ १९ :

इतने पर भी उसे कवि का सम्मान प्राप्त हुआ है। चिर दैन्य और अविद्या के तम से पीड़ित होकर भी वह स्नेहशील, ममतामयी और माधुर्यपूर्ण है। तथा कुलीन मानवी मे आज जिस अधिकार भावना का दर्प प्रवेश कर गया है और जिसके परिणाम स्वरूप उसकी स्थिति में जो अहंकार भावना बद्धमूल हो रही है, उसका प्रायश्चित एव उसके अभावों की पूर्ति जैसे इसी ग्राम्य नारी के शाश्वत गुणों के द्वारा हो रही है। कवि का विश्वास है—

कर रही मानवी के अभाव की आज पूर्त्ति
अग्रजा नागरी की—यह ग्राम वधू निश्चित ।
: पन्त : ग्राम्या, पृष्ठ २१ :

उपसंहार

नव्य-काल में नारी भावना के उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बुद्धिवाद के बढ़ते हुए प्रभाव ने जहाँ एक ओर अभावग्रस्त जीवन द्वारा खोजे गए नारी के छायावादी मधुर रूप की प्रतिष्ठा कम की, वहाँ दूसरी ओर उसे जीवन की यथार्थताओं का परिचय कराते हुए सामाजिक प्रतिष्ठा करने के हेतु, संघर्षमय वातावरण भी प्रदान किया। इस काल की नारी में बौद्धिक-पक्ष की प्रधानता होने के कारण निष्ठा का भाव समाप्त हो गया। समान स्वीकृति प्राप्त कर लेने तथा आत्म निर्भर हो जाने के परिणाम स्वरूप उसमे एक दर्प की भावना बद्धमूल हुई। अपनी स्वतन्त्र वैयक्तिकता के अहंकार भाव मे 'सैक्स' सम्बन्धी नैतिक नियम भी ढीले पड़ गए और वह भी पुरुषों के समान आचरण करने का दावा करने लगी। उसे सामाजिक जीवन के व्यवहारिक क्षेत्र में पहली बार अर्धांगिनी का रूप मिला तथा उसमें बद्धमूल हीन भावना की समाप्ति हुई।

बढते हुए पाश्चात्य-प्रभाव ने उसे इतना सब कुछ दिया। परन्तु उसकी आत्मा में अन्तर्निहित भारतीय संस्कार उसे इस दिशा मे समय-समय पर कचोटते रहे हैं। वह बार-बार रुक कर यह सोचती हुई प्रतीत होती है कि क्या अधिकार प्राप्ति की दिशा मे उसका यह प्रयत्न उसकी भारी भूल तो नही है, और यही पर उसकी दर्प-भावना का खोखलापन प्रतिलक्षित होता है। एक ओर वाह्य जगत मे अपनी सत्ता की दुंदुभि और अपनी स्वतन्त्र आत्म-निर्भर वैयक्तिकता का ग्रह तथा दूसरी ओर पुरुष की अनिवार्य आवश्कता और भारतीय सस्कृति के उसकी आत्मा मे गहरे पैठे हुए आदर्श-सस्कार—इन सबके परस्पर सघर्ष मे उसकी आज की आत्मा कुठित हो उठी है। उसकी स्थिति तिराहे पर खडी उस भ्रमित पथिका की सी है जो एक राह से चल कर आती हुई, उसी आगे लम्बी फैली हुई राह को सशकित होकर देखती है कि कही यह उसका गलत मार्ग तो नही है, और बीच मे से काटती हुई तीसरी राह के प्रति उसके मन में प्रत्याशा उत्पन्न होती है, कि हो सकता है, इसी पर चल कर वह सही ढग से चल सके और चली आई हुई राह से तो वह लौटना भी नही चाहती है, क्योकि उससे वह भर गई है, ऊब गई है और फिर वह उसकी पराजय भी तो है।

फिर भी अभी उसे सोचना है, निश्चित करना है तथा नवीन और प्राचीन के बीच संधि करनी है। हो सकता है वह तीसरी राह को ही अपनाए।

———

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी—संचयन

(१८५७-१९५७)

पिछले पृष्ठो मे नारी भावना के गत सौ वर्षो का साहित्यक स्वरूप उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है। उत्थान-कालीन नारी मे सुधार भावनाओ के विकास का प्रयास अधिक रहा है। परन्तु साथ ही रीति काव्य से प्रभावित शृगार-मयी एकान्त प्रिय नायिका के प्रणय-सम्बन्धी रग बिरगे चित्र भी दृष्टि ओझल नही किये जा सकते। इस प्रकार नवयुग के प्रारम्भिक साहित्य में नारी को मध्य युगीन स्थूल शृगारिकता एव नवयुगीन सुधार भावना के सधि स्थल पर खडी हो, अरुणोदय की ओर लालायित दृष्टि किए देखा जा सकता है।

द्वितीय उत्थान मे सुधार भावना को बल प्राप्त हुआ। नारी को उसकी दयनीय स्थिति से ऊपर उठाने की चेष्टा मे नारी विषयक आदर्शो की स्थापना हुई। उसको रीति-युग के विपरीत पुरुष की भोग्या न बन कर उसकी प्रेरणा और शक्ति बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सामाजिक आदर्श की उच्चतर मनोभूमि पर अधिष्ठित हो कर जैसे वह पुरुष से बहुत ऊंची हो गई। इस प्रकार की साहित्य रचना का मूल कारण उसको वासना और मंसलता के क्षेत्र से बाहर निकाल लाना था। उसे इतनी आदर्शमयी बना देने का प्रयास इसीलिए किया गया कि नव-जाग्रत भारत मे वह पुरुष की वासना को उभार न देकर, उसकी सहचरी के रूप मे उसका पथ प्रशस्त करे। यद्यपि वह आदर्श कोरा आदर्श ही था और बहुत अशों मे पूर्व साहित्य की प्रतिक्रिया मात्र था, फिर भी इस भावना ने नारी में नैतिक गुणो एवं पूज्य भाव की प्रतिष्ठा करने मे यथेष्ठ सहयोग दिया।

विकास-काल आधुनिक हिन्दी साहित्य का वसत काल है। सामाजिक चेतना और राष्ट्रीयता के इस विकास काल मे नारी को सार्वजनिक जीवन मे कार्य क्षेत्र प्राप्त हुआ। सामाजिक स्वीकृति के साथ-साथ उसे केवल नारी रूप में न देखा जाकर, प्रेयसी, पत्नी, माता, कन्या और बहिन आदि के भिन्न-भिन्न सम्बन्धों में भी निकटता से देखा गया तथा उसके प्रति सकीर्ण मान्यताओ का विनाश एव उसकी स्थिति के प्रति सम्मानित-दृष्किोण का विकास इसी युग में विशेष रूप से हुआ। दूसरे, पश्चिम की रोमान्सवादी विचार धारा से प्रभावित हिन्दी कवि-वर्ग ने उसके जागृति कालीन अव्यवहारिक एव आरोपित आदर्श रूप में मधुर भाव की स्थापना कर, उसमें पूत सौन्दर्य की स्थापना करते हुए उसे पूजा की वस्तु बना दिया। नारी को इस माधुर्यपूर्ण प्रेरक आदर्श की प्राप्ति विकास काल में पहली बार हुई। साथ ही

नारी के सामाजिक सम्मान की प्रतिष्ठा के लिये इस काल के साहित्यकार द्वारा प्रबल समर्थन की भावना अभिव्यक्त की गई।

नव्य-काल की नारी भावना बौद्धिक विचार भूमि पर अवतरित की गई है। उसमे शिक्षिता होने का दम्भ है। आत्म-सम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा और अपने अधिकारो के लिये वह पुरुष से सघर्ष किया चाहती है। आत्म-निर्भर जीवन-व्यवस्था मे उसकी आस्था है। परन्तु साथ ही वह यह भी अनुभव करती है कि पुरुष से स्वतन्त्र हो, उसकी आत्मा को शान्ति नही मिलती। अपनी अपरिपक्व, विक्षिप्त विचारधाराओ मे वह स्वय ही उलझ गई है। उसकी शमित कुण्ठाए उसके व्यक्तित्व मे एक प्रकार का क्षुब्ध वातावरण उपस्थित कर देती हैं। पुरुष उसके सम्मुख अनिवार्य आवश्यकता के रूप मे प्रकट होता है। बौद्धिक जागरूकता के आलोक मे अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाने का उसका स्वप्न जैसे तिरोहित होने लगा है। उसने अधिकार प्राप्ति के अहकार भाव मे अपने स्वभाव की जिस शाश्वत निष्ठा, समर्पण भावना को छिपाने की चेष्टा की थी, वह जैसे उसकी कुण्ठाओ से झॉक-झॉक कर प्रकट हो रही है।

दूसरी ओर, नव्य-काल की नारी भावना वासना की पृष्ठ भूमि पर भी चित्रित की गई है। हम उसके विभिन्न रूपो के अन्तर्गत इसकी विवेचना कर आए है। इस काल मे नैतिक विभ्रष्टता और स्थूल आकर्षण के आसान चित्र प्रस्तुत करने का मुख्य कारण बादी प्रवृति का विकास है। साम्यवादी आधार पर नारी को वर्गीय भूमिका पर प्रदर्शित करके असास्कृतिक आक्रमण करने की जो प्रवृति चल रही है उसी ने नारी के स्वत्व को हीन-स्वरूप मे उपस्थित करने का प्रयास किया है। मार्क्सवादी, क्योकि, वर्ग को गिरा हुआ दिखाना चाहते है, अत. नारी वर्ग को भी पतित दिखाने की चेष्टा हुई है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित कलाकारो ने भी नारी के चरित्र के साथ खिलवाड ही किया है। उसके नग्न रूप को वासना की उत्तेजना से प्रज्वलित कर वर्गीय भूमि पर दिखाते हुए, उसकी साँस्कृतिक महत्ता को उपेक्षित कर, उसे वादो के सकीर्ण घेरे मे आबद्ध कर दिया है।

इस प्रकार आज की नारी दोनो प्रकार से सघर्षात्मक भूमिका पर खडी हुई अपने आगत के निर्णय मे प्रतीक्षाकुल है। उसने स्वय भी, स्वतन्त्र वैयक्तिकता के अनुष्ठान—प्रयास में अपने लिये जटिलताएँ उत्पन्न कर ली है, तथा कलाकारो द्वारा भी उसको भौतिक माँसलता और वादी-प्रवृत्ति के रूप मे चित्रित करने का प्रयास ही अधिक रहा है। इसी विघटन के असमजस मे अस्वस्थ वह, आज भी संधि-स्थल पर खड़ी है। उसे शीघ्र ही अपने भविष्य के मार्ग का निर्णय लेना है।

द्वितीय खण्ड

प्रसाद के नारी—चरित्र

प्रकरण—६

प्रसाद के नारी सम्बन्धी सामान्य आदर्श

: १ : आदर्श निर्माण के उपकरण

: २ : नारी आदर्श

: ३ : समन्वित कल्पना

आरम्भ

हम पिछले पृष्ठों मे भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति और हिन्दी साहित्य मे नारी-चित्रण की विवेचना कर चुके हैं। विवेचना करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि नारी सम्बन्धी सामाजिक वस्तु स्थिति, मान्यता एव आदर्शो का सर्वागीण चित्र उपस्थित किया जा सके, तथा उसके आलोक मे हिन्दी साहित्यकारो ने सामाजिक परिपार्श्व मे नारी-भावना की जो चित्रपटी प्रस्तुत की है, उसको भी विभिन्न रूपो मे विस्तार के समझने की चेष्टा की गई है। सामाजिक एव साहित्यिक नारी के इस विवेचन की पृष्ठभूमि मे तत्कालीन किसी भी साहित्यकार के नारी-चरित्रो का अध्ययन और अनुशीलन सुगमता से, वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से किया जा सकता है। अत. प्रसाद के नारी चरित्रो के अध्ययन के लिए उपयुक्त विवेचना पीठिका के रूप मे मानी गई है और इसी पीठिका के आधार पर प्रसाद के नारी-चरित्रो का अध्ययन उपस्थित किया गया है। आरम्भ मे हम प्रसाद के नारी सम्बन्धी सामान्य आदर्शों की विवेचना करना चाहते है।

(एक)

आदर्श निर्माण के उपकरण

किसी भी कलाकार के आदर्श या विचार सामान्यत निम्नलिखित तथ्यो पर आधारित होते है—

: अ : जीवनी
: ब : अध्ययन
: स : सामाजिक परिपार्श्व
: द : निजी अनुभव

इसीलिए प्रसाद जी के नारी-आदर्शों की सामान्य विवेचना करने से पूर्व भी उपर्युक्त बातों के आधार पर उन की सक्षिप्त परिचयात्मक विवेचना आवश्यक हो जाती है।

(अ) जीवनी

(क) आरम्भ

'सुघनी साहु' के नाम से प्रख्यात काशी के एक कान्य कुब्ज वैश्य परिवार में सवत् १८८६ मे प्रसाद जी का जन्म हुआ। इनके पूर्वज मूलत: कन्नौज के निवासी थे। किसी कारणवश वे सैदपुर मे बस कर चीनी का व्यापार करने लगे। किन्तु उस मे हानि हो जाने के कारण इनके पितामह ने काशी जाकर गोवर्धन सराय नामक मुहल्ले मे इत्र, तम्बाकू, सुर्ती तथा सुंघनी का व्यापार आरम्भ किया। पितामह शिव रत्न साहु ने एक प्रकार की सुर्ती गोली का आविष्कार किया जो पान के साथ खाई जाती थी। इस सुर्ती को शीघ्र ही लोकप्रियता प्राप्त हो गई, और शिव रत्न साहु 'सुंघनी साहु' के नाम से विख्यात हो गए।

शिव रत्न साहु के दो पत्नियाँ थी। बडी पत्नी से शीतल प्रसाद जी हुए थे, जो जीवन भर अविवाहित रहे। दूसरी पत्नी से ५ पुत्र हुए, जिनमे प्रसाद जी के पिता देवी प्रसाद सबसे ज्येष्ठ थे। देवी प्रसाद जी के भी पाँच सताने हुई, जिन मे देवकी सब से बडी थी और जय शकर 'प्रसाद' सबसे कनिष्ठ। जय शकर 'प्रसाद' से पूर्व इन के कई भाई बहिनो की मृत्यु हो चुकी थी। अत इनकी दीर्घ आयुष्य के लिए इनकी माता मुन्नी देवी ने गोला-गोकर्णनाथ की मन्नत माँगी थी। 'इन्हे नाक छेद कर बुलाक धारण कराई गई और झारखण्ड के बैंजनाथ भगवान की उपासना—आराधना द्वारा इन्हे विशेष रूप से भक्त बालक का पद दिया गया[1]।

इनके पितामह बडे उदार और दानी थे। इस उदार-भाव की परम्परा प्रसाद जी तक चलती रही। गुप्त रूप से ब्राह्मणो, दीन दुखियो तथा विद्यार्थियों को दान दिया जाता था। इसी उदारता और दानशीलता के कारण काशी मे इनके परिवार का महत्त्व काशी-राज के दरबार के बाद का था। पारिवारिक वातावरण धार्मिक था। सभी शिव के उपासक थे। 'काश्मीरी प्रत्यभिज्ञादर्शन की विचारधारा इस परिवार मे स्वीकृत चली आ रही थी, जिसका प्रभाव प्रसाद जी की विचार-धारा एव साहित्यिक कृतियो पर यथेष्ट रूप से पडा है।

प्रसाद जी का परिवार सम्मलित परिवार था। पितामह शिव साहु के उपरान्त इनके पिता को पारिवारिक कार्य-भार सभालना पडा। लेकिन जब प्रसाद जी केवल ११ वर्ष के ही थे, इनके पिता का स्वर्गवास हो गया और पारिवारिक उत्तरदायित्व इनके बडे भाई शम्भुरत्न जी के कन्धो पर जा पड़ा। इस समय प्रसाद जी क्वीन्स कालेज मे ८वी कक्षा मे अध्ययन कर रहे थे। शम्भु रत्न जी ने इन से कालेज छुडा कर इन की सस्कृत और अग्रेजी की पढ़ाई का प्रबन्ध घर पर ही कर दिया, तथा ये दीन बन्धु ब्रह्मचारी से वेद और उपनिषदो की शिक्षा प्राप्त

१—'महाकवि प्रसाद' पृष्ठ १-२।

करने लगे। आरम्भिक पाठ उन्हे मोहन लाल गुप्ता से मिला था तथा उनके साथ इन्होने सस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू का अध्ययन किया था।

शम्भुरत्न जी पारिवारिक परम्परा के अनुकूल अतिशय उदार तथा खर्चीले थे। सम्मलित परिवार की भाँति व्यवसाय भी सम्मलित था। अत इनके खर्चीलेपन को लेकर गृह-कलह आरम्भ हुई। वैसे चाचा भतीजे सभी दुकान पर जाते थे। घर में अब भी सब का खान-पान साथ ही था, लेकिन अदालत मे एक दूसरे के विरोधी थे। इस मे काफी धन तथा समय नष्ट हुआ, इस समय तक प्रसाद जी भी दुकान पर बैठने लगे थे।

जब प्रसाद जी केवल १५ वर्ष के ही थे, इन की माता का देहावसान हो गया। इसी वर्ष सम्पत्ति सम्बन्धी मुकदमे का फैसला हुआ था। जीत शम्भुरत्न जी की ही हुई थी, उन्हे नारियल बाजार वाली दुकान पर कब्जा मिल गया था, लेकिन बदले मे सारा कर्ज चुकाने का भार भी उन्ही के सर आ पडा। इसके दो वर्ष बाद शम्भु रत्न जी का भी स्वर्गवास हो गया। बडे भाई का यह अकाल निधन प्रसाद जी के लिए वज्रपात से कम न था। अब वे सभी विषमताओ को झेलने के लिए अकेले रह गए। व्यापार की देख-रेख, परिवार की सम्भाल, विधवा भाभी, भाई के समय का भारी ऋण तथा अपनी गृहस्थी जमाने की कल्पना और आतर-प्रसूत भावनाओ का उद्धलन—सभी ने प्रसाद के कोमल व्यक्तित्व को झकझोर देना चाहा, लेकिन युवक प्रसाद ने पूर्ण कौशल के साथ इन सभी विषमताओ मे सामजस्य बनाते हुए, सतुलन रखकर, सभी कठिन परिस्थितियो का सफलता पूर्वक सामना किया।

२० वर्ष की अवस्था मे प्रसाद जी ने अपना पहला विवाह किया। इनकी पत्नी १० वर्ष जीवित रही। उनके निधन के पश्चात् प्रसाद जी की मनोवृत्ति धार्मिक हो गई तथा वे पठन-पाठन मे अधिक समय देने लगे। परिस्थितियों ने इन्हें दूसरे विवाह के लिए विवश किया। दुर्भाग्यवश इनकी दूसरी पत्नी का निधन भी एक ही वर्ष उपरात हो गया। इससे प्रसाद जी के जीवन में विरक्ति की एक रेखा सी खिच गई। लेकिन उस विरक्ति मे पलायन, वैराग्य या निषेध का प्राबल्य कही भी नहीं है। वे अपनी गति से पारिबारिक समस्याओ को सुलझाने तथा शेष समय अपने अध्ययन-मनन मे लगे रहे। दूसरी पत्नी की मृत्यु के उपरान्त उन्होने विवाह न करने का निश्चय कर लिया था। किन्तु घर मे विधवा भाभी का जीवन दुःख की अनन्त रेखा की भाँति उनके सामने प्रश्न चिन्ह बना रहता था,............भाभी के अनुरोध को वे न टाल सके.........उन्होने उचित यही समझा कि अपनी भाभी के मन का मान रखें, अपने भाभी के निर्देश पर गृहस्थी बसाए, घर का सूनापन उनके लिए खलने की वस्तु न रह जाये[1]।' और तब इसलिए उन्होने तीसरा विवाह कर

१—सुधाकर पाण्डेय . कामायनी समीक्षा, पृष्ठ ११।

लिया। रत्नशकर जी उनके तीसरे विवाह से उत्पन्न संतान हैं।

दूकान, घर और साहित्य की त्रिधारा मे बहते हुए प्रसाद जी ने अपना अल्प कालिक जीवन पूर्ण किया। १९३६ मे राजयक्ष्मा से पीड़ित उन्होने अपने प्राण विसर्जित किए। प्रसाद जी ने अपने व्यक्तित्व का विकास स्वय किया था। उन्होने अपनी पारिवारिक-परिस्थिति को सभाला तथा १९२९-३० तक अपने आप को पिछले ऋण भार से प्राय सर्वथा मुक्त कर लिया था। साथ ही गृहस्थी की समस्याओ को समय देने के साथ साथ उन्होने हिन्दी को अनुपम साहित्य-कृतियाँ प्रदान की। अतीत की स्वर्णिम चित्रपटी और वर्तमान का वैषम्य दोनो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर अपने समाधान प्रस्तुत करते हुए भविष्य की भव्य कल्पना का पथ प्रशस्त किया और अपने साहित्य को आगामी पीढियो के लिए प्रकाश स्तम्भ के रूप मे छोड गए। 'मनुष्य होने के नाते प्रसाद जी की अपनी कमजोरियाँ थी, किन्तु उन कमजोरियों पर एक तपस्वी की भाँति, एक साधक की भाति उन्होने सदैव ही विजय पाने का प्रयत्न किया। प्रारम्भ से अन्त तक उन्होने सघर्ष किया। उन्होने अपना रास्ता स्वय बनाया, यह उनके व्यक्तिगत चरित्र की विशेषता थी[1]।

(ख) व्यक्तित्व—स्वभाव और अभिरुचि

प्रसाद जी का व्यक्तिव असाधारण था। वे मध्यम कद के व्यवित थे, तथा उनका शरीर पुष्ट और सुगठित था। वे गौर आकृति के सुढार प्रसन्न मुख-मण्डल वाले सुन्दर पुरुष थे। उनकी रतनारी रसीली आँखे, घु घराले बाल, मस्तानी चाल-ढाल तथा भावपूर्ण बोल-चाल लोगो को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। प्रसाद सौदर्य और प्रेम के कवि है—कर्त्तव्य भी उनके लिए सौदर्य था। प्रकृत्या वे बडे सुरीले थे। उनका स्वर महीन था। सगीत के प्रति स्वाभाविक रुचि थी; कभी कभी मन पसन्द धुनो को धीमे से गुनगुनाते, तो मन का दर्द झाकता सा दिखाई पडता।

जैसा कि आचार्य वाजपेयी जी ने लिखा है ...'बाहर से उनका व्यक्तित्व देखकर कोई उनकी मुस्कान से मुग्ध होता, कोई उनकी व्यवहार पटुता और मैत्री से मोहित होता, किन्तु उनके इस दिव्य और मोहक बाह्य के भीतर जाकर अपनी ही कृति मे आनन्द मनाने वाले, कीर्ति की लिप्सा न रखने वाले, भली बुरी समीक्षाओ से समान रूप से तटस्थ रहने वाले, निस्पृह और दिव्यकर प्रसाद जी को बहुत कम लोगो ने देखा[2]।'

इसी प्रकार शिवपूजन सहाय जी के शब्दो मे 'स्मित पूर्वाभिभाषी प्रसाद का व्यक्तित्व, विशिष्ठ मानवोचित गुणो के कारण बड़ा हृदयग्राही था। उनकी सरल

१—सुधाकार पाण्डेय . कामायनी समीक्षा, पृष्ठ १८।
२—पं० नन्द दुलारे वाजपेयी · जय शकर प्रसाद, पृष्ठ १९।

वाणी की मधुरिमा उनके मुक्त हास्य की विमलता, उनके स्वस्थ शरीर की गठन, उनके सुखद शील की आर्यता, उनके स्वार्जित पाडित्य की प्रौढता, उनके सहिष्णु स्वभाव की कुलीनता, उनकी सद्य: फला—स्मृति-शक्ति की प्रखरता, उनके सामाजिक जीवन की उच्चता, उनके निष्कपट व्यवहार की शालीनता, उनकी निस्पृह साहित्य सेवा की महत्ता—सब ने मिलकर उनके व्यक्तित्व को विशद बनाया था। वैसा मोहक और उत्प्रेरक व्यक्तित्व आज हिन्दी-जगत मे सावधानता से टटोलना पडेगा[१]।

डा० नगेन्द्र ने भी प्रसाद के गम्भीर सघर्षमय एव उद्वेलनो से पूर्ण जीवन की परिस्थितियो मे शान्त तरलता को हास भरते हुए देखा है—'शान्त गम्भीर सागर, जो अपनी आकुल तरगो को दबाकर धूप मे मुस्करा उठा है, या फिर गहन आकाश जो झझा और विद्युत को हृदय मे समाकर चाँदनी की हसी हस देता है, ऐसा ही कुछ प्रसाद का व्यक्तित्व था।'

प्रसाद जी स्वभाव से विशाल हृदय और स्वतन्त्र विचारो के व्यक्ति थे। अपने मित्रो का स्वागत वे बडी आकर्षक आत्मीयता से मुस्कराते हुए करते। किसी के प्रति वैमनस्य या ईर्ष्या का भाव उनके मन मे उत्पन्न न होता। वे शिष्टाचार का बड़ा ध्यान रखते थे। अपशब्दो का प्रयोग भूलकर भी नही करते। उनके मुक्त स्वभाव मे भी एक मर्यादा रहती थी। इसीलिए अशिष्टता से उन्हे चिढ थी। वे अत्मसम्मान की मर्यादा को समझते थे, इसी से दूसरो का सम्मान करना उन्हे इष्ट रहा। वे किसी से लाभ या स्वार्थ साधने की आशा नही करते थे। अपने ऐश्वर्य को लेकर उन्हे अभिमान न था। हाँ, उन्होंने अभिमान सदैव उन्ही को दिखाया, जो अपने को कुछ समझते थे तथा बनते थे। यह काशी के वातावरण के गठन का फल था[२]। प्रसाद जी को कौतूहलपूर्ण वार्ताएं सुनने का चाव था। यात्रा वर्णनो को सुनने के लिए बड़े आकृष्ट रहते थे।

प्रसाद जी बड़े व्यवहार कुशल थे। वे अपने अनुभवो मे परिपक्व, भले बुरे के यथार्थ पारखी तथा दृढ व्रती लौह-पुरुष थे। यात्रा और कवि सम्मेलन...इन दोनो के प्रति वे बडे शिथिल रहे है। उनकी दिन-चर्या बडी सामान्य रही है। उनमे न तो कही धूम-धाम को ही स्थान है, न कही विज्ञापन को ही। लौकिक विज्ञापन से सर्वथा दूर रहकर आत्मसुख की खोज करने वाले प्रसाद जी प्रकृति से दूर नही दिखाई देते। गृहस्थी और व्यापार उनकी लौकिक प्रवृति के परिचायक है, किन्तु चिन्तन मनन उनकी अभ्यान्तर निवृति का सदेश देते हैं ... उपनिषद् और गीता दोनो का समवेत रूप ही प्रसाद जी की दिनचर्या मे प्रतिफलित हुआ था[३]।

१—शिव पूजन सहाय : प्रसाद का साहित्य : संकलित , पृष्ठ २२।
२—सुधार पाण्डेय : कामानी समीक्षा, पृष्ठ १७।
३—महाकवि प्रसाद, पृष्ठ ७।

प्रसाद जी आस्थावान धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष थे। शिव उनके उपास्य थे। वे खान-पान मे परहेज मानते थे तथा शकुन आदि पर उन्हे विश्वास था[१]। प्रसाद जी में विद्रोह की, एक गहरे परिवर्तन की धारणा तो थी, परन्तु उस धारणा को प्रकाशित करने की उनकी प्रणाली या साधन क्रान्तिकारी न थे ...उनके सस्कार तथा मन की रचना कुछ ऐसी थी कि वे विद्रोह के किसी क्रियात्मक आन्दोलन का नेतृत्व करने की क्षमता नही रखते थे। उनकी निस्सगता की धारणा भी इसमे बाधक थी[२]।

प्रसाद जी अच्छे भोजन के शौकीन थे। नई-नई पाक प्रणालियो का आविष्कार कर स्वय भी अच्छा भोजन बना लेते थे। उनका भोजन हमेशा सात्विक होता था। मास मदिरा से उन्हे घृणा थी। पान और आहार के पश्चात तम्बाकू के अतिरिक्त और कोई व्यसन न था। बागवानी, शतरंज, सगीत, मूर्तिकला, चित्रकला आदि में इनकी अभिरुचि थी। कभी-कभी किसी महान् लेखक की कहानी पर बनाए गए फिल्म को भी देख लेते थे। प्रसाद जी को रेशमी वस्त्र पहनने का शौक था। किन्तु घर पर प्राय खादी ही पहनते थे। जीवन के उत्तर काल मे वे पूर्णतया खादी ही पहनने लगे थे। कभी कभी दुपलिया टोपी पहन कर बाहर निकलते, जो उन पर खूब फबती थी। प्रसाद-गृह के सर्व प्रिय अगो मे मन्दिर, फुलवाडी और अखाडा रहे हैं। प्रकृति-प्रेम की शिला तो बाल्य-काल से ही रखी गई थी। तब एक बार उन्होने अपनी माता और बहिन के साथ धाराक्षेत्र, ओकारनाथ, पुष्कर, उज्जैन, ब्रज तथा अयोध्या की यात्रा की थी। दूसरी बार अपनी दूसरी पत्नी के निधन के उपरान्त वे यात्रा पर गए थे। वे दोनों बार प्रकृति के असीम सौन्दर्य से प्रभावित हुए, इसीलिए प्रकृति इनकी रचनाओ मे ओत-प्रोत है।

(ग) जीवन दर्शन, विचारधारा

प्रसाद जी के जीवन का सुवर्णिम अश उनका बाल्य-काल है। किशोर होने पर उन्हे जीवन की वैषम्यपूर्ण परिस्थितियो का सामना करना पड़ा। इस सघर्ष मे उन्हे ससार के व्यावहारिक अनुभव हुए। उन अनुभवों के आधार पर सुख-दुख की व्याख्या करते हुए उन्होने अपना मार्ग प्रशस्त किया। वही व्याख्या उनके साहित्य का प्राण है। सघर्ष, दुख की अनिवार्यता, करुणा, विश्वात्म भाव ...इन सब की गहरी छाप केवल उनके अध्ययन और मनन का ही परिणाम न थी, वरन् यह उनके जीवन का एक वास्तविक सत्य भी था, जिसमे से होकर वे निकले थे। उनके साहित्य में अतीत के स्वर्णिम स्वप्नों की भरमार है, इसलिए कि अपने युवाकाल मे भी वे

१—विनोद शकर व्यास · प्रसाद और उनका साहित्य, पृष्ठ २०।

२—राम नाथ सुमन : 'प्रसाद और उनका साहित्य' : मे श्री व्यास द्वारा उत्कथित, पष्ठ २०।

बाल्य-काल की स्वर्णिम अनुभूति और महान् ऐश्वर्य का स्वप्न नही भूल सके थे, जिसे उन्होने देखा और कल्पित किया था।

जीवन का इतना वैषम्य सहते हुए प्रसाद मे जीवन के प्रति अपार आसक्ति थी, क्यो कि वे 'जीवन अलभ्य है, जीवन सौभाग्य है' पर अटूट विश्वास करते थे। अपने अन्तिम समय मे भी जब डाक्टरो ने निराश होकर उनसे कहा—'जो कुछ कहना हो कह दीजिए', तब भी प्रसाद जी ने केवल यही कहा था...'साँस लेने मे बहुत कष्ट हो रहा है, उसे दूर करने की दवा दीजिए[१]।'

प्रसाद जी नियतिवादी थे। उन्होने अपने छोटे से जीवन मे कई बार अपने स्नेह को खडित होते देखा था। नियति के निर्मम विधान के सम्मुख इसी कारण वे जीवन भर झुके रहे। जीवन की इन कठोरताओ ने उन्हे नियति पर विश्वास करने के लिए विवश कर दिया था[२]। लेकिन फिर भी उन्होने अपने जीवन की किसी भी दिशा को पलायनवादी भावना से प्लावित नही होने दिया। कर्म पर उनकी असीम आस्था थी। शिव के वे महान् उपासक थे, फिर भी अन्य देवताओ तथा धर्मो के प्रति वे सदैव सहिष्णु रहे। जाति पाँति की सकीर्णता भी उनमे नही थी। वे किसी कार्य को नीचा नही मानते थे। ब्राह्मण का आदर करते हुए शूद्र का असम्मान वे निन्दनीय मानते थे। वे अपना काम अपने हाथो करने और जानने के पक्षपाती रहे[३]।

एक बार प्रसाद जी ने 'जागरण' के अग्रलेख मे लिखा था—कलाकार की कसौटी उसकी कला है न कि उसका व्यक्तित्व। वाल्मीकि और व्यास का आदर्श रखते हुए तो यह कहना पडता है कि बिना जले हुए, विदग्ध साहित्य की सृष्टि नही हो सकती, और तब कलाकार अपनी कला मे व्यक्तित्व को खोकर कला के ही रूप मे प्रतिष्ठित होता है।' प्रसाद जी ने स्वय भी विदग्ध होकर अपने साहित्य की रचना की थी। उनके व्यक्तित्व और साहित्य दोनो मे सामन्जस्य की एक श्रेणी सी फैली हुई प्रतिलक्षित होती है। कही कोई विरोधाभास या वैषम्य नही है। लगता है कि जैसे दोनो का समन्वय किसी वैज्ञानिक पद्धति से किया गया हो। स्वय उनके पुत्र श्री रत्नशकर ने 'प्रसाद की दिनचर्या' सस्मरण मे लिखा है—'उनके साहित्यिक जीवन तथा घरेलू जीवन का एक ही सत्य था, वह था सामरस्य का सत्य[४]। और यही सामरस्य की भावना उनके साहित्यिक एव व्यावहारिक जीवन को भी एकाकार करने मे प्रतिफलित हुई है।

१—गुलाब राय प्रसाद जी की कला, पृष्ठ ७।

२—डा० प्रेम शकर : प्रसाद का काव्य, पृष्ठ २८।

३—रत्न शकर 'प्रसाद' . प्रसाद का साहित्य मे, पृष्ठ २५।

४—वही, पृष्ठ २०।

(ब) अध्ययन—

प्रसाद जी के गम्भीर और विशाल अध्ययन के आधार पर उनके नारी सम्बन्धी आदर्शो और मान्यताओ को परिपुष्टि प्राप्त हुई है। उन्होने वैदिक साहित्य से लेकर स्मृति, पुराण, उपनिषद, इतिहास तथा बौद्ध और शैव दर्शन का अध्ययन कर तथा उनसे प्रभावित हो अपने विचारो को स्वरूप प्रदान किया। उनकी विचार धारा के विकास मे सस्कृत और भारतीय इतिहास का विशेष योगदान रहा है। भारतीय इतिहास मे उन्होने उसके सुवर्णयुग—गुप्तकाल को ही अपने नाटको की पीठिका के रूप मे प्रस्तुत किया है। दूसरी ओर कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ वाल्मीकि, व्यास आदि प्रभृति साहित्यकारो की रचनाए उनके साहित्य मे एक वीथिका सी बनाती चलती है।

वैदिक साहित्य मे—जैसा कि हम 'पृष्ठभूमि' मे कह आए हैं, नारी सम्मान के प्रति एक विशेष आदर की भावना व्यक्त हुई है। उनमे स्त्री और पुरुष परमात्मा के दो रूप माने गए हैं —

स्वेच्छामय· स्वेच्छया च द्विधारूपो वभूव ह।
स्त्रीरूपो वामभागाशो दक्षिणाश: पुमान् स्मृत।

दर्शन शास्त्रो और उपनिषदो का अध्ययन भी प्रसाद जी की रुचि का विषय रहा है। इन दर्शन ग्रन्थों मे जीव सृष्टि की दो स्वतन्त्र धाराएँ मानी गई है। एक स्त्री धारा और दूसरी पुरुष धारा—

'नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायम् नपुसक:
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स लक्ष्यते।'
(श्वेताश्वतर उपनिषद)

वैदिक साहित्य मे नारी को पुरुष के समान ही मान कर नही रहा गया है। उसे पुरुष से उच्चतर बनाने की चेष्टा निरन्तर कार्यान्वित हुई है और इसीलिए इनका स्तवन किया गया है (ऋगवेद ४।५७।६।७)। प्रसाद जी पर इन वैदिक मान्यताओं का यथेष्ठ प्रभाव पडा है। वैदिक साहित्य की प्रेरणा से प्रसाद ने अपने युग के अनुकूल जीवन के आदर्शो की प्रतिष्ठा की है। नारी को, जो इनके युग में आकर परवशता और दैन्य का जीवन बिता रही थी, इन्होने फिर से सम्मान, सहानुभूति और आस्था प्रदान की।

सस्कृत साहित्य से प्रसाद जी का अटूट सम्बन्ध रहा है। कही कही उनके आदर्श कालिदास, भवभूति आदि साहित्यकारों के बहुत निकट आ जाते हैं। कालिदास को सामान्यत: प्रणय और शृगार का कवि माना जाता है परन्तु 'संस्कृत

कवियो मे वही अकेला ऐसा कवि है (वाण को छोडकर) जिसने अपने युग की चेतना को अपने काव्यो मे तरलित कर दिया है। यदि कालिदास सस्कृत साहित्य का चोटी का रस सिद्ध कवि है तो दूसरी ओर भारत के प्राचीन इतिहास के ज्वलन्तमय युग का दीपस्तम्भ और पौराणिक ब्राह्मण धर्म तथा वर्णाश्रमधर्म का सच्चा प्रतीक[1] भी।' प्रसाद के विषय मे भी यही बात सच्ची उतरती है। महान कवि, नाटककार और अतीत के गायक होने के साथ-साथ वे अपने युग के व्याख्याता भी है। कालिदास का युग गुप्तकाल माना जाता है। गुप्त काल भारतीत इतिहास का सुवर्ण-युग रहा है, प्रसाद जी ने भी इसी अतीत का चित्राँकन किया है। इस बिन्दु पर दोनो साहित्यकार एक हो जाते है। मानव भाव के विविध रूपो का आकलन कालिदास की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता रही है। विजातीय आकर्षण से सघर्ष की उत्पत्ति और तदुपरान्त सामजस्य की स्थापना पर कालिदास का विश्वास रहा है।

कालिदास ने नारी पात्रो के प्रति एक सहज सम्मान की भावना को अधिष्ठित किया है। कालीदास की नारी अपने स्वरूप मे साध्वी, श्रद्धामयी, मूर्तिमयी तथा सत्क्रिया स्वरूपा है। गृहिणी के रूप मे वह अपार गर्व रहित, पूर्ण समर्पित तथा विश्व मैत्री की सदेश-वाहिका रही है। कालिदास के युग के अनुसार उसमे सपत्नीक भावना का अभाव भी है। कालिदास की नारी भी केवल प्यार करने की सुविधा माँगती है। स्त्री-पुरुष के प्रथम दृष्टि के प्रेम पर सस्कृत कवि भी विश्वास करता है। नारी की स्वतन्त्रता का भी वह हामी है। परन्तु स्वच्छन्दता, जो नैतिक नियमो का उल्लघन करने को तत्पर होती है, कालिद स को मान्य नही है। दुष्यत द्वारा सीमाल्लोघन करने की तत्परता मे शकुन अपने आत्म सम्मान और मर्यादा की रक्षा करती हुई उसे रोक देती है—पौरव, रक्ष विनय, मदनसतप्तापि न खल्वात्मन प्रभवामि।'

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् पृष्ठ २४, गोविन्द प्रकाशन, अहमदाबाद)

कालिदास ने 'प्रभुता तवैव[2] कह कर पुरुष पर नारी की महत्ता को स्वीकार किया है। वे नारी के शारीरिक आकर्षण की अपेक्षा उसके आत्मिक सौदर्य को अधिक महत्त्व देते हैं। सौदर्य का महत्त्व भी तभी है जब कोई उसका प्रेमी हो 'प्रियेषु सौभाग्य फला हा चारुता। नारी मे सौंदर्य के साथ-साथ तपश्चर्या का होना भी अनिवार्य है, उसी के तेज मे ही उसका सौन्दर्य निखार पाता है। इसलिए अपूर्व सुन्दरी होते हुए भी पार्वती को शिव की तपस्या करनी पडी है। नारी को इतने महत्त्व प्रदान के साथ-साथ कालिदास उसके लिये स्मृति विहित मार्ग की योजना करते हैं। उच्शृखलता उन्हे लेश-मात्र भी मान्य नही है। शकुन्तला को

१—भोला शकर व्यास ' सस्कृत कवि दर्शन, पृष्ठ ७१।

२—अभिज्ञान शाकुन्तलम्, ७वाँ अक, श्लोक ३२।

जरा सी कर्त्तव्य विमुखता के लिये दुर्वासा के शाप का भागी होना पडा। कालिदास की नारी की सबसे बडी विशेषता उसका सदैव आशावादिनी होना है।

कालिदास के उपरान्त भवभूति के 'उत्तर राम चरित' मे सीता नारी का एक नवीन आदर्श उपस्थित करती है। वहाँ उसका अपना कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नही है। वह पूर्ण आत्म-समर्पिता है। राम का सुख उसका ध्येय है—'प्रियार्ह खलु सर्वस्यार्यपुत्रो विशेषतो मम प्रियसख्या :' उसके प्रणय मे निष्काम भावना का चरम उत्कर्ष प्रतिलक्षित होता है। भवभूति ने नारी को करुणा की मूर्ति के रूप मे देखा है :—

'करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथैव वनमेति जानकी।'
(उत्तर रामचरित पृष्ठ ६७)

वह कोमल, भावुक और सवेदनशील है तथा स्वभाव से ही प्रेम करने वाली है। 'प्रकृत्यैव प्रिया सीता।' कालिदास और भवभूति दोनो महाकवियो की विशेषता नारी के प्रेम की एकनिष्ठा की भावना को लेकर है। भवभूति की सीता में भारतीय आदर्शानुकूल नारी के सभी उदात्त गुणो—पावित्र्य, साहस, धैर्य तथा औदार्य की समाविष्टि हुई है। यहाँ भी प्रेम के क्षेत्र मे व्यष्टि का समष्टि मे पर्यवसान होता है। जब राम लोक हित के लिए स्नेह, दया, सौख्य और यहा तक कि सीता को भी त्याग देने की बात कहते है तो सीता उनका समर्थन करती हुई कहती है—

'अत एव राघवकुलधुरन्धर आर्यपुत्र.'

कालिदास की भाँति भवभूति भी रूप की अपेक्षा आदर्शों की महत्ता प्रस्थापित करते हैं।

भारवि के 'किरातार्जुनीय' से प्रसाद जी को अपने नाटको की राजनैतिक पृष्ठ भूमि, युद्ध स्थल वर्णन, राजकीय समाज, मन्त्रणाएँ, सामन्ती विलास गृह आदि के चित्र प्रस्तुत करने मे सहायता प्राप्त हुई है। भारवि राजनीति के प्रकाण्ड पडित थे। युधिष्ठिर की उक्तियाँ इसका प्रमाण हैं। राजनीति की ही भाँति वे काम-शास्त्र के भी अच्छे पडित रहे है। परन्तु उनमे कालिदास की सी रसिकता नही। भारवि का शृंगार भाव-पक्ष की अपेक्षा अपने कला-पक्ष मे महान् है। वे प्रणय के नही वरन् प्रणय-कला के कवि हैं।

भारवि की भाँति माघ का 'शिशुपाल वध' भी उनके कलावादी कवित्व का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनमे पाडित्य की प्रचुरता है। कलावादी होने के कारण उनमें शब्द और अर्थ दोनों के सौन्दर्य पर ध्यान देने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है।

सस्कृत काव्य धारा के मूल स्रोत वाल्मीकि-रामायण का अध्ययन प्रसाद जी की विशेष चिन्तना का विषय रहा है। जीवन के स्थायी तत्वो से अनुप्राणित और उन पर आधारित यह काव्य कृति अपनी प्रमुख विशिष्टता—उदात्तता—को लेकर प्रस्तुत होती है। आदि कवि वाल्मीकि के 'इस काव्य-मन्दिर की पीठ स्थली है राम तथा जानकी का चरित"[1]। राम चरित्र की उदात्तता, पूर्ण मानव के रूप मे अपने मे महान् है। जानकी के शील सौन्दर्य का तेज अपनी सम्पूर्ण शीतलता के साथ नि सृत हुआ है। उनके उत्कृष्ट चरित्र मे उदात्तता मूर्तिमान हो उठी है। परित्याग के समय भी उनका धैर्य तथा मन की उदारता सस्कृत साहित्य मे अपना सानी नही रखती। प्रसाद जी के नारी पात्रो मे नि:सृत उदात्तता का यह गुण विश्व कवि वाल्मीकि की लेखनी के चमत्कार से अनुप्राणित है।

रामायण की ही भाँति व्यास के महाभारत से भी प्रसाद जी प्रभावित हुए हैं। उनके ककाल का वर्ण सकर समाज महाभारत के अध्ययन की देन है। उन्होने अपने समाज मे महाभारत कालीन समस्याओ और विषमताओ को लक्ष्य किया था। महिलाओ की स्थिति का अध्ययन इस दिशा मे विशेष चिन्तन का विषय बना। सामाजिक व्यवस्था की उच्छृखलता मे किस प्रकार जीवन विभीषिकाओ की केन्द्र स्थली बन जाता है और सामाजिक व्यावहारिकता की गति मे किन परिस्थितियो के कारण शैथिल्य आ जाता है, प्रसाद जी ने इन सबका मनन किया था, परिणाम स्वरूप उनका विश्लेषण ही उनके साहित्य का विषय बना।

सस्कृत साहित्य के इस अध्ययन के साथ-साथ प्रसाद जी ने शैव दर्शन, बौद्ध दर्शन तथा इतिहास का भी गहन अध्ययन किया था। उनका परिवार शैव मत का अनुयायी था। शैव दर्शन आगम ग्रन्थो का एक प्रकार है। शैव दर्शन के अन्तर्गत प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रसाद जी अत्यधिक प्रभावित थे। इसी दर्शन के आधार पर उनके नारी सम्बन्धी दार्शनिक दृष्टिकोण का विकास हुआ है। 'जिस तरह स्त्रीतत्व और पुरुष-तत्व के योग से साधारण ससृति की उत्पत्ति होती है उसी तरह प्रत्याभिज्ञ—दर्शन मे भी आनन्द-रूपा शक्ति एव चित्त रूप शिव को सोम तत्व तथा अग्नि तत्व एव नाद तथा बिन्दु कह कर दोनो के पारस्परिक सघटनात्मक सामरस्य से, सम्पूर्ण विश्व का विकास सिद्ध किया है।

(तन्त्रलोक, भाग २, पृष्ठ ६८, १२८, १६२, १६३)

प्रसाद साहित्य मे उक्त दर्शन की अन्य विशेषताएँ नियतिवाद, स्वतन्त्रतावाद, अभेदवाद (आभासवाद) समरसता तथा आनन्दवाद के रूप मे अभिव्यक्त हुई है। इस दर्शन का विकास काश्मीर प्रदेश मे होने के कारण, इसे काश्मीरीय शैव दर्शन भी कहा जाता है।

१—बलदेव उपाध्याय · बाल्मीकि, आलोचना (अक २५, पृष्ठ ३६)।

शैव दर्शन के साथ-साथ बौद्ध दर्शन का प्रभाव भी प्रसाद साहित्य मे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। बौद्धदर्शन के अनुसार सारा ससार दुख पूर्ण है, दुखों के कारण है, दुखों का नाश हो सकता है और इसके लिये उपाय भी हैं। प्रसाद मे दुखवाद का स्वर बहुत ऊचा है। उनके अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त एव कामायनी मे इसके उदाहरण बिखरे पडे है। साथ ही वे इस दर्शन की दूसरी मान्यता क्षणिकवाद से भी प्रभावित है। इस सदर्भ मे कामायनी की ये पक्तिया द्रष्टव्य है।

'जीवन तेरा क्षुद्र अश है।
व्यक्त नील घन-माला मे।
सौदामिनी सधि सा सुन्दर।
क्षण भर रहा उजाला मे'। (पृष्ठ १९)

महायान सम्प्रदाय के अनुसार बुद्धत्व को वही प्राणी पा सकता है जिसमे प्रज्ञा के साथ-माथ महाकरुणा का भाव भी विद्यमान हो। 'बोधिचर्यावतार पडिका' मे लिखा है कि बोधिसत्व या जीवात्मा का एक ही धर्म है कि वह महाकरुणा को प्राप्त करे। 'महाकरुणा की प्राप्ति से ही बुद्धत्व की प्राप्ति होती है।'

प्रसाद जी को करुणा की यह प्रेरणा बौद्ध साहित्य के अतिरिक्त भगवद्गीता से भी प्राप्त हुई है। गीता मे करुणा को शान्ति प्राप्त योगी का एक लक्षण बतलाया है और कहा है कि जो 'व्यक्ति परम् शान्ति को प्राप्त कर लेता है वह समस्त प्राणियों से द्वेष रहित हो जाता है, सबका मित्र बन जाता है तथा सभी के प्रति करुणा का भाव रखने लगता है।

प्रसाद ने भारतीय साहित्य के इस अध्ययन के साथ-साथ पाश्चात्य साहित्य का भी अध्ययन किया था। वे स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक थे। अत पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवि उनके अध्ययन के मुख्य विषय रहे है। १९ वी शती मे योरुपीय स्वच्छन्दतावाद की इस काव्य धारा का विकास बाइरन, शैली और कीट्स में पूर्ण विकसित हुआ है। बाइरन मे विद्रोह और क्रान्ति की भावना का उत्कर्ष है। वह आध्यात्मिकता और नैतिकता का आरोपण नही करता ; भावना का प्रवेग, सौन्दर्य ही उसके काव्य मे सशक्त होकर आते है। इसके विपरीत शैली मे कोमल कल्पना की अवस्थिति हुई है। स्नेह, सहानुभूति के साथ-साथ करुणा की छाया सी उसके साहित्य मे विस्तृत है। प्रसाद को शैली की यह करुणा भली लगी है—लेकिन दोनो कवियो की करुणा मे महान् अन्तर है। शैली मे निराशावाद का स्वर ऊँचा है। वह जीवन से उदासीन है। वह कहता है—

'दिन और रात का उल्लास न जाने कहां चला गया। नवल मधुमास, ग्रीष्म और शिशिर वृद्ध होकर मेरे छोटे से मन को शोक और पीड़ा से भर देते हैं, किन्तु उल्लास कभी नही आता, ओह ! अब कभी नहीं आता।'

दूसरी ओर प्रसाद की करुणा मे शक्ति और विश्वास की भावना जीवन के लिये सदेश और सम्बल बन कर आती है—

'नीरव जीवन और एकान्त व्याकुलता, कचोटने का सुख मिलता है। जब हृदय मे रुदन का स्वर उठता है तभी सगीत की वीणा मिला लेती हूँ। उसी मे सब छिप जाता है।' (पृष्ठ ९०, स्कन्दगुप्त)

स्वच्छन्दवादी कवियो मे कीट्स प्रेम की तीव्रतम अनुभूति को लेकर उपस्थित हुआ है। इसीलिए उसमे मासल रोमान्स की भावना विशेष रूप से अभिव्यक्त हुई है। अपने प्रणय की असफलता मे वह शान्त, गम्भीर और सतुलित नही रह सका है।—उसके जीवन-दर्शन मे सामजस्य का अभाव है। फेनी ब्राउनी के विषय को लेकर अपने साथी ब्राउन को लिखे गये पत्रो मे उसकी मासल पिपासा जैसे तृप्ति के अभाव मे चिल्ला-चिल्ला कर रो उठी है। एक पत्र मे उसने लिखा है—

'मैं मर सकता हूँ, लेकिन उसे नही छोड सकता। हे भगवन्, भगवन्, भगवन्! मेरे सदूक मे सब कुछ है, जो भाले की धार के समान शरीर मे प्रवेश करता हुआ उसकी याद दिलाता है। उसके विषय मे मेरी कल्पना बहुत स्पष्ट है ब्राउन! मैं उसे देखता हूँ, मैं उसे सुनता हूँ। ब्राउन! मेरी छाती मे अगारे दहक रहे है।'

क्रीट्स की भाँति प्रसाद को भी प्रणय की असफलता का सामना करना पडा था। परन्तु प्रसाद मे सयम, उदारता, धैर्य और गम्भीरता का अभाव कभी नही रहा।

क्रीट्स में उत्कट कोमलता की भावना विद्यमान थी। उसने स्वय लिखा है— ...'जब मैं स्कूल का विद्यार्थी था तब मैं नारी को पवित्र देवी के रूप मे मानता था। मेरा मन एक कोमल नीड की भाँति था जिसमे उनमे से कोई न कोई निद्रा लेता रहता था। भले ही उसे इसका पता न हो। मैं उन्हे पुरुष से भी उच्च समझता था।...लेकिन अब जब मैं नारी के साथ होता हूँ, मेरे मन मे बुरे विचार आते है। मैं उन्हे शका से देखता हूँ। मैं न तो चुप ही रह सकता हूँ, न बाते ही कर सकता हूँ।'

उपर्युक्त स्वच्छन्दतावादी कवियो के अतिरिक्त प्रसाद जी का अध्ययन इब्सन, फ्रायड् और बर्नार्डशा के विषय को लेकर भी रहा है। नये युग मे टी० एस० इलियट तथा गेटे आदि के साहित्य से प्रसाद जी परिचित रहे है। उनके इस बिस्तृत अध्ययन के परिणाम स्वरूप उनके साहित्य मे वैविध्य का सौन्दर्य निखरा है। अध्ययन और मौलिक उद्भावनाओं के सामंजस्य से प्रसाद ने जिस साहित्य की रचना की है उसका महत्व अपनी मान्यताओ तथा आदर्शो को व्यवस्थित, स्पष्ट और सही रूप से प्रस्तुत करने के सदर्भ मे बहुत अधिक बढ जाता है।

(स) सामाजिक परिपार्श्व—

प्रसाद के अभ्युदय का काल भारत की राष्ट्रीय जागृति एव सामाजिक चेतना का काल है। १६ वी शती के उत्तर काल मे बहुत सी छोटी २ राष्ट्रीय सस्थाओ की स्थापना होकर अत मे राष्ट्रीय काग्रेस के रूप मे एक सुदृढ राजनैतिक सस्था का निर्माण हो चुका था और प्रसाद के साहित्यिक जीवन आरम्भ करने के समय तक यह अपने स्वरूप मे शक्तिशाली एव सुनिश्चित लक्ष्य लेकर चलने वाली सस्था मान ली गई थी। १६०४ मे जापान जैसे छोटे से देश ने रूस पर विजय प्राप्त कर ली। भारत को इससे प्रेरणा मिली और दूसरे ही वर्ष १६०५ मे कांग्रेस के काशी अधिवेशन मे तिलक ने 'स्वतन्त्रता के जन्म सिद्ध अधिकार होने की घोषणा कर दी। इसी वर्ष बगाल-विभाजन के विरोध-स्वरूप राष्ट्रीय कॉग्रेस का क्षेत्र-विस्तार और भी तीव्र गति से हुआ और धीरे-धीरे महिला-समाज का भी राजनैतिक एव रचनात्मक कार्यो मे आवाहन् होने लगा। वास्तव मे प्रसाद-युग राजनैतिक क्षेत्र मे गॉधी-युग है क्योकि इस काल मे देश का स्वरूप गाधी जी द्वारा निश्चित किया गया और वे ही इसके निर्माणकर्ता माने गए। इनके ही नेतृत्व मे अब आध्यात्मिक लाभो से अधिक महत्त्व वैज्ञानिक उन्नति तथा राष्ट्रीयता को दिया जाने लगा। देश-सेवा के लक्ष्य को सम्मुख रखकर इनके निर्देशन मे जाति-पाँत तथा लिंग के समस्त बाधा बन्धन नष्ट हो गए। नारी सम्मान, सत्यनिष्ठा एव अहिंसा पालन के शस्त्रों को लेकर वे विश्व बधुत्व के लक्ष्य-पथ पर बढने लगे, इस काल की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो ने भी भारत मे विकास पाती हुई इस विचारधारा का साथ दिया तथा मानवतावादी प्रष्तिठा की भावना को प्रश्रय प्राप्त हुआ।

राष्ट्रीय जागृति के इस प्रहर मे गाँधी जी ने युगों से उपेक्षित महिला के महत्व तथा उसकी आवश्यकता को समझा। उनकी अहिंसा नीति को सफल बनाने के लिए नारी ही सर्वश्रेष्ठ अस्त्र हो सकती थी। इटली मे अहिसा पर भाषण देते हुए उन्होने कहा था—

'अहिसा की यही विशेषता है कि नारी पुरुष के समान संघर्ष मे भाग ले सकती है। भारत मे अहिंसा सघर्ष मे नारी ने पुरुषो की अपेक्षा अधिक योग दिया है। अहिसा-युद्ध की नीति मूलतः सहन शक्ति पर आधारित है, और नारी से बढ कर सहन-शक्ति किसमे हो सकती है। (यग इन्डिया, १४-१-१६३२)

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दिनो मे महिलाओ मे राष्ट्रीय चेतना का विकास व्यापक रीति से हुआ। भारतीय इतिहास मे क्षत्रिय राजवंशों के बाद पहली बार नारी खुलकर राष्ट्रीय क्षेत्र मे अवतीर्ण हुई और उसने अपनी इच्छा से धार्मिक तथा जाति सम्बधी बन्धनो को तोडते हुए पुलिस की झिडकियाँ, लाठी प्रहारों और जेल की यातनाओं को सहा; न्यायालयो मे खड़ी हुई और अपूर्व उत्साह के साथ देश के चरणों पर अपने प्राणों की बलि दी।

प्रसाद युग भारत की राजनैतिक विकास-भावना के साथ-साथ सामाजिक, साहित्यिक, एव सॉस्कृतिक विकास का युग भी है, इसी युग मे नवीन विचार धाराओ को भी भारतीय भूमि मे प्रस्फुटित होने का अवकाश मिला। इनमे मार्क्स-वाद, बुद्धिवाद, जनवाद, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद तथा मानवतावाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन सभी विचार धाराओ ने समान रूप से मानव के मूल्य और महत्व की प्रतिष्ठा करनी चाही, अब भारतीय बिचोरको को चिन्तन और मनन के लिए एक नवीन भाव-भूमि प्राप्त हुई। फलस्वरूप परिसीमित नारी को अवरुद्ध परिपाटी के बाहर निकालकर उन्मुक्त बौद्धिक आलोक मे देखने का प्रयत्न किया गया। प्रसाद पर इस मानवतावादी विचारधारा का प्रचुर प्रभाव पडा है और यह सास्कृतिक, मानवतावादी भावना उनकी मूल साहित्यिक विचारधारा बनकर अभिव्यक्त हुई है।

इस युग की सामाजिक सुधार सस्थाओ मे विशेष आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन तथा ब्रह्म विद्या समाज ने अन्य समाज सुधारो के साथ-साथ नारी जागृति की भावना को विशेष बल प्रदान किया। महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्थापित आर्य समाज इन सभी सस्थाओ मे अग्रगण्य रहा क्योकि इसके माध्यम सैद्धान्तिक उपदेशों के स्थान पर रचनात्मक कार्यो को व्यवहार मे लाया गया। भारतीय सस्कृति का प्रचार, बाल विवाह निषेध, विधवा विवाह का समर्थन और गुरुकुलो की स्थापना आर्य-समाज के प्रमुख कार्यक्रम रहे है। स्त्री-शिक्षा के लिए आर्य-कन्या पाठशालाओ की स्थापना का सर्वोत्तम प्रबन्ध है। इसके साथ ही स्वामी दयानन्द ने युग निर्माता की भाति देश के सुप्त मस्तिष्क को प्रबुद्ध करने का प्रयास किया। उनका 'सत्यार्थ-प्रकाश' इस दिशा मे अपना निजी महत्व रखता है। सामाजिक जीवन को उत्प्रेरित करने और अतीत सस्कृति के पुनरुद्धार के निमित्त उनके 'आर्य-समाज' का कार्य प्रशसनीय रहा है। उसमे प्रतिक्रिया की भावना के स्थान पर नव-निर्माण की वास्तविक लालसा प्रमुख रही है। आत्मविश्वास की भावना से देश के उदास मस्तिष्क को चेतन करते हुए, वैदिक सभ्यता एव सस्कृति की प्रायोगिक श्रेष्ठता प्रामाणित करने मे उनका योगदान महत्वपूर्ण है।

इसी दिशा मे बम्बई मे स्थापित प्रार्थना समाज ने भी समाज-सुधार कार्यों को आगे बढाया है। प्रार्थना समाज के प्रमुख कार्यकर्ताओ मे लालशकर उमियशकर रहे है। अनाथ बालिकाओ एव महिलाओं को आश्रय देकर उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना तथा उन्हे स्वावलम्बी जीवन निर्वाह करने के उद्देश्य को लेकर नाना प्रकार के प्रशिक्षण देना इस सस्था की विशेषता रही है। इस समाज के संस्थापक महादेव गोबिन्द रानाडे तथा भडारकर की समाज-सेवाएँ अपना विशेष महत्व रखती हैं।

इस काल की दूसरी सस्था रामकृष्ण मिशन द्वारा धार्मिक क्षेत्र मे उदात्त दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई। स्वामी रामकृष्ण मूलत· सभी धर्मों को एक मानने के पक्षपाती थे। उनकी परम्परा मे उनके शिष्य विवेकानन्द हुए, जिन्होने भारतीय

अद्वैतवाद के व्यावहारिक रूप को विश्व के समक्ष बडे स्पष्ट रूप से बल तथा बिश्वास के साथ रक्खा। वे आध्यात्मिक भावनाओ के प्रसार द्वारा वेदान्त के सिद्धान्तो की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। उनका मार्ग सुधारवादी था। समाज मे व्याप्त अन्धविश्वासो पर स्थापित आडम्बर को एकाएक मिटाने के स्थान पर वे उनमे सुधार करने के पक्षपाती थे। स्वामी रामकृष्ण ने एक स्थान पर स्वय लिखा है... 'पुराने सभी विचार अन्ध विश्वास हो सकते है, परन्तु अंधविश्वासो के विशाल समूह मे सत्य की सुवर्ण कणिकाएँ है। क्या तुमने ऐसा साधन ढूंढ निकला है जिससे सुवर्ण को सुरक्षित रखते हुए उसकी अशुद्धि को दूर कर सको।'[1] उन्होने भारतीय सस्कृति एव भारतीय साधनो के माध्यम भारत के उद्धार, उन्नति और विकास की बात को बल दिया। प्रसाद जी इस मिशन के सिद्धांतो से काफी प्रभावित थे।

राजाराम मोहन राय द्वारा स्थापित 'ब्रह्म समाज' को आगे चलकर केशव चन्द्र सेन का सरक्षण एव दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। यह भी रामकृष्ण मिशन की भाँति पहले तो सुधारवादी ही अधिक था। बाद मे केशव चन्द्र सेन के समय मे इसमे क्राँति के बीज प्रस्फुटित होने लगे थे। समता और परोपकार इस सस्था के मूल मत्र थे। वेदान्त-धर्म 'समाज' द्वारा मान्य था, परन्तु मूर्ति-पूजा इसके सिद्धांतो के विरुद्ध थी। इस काल मे श्रीमती एनी बीसेट ने भारतीय आदर्शो एव परम्पराओ की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया। इनकी सस्था 'ब्रह्म विद्या समाज' का प्राचीन भारतीय सस्कृति के नवोन्मेष मे महत्त्व पूर्ण योगदान रहा है। परन्तु इस सस्था का सदेश केवल बुद्धिवादियो तक ही सीमित रह गया, अत. लोक प्रचार के अभाव मे इसका अधिक विकास न हो सका।

इसी सदर्भ मे हम गाँधी जी की सामाजिक विचारधारा पर भी कुछ कह लेना चाहते है। उन्होने सामाजिक क्षेत्र मे साहित्यिक प्रसाद की भाँति समन्वय और सामजस्य का आदर्श प्रस्तुत किया है। मानवतावादी आदर्श की स्थापना, व्यापक और विराट धार्मिक भावनाए, भारतीय सस्कृति का पुनरावर्तन, प्रवृति-निवृति का समन्वय, प्राणी मात्र के साथ ऐक्य-स्थापना का आदर्श तथा सबसे विशेष नारी स्वातन्त्र्य—गाँधी जी की सामाजिक विचार धारा के विशेष बिन्दु रहे हैं। इस युग मे उन्ही के माध्यम भारत ने व्यावहारिक क्षेत्र मे नारी को सम्मान देना सीखा है। 'मानव जीवन का कोई भी ऐसा पहलू नही है जिसमे गाँधी जी ने मौलिक सशोधन न किया हो। केवल विचार मे ही नही, आचार मे भी उन्होने क्रान्ति की है।'[2] गाधी जी भारतीय सस्कृति की सवेदनशील प्रकृति से भली भाँति परिचित थे और इसी लिए उसमें परिस्थिति और वातावरण के अनुकूल परिवर्तन या क्राति की जा सकती है, इस पर उन्हे अटूट विश्वास था और उन्होने प्रयोगात्मक रीति से इस सत्य को

१—सुधाकर पाण्डेय द्वारा 'प्रसाद की कविताएँ' पृष्ठ २२ पर उत्कथित्।
२—बसन्तलाल मुरारका स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ १६।

प्रस्थापित भी कर दिखाया, जो उनके सामाजिक जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है।

उपर्युक्त विवेचन के साथ साथ प्रसाद युगीन हिन्दी साहित्य की गतिविधि को जान लेना भी अप्रासगिक न होगा। प्रसाद युग सक्रान्ति का युग था, राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक आदर्श-प्रतिष्ठा, सास्कृतिक पुनरुद्धार एव साहित्यिक विचार परिवर्तन सभी क्राति की उत्प्रेरक भावनाए एक धारा मे सन्निहित होकर नवीन भारत की सृष्टि कर रही थी। जिस प्रकार प्रसाद-जीवन मे दूकान, गृहस्थी और साहित्य साधना की त्रिवेणी प्रवाहित हुई, कुछ उसी प्रकार साहित्यिक क्षेत्र मे भी उन्होने एक साथ चार-चार विरोधी युगो का प्रतिनिधित्व किया। प्रसाद के परिवार मे परम्परा से ही साहित्यिक लोगो का आवागमन बना रहता था। अत: बाल्य काल मे भारतेन्दु युग के अवशिष्ट सस्कारो से उनका परिचय हो चुका था। उनकी प्रारम्भिक कविताए भी ब्रजभाषा मे ही रची गई थी। द्विवेदी युग मे उन्होने स्वयं लिखना आरम्भ कर दिया था। उसके उपरान्त छायावादी कविता के अधिष्ठाता वे स्वय बने, जिसको महादेवी, निराला और पत के द्वारा सज्जापूर्ण व्यवस्था एवं अभिव्यजना की व्यापकता प्रदान की गई और अपने उत्तर काल मे 'कामायनी' 'ककाल' और 'तितली' द्वारा प्रगतिवाद का पथ भी उन्ही के द्वारा प्रशस्त किया गया।

भारतेन्दु युग मे समाज सुधार आन्दोलन काफी प्रौढ़ हो चुका था। जाति भेद, शिक्षा एव नारी समस्या उसके सम्मुख विशेष रूपसे विद्यमान थी। नारी सम्बंधी सुधारो का आरम्भ भारतेन्दु युग की सबसे विशिष्ट देन है जिसको द्विवेदी काल मे महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी तथा सत्यदेव परिव्राजक आदि साहित्य-सेवियो द्वारा विशेष महत्व दिया गया। छायावादी काल मे उसमे सात्विक मधुरिमा की सज्जा एवं महान् आदर्श की कल्पना प्रतिष्ठित की गई तथा उसको उच्चतर भाव भूमि मे अधिष्ठित किया गया। फिर प्रगति युग मे मानवतावादी दृष्टिकोण के विकास स्वरूप उसमे समानता के भाव की खोज की गई।

इसी काल मे राष्ट्रीय जागरण की उद्घोषणा भी हुई। अतः स्वराज्य की प्राप्ति के लिए नारी का सहयोग भी आवश्यक समझा गया। १६१७ के बाद नारी व्यावहारिक रूप से राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के समारोह मे भाग लेने लगी और उसकी परम्परागत परिबद्ध एव परिसीमित सीमाओ की लक्ष्मण रेखा मिटा दी गई।

प्रसाद ने भारतीय समाज की इस परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों का गम्भीर अध्ययन किया था। दूसरे तत्कालीन समाज के प्रभाव से भी वे अछूते न रहे थे। उन्होंने नारी की दयनीय वस्तु स्थिति को बहुत निकट से देखा था और तब सामाजिक मान्यताओ की प्रतिक्रिया स्वरूप वे उसके लिए अपने साहित्य मे स्वतंत्रता और सम्मान की उद्घोषणा लेकर प्रकट हुए।

(द) निजी अनुभव—

प्रसाद जी का जीवन किशोरावस्था से लेकर अन्त समय तक अनुभवो की कसौटी पर कसा जाता रहा है और ऐसी दशा मे उन्हे कडुवे मीठे सभी प्रकार के अनुभव हुए है। प्रतिकूल परिस्थितियो एव असम घटनाओ मे कभी कभी उनके दुखवाद का स्वर बहुत ऊचा सा उठता दिखाई पडता है। जैसे 'ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे धीरे' (लहर) वाली कविता मे, तब ऐसा लगता है मानो कवि, जीवन की इस विषमता से ऊब गया है, उसमे विरोध, प्रतिशोध करने की शक्ति भी नही रही है और इसी लिए वह कोलाहल की अवनी से दूर, ताराओ की घनी छाया के तले, तारको के ढुलकते हुए प्रदेश मे, जहाँ सागर की कोमल लहरिया अम्बर के कानो मे निश्छल प्रेम कथा कह रही हो—जाकर अपने जीवन की चिन्ताओ को भुलावा देना चाहता है और कभी लगता है कि वह इस जगत के छल और प्रवचनापूर्ण व्यवहार से शिथिल पड़ गया है, उसे कही भी अपनत्व एव मैत्री पूर्ण व्यवहार नही मिल पा सका है और शायद इसी लिए वह प्रत्येक शब्द को आँसुओं के व्यथा भार सा उठाता हुआ कह लेता है —

कहा मित्रता, कैसी बाते ? अरे कल्पना है सब ये
सच्चा मित्र कहा मिलता है ? दुखी हृदय की छाया सा
(प्रेम पथिक, पृष्ठ १५)

किन्तु अभावो, अवसादो और प्रवचना पूर्ण इस जगत मे पूर्ण रूपेण वैषम्य ही हो, ऐसा नही है।

जीवन की घनी विषमताओ के बीच प्रसाद का आशावाद अपनी सम्पूर्ण शक्ति लेकर अभिव्यक्त हुआ है। उनके मन के कोमल अ श को भी किसी की स्नेह धारा ने प्लावित किया है। जिस समय कवि अपनी घोर निराशा के प्रहर मे शिथिल प्राण हो, निश्चेष्ट हो चला था, तब कोई अपूर्व सौन्दर्य-कौतूहल बनकर उसके जीवन मे प्रविष्ट हुआ था ...

शशि मुख पर घू घट डाले
अ चल मे दीप छिपाये
जीवन की गोधूलि मे
कौतूहल से तुम आये।

प्रसाद जी 'आँसू' के इस कौतूहल पूर्ण सौन्दर्य का परिचय 'झरना' मे दे आए थे।

कर गई प्लाविव तन मन सारा।
एक दिन तव अपाग की धारा॥
हृदय से झरना ...
बह चला, जैसे दृगजल ढरना.

प्रस्तुत प्रकरण मे अपने विषय के अनुकूल हमे प्रसाद जी के नारी सम्बन्धी अनुभवो को ही देखना है। इसकी अपेक्षा कि हम इस विषय को प्रसाद-जीवन के मध्य से उठाए, यह अधिक सगत होगा कि यदि उनके आरम्भिक जीवन काल से ही नारी सम्बन्धी सम्बन्धो के आलोक मे उनके तद्विषवक विचारो के विकास को देखा जाय।

प्रसाद का नारी-सम्बन्ध माता, पत्नी, भाभी तथा प्रेमिका के चार रूपो मे देखा जा सकता है। प्रसाद जी अभिजातीय कुल मे उत्पन्न हुए थे। उनका पारिवारिक वातावरण सुसस्कृत तथा धार्मिक था अतः सामान्य अथवा मध्य वर्गीय नारी की वैषम्य पूर्ण परिस्थितिगो मे उत्पन्न कुण्ठा और कलह न तो वे देख ही पाए और न उन्हे उसका शिकार ही होना पडा, दूसरे परिवार मे सबसे छोटे होने के कारण बहिन और माता का उन्हे पूर्ण दुलार मिला। १०-११ वर्ष की अवस्था तक, जब तक उच्च वर्गीय परिवारो मे बच्चे को केवल दुलराया ही जाता है, प्रसाद जी अपनी माता का दुलार पाते रहे। बाद मे नियति की प्रतिकूलता के सम्मुख उन्हे माता के स्नेह से वचित होना पड़ा। इस प्रकार प्रसाद जी का नारी से माता के रूप का पहला अनुभव और सम्पर्क, असीम स्नेह, दुलार और ममता से पूर्ण रहा। माता के इस स्नेह ने प्रसाद के कोमल मस्तिष्क पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है और प्रसाद ने नारी के मातृत्व पद को ही सर्वश्रेष्ठ रूप माना है, प्रसाद साहित्य के अध्ययन से यह बात सहज ही स्पष्ट हो जाती है।

पत्नी के रूप मे नारी उनकी करुणा की ही अधिकारिणी बन सकी। उनके तीन विवाह हुए। वे अपनी पहली पत्नी को बहुत प्यार करते थे। दूसरी पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होने तीर्थ यात्रा की थी। उनके यौवन काल मे भी उनका स्नेह-सूत्र कई बार टूटा और परिणाम स्वरूप उसमे बार-बार गाँठे डाली गई। उन गाठो मे केवल करुणा का रस ही बन पाया और उनके समस्त साहित्य क्षेत्र मे विकीर्ण हो गया।

माता की मृत्यु के उपरान्त प्रसाद जी ने अपनी श्रद्धा अपनी भाभी के चरणो मे समर्पित की। वे उनसे लगभग १४ वर्ष ज्येष्ठ थी क्योकि भाभी भाभी थी, मा नही, अत. माँ के प्रति बाल्य काल का कोमल स्नेह और अपनत्व भाव अब युवा होने पर माँ के अभाव मे, माँ की अपेक्षा भाभी से अपेक्षाकृत दूरी के कारण, भाभी के प्रति श्रद्धा और सम्मान में परिवर्तित हो गया। उन्होने जीवन भर भाभी को माँ माना। और इस प्रकार से अपने पुत्र रूप को अक्षुण्ण बनाए रखा। नारी के प्रति उनकी असीम श्रद्धा-भावना का मूल भाभी के स्नेह से पोषित हुआ है। उधर भाभी आज भी किसी के द्वारा प्रसाद जी की बात उठाई जाने पर आखो मे आँसू भरे हुए 'मेरेलिए तो वह केवल शंकर था' कह कर पुत्रवत् स्नेह की झाँकी प्रस्तुत करती हैं। इस बात मे कोई अत्युक्ति नही होगी, यदि यह कहा जाय कि प्रसाद जी ने भाभी का सम्मान करके नारी का सम्मान करना सीखा।

अब हम प्रसाद की नारी-सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक धारणा के विषय पर आते हैं, जिसका सम्बन्ध उनकी प्रेम-घटना से है। यह ठीक है कि किसी कलाकार की महत्ता की भाप उसके व्यक्तिगत जीवन के आधार पर न होकर उसके द्वारा नि सृत कला के आधार पर होनी चाहिए। परन्तु कला की चित्रपटी मे उसके जीवन की अनुभूतिया एव अनुभवो के कण इस तरह घुले मिले रहते है कि उनको अलग कर उनकी कला का सही मूल्याकन करना कभी-कभी कठिन सा हो जाता है। इस बात से किसी प्रकार भी इन्कार नही किया जा सकता कि कलाकार की कला मे उसके जीवन की अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप मे हो ही जाती है।

प्रसाद की नारी सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक धारणा 'लहर' की कुछ कविताओ तथा 'आसू' के आधार पर निश्चित की जा सकती है। सबसे पहले हमे यह निश्चित करना है कि प्रसाद ने किसी से प्रेम किया था। उनके जीवन मे सयोग के कुछ क्षण अवश्य थे, परन्तु उन थोडे से सयोग क्षणो मे प्रेम के अनेक प्रस ग आये, पर वह सयोग काल इतना लघुतम था (या इ तना लघुतम लगा) कि प्रिय जब तक आलिगन में आए, समय पूरा हो गया और प्रिय उनसे बहुत दूर चला गया। कभी लौटा नहीं, इतना सब कुछ हम उनकी 'आत्म कथा' मे देख सकते है।[1] 'लहर' ही मे सग्रहीत एक दूसरी कविता उस प्रिय के सरल, सौम्य और अपनत्व से पूर्ण होने का प्रमाण देती है। पक्तियाँ इस प्रकार है...

स्निग्ध सकेतो मे सुकुमार
बिछल, चल थक जाता तब हार
छिडकता अपना गीलापन
उसी रस मे तिरता जीवन
तुम्हारी आँखो का बचपन (पृष्ठ २३)

लेकिन यह बचपन सदैव कवि के सम्पर्क मे न रह पा सका, तभी अपनी करुणा मे अभिसिक्त अत मे वह कहता है ...

'आज भी है क्या नित्य किशोर
उसी क्रीडा मे भाव विभोर,
सरलता का वह अपनापन
आज भी है क्या मेरा धन ?' (पृष्ठ २३)

बिरह की यह अनुभूति आसू मे अधिक तीव्र हुई है। इस विषय मे डा० प्रेम शकर की यह उक्ति कि 'झरना की प्रयोग-शाला की प्रथम आविष्कृति आँसू है।' बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है।

१—'लहर' (कविता सकलन) ; पृष्ठ ११।

आँसू के कवि ने आँसू के आलम्बन का रूप वर्णन कई पदो मे किया है, विशेष रूप से पद ३० से लेकर पद ४० तक। सौन्दर्य के प्रतीक उस रूप मे कवि पूर्ण रूप से समर्पित है।

लावण्य शैल राई सा
जिस पर वारी बलिहारी
उस कमनीयता कला की
सुषमा थी प्यारी प्यारी (पृष्ठ २०)

यह प्रमाणित करने के लिए कि उनका प्रिय पार्थिव जगत का वासी था, निम्नलिखित दो पद देखे जा सकते हैं—

बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरो से
मणि वाले फणियो का मुख
क्यो भरा हुआ हीरो से ? (पृष्ठ २१)

०

काली आखो में कितनी
यौवन के मद की लाली
मानिक मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली (पृष्ठ २१)

तो सौन्दर्य के साथ कवि का सयोग हुआ और वह भी उस समय जब उसके जीवन की स्थिति वैषम्यपूर्ण और हताश हो रही थी—

पतझड़ था झाड़ खड़े थे
सूखी सी फुलवाडी मे
किसलय नवकुसुम बिछाकर
आए तुम इस क्यारी मे

यहा पर थोडा सा 'सूखी सी फुलवारी' को समझते चले। कभी प्रसाद का जीवन हरी भरी फुलवारी सा सुख सौरभ पूर्ण रहा होगा। परन्तु प्रिय के आगमन के समय किसी निराशा, समस्या या जीवन की किसी विषम गुत्थियो मे फसे रहने के कारण वह पतझड सा झाड और झखाड़ों से पूर्ण सूखी फुलवारी मात्र सा हो गया, ऐसे समय मे किसी रूपवान् का स्नेह की आशीष का उपहार लिए आगमन कितना उत्साहमय और सुख पूर्ण हो सकता है, यह प्रसाद का कवि ही जान सका और इस लिए उसने बाद मे उसके कठोर बन जाने पर भी, उस पर अपनी निष्ठा और श्रद्धा बनाए रखी। प्रसाद के लिए तो इतना ही काफी था कि उनको किसी ने महान् निराशा के अवसर पर सान्त्वना और स्नेह दिया है।

फिर यह संयोग का क्षण पूर्ण हो गया। विरह के क्षण कवि के भाग्याकाश पर घिर गए। वह नारी जो पूर्ण ममता के साथ उसे स्नेह देती रही थी, उसे छोड कर चली गई। यहा पर सहसा ही कीट्स की 'ला बेली डेम सैण्स मरसी' की स्मृति आ जाती है। इस कविता के नायक की भाँति प्रसाद के 'आसू' का नायक भी पहले तो कलपता है, वियोग का आवेग उसे छटपटाने के लिए विवश कर देता है, उसकी बिरह वेदना उसे कचोटती हैं, फिर उसका विस्तार होता है, और यही से आसू का नायक कीट्स की कविता के नायक से भिन्न हो जाता है। वह देखता है कि गुलाब के पौधे की भाति उस जीवन मे सुख और दुख दोनो ही तो है। सुख-दुख,सयोग-वियोग, आशा-निराशा, और उत्थान-पतन...यही तो इस जीवन का क्रम है। यह सब कुछ उतना ही सत्य है, जितना विश्व की मिट्टी, पानी, प्रकाश और अधकार। और इस प्रकार वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इन विषमताओ मे सामजस्य का नाम ही तो जीवन है।

इस प्रकार 'आसू' मे प्रसाद जी के तीन व्यक्तित्व—प्रेमी, कवि और दार्शनिक—मिले हुए हैं। उनका कवित्व प्रेमी के विरह को बल देता है फिर जब वह विरह के चारों ओर भटक लेता है, तब उनका कवि दार्शनिक और प्रेमी का मेल कराकर उसे विश्व-मण्डल की ओर ले जाता है।'[1]

हम देख आए है कि आसू की अन्तिम परिणति भाव - विस्तार और दार्शनिकता मे होती है। सुख के बीतने पर सुख की याद ही सुख देती है और क्योकि सुख की स्मृति से ही सुख प्राप्त होता है, इसीलिए उस सुख के आलम्बन के प्रति किसी प्रकार की प्रतिक्रिया या प्रतिशोध की भावना उत्पन्न नही हो पाती, बल्कि उसके प्रति एक सम्मान भावना का उदय होता है, जैसा कि आँसू से स्पष्ट है। यह कवि सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। दूसरी ओर, कवि देखता है कि उसकी प्रेयसी उसके प्रति समस्त ममता, स्नेह, सौहार्द और समर्पण लेकर आयी, वह अपने स्वभाव से कोमल, मृदु और भोलापन लिए है, परन्तु इतनी कोमलता, नैसर्गिक भावुकता और पूर्ण समर्पण भावना से विहित होते हुए भी वह इतनी कठोर हो सकती है, कि कवि को एकाकी छोडकर चली जाए और यही निजी अनुभवो पर आधारित कवि की नारी सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक धारणा है, जिसकी अभिव्यक्ति उसने अपने साहित्यिक नारी चरित्रो के उद्घाटन मे की है। देवसेना, मधूलिका, चम्पा, लैला, मगला और कमला आदि प्रसाद की ऐसी ही नारी कृतियाँ है जो कुसुमादपि कोमल सहृदया एव प्रेम भावना से परिसिक्त होते हुए भी आत्म-सम्मान या परिस्थिति विशेष के कारण वज्रादपि कठोर बन जाती हैं। प्रसाद के नारी सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले प्रकरण मे हम इसकी विशद विवेचना करेंगे।

१—गुलाब राय . प्रसाद जी की कला, पृष्ठ ४४।

नारी आदर्श

(क) दार्शनिक कल्पना :—

सृष्टि के विकास की कहानी के दो मूल तत्व है, पुरुष और नारी ; जो सृष्टि मे रहते है, उसे परिचालित करते है और साथ ही उसकी उपलब्धियो के उपभोक्ता भी है। सम्पूर्ण विश्व का जीवन इनके जीवन पर निर्भर करता है। इसलिए सृष्टि की विषमता मे सतुलन बनाये रखने के लिए इन दोनो तत्वो का परस्पर एक्य, सगठन और सहयोग परम आवश्यक है। प्रसाद जी ने मानव के विश्व की इस चिरन्तन समस्या को उठाया है। उसका अध्ययन, मनन किया है और अपने समाधान प्रस्तुत किये हैं। उन्होने पुरुष और नारी दोनो को सामाजिक मनोवैज्ञानिक, सास्कृतिक एव दार्शनिक दृष्टिकोणो से देखा और परखा है और वे इस निर्णय पर पहुँचे है कि यदि पुरुष अपनी परुषता, अहकार, ईर्ष्या और स्वार्थ भावना की सकीर्ण परिपाटी को छोडकर श्रद्धा भावना को अपनाते हुए विश्व कल्याण के प्रशस्त पथ पर आगे बढे और नारी उसे सहयोग देती हुई अपने उदात्त गुणो...दया, माया, ममता, माधुर्य, सेवा, विश्वास, समर्पण, उदारता और करुणा—के रत्न पथ पर लुटाती चले, तो सारे विश्व मे आनन्द की वृष्टि हो सकती है। उन्होने नारी मे उस चेतन शक्ति की स्थिति पाई है जो पुरुष की कठोरता पर सम्पूर्ण सहृदयता से शासन करती हुई मन को अन्तर्मुखी करने मे समर्थ होती है। उनकी मान्यता है कि श्रद्धा स्वरूपा नारी के अभाव मे ही समस्त विभीषिकाए आरम्भ होती है, विश्वास उठते ही मन की उच्छृन्खलता बढ जाती है, वह वहिमुखी हो जाता है ....फिर श्रद्धा ही उसे आनन्द दान देती है ...'वह एक प्रवृतिमूलक आस्थामयी वृत्ति है जो निवृत्ति का अन्त कर देती है। श्रद्धा (नारी) एक आस्तिक सद्वृति है जो चेतन शक्ति का उदात्त रूप है, मन मे उसके प्रविष्ट होते ही इन्द्रियां भी कार्यरत हो जाती है। प्राणी की समस्त क्रियाशक्ति जागृत हो उठती है, मन को उसके प्रश्न का उत्तर मिल जाता है।[1]

इतना ही नही प्रसाद जी ने उसे सर्वमंगला के रूप मे भी देखा है। जीवन के पथ पर वह पुरुष की सहायिका रही है। विश्व का कल्याण केवल उसके हाथों ही सभव है। वह बुद्धि और हृदय का समन्वय कराते हुए वैषम्य पूर्ण वातावरण मे सामन्जस्य स्थापित कर सकती है। उसके द्वारा ही विश्व बन्धुत्व के आदर्श को व्यावहारिक स्वरूप मिल सकता है। मानवता का प्रसाद नारी ही बाट॰ सकती है और इन सबसे विशेष सामरस्य की स्थापना के मूल मे नारी का ही विशेष हाथ है। प्रसाद जी ने इन सब की विस्तृत और ठोस व्याख्या की है और विश्व-शान्ति, मानवतावाद और अखड आनन्द की प्राप्ति के लिए एक स्वस्थ निर्देश दिया है।

१—डा० प्रेम शकर प्रसाद का काव्य, पृष्ठ ३३१ तथा पृष्ठ ३४०।

प्रसाद जी की इस दार्शनिक नारी कल्पना की पृष्ठभूमि मे उनके वैदिक साहित्य एव शैव दर्शन के विशाल अध्ययन का सिंचित रस उद्रित हुआ है, जिसकी सरलता मे वे नारी के वास्तविक महत्व को सही ढग से समझा सके है। यहा पर जब हम प्रसाद जी दार्शनिक कल्पना की बात कह रहे है तो हमे यह न भूलना चाहिए कि प्रसाद जी ने जीवन को दर्शन से देखा है और जीवन से दर्शन को "[1] इसीलिए उनकी दार्शनिक पीठिका हमेशा की व्यवहार्य रही है। और उस पर मानवतावाद के आनन्दपूर्ण भवन का निर्माण सफलता पूर्वक हुआ है।

नारी की इस दार्शनिक अभिव्यक्ति के समानान्तर प्रसाद जी ने नारी के प्रेम, सेवा तथा समर्पण सम्बधी आदर्श पर भी प्रकाश डाला है। जिसके परिणाम स्वरूप जीवन के सभी पहलुओ मेउसकी श्रेष्ठता स्थापित हो गई है और वह सभी क्षेत्रो मे पुरुष का नायकत्व सा करती दिखाई पडती है। सघर्ष कालीन इस विषम युग-चेतना मे नारी की प्रतिष्ठा-स्थापना का सफल प्रयत्न प्रसाद जी की अपनी उपलब्धि है।

(ख). सांस्कृतिक भूमिका :—

प्रसाद जी का युग साँस्कृतिक जागरण का युग रहा है। वे अपने राष्ट्र के अतीत गौरव से अत्यधिक प्रभावित थे। उनके नाटकीय पात्रों मे राष्ट्रीयता एवं भारतीयता का सन्निवेश विशेष रूप से हुआ है। उनका छोटे से छोटा पात्र भी राष्ट्रीय चेतना का चमचमाता नक्षत्र है। उनकी राष्ट्रीयता सकीर्णता की परिधि मे आबद्ध नही है और सर्वत्र मानवता की भावना को विशेष महत्त्व दिया गया है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति प्रसाद को मुग्ध किए थी। वे मानसिक रूप से जैसे उसी युग मे रहते थे और उसी का स्वप्न देखते थे। इसलिए भारतीय सस्कृति के बिखरे अवयवो को जोड़कर उन्होने अपनी भावुकता, चिन्ता और कल्पना द्वारा उसमे प्राण-सचार किया।[2]

भारत के प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास के विचार-पटल पर उन्होने अपने नारी पात्रो की सृष्टि की है। उनकी साँस्कृतिक नारी राष्ट्रीय गौरव से पूर्ण, उदात्त भावनाओ से युक्त और पुरुष वर्ग की प्रेरणा के रूप मे अवतरित हुई है। उनमे अपने 'स्व' के प्रति पूर्ण सम्मान की भावना सन्निहित है। वे देश और जाति के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग के महान् भाव से पूर्ण, अपनी सास्कृतिक निष्ठा के प्रति गौरवमय तथा अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत हैं। उनका तेज किसी भी प्रकार की कुण्ठा पर विश्वास नहीं करता। प्रसाद की यह साँस्कृतिक नारी-भावना अलका, कार्नेलिया, तितली, शैला, मल्लिका, सरमा, जयमाला तथा मधूलिका आदि पात्रियो के चरित्र मे प्रस्फुटित और

१—रामलाल सिंह : कामायनी अनुशीलन, पृष्ठ १८०।
२—गुलाब राय : प्रसाद जी की कला, पृष्ठ ६०।

विकसित हुई है। इस वर्गीकरण मे आने वाली सभी नारिया उदात्त गुणो से पूर्ण है। उनको अपने स्वाभिमान का विचार है, वे स्वभाव से कोमल हैं, परन्तु उनकी कोमलता परिस्थिति के अनुरूप कठोर होना भी जानती है। भारतीयता से प्रेम, उत्सर्ग भावना का चरम् उत्कर्ष, जीवन की प्रत्येक स्थिति मे पुरुष का साथ देने के लिए सन्नद्ध तथा उत्साही, स्वावलम्बन और गौरव-भावना से परिपुष्ट—प्रसाद की सास्कृतिक नारी की अपनी विशेषता है।

प्रसाद के इन साँस्कृतिक पात्रो की अवतारणा भारतीय वातावरण के उस युग मे हुई है जब गाँधी जी के आवाहन् पर देश की असख्य महिलाए राष्ट्र के लिए अपनी आवश्यकता की पुकार सुनकर आत्मोसर्ग की महान् भावना से परियुक्त, कार्य क्षेत्र मे उतर आई थी और उन्होने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए पुरुष-वर्ग के साथ कधे से कधा भिडाकर जन-आन्दोलन को एक विशाल स्वरूप प्रदान कर दिया था। तब भारतवर्ष ने युगो के पश्चात् पहली बार भारतीय नारी के देशानुराग मे मिश्रि उसके स्वाभिमान और उसके अन्तस् मे निहित उत्सर्ग की भावना का दर्शन किया था। प्रसाद जी ने भारतीय इतिहास की क्रोड मे नारी के इस राष्ट्रीय स्वरूप का उद्घाटन कर राष्ट्रीय आन्दोलन को साहित्यिक प्रेरणा दी और समयानुकूल नारी के इस नवीन स्वरूप की प्रतिष्ठा करते हुए उसे गौरव भी प्रदान किया। इस प्रकार से सास्कृतिक जीवन मे नारी को सम्मानपूर्ण एव महत्व का स्थान देते हुए प्रसाद जी ने उसे घर की सीमाओ से बाहर लाकर उसकी शक्ति, साहस और तेज का सही मूल्यांकन किया तथा समाज के सम्मुख उसकी श्रेष्ठता स्थापित की और साथ ही भारतीयो को उसके इस विस्मृत स्वरूप का दर्शन कराया।

(ग) मनोवैज्ञानिक पक्ष :—

प्रसाद जी के नारी चरित्र-चित्रण की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उनके मनोवैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन प्रस्तुत करने मे है। शारीरिक गठन के आधार पर नारी के स्थायी गुणों का अनुशीलन उनके गम्भीर चिन्तन का विषय रहा है। वे यह मान कर चले हैं कि कोमल अवयवा नारी का हृदय अ कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भ का आदर्श है।[1] 'उसका हृदय अभिलाषाओ का, ससार के सुखो का क्रीडा स्थल है वे शीघ्र ही उत्साहित और उसी परिणाम मे निराश हो जाने वाली होती है।[3] द माया, ममता, सौहार्द, एक निष्ठा, विश्वास, समर्पण, आकाँक्षा, सवेदनशील नियतिवादिता, औदार्य और उत्सर्ग आदि उदात्त वृतियों के साथ साथ उसमे ई

१—अजातशत्रु पृष्ठ १११-११२।
२—नीरा . (आँधी मे सकलित) पृष्ठ १०८।
३—ककाल (उपन्यास), पृष्ठ ३८।

है और तब वह आत्मपीडन के सिद्धान्त को बल देती हुई मौन होकर, बिना प्रतिवाद किये सब कुछ सह लेना चाहती है—

> इस पतझड की सूनी डाली, और प्रतीक्षा की सध्या
>
> कामायनि ! तू हृदय कडा कर धीरे-धीरे सब कुछ सह ले। (पृष्ठ १७७)

नारी मनोविज्ञान को प्रस्तुत करने मे प्रसाद जी ने कुछ नवीन उद्भावनाओ का भी स्पर्श किया है और जहाँ नारी चरित्र अन्तर्भावनाओ के परस्पर सघर्ष के परिणाम स्वरूप बडा रहस्यमय हो उठा है। उदाहरण के लिए हम 'देवदासी' की पद्मा को लेगे। रामस्वामी पद्मा को प्यार करता है और पद्मा उससे अधिक अशोक की ओर आकृष्ट है। अशोक का मूक प्रणय भी पद्मा की ओर ही निहारता है। परिस्थितियो के मध्य अशोक से रामस्वामी की हत्या हो जाती है। बस यहाँ से पद्मा के चरित्र मे परिवर्तन होता है, वह सभा मण्डप के स्तम्भ से टिकी हुई, दोनो हाथो से अपने एक घुटने को छाती से लगाए अर्धस्वप्नावस्था मे बैठी रहती है'। रामस्वामी ने उसके लिए प्राण दे दिए, अत वह रामस्वामी को भूल नही पाती और अपने पूर्व के प्रिय तथा अब के उस पुरुष हत्यारे को, जो उसे प्यार करता था, किस प्रकार प्यार करे, वह सोच नही पाती और इसी अर्न्तसघर्ष की वेदना मे उसका जीवन तिरोहित होता चल रहा है।

नारी अपने जीवन में आने वाले पुरुष को पूर्ण निष्ठा से प्यार करती है, उसकी अनन्यता अपने मे पूर्ण और प्रौढ होती है। परन्तु इतने पर भी पुरुष द्वारा यदि इसकी उपेक्षा का उपक्रम होता है अथवा उसके आत्म सम्मान को कही ठेस पहुचती है तो वह अपने अवयवो की समस्त कोमलता को एक ओर रख कर कठोर और परुष बन जाती है। उसके स्नेह का गुनगुना ताप प्रतिहिंसा के रूप में प्रलय की बाड्वज्वाला सा उबल उठता है और तब उस क्षण उसमे सब कुछ क्षार कर देने की शक्ति सचित हो जाती है। वह अपनी अप्रतिम साधना के प्रति किए गए विश्वासघात को सहन कर सकने मे हमेशा असमर्थ रही है। प्रतिशोध के लिए वह कितनी भी कठोर और क्रूर बन सकती है। यह प्रसाद साहित्य की अपनी मौलिक खोज है। देवसेना, ध्रुव स्वामिनी, मधूलिका, लैला, चम्पा, चूडी वाली और कालिन्दी के चरित्र इस सदर्भ मे देखे जा सकते है। इस प्रकार प्रसाद के अनुसार कोमलता और कठोरता नारी जीवन के दो विशेष अग रहे है, जिसका विस्तृत विवेचन तद्विषयक अगले प्रकरण मे किया जायगा।

(घ) नैतिक भावभूमि—

प्रत्येक समाज की सामाजिक स्थिति वैधानिक एव नैतिक नियमो से मर्या-

देत और परिसीमित होती है। ये नैतिक नियम व्यक्ति के विकास, व्यवस्था और नरक्षण के लिए होते है, नियमो के अन्धपालन के लिए नही। काल परिवर्तन के साथ समाज मे भी परिवर्तन होता है, और तद्नुरूप सामाजिक मान्यताएँ एव आस्थाएँ भी बदलती है। इन सब परिवर्तनो के साथ साथ नैतिक नियमो मे भी परिवर्तन होता है। लम्बे युग से चली आई हुई नैतिक मान्यताएँ कभी कभी रूढि मे परिवर्तित हो जाती है और परिणाम स्वरूप उनकी प्राण शक्ति समाप्त प्राय हो जाती है। इन रूढियो के साथ प्रगतिवादी भावनाओ का सामजस्य नही हो पाता, इसलिए समाज मे इनके परस्पर सघर्ष से एक विकर्षण उत्पन्न होता है। इस प्रकार के सघर्ष से बचने के लिए परिस्थिति को प्रधानता देनी पडती है और तद्नुसार नये नैतिक नियमो का नियमन करके उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को शक्ति सम्पन्न बनाना होता है। परिस्थिति और समय की माँग के अनुसार व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए नैतिक नियमो मे परिवर्तन आवश्यक ही नही, अनिवार्य है ; यही तथ्य प्रसाद का नीति सम्बन्धी दृष्टिकोण उपस्थित करता है।

प्रसाद जी का सम्पूर्ण साहित्य व्यक्ति स्वातन्त्र्य की आवाज ऊँची उठाता है। नारी भी इसका अपवाद नही है। स्वतन्त्रता के अन्तर्गत ही उनके नारी चरित्रो का विकास हुआ है।। जो वस्तु स्वतन्त्रता के माध्यम से उपलब्ध होती हो, वही मान्य है, प्रसाद इस सिद्धाँत को लेकर चले है। उन्होने आज की विवाह सस्थओ का अध्ययन प्रस्तुत किया है जो प्राण-हीन, अपने स्वरूप मे क्षत-विक्षत और नैतिकता के नाम पर महान् आडम्बरपूर्ण विश्रृखलता की सृष्टि कर रही है। विवाह सस्थाओ की इस असफलता से क्षुब्ध, उन्होने अपनी नारी को स्वतन्त्र प्रेम का अधिकार दिया है और वह उनकी दृष्टि से नीति मान्य और समाज स्वीकृत है। वे समाज के बोझ को व्यक्ति पर नही डालना चाहते। उनका कहना है कि वे ही सामाजिक नियम नीति सम्मत हो सकते हैं जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा कर सके तथा उसके व्यक्तित्व को विकास की प्रेरणा दे सके। यदि नारी अपने स्वत्व की रक्षा के लिए सम्पूर्ण समाज से विद्रोह मोल लेती है और यदि उसमे पूर्ण निष्ठा की भावना विद्यमान है, तो उसका यह कार्य किसी प्रकार से नीति विरोधी नही कहा जा सकता।

लेकिन प्रसाद के कोश मे स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृंखलता नही हैं। ऐसा कार्य जिससे सामाजिक व्यवस्था का अतिक्रमण होता हो, प्रसाद को मान्य नही है। इसी लिए उनके जिस चरित्र ने भी लालसा और महत्वाकाँक्षा के वशीभूत हो, स्वतन्त्रता के नाम पर उच्छृंखलता का प्रदर्शन किया है, उसे कभी भी परिणाम में अपने किये

पर गर्व नही हो सका है। उसे किसी न किसी रूप मे अपने अतिक्रमण के लिए पाश्चाताप करना ही पडा है। दामिनी, अनन्त देवी, छलना, किशोरी, तिष्य रक्षिता तथा कमला के चरित्र इस कथन की पुष्टि कर सकने मे समर्थ है।

कभी कभी नारी को अनीति की ओर ले जाने की दिशा मे समाज भी उत्तरदायी रहा है। प्रसाद ने अपने कुछ चरित्रो के माध्यम से इस यथार्थ की ओर भी पाठको का ध्यान आकर्षित किया है। लेकिन समाज मे व्यवस्था और सतुलन रखने के आदर्श को लेकर चलने वाले प्रसाद जी ने ऐसे पात्रो को भी, जो अपने अनैतिक कर्मो के लिए आशिक रूप से ही उत्तरदायी है, क्षमा नही किया है, और उन्हे भी अपने किये पर पाश्चाताप कराया है। इस प्रकार नैतिक मान्यताओ के क्षेत्र में प्रसाद क्रॉतिकारी भावना को लेकर पूर्ण नैतिक साहस के साथ अवतरित हुए है जिसका विकास आज के सामाजिक जीवन की एक अपरिहार्य आवश्यकता मानी जानी चाहिए।

सामाजिक स्वरूप—

यद्यपि प्रसाद जी के आदर्श, युग की प्रगति के अनुकूल, उनकी स्वतन्त्र विचारणा के परिणाम थे, किन्तु यदि हमे पाश्चात्य विचारको से तुलना करनी हो, तो हम कहेगे कि प्रसाद जी के सामाजिक आदर्श फ्राँस की राज्य-क्राँति के बाद प्रतिष्ठित होने वाले समता और स्वतन्त्रता के आदर्शो से मिलते जुलते हैं। फ्राँस के विक्टर ह्यूगो और इग्लैड के सुप्रसिद्ध समाज-शास्त्री मिल की विचारणा के बहुत निकट प्रसाद जी की सामाजिक विचारणा है। इसका कारण मुख्यत. भारतीय परि-स्थिति तथा तत्कालीन योरुप की समानता ही है। एक उदार जनसत्तात्मक भावना का विकास, और परम्परागत अभिजात्य का विरोध प्रसाद जी के कल्पना-शील, नवोन्मेष-शाली साहित्य की आधार भूमि है[1]। प्रसाद जी ने अपने युग की सामाजिक विचारणा और उससे पारिभाषित नारी मूल्य का गहरा मनन और चिन्तन किया था। नारी के प्रति पुरुष के अन्यायो और उसकी प्रताडित एव उपेक्षित दयनीय अवस्था उनकी आखों के सम्मुख नाच उठी थी। धर्म के थोथेपन और मिथ्या आडम्बर के निर्मम काटेदार तारो मे नारी के व्यक्तित्व को बाँधकर पुरुष ने जैसे नारी जाति के उपकारो का बदला चुकाया था। प्रसाद जी ने इसी परम्परागत अन्याय का प्रायश्चित करने के हेतु नारी को सामाजिक स्वीकृति प्रदान की है।

प्रसाद साहित्य मे युग की अभिव्यक्ति के अनुकूल, नारी जीवन की विभिन्न समस्याओ पर विचार प्रकट किए गये हैं। उनमे पुनर्विवाह, शिक्षा, विधवा-स्थिति, वैश्यावृति, असमान विवाह, सपत्नीक भावना, सम्बंध विच्छेद, तथा अन्तर्जातीय विवाह

की समस्याएँ विशेष रूप से ली गई है। उनके उपन्यास और कहानियो मे इन्ही समस्याओ को लेकर वस्तु-स्थिति को चित्रित करते हुए समाधान के लिए अध्ययन और चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। नारी को सामाजिक स्वीकृति दिलाने के क्षेत्र मे प्रसाद जी का महत्व इस बात को लेकर विशेष हो जाता है कि उन्होने भारतीय वातावरण, परिस्थिति और सस्कृति के अनुकूल ही इन समस्याओ का निदान किया है। उनके समय मे पाश्चात्य लहर का जो तीव्र प्रभाव भारतीय मस्तिष्क मे आन्दोलित हो रहा था, प्रसाद जी, अपने देश की समस्याओ के समाधान के लिए उससे तनिक भी प्रभावित नही हुए, सभी स्थानो पर उनका भारतीय स्वर ही गुँजन करता दिखाई पडता है।

'पुरुष -नारी जीवन और वर्तमान जगत मे विद्यमान सघर्ष की तह मे छिपी शाश्वत समस्याओ को प्रसाद की अन्वेषिणी प्रतिभा की आँखो ने उसी खूबी के साथ देखा है, जिस खूबी के साथ सूरदास ने बालक स्वभाव की एक एक बारीकियो को देखा था।'[१] और इसीलिए प्रतिक्रिया स्वरूप वे युग की सामाजिक नारी भावना मे क्राति,लेकर सामने आए। उन्होने नारी स्वातन्त्र्य का शखनाद किया तथा उस प्रबुद्ध एव नवचेतना के युग मे नारी के उस स्वातन्त्र्य का समर्थन किया जिससे पुरुष और नारी मे समरसता की स्थापना हो सके तथा दोनों एक दूसरे के हितो एव अधिकारो की रक्षा कर सके।

इसी प्रसग मे प्रसाद जी ने नारी को प्रेम की स्वतन्त्रता देने तथा समाज मे स्वच्छन्द प्रेम की असम्भावना एव वैवाहिक सस्था की व्यावसायिकता पर भी अपने विचार प्रकट किये है। इस क्षेत्र मे उनके सामाजिक विचार क्रान्किारी कहे जा सकते है, क्योकि वे उन जर्जर परम्पराओ को आदर्श बनाए रखने मे विश्वास नही करते जिनकी उपयोगिता प्रगति के आलोक मे शिथिल और निष्प्राण हो गई है। उनके विपरीत वे उन अग्रगामी विचारो, प्रथाओ और मान्यताओ का स्वागत करते हैं जो युगानुकूल जीवन के लिए सिद्ध हो चुकी हैं। 'प्रसाद जी नियम, धर्म, और सस्कृति जीवन के लिए मानते है, जीवन उनके लिए नही।'[२] लेकिन उनके इस स्वातन्त्र्य आदर्श का अर्थ उच्छृखलता नही है। इस विषय को लेकर वे हमेशा ही सतुलित रहे हैं। आधुनिक पाश्चात्य प्रभाव से एक विशिष्ट नारी वर्ग मे जो दर्पमूलक अहकार भावना का प्रादुर्भाव हो रहा है, प्रसाद जी को वह कभी भी मान्य नही रहा। जहाँ नारी बौद्धिक क्षमता से युक्त हो कर अपनी शक्तिमत्ता पर अहकार करती हुई पुरुष के समान अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की उद्घोषणा

१—शम्भुनाथ पाण्डेय : ध्रुव स्वामिनी और प्रसाद,
(जयशकर प्रसाद . चिन्तन व कला मे सकलित), पृष्ठ १९७।

२—राम लाल सिह : कामायनी अनुशीलन, पृष्ठ १८८।

करती दिखलाई दी है, वही पर वह प्रसाद के आदर्श नारी-चरित्र से नीचे उतर आती है। प्रसाद की दृष्टि मे नारी स्वातन्त्र्य जीवन म सामजस्यपूण स्थिति का सहायक बन कर आता है, उसमे विषमता और विकर्षण उत्पन्न करने के लिए नही। नारी स्वातन्त्र्य के पीछे प्रसाद जी का यही सामाजिक आदश निहित है।

उपर्युक्त पत्तियो मे 'नारी आदर्श' के अन्तर्गत हमने प्रसाद जी के नारी सम्बधी दार्शनिक, सास्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक तथा सामाजिक आदर्शो का परिचय मात्र दिया है, जिसे अगले अध्यायो की पृष्ठ-भूमि के रूप मे ही समझा जाना चाहिए। इस परिचय के आधार पर ही इन विविध आदर्शो की विस्तृत विवेचना अगले प्रकरणो मे स्वतन्त्र रूप से की गई है। यहा पर इन विविध आदर्शो की समन्वित कल्पना के विषय मे थोडा सा कह कर हम इस प्रकरण को समाप्त करेंगे।

समन्वित कल्पना

सभी क्षेत्रो मे समन्वय और सामन्जस्य की प्रस्थापना करने वाले प्रसाद ने नारी आदर्श -सम्बधी विभिन्न पक्षो मे भी सामजस्य का आदर्श प्रस्तुत किया है। सामजस्य उपस्थित करने वाले इन तत्वो मे एक सुव्यवस्थित शृखला और परम्परा परस्पर जुडी हुई है जो प्रसाद के दूरगामी बौद्धिक विकास और निश्चित पुरोगम एव कल्पना का परिचय देती है। इन विभिन्न तत्वो का क्रमबद्ध विकास सामाजिक भाव भूमि से आरम्भ होकर दार्शनिक स्वरूप मे पूर्ण होता है।

प्रसाद जी नारी की सामाजिक दुरावस्था से क्षुब्ध थे। उन्होने अधिकार विहीन, भविष्य हीन और दयनीय नारी को पुरुष की क्रूरता, अन्याय और अत्याचारो का शिकार बनते देखा था। नारी की यह शोचनीय स्थिति ही उनकी प्रतिक्रिया का कारण बनी और वे नारी स्वतन्त्रता के समर्थक तथा उसके अधिकारों के पक्षपाती बनकर साहित्यिक क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए।

इसी सदर्भ मे उन्होने नारी के शिक्षा सम्बधी आदर्श को भी प्रस्तुत किया है। उनका विश्वास था कि उच्चतर सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए उनका शिक्षित होना आवश्यक है, जिसके आलोक मे वह स्वय अपने विकास-क्षेत्र को पहचान कर उसका उपयोग कर सके। इसीलिए शिक्षा विहीन नारी की कल्पना प्रसाद साहित्य मे नही की गई है। उनकी नारी सॉस्कृतिक आदर्शो की प्रबुद्ध पीटिका के रूप मे चित्रित हुई है। प्रसाद जी नारी को देश काल के अनुकूल, गृहस्थी तथा अन्य उपयोगी क्षेत्रो मे शिक्षित करने के पक्ष मे थे।

समाज का नियमन एवं सचालन कुछ परम्परागत आदर्शों और मान्यताओ के आधार पर होता है। कुछ नैतिक नियम होते है जो व्यक्ति के अधिकार-क्षेत्र की व्याख्या करते हैं, उसका सामाजिक जीवन मे निर्देशन करते हैं तथा उसकी सीमाओ

को निर्धारित करते हैं। प्रसाद की सामाजिक नारी इन्ही रूढ़ि जर्जर नैनिक नियमो की सकीर्णता मे आबद्ध और अवश अपने व्यक्तित्व का ह्रास-समारोह देख रही थी। अतः उसकी स्थिति के विकास के लिये यह आवश्यक था कि इन परम्परा से चली आई हुई अस्वस्थ नैतिक मान्यताओ के स्थान पर नवीन नैतिक आदर्श उपस्थित किए जाए और प्रसाद ने अतीत की स्वस्थ और स्वच्छ भारतीय विचारधारा की पृष्ठ भूमि मे नवीन नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा की तथा उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का आदर्श प्रतिष्ठित किया। इमी प्रसग मे वे नारी मनोविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन भी प्रस्तुत करते चले। क्योंकि मान्यताओ और नियमो का सम्बन्ध, उनकी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति मानव मनोविज्ञान पर बहुत अशो मे निर्भर होती है।

प्रसाद ने अपने नारी चरित्रो की स्वतन्त्रता का प्रतिपादन किया। उनको सार्वजनिक क्षेत्र मे स्वीकृति प्रदान की और इस प्रकार से नवीन नैतिक आदर्शों के मध्य उनकी स्वतन्त्रता को प्रतिष्ठित किया। नारी के आदर्श प्रतिष्ठान की यह चेष्टा भारतीय सस्कृति, भारतीय इतिहास और भारतीय मान्यताओ से सम्पन्न है, इस तथ्य की पुष्टि के लिये प्रसाद ने भारतीय इतिहास से ली गई सॉस्कृतिक नारियो को प्रस्तुत किया। भारतीय सस्कृति के परिपार्श्व मे अपने नारी चरित्रो का चित्राकन प्रसाद कला की एक उदात्त विशिष्टता है।

सास्कृतिक स्वरूप मे नारी को पुरुष के समान सभी क्षेत्रो मे स्वीकृति देने के बाद उसके स्वरूप को दार्शनिक पृष्ठभूमि मे देखने का प्रयत्न प्रसाद के, ना ी के प्रति, असीम सम्मान भाव को पुष्ट करता है। जहाँ वह कल्याणी, सर्व मगला और पुरुष की मार्ग दर्शिका, आनन्ददायिनी बन कर अवतरित होती है।

इम प्रकार से प्रसाद जी ने बडे कौशल के साथ नारी को सामाजिक दुरावस्था से ऊपर उठा कर नैतिक भाव भूमि पर प्रतिष्ठित करते हुए उसे समान स्वतन्त्रता प्रदान की तथा उसकी परम्परागत हीन भावना को विनष्ट किया। फिर सॉस्कृतिक रग-मच पर उसे पुरुष की सहायिका और सहयोगिनी के रूप मे भाग लेने का अवसर मिला। यहा वह पुरुष के समान सभी क्षेत्रों मे समान कौशल, योग्यता और बौद्धिक विकास के साथ दृष्टिगत होती है। परन्तु प्रसाद जी नारी को पुरुष के समान ही बना कर ही सतुष्ट नही रह गए। दार्शनिक भाव क्षेत्र मे ले जाकर उन्होने नारी को नवीन प्रतिष्ठा प्रदान की, जहा वह लोक रक्षिका और पुरुष की मार्ग दर्शिका के रूप मे अवतरित हुई और सामाजिक क्षेत्र मे उसके साथ अन्याय और अत्याचार करने वाला पुरुष यहाँ दार्शनिक भूमि तक आते-आते जैसे उसके सम्मुख नत-शिर हो गया और नारी उसके लिये असीम सम्मान और श्रद्धा की वस्तु बन गई। वही उसके जीवन की पूर्णता और सार्थकता बन कर जैसे

विश्व के वैषम्य में उसकी कल्याण कामना और उसके प्रति मातृत्व-स्नेह का स्वरूप लेकर आई :—

तुम अजस्र वर्षा सुहाग की
और स्नेह की मधु-रजनी
चिर अतृप्ति जीवन यदि था तो
तुम उसमे सन्तोष बनी (कामायनी पृष्ठ २२६)

नारी सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोणों का यह क्रम-बद्ध गुम्फन प्रसाद की समन्वयवादी कल्पना का आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनकी नारी भावना को हिन्दी साहित्य में अमरता प्रदान करता है।

(अ) वस्तु स्थिति, समस्या और समाधान

प्रसाद जी ने अपने युग मे परम्परा से चली आ रही सकीर्ण मान्यताओ की परिधि से आवृत नारी जीवन की व्यथा को देखा और उसका अध्ययन किया है। उन्होने देखा कि महान् करुणा की पृष्ठभूमि मे कराहती हुई उसकी वस्तु स्थिति— व्यक्तित्व एव अधिकार विहीन होकर पुरुष की नृशसता का भोज्य बन रही है। सामाजिक चेतना के इस अरुणोदय मे प्रसाद जी ने अपने साहित्य, विशेषतया कहानी तथा उपन्यासो मे नारी स्थिति के सजीव चित्र उपस्थित किये हैं और उनके अस्तित्व की वास्तविकता को पाठको के सम्मुख उपस्थित कर, इस सदर्भ मे, मस्तिष्क का उपयोग करने के लिये दिशा प्रदान की है। उन्होने सामाजिक विषमता के बीच नारी के अधिकार शून्य व्यक्तित्व को देखा है, जहा उसका अस्तित्व केवल 'पुरुषो की पूँछ' होने तक ही सीमित है। वह 'दुर्बल और अबला है', उसका समाज ही ऐसा है जहाँ अधिकार आदि के विषय मे सोचने विचारने के लिये कुछ है ही नही।[1] 'कोई धर्म, कोई समाज स्त्रियों का नही है—सब पुरुषों के हैं—स्त्रियों का एक धर्म है, वह है आघात सहने की क्षमता रखना। दुर्दैव के विधान ने उनके लिये यही पूर्णता बना दी है, यह उनकी रचना है'[2]। 'हिन्दुओ के समाज के पास दुर्बल स्त्रियो पर ही शक्ति का उपयोग करने को क्षमता बच रही है और यह अत्याचार प्रत्येक काल और प्रत्येक देश के मनुष्यों ने किया है। स्त्रियो की निसर्ग कोमल प्रकृति और उनकी रचना इसका कारण है'[3]।

'ककाल' की गुलेनार के जीवन मे प्रसाद जी ने अबला नारी के पतन की पराकाष्ठा प्रदर्शित की है और तारा के जीवन मे मन के रुदन के लम्बे इतिहास को। गाला के शब्दों में—नारी जाति का निर्माण विधाता की एक झुँझलाहट है लेखक का कहना है कि 'पुरुष के लिये नारी सब कुछ बलिदान कर देती है लेकिन

१—ककाल, पृष्ठ १७०, १७२, तथा १७६।

२—ककाल, पृष्ठ २७५—२७६।

३—कंकाल, पृष्ठ २५६।

उसके इस बलिदान का कोई मूल्य नही......अपने निर्बल और अवलम्ब खोजने वाले हाथो से यह पुरुष के चरणो को पकड़ती है, और वह सदैव ही इसको तिरस्कार घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है[1]।' उनकी दृष्टि मे आज का पुरुष श्रद्धा के उदार, समर्पण को निष्काम उत्सर्ग न समझ कर नारी की विवशता और अपना अधिकार मान बैठा है। धर्म के नाम की दुहाई देकर नारी की महत्ता को दबाए रखने की परम्परा सी जैसे उसकी नसो मे बह रही है। 'ध्रुव स्वामिनी' के रामगुप्त जैसे सामाजिको ने नारी को विनोद और उपहार की वस्तु मान कर उसकी सहन-शक्ति और नैतिक निष्ठा की हसी उडाई है। इस तरह अपनी स्थिति मे वह करुणा और दैन्य का अपार भार लिये पुरुष के पुरुषार्थ का प्रहसन उपस्थित करती है।

प्रसाद जी ने नारी की सामाजिक वस्तु स्थिति को भिन्न भिन्न वर्गो मे भी देखा है। 'तितली' की श्याम दुलारी अभिजातीय वर्ग की कट्टर हिन्दू महिला है और स्पशस्पिर्श पर बुरी तरह विश्वास करती है। शैल द्वारा उनके पैर छुए जाने पर उन्हे स्नान करना पडता है। वह यह सहन करने मे असमर्थ है कि विदेशीय एव विजातीय शैला उसके पुत्र इन्द्रदेव के साथ रहे। वह सोचती है —

'अच्छा,.........आज वह मेम की छोकरी भी साथ आवेगी। इस निर्लज्जता को कोई ठिकाना है।' (पृष्ठ ४१)

श्याम दुलारी की ही भाँति 'भिखारिन' कहानी की निर्मल की माँ भी अभिजातीय वर्ग की सम्भ्रान्त महिला है। अध-परम्पराओ पर उसे भी विश्वास है। वह भी जाति-पाँति तथा धर्म पुण्य के प्रति निष्ठावान् है। दूसरी ओर इस वर्ग मे नारी का सौन्दर्य पुरुष के मनोविनोद का साधन मात्र है, पूजा और आराधना की वस्तु नही। 'इरावती' के सम्राट् इरावती को रंगशाला मे देखना चाहते है[2]। 'चूडी वाली' के विजय कृष्ण चूडी वाली की भावनाओ से अपनी कुण्ठाओ की सहज क्रीड़ा का तादात्म्य कराते है। 'बिसाती' कहानी की शीरी के चरित्र मे इस अभिजात्य वर्ग की घुटन और विवशता साकार हो उठी है। उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व, कुलीनता के घेरे मे छटपटाता है। 'नूरी' की नारी इस कुलीनता की दासता से छुटकारा पाना चाहती है। 'ध्रुवस्वामिनी' का जीवन इस वर्ग की नारी का प्रतिनिधित्व करता है। जहाँ वह सुवर्ण पिंजर मे अनमयस्क, पशु-सम्पत्ति सी समझी जाकर रामगुप्त की कापुरुषता का आखेट मात्र है। जहाँ धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की पैशाचिक परीक्षा बलपूर्वक ली जाती है। यहाँ नारी को लगता है कि जैसे पराधीनता की एक परम्परा सी उसकी नस-नस मे,

१—ध्रुव स्वामिनी, पृष्ठ ५३।

२—इरावती, पृष्ठ ४१।

उसकी चेतना मे न जाने किस युग से घुस गई है[१]। वह धनियो के प्रमोद का कटा-छटा हुआ सा शोभा वृक्ष-मात्र है। 'कोई डाली उल्लास से आगे बढी, कुतर दी गई[२]। उसका जीवन जैसे 'जीवन के लिए कृतज्ञ, उपकृत और आभारी' होकर किसी के अभिमान-पूर्ण आत्म विज्ञापन का भार ढोते रहने[३] मात्र के लिए ही निश्चित हुआ है।

प्रसाद साहित्य मे मध्यवर्गीय नारी का जीवन उदासीनता की करुण कहानी के रूप मे अभिव्यक्त हुआ है। 'परिवर्तन' की मालती जीवन के एक छोर से दूसरे छोर तक मलिन छाया का दुख सदेश बिखेरती रहती हैं। प्रसाद साहित्य मे मध्य वर्गीय जीवन के वर्णन अधिक नही मिलते। सामान्य वर्गीय नारी के चित्रांकन मे प्रसाद जी को विशेष सफलता मिली है। इस वर्ग की नारी का व्यक्तित्व अपेक्षा कृत स्वतन्त्र है। वह वासना का आहार बनने की अपेक्षा उसका तिरस्कार करते हुए मेहनत मजदूरी करना पसन्द करती है। 'तितली' की मलिया में आत्म-सम्मान की अपूर्व भावना निहित है। 'भिखारिन' की भिखारिन, भिखारिन होते हुए भी आत्म प्रतिष्ठा का पल्ला नही छोडती। अभिजातीय वर्ग की भाति यहाँ भी अध-विश्वास की मात्रा कम नही है। 'ककाल' की किशोरी को महात्मा के आशीर्वाद से पुत्र उत्पन्न होने का विश्वास होता है। यहाँ भी उसकी आत्मा का हनन होता है। धर्म के नाम पर वह भ्रष्ट होती है। 'इरावती' की कालिन्दी मन्दिर की परिचारिका के रूप मे पुजारी की वासना-तृप्ति का साधन बनती है। नारी का यौवन जैसे धन से खरीद लेने की वस्तु है[४]। उसकी असहाय अवस्था का लाभ उठाने के लिए धनी समाज सदैव तत्पर है[५]। वह धातु के कुछ टुकडो पर बिकी हुई हाड माँस का समूह-मात्र है, जिसके भीतर एक सूखा हृदय पिंड है[६]। उसका जीवन सुख की भूमिका से दूर, दुखो के अपार विस्तार मे अवस्थित है। 'विशाख' की चन्द्रलेखा जीवन की विडम्बना से हारी है। वह सुख की परिभाषा तक नही जानती।

सखी री, सुख किसको हैं कहते ?
बीत रहा है जीवन सारा, केवल दुख ही सहते। (पृष्ठ १३)

विभिन्न वर्गों मे नारी-स्थिति की सामान्य विवेचना के साथ-साथ विभिन्न परिस्थितियों मे नारी स्थिति का अवलोकन भी आवश्यक हो जाता है।

१—ध्रुव स्वामिनी, पृष्ठ ५४।
२—चन्द्रगुप्त, पृष्ठ २०५।
३—ध्रुव स्वामिनी, पृष्ठ २८।
४—पाप की पराजय : (प्रतिध्वनि), पृष्ठ २९।
५—दुखिया . (प्रतिध्वनि), पृष्ठ ५९।
६—दासी (आँधी), पृष्ठ ५९। देखिए, फिरोजा का चरित्र।

प्रसाद जी ने हिन्दू विधवा की दयनीय स्थिति का मार्मिक अकन किया है। 'घीसू' की बिन्दो का जीवन विडम्बनाओ से पूर्ण, दारुण दुखों की अवतारण करता है—'उसका यौवन, रूप रग कुछ नही रहा। बच रहा थोडा था पैसा, बडा सा पेट और पहाड से आने वाले दिन[1]।'

'ककाल' की विधवा रामा पर दुराचार का लाँछन लगता है। ममता' का वैव्यध उसके सुख पूर्ण जीवन का सम्बल नष्ट कर देता है। 'ग्रामगीत' की रोहिणी अपने अतृप्त प्रेम को ग्राम-गीतो मे मुखर करती हुई वैधव्य जीवन की पीडा को थपकियाँ देती रहती है। 'अजातशत्रु' की मल्लिका एक स्थाम पर कहती है—'यह वैधव्य दुख नारी जाति के लिए कैसा कठोर अभिशाप है। यह किसी भी स्त्री को अनुभव न करना पडे[2]।' इसके साथ-साथ प्रस्थापित सामाजिक मान्यताओ की रक्षा के निमित्त पिता कुछ दिनो के लिये अपने घर से अनुपस्थित रही हुई पुत्री को स्थान नही देता और सद्गृहस्थ होने के अभिमान मे पुत्री को स्वैरिणी का विशेषण प्रदान करता है[3]। निर्धनता के अभिशाप मे पीड़ित नारी का विक्रय होता है[4]। परिस्थितियाँ उन्हे नर्तकी और वेश्या बनने पर विवश करती है और केवल इसी रूप में वे समाज के मध्य अपने जीवन का निर्वाह कर सकती है।

प्रसाद जी ने नारी सम्बन्धी सामाजिक जीवन के इस सत्य के उद्घाटन के साथ-साथ उनकी समस्याओ पर भी अपने विचारो को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस दिशा मे पुनर्विवाह, असमान विवाह, वेश्यावृत्ति, सबन्ध-विच्छेद, अन्तर्जातीय विवाह तथा शिक्षा प्रचार आदि उस काल की सभी प्रमुख समस्याओ को प्रसाद साहित्य मे स्थान मिला है।

पुनर्विवाह को लेकर प्रसाद जी के विचारो मे विकास क्रम की रेखा स्पष्ट दिखाई पडती है। ऐसा लगता है कि पहले प्रसाद जी वैधव्य की पवित्रता पर ही अधिक विश्वास करते थे। इसीलिए 'प्रेम पथिक' की विधवा पुतली को अपने प्रिय किशोर के शरीर की अपेक्षा हृदय मात्र से मिलने की आयोजना की गई है। यहाँ प्रेम की एक निष्ठा की रक्षा के निमित्त व्यावहारिक विवाह की अपेक्षा आत्मिक मिलन को अधिक श्रेष्ठ माना गया है। परन्तु 'विजया[5]' मे विधवा सुन्दरी कमल को प्राप्त कर लेती है। चित्तौर उद्धार[6] मे भी विधवा-विवाह को स्वीकृति प्राप्त

१—घीसू : आँधी, पृष्ठ ७२।
२—अजातशत्रु, पृष्ठ ८२।
३—ककाल, पृष्ठ ३६।
४—ककाल, पृष्ठ ३४।
५—'आँधी' मे सग्रहीत कहानी।
६—'छाया' मे सग्रहीत।

हुई है। उनकी इस भावना का उत्कर्ष ध्रुव-स्वामिनी मे लक्षित होता है। जब पति, पति के कर्त्तव्यो को पूर्ण कर सकने मे असमर्थ हो, प्रसाद ने, यहा आकर, तब नारी को पुनर्विवाह का अधिकार दिया है। इस विषय पर प्रसाद पुरोहित के स्वर मे घोषणा करते हैं—'धर्म का उद्देश्य इस तरह पद-दलित नही किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म विवाह केवल परस्पर द्वेष से नही टूट सकते, पर यह सम्बन्ध उन प्रमाणो से भी विहीन है.. .. यह रामगुप्त मृत और प्रव्राजित तो नही, पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मो से राज किल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था मे रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नही[1]।'

असमान विवाह के दुष्परिणाम भी प्रसाद जी से दृष्टि-विमुख नही हुए हैं। उनकी दृष्टि मे नैतिक मर्यादा की मान प्रतिष्टा के लिये यह आवश्यक है कि पति-पत्नी मे शारीरिक समानता हो। 'जनमेजय का नागयज्ञ' की दामिनी अपने वृद्ध पति वेद से सन्तुष्ट नही हो पाती। फलस्वरूप अपनी निसर्ग-प्रवृत्ति को तृप्त करने की आशा से वह युवा शिष्य उतक की ओर आकर्षित होती है। वह यौवन की मदिर आकांक्षाओ से उन्मत्त, विषय वासना की मृग तृष्णा मे पथ भ्रष्ट हो इधर-उधर भटकती फिरती है। 'इससे व्यक्तिगत एव सामाजिक दोनो प्रकार के क्षेत्रो मे असतुलन उत्पन्न होता है। एक ओर नैतिक मर्यादा का हनन होता है, दूसरी ओर सामाजिक परम्पराओ की जर्जरता लक्षित होती है। असमान विवाह की असफलता की ओर लक्ष्य करते हुए प्रसाद जी स्वतन्त्र चुनाव तथा स्वयवर आदि की मान्यताओ को प्रस्थापित नही किया चाहते है। प्रसाद का विश्वास है कि स्त्री-पुरुष मे समझौते की परम आवश्यकता है और वही विवाह का रूप ले सकता है। इसी सदर्भ मे उन्होने सम्बन्ध-विच्छेद के प्रश्न को भी उठाया है। क्या नारी के लिए प्रेम की एकनिष्ठा का अर्थ जीवन भर पुरुष की पाशविकता, अत्याचारो और क्रूरताओ को सहते रहना ही है? प्रसाद का उत्तर है,—नही। जहाँ पुरुष अपने अधिकार क्षेत्र के मद में उन्मत्त, नारी की वैयक्तिक स्वतन्त्रता का मूल्य और महत्व नही मानना चाहता, विपत्ति-काल मे उसकी रक्षा नही कर सकता, उसके प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वाह नही कर पाता, वहाँ वह उसका पति कहलाने का अधिकारी नही है। प्रसाद ने ऐसी अवस्था मे नारी को सम्बन्ध विच्छेद का अधिकार दिया है। ध्रुव स्वामिनी ऐसी ही नारी है जो पति के प्रेम से वचित है। प्रेमी तक पहुँचने में असहाय है। जो अन्त.पुर की दीवारो के भीतर बन्दी है, फिर भी वह साम्राज्ञी कही जाती है। रामगुप्त—उसका पति—उसे उपहार की वस्तु समझता है जो आवश्यकता पड़ने पर किसी को भी दी जा सकती है। किन्तु ध्रुव स्वामिनी का नारीत्व अन्यायो का आघात सहते-सहते अन्त मे विस्फोट कर उठता है। उसके

व्यक्तित्व में लेखक ने नारी-तत्व का ओजपूर्ण प्रतिपादन किया है। यहाँ 'ध्रुव स्वामिनी' का लेखक यह बतला देना चाहता है कि स्त्रियाँ पुरुष की सम्पत्ति नही है। वह दाम्पत्य-सम्बन्ध को सहज ही ठुकरा देने वाली वस्तु नही मानता, किन्तु पुरुष यदि अपने उत्तरदायित्व को भूल जाए, माँगी हुई शरण न दे, स्वेच्छाचार करे तो आपत्तिकाल मे स्त्रियाँ ध्रुव स्वामिनी की भाँति अपना पथ निश्चित कर सकती है। दाम्पत्य जीवन को सफलता पूर्वक चलाने के लिये पति और पत्नी दोनो का एक दूसरे के प्रति एकनिष्ठ होना आवश्यक है। जिस प्रकार पति पत्नी से एकनिष्ठ होने की माग कर सकता है, ठीक उसी प्रकार पत्नी भी पति से यही अपेक्षा कर सकती है। 'कंकाल' का वायन लतिका को पाकर भी यमुना और घटी की ओर आकर्षित होता है। परिणाम स्वरूप सघर्ष की पीठिका निर्मित होती है और दोनो मे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है।

प्रसाद जी ने जातिवाद की सकीर्णता मे पिसती हुई मानवीय भावनाओं का करुण क्रन्दन देखा था। सामाजिक-क्षेत्र मे अन्तर्जातीय विवाह निषिद्ध थे। ऐसे विवाहों के प्रति समाज के पास उपेक्षा और घृणा ही थी। सामाजिक अनुशासन की इस अर्गला को तोडना सहज न था। स्वय प्रसाद जी भी अपनी पूर्व कृतियों मे इतना साहस नही कर सके थे कि अन्तर्जातीय विवाह का खुला समर्थन कर सकें। 'मदन-मृणालिनी' (छाया) मे नायक नायिका को कलकत्ता से हटा कर सबसे दूर सिलोन ले जाया जाता है, जहाँ उनके विवाह पर व्यग्य बाणो की वर्षा करने के लिये समाज नही आएगा। लेकिन वहाँ भी मदन और मृणालिनी का विवाह समारोह, एक दूसरे के प्रति असीम प्रेम होते हुए भी, पूर्ण न हो सका, और मदन, मृणालिनी को सिलोन मे ही उसके माता-पिता के पास छोड़ कर एक दिन भारत लौट आया। उसकी इस विवशता में जातिवाद का प्रश्न ही प्रमुख था। परन्तु, अपनी उत्तर कृतियो से प्रसाद जी ने धीरे-धीरे अपने साहस का परिचय दिया है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' मे यादवी सरमा नाग का परिणय ग्रहण करती है। जनमेजय मणिमाला के साथ आबद्ध होता है। किन्तु इन विवाहों की पृष्ठ भूमि में स्वतन्त्र प्रेम की कल्पना नही की गई है, बल्कि दो परस्पर विरोधी जातियों मे एकता एवं मैत्री स्थापना के आदर्श को लेकर ही ये विवाह-व्यापार रचे गए हैं। चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया का विवाह दो सस्कृतियो के सम्मिलन के महान् आदर्श को लेकर आयोजित हुआ है। साथ ही अन्तर्जातीय विवाहो की आयोजना में प्रेम-भावना को भी स्वीकृति पहले सहज यही प्रदान की गई है। आगे चलकर 'कंकाल' मे मंगल और गाला का विवाह शुद्ध प्रेम पर आधारित है। 'तितली' के इन्द्रदेव शैला को भी इसी प्रकार से अपनाते हैं। यहाँ तक आते-आते प्रसाद जी प्यार करने की स्वतन्त्रता

पर विश्वास करने लगे हैं और अन्तर्जातीय विवाहो की पुष्टि के लिये उन्हे जो जातीय हित या साँस्कृतिक आदर्श की आड लेनी पड़ी था, उसकी आवश्यकता भी अब नही रह जाती हैं।

उपर्युक्त समस्याओ और समाधानों के साथ-साथ प्रसाद जी के सामाजिक अध्ययन का एक और मुख्य विषय है, वेश्यावृत्ति। इस प्रथा से प्रसाद जी सबसे अधिक पीड़ित है। उन्होने इस वर्ग के प्रति अपनी महान् करुणा अभिव्यक्त की है। नारी के प्रति उनके मन मे सम्मान-भावना का अतिशय भडार है। एक स्थान पर 'कंकाल' के मगल के मुख से वह कहते है—'परन्तु मैं तो आज तक यही नहीं समझा कि सुन्दरी स्त्रियाँ क्यो वेश्या बने। ससार का सबसे सुन्दर जीवन क्यो सबसे बुरा काम करे। (पृष्ठ ३१) पुरुष ने स्वय अपनी वासना की तृप्ति के लिये वेश्यावृति का आविष्कार किया। अगणित महिलाओ से माँ और बहिन बनने का अधिकार छीन लिया। उल्टे उन्हे दुराचारिणी भी घोषित किया। नारी का इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है। प्रसाद ने ऐसी, समाज द्वारा पतिता नारी मे भी एकनिष्ठा और सत्य प्रेम की प्रतिष्ठा की है। 'अजातशत्रु' मे श्यामा विरुद्धक से कहती है—'क्या तुम मनुष्य नही हो। आन्तरिक प्रेम की शीतलता ने तुम्हे कभी स्पर्श नही किया ? जीवन की कृत्रिमता मे दिन-रात प्रेम का वानिज करते-करते क्या प्राकृतिक स्नेह का स्रोत एक बार ही सूख जाता है। क्या वार-विलासिनी प्रेम करना नही जानती।' (पृष्ठ ७२)। प्रसाद जी का दावा है कि ऐसी महिलाओ के भी मन है, और वे सम्मानित सामाजिक बन कर रहना चाहती है। 'चूड़ीवाली' बारविलासिनी होते हुए भी विजय कृष्ण के प्रति एक निष्ठ है। 'सालवती' के मन का कोना सवेदनशीलता से भीगा हुआ है। वह अपनी परवशता के मध्य कुलवधुओ के व्यग्य वाण सहन करती है। उसका अन्तर रो उठता है, जब उससे यह कहा जाता है—

'तूने वेश्यावृत्ति के पाप का आविष्कार किया है। तू कुल-पुत्रो के वन की दावाग्नि की प्रथम चिनगारी है। तेरा मुँह देखने से भी पाप है।' (इन्द्रजाल, पृष्ठ १४७)

प्रसाद जी ने इस समस्या के समाधान हेतु समाज के कुल-पुत्रो से आगे आकर समाज द्वारा प्रताडित इन महिलाओ को पत्नी रूप मे स्वीकार करने की अपेक्षा की है। जिस राष्ट्र मे जिस वृत्ति को प्रोत्साहन मिला है, राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि उसकी सुव्यवस्था भी करे। प्रसाद जी कौमार्य, शील और सदाचार खण्डिता इन प्राणियो के लिये विवाह का विधान बतलाते है और उनका कहना है कि इस समस्या का निराकरण केवल इस प्रकार से ही हो सकता है। वेश्यावृत्ति के लिये उन्होने कभी भी नारी को दोषी नही ठहराया है। एक स्थान पर वे कहते हैं— सब

वेश्याओं को देखो—उनमे कितनो के मुख सरल हैं, उनकी भोली भाली आँखें रो-रो कर कहती हैं, मुझे पीट-पीट कर चञ्चलता सिखलाई गई है[1]। समाज के इन पतित प्राणियों के प्रति प्रसाद जी की सहानुभूति का उद्रेक प्रबल रूप से नि:सृत हुआ है।

सामाजिक चेतना के प्रहर मे प्रसाद जी नारी-समाज, विशेषतया मध्यवर्गीय नारी समाज में व्यापक अविद्या के अन्धकार को दृष्टि ओझल नही कर सके है। 'कंकाल' मे मगल की प्रेरणा से माला ग्राम्य बालिकाओं को पढाने का भार ग्रहण करती है। प्रसाद जी का विश्वास है कि यदि घरो के भीतर अन्धकार को समूल नष्ट करना है तो महिलाओ को शिक्षित होना पडेगा, जिससे वे भी विस्तृत समाज में अपने अधिकारो का प्रयोग कर सकें। लतिका नारी शिक्षा के लिये सर्वस्व दान दे देती है जिससे 'शिक्षा के साथ वे इस योग्य बनाई जाएगी कि घरो मे, पर्दों मे, दीवारो के भीतर नारी जाति के सुख, स्वास्थ्य और संयत स्वतन्त्रता की घोषणा करें, उन्हे सहायता पहुँचाए, जीवन के अनुभवो से अवगत करें। उनमे उन्नति, सहानुभूति, क्रियात्मक प्रेरणा का प्रकाश फैलाए[2]।

प्रसाद जी ने अपने युग की इन विशिष्ठ समस्याओ के साथ-साथ कुछ गौण समस्याओ पर भी प्रसगवश प्रकाश डाला है। उन्होंने बहु-विवाह और वृद्ध-विवाह का विरोध किया है। उनकी लेखनी से व्यावसायिक विवाह की भावना पर कुठाराघात हुआ है। सपत्नी समस्या भी, जो अभिजातीय वर्ग मे विशेष रूप से अवस्थित है, उनकी चिन्तना का विषय बनी है। 'अजातशत्रु' में छलना और वासवी तथा 'स्कन्द गुप्त' की देवकी और अनन्त देवी का परस्पर सघर्ष बताकर उन्होंने एक विवाह की मान्यता प्रतिष्ठित करनी चाही है। निम्न वर्गीय महिलाओं की आभूषण प्रियता तथा उसके दुष्परिणामो पर उनकी दृष्टि गई है। प्रेम के क्षेत्र में जाति प्रथा की समस्या का खण्डन करके उन्होंने अभिजातीय वर्ग के युवक को निम्न वर्ग की नारी से प्रेम-विवाह करने की सुविधा दी है[3]।

इस प्रकार प्रसाद जी ने उन सभी सामाजिक समस्याओं का स्पर्श किया है जो तत्कालीन समाज सुधारकों के सम्मुख उपस्थित थी। और इस दिशा में उनके साहित्यिक समाधान भी समाज सुधारकों की विचारधारा के समान ही समस्याओ का निदान खोजते हैं।

१—कंकाल, पृष्ठ २०८।
२—कंकाल, पृष्ठ २८२।
३—नीरा, आँधी, पृष्ठ १००।

(ब) आदर्श —

उपर्युक्त विवेचना के अन्तर्गत प्रसाद जी द्वारा उठाई गई नारी सम्बन्धी समस्याओं को लिया गया है। समाज मे नारी स्थिति सम्बन्धी क्या आदर्श होना चाहिए, प्रसाद जी ने इस प्रश्न पर विशद व्याख्या प्रस्तुत की है। इस विषय को लेकर प्रसाद जी की विचार धारा मे विकास हुआ है, लेकिन इस विकास क्रम मे कोई व्यवधान लक्षित नही होता। प्रसाद का साहित्य नारी-स्वातन्त्र्य की उद्‌घोषणा करता है। वह भारतीय जीवन की उन रूढ़ि-जर्जर परम्पराओं, आदर्शों और मान्यताओं पर कुठाराघात करता है, जिसने सामाजिक प्रगति का पथ, अवरुद्ध कर रखा है। अपने नाटकों को राष्ट्रीय भाव-भूमि प्रदान करते हुए उन्होंने नारी के क्षेत्र-विस्तार की वकालत की है। विजया, कार्नेलिया, अलका, मल्लिका आदि जीवन के व्यापक क्षेत्र मे अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करती है। राष्ट्रीय उद्‌बोधन मे वे पुरुष की सहचरी बन कर अवतीर्ण होती है। उनकी सकीर्ण सीमाओं की शृखला टूट जाती है और वे अपनी प्रतिभा का उपयोग कर सकने मे दत्तचित्त हो, राष्ट्रीय योजनाओं मे भाग लेती दिखाई पडती है। इस प्रकार प्रसाद साहित्य मे 'नारी को हम पर्दे के बाहर राजसभा मे उपस्थित देखते है। स्वछन्दता से वह अपना मत भी प्रकट करती है। अवस्था और परिस्थिति के अनुसार हम उसे युद्ध-क्षेत्र मे भी उपस्थित पाते हैं। उसे विद्रोह के लिये अग्रसर देखते हैं। विद्रोह का नेतृत्व करते पाते हैं'· · · उपर्युक्त महिलाओं के रूप मे 'यही कहने का प्रयत्न किया गया है कि नारी घर के बाहर भी पुरुष के समान ही हर काम को करने की क्षमता रखती है और हर काम करती रही है'[1]।

सामाजिक जीवन मे ही नही, पारिवारिक-क्षेत्र मे भी प्रसाद जी नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करते है। उनका कहना है कि पत्नी पति की दासी नही, सहचरी और सहयोगिनी है। 'जनमेजय का नाग यज्ञ' मे वासुकी शरमा से पूछता है—'क्या पति होने के कारण तुम पर मेरा कुछ भी अधिकार नही है ?' तब सरमा उत्तर देती है—

'आप को और सब अधिकार है पर मेरी सहज स्वतन्त्रता के अपहरण करने का नही ··मैं आपके साथ चलूँगी, पर अपमानित होने के लिये नही।' (पृष्ठ ३९)

प्रसाद जी की धारणा थी कि कला, सौन्दर्य और नारी का अपमान ही मानवता को विनाश की ओर ले जाता है। अत मानवता की रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि नारी का सम्मान करना सीखा जाए। और उसे सम्मान देने से

१—परमेश्वरी लाल गुप्त . प्रसाद के नाटक, पृष्ठ ११६।

पूर्व उसे स्वतन्त्रता देना आवश्यक है। 'कामायनी' मे 'श्रद्धा और इडा दोनों का स्वतन्त्र गति एवं प्रेम द्वारा नारी-स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का वह समर्थन करते हैं। वह नारी-स्वातन्त्र्य-समस्या के विषय मे प० जवाहर लाल नेहरू के निम्नलिखित मत से पूर्ण सहमत थे— 'हमारे देश की रचना का बुनियादी पत्थर स्त्री-स्वातन्त्र्य होना चाहिए और उसी आधार पर समाज का निर्माण होना चाहिए, क्योंकि हमारे समाज की इमारत को नीव नारी देती है'[1]।

'प्रसाद जी का समस्त साहित्य 'स्व' की अनुभूति जागृत करने का महत् (पर साथ ही सरस) प्रयत्न है। परन्तु इस 'स्व' का अर्थ प्रसाद जी के कोश मे 'अह' नही है। प्रसाद जी ने नारी स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का ज़ोरदार समर्थन किया है, ठीक है। यह भी ठीक है कि वह उसे राष्ट्रीय, सामाजिक एव साँस्कृतिक सभी क्षेत्रो मे समान अधिकार देने के पक्ष मे रहे है। परन्तु इसका अर्थ यह नही हो जाता कि नारी अपनी मूल प्रवृत्तियो को भुला कर केवल अधिकार प्राप्ति की आकाँक्षा से पुरुष वर्ग के साथ निरर्थक और परिणाम मे अहितकर होड करती हुई सामाजिक भावभूमि मे असन्तुलन और वेषम्य की अवतारणा करे। अपने परवर्ती नाटक 'अजातशत्रु' मे कह आए हैं—'विश्व भर मे सब कर्म सब के लिये नही है। इसमे कुछ विभाग हैं अवश्य।...मनुष्य कठोर परिश्रम करके जीवन सग्राम मे प्रकृति पर यथाशक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है, उसका एक शीतल विश्राम है और वह स्नेह-सेवा-करुणा की मूर्ति तथा सान्त्वना के अभय वरद हस्त का आश्रय, मानव समाज की सारी वृत्तियो की कुन्जी, विश्व शासन की एक मात्र अधिकारिणी, प्रकृतिस्वरूपा स्त्रियो के सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है[2]।' क्योकि 'स्त्रियों के संगठन मे, उनके शारीरिक एवं प्राकृतिक विकास मे ही एक परिवर्तन है जो स्पष्ट बतलाता है कि वे शासन कर सकती है, किन्तु अपने हृदय पर। वे अधिकार जमा सकती है उन मनुष्यो पर—जिन्हो ने समस्त विश्व पर अधिकार किया हो...तब उन्हे दुरभि-सधि की क्या आवश्यकता है[3]।

उनकी इसी भावना का विकास 'तितली' मे हुआ है। 'तितली' की मूल समस्या नारी के अधिकार-क्षेत्र को लेकर चलती है। इसमे उनके चिन्तन का विषय है कि क्या 'नारी-जीवन की सार्थकता अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तिगत बनाए रखकर पारिवारिक जीवन की उपेक्षा करते हुए, समाज सेवा का व्रत धारण करने में है

१—रामलाल सिह (कामायनी अनुशीलन), पृष्ठ १९८ पर उत्कथित।
२—अजातशत्रु, पृष्ठ १२५।
३—वही, पृष्ठ १२४।

अथवा गृहस्थी के भीतर अपने प्रेम और श्रद्धा के केन्द्र पति के प्रति अपने कर्त्तव्यो का पालन करते हुए समाज के रक्षण, निर्माण और विकास के योग देने मे ।

प्रसाद जी ने शैला और तितली के चरित्रो के माध्यम से इस समस्या का का उद्घाटन किया है । शैला पाश्चात्य आदर्शों की पीठिका मे अपने जीवन दर्शन का निर्माण किया चाहती है । वह इन्द्रदेव के आश्रय मे रहती है । एक प्रकार से वह इन्द्र देव की दया पर निर्भर है । फिर भी वह सोचती है—'नही, समाज का सगठन ही ऐसा है कि प्रत्येक प्राणी को धन की आवश्यकता है । इधर स्त्री को स्वावलम्बन से जब पुरुष लोग हटा कर उनके भाव और अभाव का दायित्व अपने हाथ मे ले लेते है, तब धन को छोड कर उनका क्या सहारा है ।' (तितली, पृ० २००)

वह अपना पृथक व्यक्तित्व बनाए रखने की चेष्टा मे काम करके धन कमाना चाहती है । उसमे उस महान समर्पण भावना का अभाव है जो भारतीय नारी की अपनी विशेषता है । प्रसाद जी ने शैला के चरित्र मे पाश्चात्य आदर्शो की अपूर्णता और अव्यावहारिकता की ओर सकेत किया है । शैला काम करके भी सुखी नही है । पत्नी बन कर भी इन्द्रदेव के प्रति उसकी निष्ठा पूर्ण रूप से मुखरित नही हो पाती है । वह बार-बार बाथम की ओर झुकती है । उसकी यह भावना उसे पाश्चात्य जीवन की देन है । इस प्रकार शैला अपने व्यक्तित्व का विलय कर सकने मे असमर्थ है । दूसरी ओर अपनी सम्पूर्ण उदात्तता एव कर्तव्य निष्ठा को लिए हुए तितली की चरित्र रश्मिया विकीर्ण होती है । उसमे प्रेम की एकनिष्ठा है । सुगृहिणी का आदर्श है । वह अपने पति पर पूर्ण समर्पित और विश्वासी है तथा उसमे जीवन की विभीषिकाओ का सामना करने की अपूर्व क्षमता है । वह भी सामाजिक कर्तव्य को पूरा करती है । ग्राम्य बालिकाओं के लिए पाठशाला का आयोजन उसी के द्वारा होता है । ससार भर के परम अछूत, समाज की निर्दय महत्ता के काल्पनिक दम्भ का निर्दशन, छिपा कर उत्पन्न किये जाने योग्य सृष्टि के बहुमूल्य प्राणी, जिन्हे उनकी माताए भी छूने मे पाप समझती हैं; व्यभिचार की सन्तान—ये सब बालक उसके यहाँ आश्रय प्राप्त करते है । वास्तव मे तितली लोक सेविका और लोक सरक्षिका के रूप मे अवतरित होती है । लेकिन लोक के प्रति अपने कर्त्तव्य की भावना के विस्तार मे उसने अपनी गृहस्थी को, अपने मधुबन को और अपने पत्नी रूप को नही भुला दिया है । यही उसकी महानता है और इसी बिन्दु पर वह शैला से कई गुना ऊँची उठ जाती है । अपने व्यक्तित्व और चरित्र के माध्यम से वह यह स्पष्ट कर देती है कि भारतीय समाज मे नारी जीवन का मूल्य असीम त्याग की भावना मे अवस्थित है ।

इस प्रकार प्रसादजी ने इस प्रश्न को कि नारी का सही स्थान कहाँ है, उसके अधिकार और कर्त्तव्यो के क्षेत्र और उनकी सीमा रेखा किस प्रकार निर्दिष्ट हो सकती है, 'तितली' की नायिकाओ के माध्यम से हल करने की सफल चेष्टा की है । उनके

अनुसार नारी का सबसे पहला और आवश्यक स्वरूप पारिवारिक जीवन के भीतर ही विकसित होना चाहिए। शैला ने पारिवारिक जीवन के पथ से विपथ होकर क्या पाया ? जीवन भर अशान्ति और विकर्षण । प्रसादजी ने नन्द रानी के मुख से नारी के अधिकार क्षेत्र को व्याख्या दी है—'मै तो जानती हू कि स्त्री, स्त्री ही रहेगी। कठिन पीडा से उद्विग्न होकर आज का स्त्री-समाज जो करने जा रहा है, क्या वह वास्तविक है।' तितली के शब्दो मे भी 'हिन्दू स्त्री का श्रद्धापूर्ण समर्पण उसकी श्रद्धा का प्राण है।'

परन्तु प्रसादजी की मान्यता है कि यदि नारी पारिवारिक जीवन को प्राथमिकता देकर अपना स्थान निर्दिष्ट कर ले, तभी उसका जीवन सफल और उन्नत बन सकता है और तभी वह अपने सामाजिक कर्त्तव्यो के प्रति भी समुचित न्याय कर सकती है। अन्यथा, स्वतन्त्र बनाये रखने की मृग-मरीचिका मे वह आत्मिक अशान्ति की तृषा से सदैव ही व्याकुल हती रहेगी।

इसी प्रसग मे प्रसादजी के, आधुनिक नारी मे बल प्राप्त करती हुई अधिकार भावना विषयक विचारो को भी देख लेना चाहिये । हम ऊपर कह आए है कि प्रसादजी ने नारी को सामाजिक स्वतन्त्रता देने के पक्ष मे जोरदार वकालत की है । लेकिन जहा नारी अपनी निसर्ग कर्त्तव्य-भावना को भूलकर समानाधिकार की प्रतिद्वन्द्विता को ले, महत्ता प्राप्त करने की आकाक्षा से प्रकट हुई है, वहा प्रसादजी ने उसे अपनी सहानुभूति प्रदान नही की है। बल्कि जीवन की विभीषिका मे उसे उलझा कर सोचने के लिये विवश कर दिया है कि अधिकार प्राप्ति और महत्वाकाक्षा पूर्ति का उसका यह पथ उसके लिए श्रेयस्कर नही है । नारी की वास्तविक महानता उसके नारी रूप मे है, पुरुष रूप मे नही। इस प्रकार 'जहाँ रूप और सौन्दर्य से गर्विता नारी अपने जीवन की स्वाभाविक शान्ति को छोडकर, घर की उपेक्षा कर, सामाजिक क्षेत्र मे पुरुष से स्पर्धा कर महत्वाकाक्षाओ का शिकार बनती हुई अपने लिये ही धूमकेतु बन जाती है, वहा प्रसादजी की करुणा आँसू बहाती हुई[1]' उस अभागिन को उसके भविष्य के प्रति सचेत कर देती है । अजातशत्रु की 'मागधी' (श्यामा) में स्वतन्त्र वैयक्तिता की भयकर कामना है। जीवन के थपेड़ो से चोट खाती हुई वह अन्त मे गौतम के सम्मुख नत हो जाती है। शक्तिमती नारी की अपेक्षा पुरुष अधिक है। वह अबलाओ की रोदनशील प्रकृति लेकर भाग्य के भरोसे बैठ रहने की अपेक्षा प्रतिशोध के लिये कटिबद्ध होती है। वह स्पष्ट रूप से समानाधिकार की बात कहती है—'यदि पुरुष इन कामो को कर सकता है तो स्त्रिया क्यो न करे । क्या उन्हे अन्त करण नही है ? क्या स्त्रिया अपना कुछ अस्तित्व नही रखती। क्या उनका जन्मसिद्ध कोई अधिकार नही है।[2]'

१— इन्द्रनाथ मदान जयशकर प्रसाद : चिन्तन व कला, पृ० १९५।

२— अजातशत्रु, पृ० १२३-१२४।

परन्तु इस अधिकार के तेज से तप्त नारी को नारीत्व की साकार प्रतिमा मल्लिका के सम्मुख क्षमा-याचना ही करनी पडी है—

'वह मेरी भूल थी देवि ! क्षमा करना। वह बर्बरता का उद्रेक था—पाशव वृत्ति की उत्तेजना थी।[१]'

'कामना' नाटक मे भी कामना के रूप मे अतृप्त और असतोषी नारी का चरित्र उपस्थित किया गया है। जो सतोष को छोड कर विलास की ओर अग्रसर होती है। और फूलो का देश उच्छृखलता की क्रीडा-स्थली मे परिवर्तित हो जाता है।

इसी वर्ग की दूसरी नारी 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' की अनन्त देवी है। जिसके चरित्र मे आधुनिक नारी की बढती हुई दर्प भावना अभिव्यक्त हुई है। तितली की माधुरी भी प्रभुत्व की आकाक्षिनी है। इन्द्रदेव के उसके प्रति विचार दृष्टव्य है—'वह मुझसे स्नेह और सात्वना की आशा करने वाली निरीह प्राणी नही रह गई है, वह तो अपने लिये एक दृढ भूमिका चाहती है, और चाहती है मेरा पतन, मुझी से विरोध, मेरी प्रतिद्वन्द्विता। तब तो हृदय व्यथित हो जाता है। यह सब क्यो ? आर्थिक सुविधा के लिए। प्रभुत्व का नशा, ओह, कितना मादक है। मैने थोडी-सी पी है। किन्तु मेरे घर की स्त्रियाँ तो इस एकाधिकार के वातावरण मे मुझसे भी अधिक। सम्मिलित कुटुम्ब कैसे चल सकता है।[२]'

प्रसाद ने आधुनिक नारी की इस अधिकार भावना पर व्यग्य भी प्रस्तुत किये हैं। 'कामना' मे प्रमदा दम्भ से कहती है—'स्त्री पुरुषो की दासता मे जकड गई है, क्योकि उन्हे ही सुवर्ण की अधिक आवश्यकता है। आभूषण उन्ही के लिये है। मैंने स्त्रियो की स्वतन्त्रता का मन्दिर खोल दिया है। यहाँ वे नवीन वेशभूषा से अद्भुत लावण्य का सृजन करेगी। पुरुष स्वय उनके अनुगत होगे। मै वैवाहिक जीवन को घृणा की दृष्टि से देखती हू। उन्हे धर्म भवनो की देवदासी बनाऊँगी।[३]

और अधिकार भावना के पथ पर बहुत दूर तक चली आने के बाद स्वय कामना के भी कुछ इसी प्रकार के उद्गार उमडते है—'मैं पवित्र कुमारी हू। मैं सोने से लदी हुई परिचारिकाओ से घिरी हुई, अपने अभियान साधना की कठिन तपस्या करूगी[४], कहना न होगा कि प्रसाद ने नारी के इस जीवन दृष्टिकोण को कभी भी समादरित नही किया है। जहा नारी अनन्त साधनो से अपने सुख को अधिकाधिक सुख पूर्ण बनाना चाहती है, वही उसका पतन प्रसाद ने दिखलाया है। आधुनिक नारी की यह दर्पपूर्ण भावना का उत्कर्ष जो मूल रूप मे पाश्चात्य शिक्षा और सस्कृति की देन है, हमे कामायनी की 'इडा' मे देखने को मिलता है।

१—अजातशत्रु, पृ० १२६।

२—तितली, पृ० १०९-११०।

३—कामना, पृ० ६६।

४—वही, पृ० ७३।

'प्रसाद जी ने इडा के चरित्र मे आधुनिक युग की बौद्धिक क्षमता से युक्त एक ऐसी सबल नारी का व्यक्तित्व खडा किया है जो आज के वैज्ञानिक युग की समस्त शक्तिमत्ता एव दुर्बलता का एक साथ पूरा-पूरा आभास देने मे समर्थ है। आधुनिक युग की नारी जिसे हम अल्टा-माडर्न के विशेषण से विभूषित करते है, और जो अपनी बौद्धिक पूर्णता के साथ पुरुष के साथ रहकर छलना करती है, इडा के व्यक्तित्व मे कुछ कुछ देखी जा सकती है। वस्तुत इडा व्यवसाय युक्त बुद्धि का वह रूप है, जो अपने चरम विकास की परिणति होने पर सघर्ष और विप्लव की भूमिका प्रस्तुत करती है।[1]'

'कामायनी' की इडा का अहम् प्रबुद्ध होकर सामाजिक जीवन मे विडम्बनाओ की सृष्टि करता हुआ, 'नारी के दर्प, अहकार तथा बौद्धिक वैभव' आदि का घातक रूप व्यक्त करने मे सफल है। इडा के चरित्र से प्रसाद जी की इस भावना को अभिव्यक्ति मिलती है कि केवल प्रबुद्ध मस्तिष्क लेकर ही समाज की कल्याणमयी भूमिका की नीव सुदृढ नही की जा सकती है। उसके लिये मन की कोमल भावना का विकास अत्यावश्यक है क्योकि कोरी बौद्धिकता की सदैव पराजय होती है, और उसके द्वारा जीवन के विविध तत्वो मे अपेक्षित सामजस्य होने की सभावना नही रह जाती। सामजस्य का अभाव सामाजिक वातावरण मे विश्रृखलता उत्पन्न करता है। जिससे समाज की चेतन व्यवस्था को हानि पहुचनी है। प्रसाद जी इस विशेष नारी वर्ग की इस एकागी अधिकार-भावना से शकित थे, इसीलिये इडा के व्यक्तित्व, व्यवहार और उसके परिणाम तथा पराजय से उन्होने इस विशेष वर्गीय नारी समुदाय को सोचने और समझने की दिशा प्रदान की है। सामाजिक जीवन के क्षेत्र मे आधुनिक नारी का यथार्थ चित्रण और दिशा निर्देश प्रसाद जी की दूरगामी दृष्टि के परिचायक है।

इस प्रकार प्रसाद जी के सामाजिक आदर्श की समन्वित कल्पना करते हुए हम कह सकते है कि वे नारी को स्वतन्त्रता देने के पक्ष मे थे। रूढ़िवादिता की सकीर्ण प्राचीरो मे अपने व्यक्तित्व का दमन करने के लिये विवश नारी को उन्होने अपने अन्तस् की समस्त सहानुभूति प्रदान की है। वे उसे उस परिबद्ध वातावरण से निकाल कर सामाजिक जीवन के विस्तृत क्षेत्र मे अपने व्यक्तित्व का विकास करने के उद्देश्य से लाने की उद्घोषणा करते है। उसे जीवन के समस्त कार्य-कलापो और व्यापारो में पुरुष की सहयोगिनी और सहचरी मानते है। वे उन्हे ध्रुवस्वामिनी के समान पुरुष के अत्याचारो और अन्यायों का प्रतिकार करने का अधिकार भी प्रदान करते है। प्रसाद की नारी सम्बन्धी सामाजिक विचारधारा मे पत के इस भाव को कि—

'मुक्त करो नारी को मानव
चिर वन्दिनी नारी को

१—इन्द्रनाथ मदान द्वारा सकलित 'जयशकर प्रसाद चितन व कला' मे, पृष्ठ १०३ पर।

युग युग की बर्बर कारा से
जननी, सखी प्यारी को—'

पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान हुई है। परन्तु इसके साथ-साथ जहा नारी स्वयं पाश्चात्य प्रभाव मे आकर समानाधिकार के माग की 'निर्लज्जता' कर बैठती है, वहाँ प्रसाद उदास हो जाते है। जन्म से ही अधिकारमयी नारी को अधिकारो की माँग करती देखकर वे पीडित हो उठते है। उनकी दृष्टि मे यह नारी का अपनी सम्मानित अवस्था से पतन है। इसीलिए उन्होने अधिकार एव दर्पपूर्ण नारी का परिणाम दु ख, पराजय और हीनता मे ही दर्शित किया है। उनका विश्वास है कि नारी अपनी दुर्बलताओ के परिणामस्वरूप ही दु खी जीवन बिताती है। यदि वह अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि मे सुदृढ निश्चय लग्न हो, अपने कर्त्तव्यो का पालन करने के लिए तत्पर बने तो निश्चित ही जीवन मे सुचारुता एव व्यवस्था का अधिष्ठान हो सकता है। इस प्रकार 'स्त्रियो की दुर्बलता की दुहाई देकर, और उनके सुधार की आवाज ऊँची उठाकर और समाज मे उन्हे उचित स्थान देने का दावा करके भी प्रसाद जी का आदर्श भारतीय ही रहा है। पश्चिम के आदर्श की उन्नति का मार्ग उन्होने नही माना[1]।' इस प्रकार प्रसाद जी के मन मे नारी के प्रति अपार श्रद्धा और सहानुभूति की भावना विद्यमान है। किन्तु वे उसे पाश्चात्य आधुनिका के रूप मे न देखकर केवल करुणा तथा कोमलता की प्रतिमूर्ति भारतीय नारी के रूप में देखना चाहते हैं। क्योकि उनका विश्वास है कि—'कठोरता का उदाहरण है पुरुष, कोमलता का विश्लेषण हैं स्त्री[2]।'

वैवाहिक संस्था और स्वच्छन्द प्रेम

प्रसाद जी की सामाजिक विचारधारा का विकास स्वच्छन्द प्रेम और वैवाहिक सस्था के विषय को लेकर हुआ है। वैज्ञानिक युग की व्यक्तिवादी भावना के विकसित होने पर स्वच्छन्द प्रेम समाज के बीच भाव-ग्रहण करता सा प्रतीत होता है। प्रसाद जी इसके विरुद्ध हैं। क्योकि इसमे न तो एकनिष्ठा की भावना ही विद्यमान है और न किसी प्रकार का स्थायित्व ही। एकनिष्ठा और स्थायित्व के अभाव मे ऐसा प्रेम सुख, ऐश्वर्य और शान्ति के विपरीत मानसिक कुण्ठा और दुराचार को प्रश्रय देता है। इस समस्या को उन्होने सबसे पहले 'एक घूट' मे अभिव्यक्त किया है। वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता के हामी हैं, प्रेम के क्षेत्र मे भी स्वतन्त्रता उन्हे मान्य है, परन्तु जब स्वतन्त्रता स्वच्छन्दता बनकर उच्छृखलता की सृष्टि करती है, प्रसाद जी उसका विरोध करने लगते है। 'एक घूट' मे इसीलिए विवाहित जीवन को स्वच्छन्द जीवन की अपेक्षा उच्चतर और श्रेष्ठ माना गया है। वनलता के शब्दो मे जैसे प्रेम की एकनिष्ठा बोल रही है—

१—गुलाबराय : प्रसाद जी की कला, पृ० १७५।

२—शम्भुनाथ पाण्डेय : प्रसाद जी की नाट्य-कला और अजातशत्रु, पृ० ३१।

'मैं जिसे प्यार करती हू वही—केवल वही व्यक्ति मुझे प्यार करे, मेरे हृदय को प्यार कर, मेरे शरीर को—जो मेरे सुन्दर हृदय का आवरण है—सतृष्ण देखे। उस प्यास मे तृप्ति न हो, एक-एक घूट वह पीता चले, मै भी पिया करूँ, समझे[1] ?'

यह सत्य है कि 'आत्मा का स्वास्थ्य, सौन्दर्य और सारल्य प्रेम की स्वतन्त्रता' मे ही है। परन्तु प्रेम के क्षेत्र मे निर्बाधता और स्वच्छन्ता को ही एकमात्र नियम मान लेने से पति पत्नी वृत भी आत्मा के बन्धन स्वरूप ही उपस्थित होते है। प्रसाद जी इसे अतिवाद मानते है, जो आनन्दवाद का स्वस्थ और सुन्दर रूप नही है। इसी से स्वतन्त्र प्रेम का प्रचारक आनन्द प्रेमलता के परिणय-सूत्र मे बँध जाता है और अपनी भूल समझ लेता है। वर्तमान युग मे नर-नारी के यौनाकर्षण को प्राकृतिक धर्म मानकर वैवाहिक बन्धनो के स्थान पर अबाध यौन-सयम की जो पुकार उठी है, जान पडता है, इस एकाकी द्वारा प्रसाद ने उस विचारधारा के समर्थको पर व्यग्य किया है[2]। इस प्रकार से प्रसाद जी ने स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध की सबसे उत्तम अवस्था विवाह को ही माना है।

उनकी सामाजिक कृति 'ककाल' मे आज की विवाह सस्था की विडम्बना पर विचार प्रकट हुए है। इस रचना का निर्माण पक्ष अतिशय व्यक्तिवादी या एनार्किस्ट है। किसी भी सामाजिक सस्था, प्रणाली या परिणाम मे उसका विश्वास नही है। व्यक्ति की प्राकृतिक चेष्टाओ, सहज कर्त्तव्यो और किसी भी कृत्रिम भार से रहित—व्यवहार मे उसकी अटल आस्था है। प्रसाद जी का वह व्यक्तिवाद सात्विक प्रेममय, उत्कृष्ट चेष्टामय, शुद्ध, निर्दम्भ, शक्तिमय और सतत आयोजनमय है।[3]

इसी व्यक्तिवादी प्रेरणा से उन्होने विवाह सस्थाओ की अव्यावहारिकता तथा असफल व्यवस्था पर दृष्टिपात किया है। जिस सामाजिक सस्था की स्थापना समाज की सुव्यवस्था के उद्देश्य से की गई थी, उसका फूहडपन ककाल मे स्पष्ट हो जाता है। श्रीचन्द-किशोरी, मगल-यमुना, लतिका-बाथम सभी तो विवाह-सस्था द्वारा अनुगृहीत है, लेकिन इनमे से कोई भी विवाह-सस्था की एकोन्मुख पवित्रता का रक्षण कर सकने मे समर्थ नही है। मानव अपनी भावुकता और सवेदनशीलता के कारण अपनी कमजोरियो का शिकार है। किसी-न-किसी स्थान पर उससे त्रुटि का हो जाना बहुत ही स्वाभाविक है। परन्तु उसकी त्रुटि के लिए—केवल एक बार के पतन के लिए, केवल एक बार आदर्श विमुख हो जाने पर उसके प्रति समाज की कोई सहानुभूति नही रह जाती। प्रसाद जी ने 'ककाल' मे मानव जीवन के व्यापारो की पृष्ठभूमि मे परिस्थितियो के व्यग्य को उभार देकर इन विवाह-सस्थाओ की

१—एक घूँट, पृष्ठ ४०।

२—रामरतन भटनागर : प्रसाद साहित्य और समीक्षा, पृष्ठ १२०।

३—प० नन्ददुलारे वाजपेयी · जयशकर प्रसाद, पृ० ४२-४३।

पवित्रता के खोखलेपन को प्रदर्शित किया है जिसे अश्लीलता का नाम देकर नैतिकता की फूक से नही उडाया जा सकता। ककाल के यथार्थ चित्रण मे जहाँ अश्लीलता है, वहाँ अश्लीलता उद्देश्य नही है[1]।

यहाँ आकर प्रसाद जी को मूलरूप से 'नारी और पुरुष के स्वाभाविक आकर्षण और उनकी स्वतन्त्र गतिविधि के हामी होने के कारण प्रचलित पावित्र्यवादी विचारधारा के प्रति विद्रोह करना पडा है। उनके अधिकाश पात्र इसी विद्रोही मनोभावना की उपज है और उपेक्षा तथा भगोडेपन का-सा जीवन व्यतीत करते हैं, पर यह भगोडापन नवीन सामाजिक एव सास्कृतिक साधना का अग बनकर आया है। वह अपना विशिष्ट उद्देश्य रखता है, निरुद्देश्य नही है[2]।'

प्रेम की स्वतन्त्रता को मान्यता देने के पक्ष मे होकर प्रसाद जी ने अपनी परवर्ती रचनाओ मे इस आशय के विचार प्रकट किये है। वे नारी के लिये स्वतन्त्र-प्रेम के अधिकार की माँग करते है, जहाँ जाति, वर्ग, परिस्थिति और देशकाल की सीमाओ का कोई परिबन्धन नही है। इसीलिए उनके कथा-साहित्य मे स्वतन्त्र प्रेम के कई प्रसग देखने को मिलते हैं। 'विजया' कहानी की नायिका विधवा होकर भी प्रेम करने के अधिकार को अक्षुण्ण बनाए है। 'नीरा' कहानी की नीरा दैन्य और निर्धनता का जीवन बिताते हुए भी अभिजातीय वर्ग के पुरुष को प्रणय दे सकती है। इससे भी आगे प्रसाद जी ने वेश्या के अतस् मे सात्विक प्रेम का उदय दिखाया है[3]। इन सब मे जर्जर और प्राणहत परम्पराओ एव नैतिक मान्यताओ की अवहेलना की गई है और उसके स्थान पर प्रेम की स्वतन्त्र सत्ता का अधिष्ठान हुआ है। प्रसाद जी ने जीवन के इस बहुमूल्य व्यापार-प्रणय के क्षेत्र मे नारी की विवशता को करुणा—गीली आँखो से देखा था। उसकी वैषम्यपूर्ण स्थिति से प्रपीडित उन्होने नारी को प्रणय की सुविधा प्रदान करने की माँग की। इसी प्रसग मे उनकी दृष्टि वैवाहिक जीवन की विडम्बनाओ की ओर आकर्षित होती है। वहाँ उन्हे लगता है कि यह विवाह-सस्था अपना आदर्श प्राप्त कर सकने मे असमर्थ है। तब प्रेम और विवाह के सम्बन्ध को लेकर एक प्रश्न उठता है। वे विवाह से प्रेम को उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करते है। उनके 'ककाल' के स्वर मे नवयुग की चेतना बोल उठती है --

'घण्टी, जो कहते है अविवाहित जीवन पाशव है, उच्छृखलता है, वे भ्रान्त हैं। हृदय का सम्मिलन ही तो विवाह है। मैं सर्वस्व तुम्हे अर्पण करता हू और तुम मुझे, इसमे किसी मध्यस्थ की आवश्यकता क्यो—मत्रो का महत्त्व कितना। झगड़े की, विनिमय की, यदि सम्भावना रही, तो समर्पण ही कैसा। मै स्वतन्त्र प्रेम की सत्ता स्वीकार करता हू, समाज न करे तो क्या[4]।'

१—राम रतन भटनागर . प्रसाद साहित्य और समीक्षा, पृ० १७६।

२—प० नन्द दुलारे वाजपेयी . जयशकर प्रसाद, पृ० ४६।

३—देखिए, 'चूडीवाली' तथा 'सालवती' कहानियाँ।

४—ककाल, पृ० १७५-१७६।

ऊपरी सतह से देखने पर प्रसाद के विचारो मे मतभेद होने की सम्भावना हो सकती है। 'एक घूट' मे उन्होने स्वतन्त्र प्रेम को विवाहित जोवन से हीन सिद्ध किया है। यहाँ वे प्रेम को वैवाहिक जीवन से श्रेष्ठतर मानते है। किन्तु 'एक घूट' मे जिस स्वच्छन्द प्रेम का निदर्शन किया गया है, उसमे हृदय के सम्मिलन और एकनिष्ठा को कोई स्थान नही है। किन्तु 'ककाल' के स्वतन्त्र प्रेम मे हृदय का सम्मिलन और एक-दूसरे के प्रति निष्ठा की भावना ही प्रमुख है। निष्ठा का उत्कर्ष समर्पण की इस सीमा का स्पर्श करता है जहाँ मध्यस्थ, विनिमय और झगडे की सम्भावना ही नही रह जाती है। विवाह सस्था का भी तो यही आदर्श है, लेकिन क्या वह अपने आदर्श का पूर्ण निर्वाह कर सकने मे समर्थ है। यदि नही, तो फिर उसकी आवश्यकता ही क्या रह जाती है। स्वतन्त्र प्रेम यदि निष्ठा, समर्पण और विश्वास के स्वर मे दो मनो को परस्पर मिला देता है, तो अवश्य ही वह श्लाघनीय है, चाहे ऐसा करने से किसी सामाजिक रूढि का प्रतिकार ही क्यो न होता हो। प्रसाद प्रेम और विवाह मे इसी आदर्श की प्रतिष्ठा करते हैं। परन्तु उनकी विचार-कल्पना ने यही पर विश्राम नही ले लिया है। समाज के स्थायित्व की भी उन्हे चिन्ता है। यह ठीक है कि समाज मनुष्य के लिये है, मनुष्य समाज के लिए नही। लेकिन क्योकि समाज मनुष्य का है, अत. उसकी रक्षा, उसकी व्यवस्था एव स्थायित्व का भार मनुष्य पर ही आ पडता है। हृदय के सम्मिलन मात्र तथा स्वतन्त्र प्रेम की भावना को यही तक खीच लाने से सामाजिक जीवन व्यवस्था की अवस्थिति के प्रति कर्त्तव्य की इतिश्री नही हो जाती है। उसके लिए स्वतन्त्र चुनाव या स्वयवर सहायता नही दे सकते। परस्पर समझौते के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुए प्रणय को सामाजिक स्थायित्व, व्यावहारिकता एव सुव्यवस्था की रक्षा के लिए विवाह का रूप देना ही चाहिए। भले ही उसका महत्त्व प्रणय की उत्कृष्टतम भावना के सम्मुख बिल्कुल हीन ही क्यो न हो। इस प्रकार प्रसाद जी मानव मन की निसर्ग प्रवृत्ति का पूर्ण सम्मान करते तथा उसे जीवन की सर्वोत्कृष्ट भावना बताते हुए भी, सामाजिक व्यवस्था के प्रति उदासीन नही हो जाते। आत्मिक दर्शन के साथ भौतिक दर्शन का यह सामजस्य, जिसका प्रतिपादन प्रसाद-साहित्य मे हुआ है, किसी भी प्रकार अवास्तविक नही कहा जा सकता। उनकी दृष्टि मे प्रणय का स्थान किसी भी अन्य भावना की अपेक्षा अधिक सुनिश्चित, उच्चतर एव श्रेष्ठ है और विवाह केवल प्रणय और समाज की मान्यताओ एव आदर्शों के बीच एक समझौता मात्र।

इस प्रकार से प्रसाद जी ने प्रेम को व्यवसाय से उच्चतर भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया है। विवाह की व्यावसायिकता पर, जिसने सामाजिक जीवन मे उच्छृखलता एव विच्छिन्नता उत्पन्न कर दी है, तीव्र आलोचना अभिव्यक्त की है और इन सबसे ऊपर स्वतन्त्र प्रेम की सम्भावना पर यदि पुरुष और स्त्री दोनो परस्पर समझौते के परिणाम स्वरूप स्वतन्त्र व्यक्तित्व का अनुभव कर सकने मे समर्थ हो, अपने विचार प्रकट किये हैं। प्रसाद के मत मे विवाह और सामाजिक समझौते के

बीच यह सामजस्य लेखक की मौलिक कल्पना का प्रसाद है।

प्रसाद जी के सामाजिक विचारो की विवेचना करते समय एक अन्तिम किन्तु महवत्त्पूर्ण प्रश्न रह जाता है और वह है कि प्रसाद ने नारी-चित्रण में जीवन तत्व का स्पर्श किस सीमा तक किया है। साहित्य को सदैव ही जीवन से प्रेरणा मिलती रही है और जीवन के कार्यकलाप युग-दर्शन की पृष्ठभूमि मे ही व्यवहृत होते रहे हैं। प्रसाद जी यथार्थ के आदर्शवादी कलाकार कहे जा सकते हैं। मानवीय परिस्थितियो मे जीवन के दु ख-सुख की आँखमिचौनी व्यवहारो मे परिवर्तित करती चलती है। ये व्यवहार युग-युग की मान्यताओ के अनुसार परिचालित होते है। प्रसाद ने अपने युग की नारी-समस्या को निकट यथार्थ की आँखो से देखा था। उन्होने विभिन्न पक्षो मे हो रही उसकी उत्पीडा को अनुभव किया था और तब मानव धर्म के निर्वाह के नाते उन्होने इस समस्या को अपने हाथो मे लेकर मौलिक समाधान 'एक उज्ज्वल आदर्श की आकर्षक आकाक्षा' के रूप मे प्रस्तुत किया। शक्ति के उन्मेष-काल मे यदि 'कुटुम्ब की सृष्टा, समाज की विधातृ, सेवा, त्याग, सौन्दर्य एव शक्ति की प्रतीक नारी का अधिकार-शून्य, आलोकहीन तथा नारीत्व रहित रूप साम्प्रत समाज ने न दिखाया होता, तो नारीत्व की मूर्ति श्रद्धा जैसी नारी का चित्रण करने वाली कामायनी का दर्शन न हुआ होता[1]।'

प्रसाद ने इस बात को स्पष्ट रूप से देखा था कि सिद्धान्त रूप मे पुरुष द्वारा सदैव से ही नारी की महिमा का गुणगान होता रहा है। परन्तु व्यवहार मे उसके रूप और अभिव्यक्ति मे अपार भिन्नता है। नारी सब जगह पुरुष से उत्पीड़ित और प्रताडित है। उसके इसी उत्पीडन की कहानी प्रसाद जी ने ध्रुवस्वामिनी के रूप मे प्रस्तुत करके, पुरुष-वर्ग की निर्लज्जता एव अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की आवाज ऊँची की है। युग के नवोन्मेष मे नारी, चेतना की शक्ति लेकर अपने प्रति किये गये अत्याचारो का विरोध करती हुई, पुरुष के समान जीवन-निर्वाह का अधिकार चाहती है। लेखक यहाँ पर व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा करता है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर अनुशासन उसे सह्य नही है। वह समाज की सीमित सम्भावनाओ के विरुद्ध तथा रूढिबद्ध जाति-प्रतिष्ठा के विरोध मे, सामाजिक परिस्थितियो के मध्य जीवन की उच्छृखल शक्तियो का इतिहास प्रस्तुत करते हुए, व्यक्ति स्वातत्र्य की माँग उपस्थित करता है। वह सकीर्ण, बर्बर और प्राणहीन परम्परायो और मान्यताओ को लोक-मगल विधान के पथ का व्यवधान बना रहने देना नही चाहता और इसीलिए यथार्थ की पीठिका पर समस्याओ को प्रकट करते हुए वह पाठको को उन पर विचार करने की सुविधा प्रदान करता है। इसी सन्दर्भ मे प्रसाद ने पश्चिमी सभ्यता की अपूर्णता की ओर भी सकेत किया है। जहाँ जीवन की मान्यताएँ व्यक्तिवाद के चरम बिंदु का स्पर्श कर मानसिक असतोष और सामाजिक व्यवस्था मे असतुलन का कारण

१—रामलाल सिंह कामायनी अनुशीलन, पृ० १८३।

बनती है । पौर्वात्य समाज की विषमता का अध्ययन और मनन उन्होने भली प्रकार मे किया है । उनके साहित्य मे गृहीत नारी जीवन की समस्याएँ प्रत्येक घर की समस्या है । वे कल्पना द्वारा अतिरजित नही की गई है । उन्होने समस्याओ के उद्घाटन मे हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त का आदर्श प्रस्तुत नही किया है । श्री गुलाबरायजी के इन शब्दो मे—'हमारी स्त्री जाति अपने हृदय की दुर्बलताओ का शिकार है और मनुष्य के स्वार्थ की क्रीडा । प्रसाद जी के चरित्रो की विशेषता यह है कि वे अतिरजित नही है, उन्होने चित्रकारी नही की है, फोटोग्राफी की है । प्लेट पर जो जैसा रहा है, वैसा उतार दिया है । किसी-किसी चित्र के ऊपर रग भी चढा दिया गया है, बस । यह दोनो पुस्तके ('ककाल' और 'तितली') वर्तमान हिन्दू समाज के यथार्थ चित्रण है'—प्रसाद साहित्य के यथार्थ चित्रण को पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है ।

प्रकरण—८

प्रसाद की नारी—नैतिक दृष्टिकोण

: अ : नीति—स्पष्टीकरण

: ब : नैतिक आदर्श

: स : बाह्य तथा आन्तरिक आचरण एवं स्वरूप

नीति—स्पष्टीकरण

पूर्व प्रकरण मे प्रसाद जी की सामाजिक नारी-भावना का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए हम कह आए है कि उन्होने नारी के स्वातन्त्र्य की जोरदार वकालत की है। उनका विश्वास है कि स्वतन्त्रता की रक्षा किये बिना 'स्व' का विकास सम्भव नही है और इसीलिए वे उसी वस्तु को उपादेय और हितकर मानकर चलते हैं, जो स्वतन्त्रता के माध्यम से प्राप्त की गई हो। नारी-स्वातन्त्र्य का विचार सामाजिक मान्यताओ तथा चारित्रिक नियमो से प्रतिपादित होता है। चरित्र का अर्थ, व्युत्पत्ति के अनुसार आचरण की प्रकृति अथवा प्रथा ही समझना चाहिए। आचरण और व्यवहार के द्वारा नीति का निर्माण होता है। इस प्रकार नीति आचरण के निर्णय से सम्बन्धित होती है, यहा पर आचरण का अर्थ अच्छे और बुरे व्यवहार के अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। नीति भले और बुरे आचरण सम्बन्धी हमारे निर्णय का व्यवस्थित लेखा प्रस्तुत करती है।

समाज की सुदृढता, सुव्यवस्था और स्वास्थ्य के लिए नैतिक मर्यादाओ एव प्रतिमानो का स्वीकार्य आवश्यक हो जाता है। सामाजिक जीवन का सतुलन इन्ही नैतिक आदर्शो के पालन पर निर्भर करता है। परन्तु कभी-कभी परिस्थिति अथवा युग विकास के परिणामस्वरूप परम्परा से चली आई हुई मान्यताएं और नियम नये जीवन-दर्शन के साथ मेल खाने मे असमर्थ होते हैं। वास्तव मे उनकी प्राण-शक्ति नष्ट हो गई होती है और वे सतुलन एवं परिपोषण के स्थान पर वैषम्य और विडम्बना की अवतारणा सी करते दिखाई पडते है। ऐसी अवस्था मे इन नैतिक रूढियो से युक्त होना आवश्यक हो जाता है और व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने के उद्देश्य से उनका बहिष्कार करना आरम्भ कर देता है और उसके स्थान पर नवीन जागृति के आलोक मे नए आदर्शो, सिद्धान्तो और मान्यताओ की प्रतिष्ठा मे दत्तचित्त होता है। जिससे समाज को नई परिस्थितियो के मध्य स्वस्थ प्राण-शक्ति प्राप्त होती रहे और उनके विकास में किसी प्रकार का गतिरोध उत्पन्न न हो। इस प्रकार से विभिन्न परिस्थितिया और युग की नवीन चेतना का दर्शन, समाज के नैतिक आदर्शों मे परिवर्तन, विकास तथा क्रान्ति का सूत्रपात कर, नवीन उद्भावनाओ और विश्वासो की सृष्टि करता है, जिससे मानवता और समाज के हितो की न्यायपूर्ण रक्षा की जा सके।

नैतिक आदर्श

प्रसाद जी नैतिक आदर्शो की प्रतिष्ठा मे व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सर्वोपरि मानकर चले हैं । वे नीति की उस सकीर्ण शिक्षा मे विश्वास नही करते, जो व्यक्ति की भावनाओ पर कुठाराघात कर, जीवन की निसर्ग प्रवृत्तियो को, खोखले आदर्शो की दुहाई देकर, हनन करने का उपदेश देती है । उनके मत मे व्यक्ति को व्यक्ति होने के नाते अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर और सुविधा प्राप्त होनी चाहिए । सामाजिक नियमो को उसका पथ प्रशस्त करना चाहिए न कि वे उसका मार्ग अवरुद्ध करे । क्योकि मनुष्य के लिए समाज है, समाज के लिए मनुष्य नही । इसीलिए प्रसाद व्यक्ति को अहितकारी, पथ अवरुद्ध करने वाले तथा सकीर्ण आदर्शों के बहिष्कार का अधिकार देते है ।

भारतीय भूमि मे नारी का नैतिक आदर्श एकनिष्ठ, अनन्य भक्तिमयी, दयावान, उदार तथा शुद्ध आचरणमयी होने मे है । जीवन के सभी क्षेत्रो मे उससे सयम, सहानुभूति और औदार्य अपेक्षित है, प्रसाद जी भी इसका विरोध नही करते । लेकिन नारी द्वारा अपने व्यक्तित्व को कुचल कर इन आदर्शों की स्थापना का आचरण उनकी दृष्टि मे सामाजिक क्रूरता है । समाज ने नारी के कोमल कन्धो पर सामाजिक पवित्रता, सास्कृतिक महत्ता एव धार्मिक उच्चता का इतना बड़ा बोझ लाद दिया गया है कि उसके जरा से हिलने-डुलने पर भी लोक-अमगल की आशका चीत्कार कर उठती है । यह समाज का उसके प्रति महान् अन्याय है । प्रसाद जी इस अन्याय के विरोध का स्वर लेकर खडे हुए हैं और इसीलिए उसे तथाकथित सम्मानित जीवन की मृग-मरीचिका के शीर्ष से उतार कर स्वतन्त्र वातावरण मे समान अवसर देने की आयोजना करते हैं । इस प्रकार से प्रसाद जी का नारी सम्बन्धी नैतिक आदर्श परम्परा-युक्त न होकर स्वतन्त्रता की भाव-भूमि मे आरोपित, प्रस्फुटित और विकसित हुआ है ।

नारी को स्वतन्त्रता प्रदान करने के क्षेत्र मे पुरुष ने बडी सकीर्णता प्रदर्शित की है । समाज की विशृ खल स्थिति का यह भी एक कारण है । जैसे-जैसे पुरुष नारी की स्वतन्त्रता का अपहरण करना चाहेगा, नारी-वर्ग उसके विरोध मे प्रतिशोध की भावना से आविर्भूत, अधिक स्वतन्त्र होने की चेष्टा करेगा । इसी प्रयास मे असतुलन के कारण उसके अबाध स्वतन्त्र होने का भय भी बना रह सकता है और यही अबाध स्वतन्त्रता सामाजिक वैषम्य तथा व्यक्तित्व के विघटन का कारण बनती है । इसीलिए नारी को उतनी स्वतन्त्रता तो अवश्य देनी ही चाहिये, जितनी पुरुष अपने लिये अनिवार्य समझता है । अन्यथा सामाजिक सगठन में विक्षप्ति की सभावना प्रकट हो सकती है । नारी स्वतन्त्रता के प्रश्न को लेकर 'उर्वशी' मे उर्वशी का कथन उक्त कथन की पुष्टि करता है ।

'इसी स्वतन्त्रता को छीनने के लिये आगे चलकर अनेक कठोर नियम बनेंगे। बड़े-बड़े प्रलोभन और बड़ी-बड़ी धमकियां होगी पर फिर भी हमारा यह दल बना रहेगा और स्वतन्त्र रहेगा[1]।'

प्रसाद जी नारी को सर्वप्रथम प्यार करने की सुविधा देते है। नारी की प्रणय सम्बन्धी इस स्वतन्त्रता पर ही उसकी अन्य प्रकार की स्वतन्त्रता आधारित है। प्रणय की भावना, प्रसाद जी के मत मे, सबसे अधिक निसर्ग, स्वाभाविक और श्रेष्ठ है और इसलिए उस पर सबका समान अधिकार है। 'बभ्रुवाहन' की चित्रागदा अपने जीवन मे आने वाले पहले व्यक्ति अर्जुन को समर्पित होती है. उसी से उसका विवाह सम्पन्न होता है, विवाह के पश्चात् अर्जुन चले जाते है। कई वर्ष की अवधि व्यतीत होने पर भी वियोगिनी चित्रागदा अर्जुन को नही भूल पाती। उनका प्रणय चित्रागदा की गोद मे बभ्रुवाहन बन कर खेलता-पलता और बडा होता है। तब एक दिन अपने ही कुमार से पराजित अर्जुन चित्रागदा की सेवा पाते है। चित्रागदा की एकनिष्ठा अर्जुन का मस्तक नत कर देती है। देवसेना[2] स्कन्दगुप्त से प्यार करती है और जीवन भर उसी से प्यार करती रहती है। उसके जीवन मे केवल स्कन्द ही प्रथम और अन्तिम व्यक्ति है जो उसके प्रणय का स्वामी हो सकता है। परिस्थिति की विषमताओ मे वे शरीर रूप मे नही मिल पाते है लेकिन उससे देवसेना की एक निष्ठा पर कोई अन्तर नही पडता। 'वह अभिमानी भक्त के समान निष्काम होकर' जीवन भर उसी की उपासना करती रहना चाहती है। सुवासिनी[3] का प्रणय प्रथम बार राक्षस के सम्मुख उद्रित होता है। अपने प्रणय की निष्ठा के लिये वह अपने बाल-सहचर चाणक्य की स्मृति को पास भी नही आने देना चाहती। वनलता[4] भी प्रणय के क्षेत्र मे स्वतन्त्र है। परन्तु एक बार वह किसी को समर्पित होकर सदा के लिये उसी की हो जाना चाहती है, और बदले मे यह भी चाहती है कि वह पुरुष भी केवल उसी पर पूर्णरूप से समर्पित हो जाये। चमेली[5] का प्रणय किशोर के साथ विकास पाता है। सामाजिक परम्पराओ मे आबद्ध उसका विवाह किसी दूसरे व्यक्ति से हो जाता है परन्तु किशोर के प्रति उसकी निष्ठा नही टूटती। अपने वैधव्य की स्थिति मे उसे एक बार फिर किशोर का सामीप्य लाभ होता है और वे मन के बन्धनो मे अपनी पूर्व निष्ठा के परिणामस्वरूप एकलय हो जाते हैं। अपराधी[6] कहानी की वनपालिका राजा को अनजान मे अप्रत्याशित रूप से समर्पित होती है। राजा चले जाते हैं, परन्तु वन-

---

१—चित्राधार, पृ० २४।

२—स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य की पात्री।

३—चन्द्रगुप्त की पात्री।

४—एक घूंट की पात्री।

५—प्रेम पथिक की पात्री।

६—आकाश दीप मे सकलित।

पालिका जीवन भर उनके प्रणय के पुष्प को अपनी क्रोड मे सहेजे रहती है। अपनी समस्त निष्ठा के साथ वह महाराज के पुत्र का पोषण करती है। इसी प्रकार के प्रणयी एकनिष्ठ चरित्र मधूलिका[1], चम्पा[2], नेरा[3], विलासिनी[4], नूरी[5], बेला[6], लेला[7], फिरोजा[8] आदि मानवियो के व्यक्तित्व मे व्यक्त हुए है जो अपनी स्वतन्त्रता से प्रणय के क्षेत्र मे पदार्पण करती है, और अपनी नैतिक एकनिष्ठा के साथ अन्तिम समय तक उसका निर्वाह भी।

इस प्रकार से प्रसाद जी के नैतिक आदर्श मे पूर्ण स्वतन्त्रता की समाविष्टि तो है परन्तु साथ ही एकनिष्ठा की शर्त भी अनिवार्य हो गई है। क्योकि एकनिष्ठा के अभाव मे असयमित चेष्टाओ एव कार्यकलापो के परिणामस्वरूप व्यक्तित्व तथा समाज के विघटन की समस्या खडी हो जाती है। प्रसाद जी ने किसी भी असयमित एव निर्बाध स्वतन्त्र नारी-चरित्र को प्रशस्त और सफल नही बनने दिया है उनके सम्पूर्ण साहित्य मे जिस चरित्र ने भी स्वतन्त्रता की मर्यादा का अबाध स्वतन्त्रता की सीमा तक अतिक्रमण किया है, उसका पतन अवश्यम्भावी हो गया है। वह जीवन की विडम्बनाओ के चक्र मे घूमता हुआ अन्त मे या तो प्रायश्चित कर सुधार के पथ पर लग आता है अथवा उसी विकर्षण मे अपने जीवन का अन्त कर देता है प्रसाद जी की नैतिक मान्यता का यह महत्वपूर्ण अश अनन्तदेवी, मागधी, दामिनी, मगला, राजकुमारी, उर्वशी, कालिन्दी, छलना, शक्तिमती, तरला, लालसा, मैना, विजया, कमला, कामना, सुरमा आदि पात्रियो मे चित्राकित हुआ है। ऐश्वर्य-लाभ की लालसा से उद्दीप्त अनन्तदेवी[9] वृद्ध सम्राट् की शक्तिहीनता का लाभ उठाकर, युवराज स्कन्दगुप्त के स्थान पर अपने पुत्र पुरगुप्त को सम्राट् बनाना चाहती है। महत्त्वाकाक्षा और अतृप्ति के उद्वेग मे वह नारी-तत्व की सुलभ कोमलता का त्याग कर, भयकर साहसशीला का स्वरूप उपस्थित करती है—'क्षुद्र हृदय, जो चूहे के शब्द से भी शकित होते हैं, जो अपनी श्वास से भी चौक उठते है, उनके लिये उन्नति का कटकित मार्ग नही है। महत्वाकाक्षा का दुर्गम स्वर्ग उनके लिए स्वप्न है[10]। उसमे नारी सुलभ

१—आधी मे सग्रहीत पुरस्कार की नायिका।
२—'आकाशदीप' की नायिका।
३—सुनहला साँप (कहानी) की नायिका।
४—चूडीवाली (कहानी) की नायिका।
५—इन्द्रजाल: (कहानी) की पात्री।
६—नूरी. (कहानी) की पात्री।
७—आँधी: (कहानी) की पात्री।
८—दासी: (कहानी) की नायिका।
९—'स्कन्दगुप्त' की पात्री।
१०—स्कन्दगुप्त, पृ० २७।

ईर्ष्या भावना है, वह देवकी के बढते हुए प्रभाव को रोकने के लिए सपत्नीक भावना के वश होकर, उसका वध तक कर देने के लिये प्रस्तुत हो जाती है। भट्टार्क के शब्दो मे उसके 'दुर्वेद्य नारी हृदय मे विश्व प्रहेलिका की बीज रहस्य है[1]।' राजकीय षड्यत्र की कुञ्जी को हस्तगत करने के साथ-साथ सम्राट् के वृद्ध पौरुष से अतृप्त वह युवा भट्टार्क की ओर आकर्षित होती है। भट्टार्क देखता है कि 'उसकी आखो मे कामवासना के सकेत अभी उबल रहे है। अतृप्ति की चचल प्रवचना कपोलो पर रक्त होकर क्रीडा कर रही है। हृदय मे श्वासो की गर्मी विलास का सदेश वहन कर रही है[2]।' इस प्रकार से महत्वाकाक्षा और विषय लोलुपता की भावना से पूर्ण अनन्तदेवी 'नीति की सीमा का अधिकार, लिप्सा और कामुकता के विस्तार तक अतिक्रमण करती है जो प्रसाद जी के नैतिक आदर्शो के विपरीत है। इसीलिए आरम्भ से अन्त तक कामना और काम की मृग-मरीचिका मे दौड लगाती हुई अनन्तदेवी अन्त मे बन्दिनी रूप मे स्कन्द के सम्मुख उपस्थित होकर क्षमा-याचना करती है। जैसे अन्तिम समय मे रावण के मुख से 'हे राम' शब्द के उच्चारण से उसे मुक्ति प्राप्त हो गई थी' उसी प्रकार अनन्तदेवी की क्षमा-याचना ही उसकी पराजय और प्रायश्चित दोनो है। लेखक ने इस लालसामयी नारी के लिये यही विधान उपस्थित किया है।

इसी नाटक की दूसरी पात्री विजया अपनी चचल प्रवृत्ति को वशीभूत कर सकने मे असमर्थ है। उसकी उत्तप्त महत्त्वाकाक्षा शीतल सयम की सीमा का स्पर्श नही कर पाती। प्रणय के क्षेत्र मे उसके मन का चाचल्य नैतिक सीमा का अतिक्रमण करता है। वह सबसे पहले स्कन्दगुप्त की ओर आकर्षित होती है, परन्तु उसे राज्य से विमुख और उदासीन देखकर उसका मन चक्रपालित की ओर फिरता है। स्कन्दगुप्त के प्रति आकर्षण को वह अब राजकीय वैभव का प्रभाव कह कर भूल जाना चाहती है और चक्रपालित के प्रति उसके उद्गार प्रकट होते हैं :—

'इस उदार दृष्टि से तो चक्रपालित क्या पुरुष नही है ? है अवश्य। वीर हृदय है, प्रशस्त वक्ष है, उदार मुख-मण्डल है[3]।' परन्तु चक्रपालित के प्रति यह आकर्षण साहचर्य के अभाव मे शीघ्र ही समाप्त हो जाता है और तब उसके जीवन मे राज्य-प्राप्ति के लिए अनन्तदेवी के साथ सतत प्रयत्नशील, तेजमय, वीयवान भट्टार्क का प्रवेश होता है। वह उसे देखते ही मुग्ध हो जाती है तथा उस उच्छृखल वीर को अपने बाहुपाश की लौह-शृखला पहनाने का उपक्रम करती हुई भरी राज-सभा मे उसे पतिरूप मे स्वीकार कर लेती है। परन्तु यहाँ भी भट्टार्क के विषय को लेकर उसे अनन्तदेवी की प्रताडना सहनी पडती है। तब वह सब ओर से निराश

१—स्कन्दगुप्त पृ० ३०।

२—वही, पृ० ३०-३१।

३—वही, पृ० ५३।

शर्वनाग का निर्देश स्वीकार करती हुई देश-सेवा के कार्य मे सलग्न होती है, लेकिन नि स्वार्थ भावना के वश नही, वरन् इस आशा से कि उस क्षेत्र मे स्कन्दगुप्त के दर्शन होगे। वह एक बार फिर धन के आकर्षण और राष्ट्रीय सेवा के ढोग से स्कन्दगुप्त को प्राप्त किया चाहती है । परन्तु तब तक स्कन्द देवसेना से प्रणय मे हारकर आजन्म कौमार्य का व्रत धारण कर लेता है । और जिस समय स्कन्दगुप्त विजया के प्रणय को 'विजया, पिशाची ! हट जा, नही जानती, मैने आजीवन कौमार व्रत की प्रतिष्ठा की है ।' कहकर उसकी भर्त्सना कर रहा होता है उसी समय भट्टार्क भी प्रवेश करके उसकी रही-सही प्रणय आस्था पर वज्र-प्रहार करते हुए कहता है—'दुश्चरित्रे ! सुना था कि तुझे देश-सेवा करके पवित्र होने का अवसर मिला है, परतु हिंस्र, पशु कभी एकादशी का व्रत करेगा—कभी पिशाची शाति पाठ पढेगी ।' विजया आत्म ग्लानि से इस महान् अवसर पर आत्म-हत्या कर लेती है और जैसे इसी प्रकार उसका प्रायश्चित्त पूर्ण हो जाता है। वह अपने ही शब्दो मे अपने चरित्र की व्याख्या करती है—

'दुर्बल रमणी हृदय, थोडी आँच मे गरम और शीतल हाथ फेरते ही ठण्डा। क्रोध से अपने आत्मीय जनो पर विष उगल देना । जिनको क्षमा की आवश्यकता है—जिन्हे स्नेह के पुरस्कार की वाछा है, उनकी भूल पर कठोर तिरस्कार और जो पराये है, उनके साथ दौडती हुई सहानुभूति। यह मन का विष, यह बदलने वाले हृदय की क्षुद्रता है। ओह !'

प्रसाद जी इस चचल वृत्ति के समर्थक नही रहे है। इसीलिए विजया को इस महान् अपराध का मूल्य प्राण देकर चुकाना पडा है । प्रसाद जी की धारणा रही है कि अबाध स्वतन्त्रता सामाजिक विकास मे विकर्षण एव वैयक्तिक विघटन का कार्य करती है। अनन्त देवी अपने चरित्र की निरकुश एव अबाध भावनाओ के कारण राष्ट्रीय विघटनकारी के रूप मे उपस्थित होती है । उसकी असयमशीलता राष्ट्रीय एव सामाजिक जीवन की शाति और व्यवस्था को खतरे मे डाल देती है । उधर विजया का निर्बाध-स्वरूप अपने व्यक्तित्व के लिए विभीषिका का वातावरण उत्पन्न कर देता है और अपने द्वारा निर्मित उस विकर्षण मे उसका अपना ही दयनीय अन्त होता है। यहाँ पर प्रसाद जी का मत है कि वह नीति जो मानसिक ग्रन्थियों की सृष्टि करने वाली होती है, अपने स्वरूप में अनैतिक है, इससे व्यक्तित्व का हनन होता है। विजया के साथ ऐसा ही हुआ है।

'अजातशत्रु' की पात्री मागन्धी मे भी चारित्रिक चाचल्य विद्यमान है। गौतम द्वारा उसका प्रणय अस्वीकार कर दिये जाने पर वह प्रतिशोध की ज्वाला मे जल उठती है । वह अपमान के क्षणो को बढा-चढ़ाकर सोचती हुई गौतम से प्रतिद्वन्द्विता करती है—गौतम ! यह तुम्हारी तितिक्षा तुम्हे कहाँ ले जाएगी ? यह तुमने कभी

न विचारा कि सुन्दरी स्त्रियाँ भी ससार मे कुछ अपना अस्तित्व रखती हैं। अच्छा, देखे तो कौन खडा रहता है।[1]

सामान्य परिवार मे जन्म लेने के कारण महत्त्व प्राप्ति की आकाक्षा मे मत्त वह उदयन को पति रूप मे प्राप्त कर लेने मे समर्थ हो जाती है। परन्तु यहा भी अपने कुचक्रो और प्रवचनाओ के कारण वह स्थिर नही रह पाती और अपने जलते हुए महल को छोडकर उसे काशी की वार-विलासिनी श्यामा के रूप मे अपने जीवन का निर्वाह करना पडता है। इस रूप मे वह शैलेन्द्र के सम्पर्क मे आती है और उसके प्रति उसकी एकनिष्ठा परिपक्व होने लगती है कि शैलेन्द्र उसे त्याग कर चल देता है। इस तरह रूपोन्मत्त श्यामा को आरम्भ से अन्त तक स्थिर शान्ति की प्राप्ति नही होती। उसके अपने ही शब्दो मे उसका चरित्र इस प्रकार व्यक्त हुआ है—'अपनी परिस्थिति को सयत न रखकर व्यर्थ महत्वाकाक्षा का ढोग मेरे हृदय ने किया, काल्पनिक सुख लिप्सा मे ही पडी। उसी का यह परिणाम है। स्त्री-सुलभ सरलता की मात्रा कम हो जाने से जीवन मे कैसे बनावटी भाव आ गए।[2] किन्तु जीवन के उत्तरकाल मे जब वह आम्रपाली का जीवन बिता रही होती है, बुद्ध द्वारा उसका उद्धार होता है।

मागन्धी ने जीवन पर्यन्त अपने अधिकारो की सीमा का अतिक्रमण किया, इसीलिये जीवन भर वह अशान्ति के अग्नि कानन मे झुलसती रही, परन्तु उसमे शैलेन्द्र के सम्पर्क मे आकर एकनिष्ठा का भाव भी उदित हुआ था, उसी के वरदानस्वरूप अन्त मे लेखक द्वारा उसके उद्धार की व्यवस्था की गई है। किसी भी चरित्र का परिणाम उद्घोषित करने मे प्रसाद जी ने उसके कार्य-कलापो एव भावनाओ मे सत्-असत् के अनुपात का विशेष ध्यान रखा है।

'जनमेजय का नाग यज्ञ' की पात्रा दामिनी युवाकाल की मदिर आकाक्षाओं से उन्मत्त विषय-वासना की मृग-मरीचिका मे भटकती फिरती है। उसमे वासना का अतिरेक है, जो निर्लज्जता की सीमा का स्पर्श करता है। वृद्ध पति के साथ निर्वाह करने की विवशता मे वह युवा उत्तक पर आकर्षित हुए बिना नही रहती। उसकी मानसिक दुर्बलता का यह अश परिस्थिति जन्य भी कहा जा सकता है। अत दामिनी के आचरण के लिए समाज भी आशिक रूप से उत्तरदायी है। परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी, एकनिष्ठा के आदर्श सस्थापक प्रसाद उसकी चारित्रिक दुर्बलता को क्षमा कर देने के पक्ष मे नही है। इसीलिए विषयो की पिपासा और प्रतिशोध की अग्नि मे झुलसती हुई दामिनी को उस समय तक शान्ति प्राप्ति नही होती, जब तक वह अपनी पराजय स्वीकार नही कर लेती। नैतिक मर्यादा के उल्लघन के अपराध मे उसे प्रायश्चित करना ही पडता है—

१—अजातशत्रु, पृष्ठ ४१।

२—अजातशत्रु, पृष्ठ १३६।

'हृदय के अतिवाद से वशीभूत होने का मुझसे बढकर और कोई उदाहरण न मिलेगा ··उत्ताक ! मै क्षमा चाहती हू ।'[1]

सुरमा[2] भी इसी कोटि की पात्रा है । मन का अस्थैर्य उसके पतन की कहानी रचता है । वह शान्तिदेव की ओर आकृष्ट होती है, परन्तु तब शान्तिदेव राज्यश्री की ओर आकर्षित है । अपने प्रणय के आधार के लिये वह देवगुप्त को चुनती है । परन्तु 'देवगुप्त के साथ सुरमा का सुखी जीवन बालुका-भीत्ति के समान है । घटना प्रभजन के एक ही झौंके मे वह भूमिसात् हो जाता है ।' परिणामस्वरूप अन्त मे एक बार फिर वह शान्तिदेव की ओर झुकती है । शान्ति भिक्षुको के शब्दो मे उसके हृदय की अस्थिरता स्पष्ट लक्षित होती है—'रमणी ! जब तुम्हे कोई चलने को कहता है, तो पैरो मे पीडा का अनुभव करने लगती हो । जब विश्राम का समय होता है, तो पवन से भी तीव्र गति धारण करती हो । तुम स्नेह से पिच्छिल, जल मे अधिक तरल, पत्थर से भी कठोर । इन्द्रधनुष मे भी सुन्दर बहुरग शालिनी ।'[3] और इसीलिए वह अपने प्रिय से प्रताडित होती है—'ओह ! जब निःश्वास लेकर सिसकती हुई, किसी मूर्ख की छाती पर सुकुमार कुसुम सी व्याकुल होकर तुम पतित रहती हो, तब भी तुम्हारे भीतर व्यग्य हसा करता है । जब स्वय प्राण देने के लिए प्रस्तुत होती हो, तब वह कितने जीवन लेने का प्रस्ताव होता है । प्रवचना की पुजारिन ! युवती रमणी सुरमा ! तुमने मुझे पहचाना ?'[4]

परन्तु इतना होते हुए भी सुरमा के कोमल मन मे नैतिकता का परमाणु सचित है । उसका बाह्य रूप परिस्थिति का परिहास है । अपने चरित्र के वैषम्य को प्रायश्चित्त के अश्रु-जल से धोकर वह धोखे के पथ पर चलने से रुकना चाहती है—'ठठा कर हँसना, नाचते हुए स्थिर जीवन मे एक आदोलन उत्पन्न कर देना, नही, यह कृत्रिम है, यह नही चलेगा । राज्यश्री को देखती हू, तब मुझे अपना स्थान सूचित होता है—पता चलता है कि मैं कहा हू ? चलू, रोक सकू[5] ।' और इसीलिए राज्यश्री की क्षमा द्वारा उसका उद्धार होता है । काषाय धारण करके वह चित्त-शुद्धि के प्रशस्त पथ पर, अपूर्व आत्म-शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से शातिदेव के साथ चल पडती है ।

अनन्तदेवी के समान महत्वाकाक्षाओ से पूर्ण शक्तिमती[6] अपने आचरणो से

१—पृष्ठ १०३ ।

२—'राज्यश्री' की पात्री ।

३—'राज्य श्री,' पृष्ठ ४४ ।

४—'राज्यश्री,' पृ० ४५ ।

५—'वही,' पृ० ७१ ।

६—'अजातशत्रु' की पात्रा ।

पतित होती है। अधिकार-प्राप्ति का दर्प उच्छृखलता बनकर सम्पूर्ण साम्राज्य मे कुचक्र, दुरभिसन्धि और अशाति का वातावरण उत्पन्न कर देता है। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए वह निष्ठुर सकल्प ही नही वरन् तदनुरूप आचरण करने की तत्परता भी लिए हे। वह पुरुषो द्वारा 'नारी जाति की असमर्थता सूचित करा कर उसे और भी निर्मूल आशकाओ मे छोड देने की कुटिलता का प्रतिशोध किया चाहती है। स्त्रियोचित सहज स्वभाव के स्थान पर पुरुष के पुरुषत्व को ग्रहण करती है। इसी कृत्रिमता और सीमोल्लघन के कारण उसे सफलता नही प्राप्त हो पाती और नारीत्व की सजीव मूर्ति मल्लिका के सम्मुख भी उसे अपनी पराजय स्वीकार करनी ही पडती है। प्रसेनजित के सम्मुख भी उसे नत-मस्तक होना पड़ता है—

'वह मेरा ही अपराध था आर्य! क्या उसके लिए क्षमा नही मिलेगी—मै अपने कृत्यो पर पश्चात्ताप करती हू। अब मेरी सेवा मुझे मिले, उससे मै बंचित न होऊँ, यही मेरी प्रार्थना है[1]।'

इसी नाटक की दूसरी पात्रा छलना है। जो अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियो के विरुद्ध चलने के कारण किसी भी उद्देश्य मे सफल नही हो पाती। नारी-सुलभ स्थायी गुणो की उपेक्षा कर वह राजकीय क्षेत्र मे अवतीर्ण होती हुई व्यर्थ ही पुरुषार्थ का ढोग करती है। इसीलिए उसे अपने पति की विद्रोहिनी बनना पडता है, साथ ही वह पुत्र से भी हाथ धोती है। लक्ष्य भ्रष्ट और मर्यादा विहीन होने के कारण वह सम्मान प्राप्त करने की होड़ मे इधर-उधर भटकती दिखाई पडती है। परन्तु अन्त मे उसकी निसर्ग प्रवृत्तियो का उदय होता है, और उसे अपने व्यवहार के लिए वासवी से क्षमा-याचना करनी पडती है—'वासवी! बहिन!—(रोने लगती है) मेरा कुणीक मुझे दे दो, मैं भीख माँगती हू। मैं नही जानती थी कि निसर्ग से इतनी करुणा और इतना स्नेह, सतान के लिए इस हृदय मे सचित था। यदि जानती होती, तो इस निष्ठुरता का स्वाग न करती[2]।'

महापिंगल की पत्नी तरला[3] को भी इसी कोटि मे लिया जा सकता है। सुवर्ण सचय की लालसा तथा अपने वृद्ध और कामी पति पर पूर्ण अनुशासन उसकी चारित्रिक विशेषताए है। पति को पीटने तक की निम्नता पर वह उतर आती है और इसी मर्यादा के सीमोल्लघन के परिणाम स्वरूप उसे छला जाना पडता है। वह अपना सर्वस्व खो देती है। 'कामना' नाटक की पात्री कामना महत्वाकाँक्षा के स्वप्न-प्रभात मे सतोष की उपेक्षा करती हुई विलास का हाथ थाम लेती है। वह अपने स्वाभाविक रूप मे श्रद्धा और पूजा की वस्तु है, परन्तु उच्छृखल वासना का प्रवेग

१—अजातशत्रु, पृ० १२८।

२—वही, पृष्ठ १११।

३—'विशाख' की पात्रा।

उसकी सौम्य मूर्ति को तृष्णा और असतोष के आवरण मे प्राच्छादित कर लेता है। सन्तोष ने कामना के नारीत्व को सबसे पूर्व जिस रूप मे देखा था वह उसके लिये आनन्द-निकेत के समान था—जहाँ प्राण अपनी अभिलाषा का आनन्द निकेतन देखकर पूर्ण-वेग से धमनियो मे दौडने लगता है, वहाँ चिन्ता विस्मृत होकर विश्राम करने लगती है, वही—रमणी का—तुम्हारा रूप देखा था, और यह नही कह सकता कि मै झुक नही गया। परन्तु मैने देखा कि उस रूप मे पूर्ण चन्द्र के वैभव की चन्द्रिका सी सबको नहला देने वाली उच्छृखल वासना।[1]

रमणी का यह रूप जो सतोष-भावना से विमुख हो, अतृप्त विलास की ओर अग्रसर होता है, आदर्श और नैतिक मान्यताओ की दृष्टि से सम्मान पूर्ण नही कहा जा सकता और इसीलिए कामना अशान्ति और मानसिक पीडा के ससार मे भटकती हुई अन्त मे सत्य-पथ का अनुसरण करती है। लेखक ने कामना के चरित्र मे सहज नारीत्व की उदात्त भावना, करुणा और स्नेह भाव का अनुष्ठान किया, किन्तु परिस्थितिवश, पुरुष के पाशव प्रलोभन मे, अपने मन की भावुकता के वशीभूत हो, वह थोडे समय के लिये सब कुछ भूल जाती है। लेकिन अनीति का अन्धकार-आवरण हटते ही वह अपनी भूल स्वीकार करती हुई साम्राज्ञी के पद को त्याग कर महत्व प्राप्ति की सुवर्ण-छाया से दूर हट जाती है—'यदि राजकीय शासन का अर्थ हत्या और अत्याचार है तो मै व्यर्थ रानी बनना नही चाहती। मेरी प्रजा इस बर्बरता से जितना शीघ्र छुट्टी पावे, उतना ही अच्छा।···प्यारे देशवासियो, लौट चलो, इस इन्द्रजाल की भयानकता से भागो। मदिरा मे सिचे हुए चमकीले स्वर्ण-वृक्ष की छाया से भागो।[2]

'कामना' की मूल प्रवृति मे सद्भाव का समावेश है, इसी लिए वह दिन भर भटकती हुई सध्या की लालिमा मे सही पथ पा जाती है। परन्तु उसकी सहेली लालसा विषय-वासना के आवेग से उन्मत्त विविधता के आकर्षण मे जीवन का पर्व मनाना चाहती है। अपने अपार वैभव का भोग किसी साथी के साथ किया चाहती है। परन्तु उस साथी को प्राप्त करने का साधन समर्पण नही, वासना का आमन्त्रण है। उसे अपनी भ्रू-भगिमा और नयनो की भाषा पर विश्वास है—

'किसे नही चुभ जाये, नैनो के तीर नुकीले ?
पलको के प्याले रसीले, अलको के फन्दे गसीले,
कौन देखू बच जाय, नैनो के तीर नुकीले[3]।

विलास की पत्नी बन कर भी उसकी लालसा तृप्त नही हो पाती। स्वस्थ

१—कामना, पृ० ७०-७१।

२—कामना, पृष्ठ ६७।

३—वही, पृष्ठ ५३।

सैनिक के तेजोमय मुखमण्डल को देख कर वह उस पर भी आसक्त हो उठती है। उसके द्वारा अपमानित होने पर भी वह कहती है—'तुम्हारे वाक्य मेरी कर्णेन्द्रियो को माग रहे है। मै कैसे छोड दू। ठहरो, मुझे इस सम्पूर्ण मनुष्यत्व को आखो से देख लेने दो।'[1]

उसका यह चारित्रिक पतन ही उसके पतन का कारण बनता है। विलास के शब्दो मे उसने पद की मर्यादा, वीरता का गौरव और ज्ञान की गरिमा सब डुबा दी है और इसीलिए उसके जीवन की नौका भी सागर के अतल मे ही विश्राम पाती है।

नाटको के अतिरिक्त प्रसाद जी के औपन्यासिक पात्रो मे भी कुछ नीति विरोधी पात्रियो की अवतरणा हुई है। 'तितली' की राजकुमारी अपने वैधव्य की स्थिति मे सुखदेव चौबे से सम्बन्ध बनाए हुए है। उठते हुये यौवन को वह शृ गार प्रसाधनो से रोके रहना चाहती है। ऐश्वर्य के प्रति उसके मन की लालसा अतृप्त है और इसीलिये वह जीवन भर सुखी नही हो पाती। मैना और अनवरी भी इसी कोटि की महिलाएं है जो अनीति और उच्छृ खलता के पथ पर चल कर सुखी परिवारो का दहन कार्य करती है। 'ककाल' की किशोरी भी नीति पथ को त्याग कर विभ्रष्ट पथ का अनुसरण करती है, परिणाम स्वरूप जीवन भर आत्माभिमान का झूठा भार ढोती हुई अन्त मे अपने पति श्री चन्द्र के सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार कर लेती है—'उसे साहस हो चला था। आज उसे पाप और मुक्ति का नवीन रहस्य प्रतिभासित हो रहा था। पहली ही बार उसने अपना अपराध स्वीकार किया और यह उसके लिये इतना अच्छा अवसर था कि उसी क्षण उसे उद्धार की भी आशा थी।'[2] 'इरावती' की कालिन्दी स्त्रियोचित गुणो की सीमा का अतिक्रमण करती है। प्रसाद जी ने उपन्यास क्षेत्र मे हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त को नही माना है। प्रगतिशील यथार्थ वादिता को लक्ष्य बनाते हुए उन्होने समाज के विभिन्न श्रेणियो, स्तरो और परिस्थितियो के पात्रो को जैसा का तैसा उपस्थित कर दिया है। उनके उपन्यासो का लक्ष्य विशेष रूप से समाज की जर्जर शक्तियो का उद्‌घाटन करना है, जो सामाजिक हित कार्य मे बाधा रूप प्रकट हो रही है। इसीलिए किसी भी चरित्र को आदर्श रूप मे उपस्थित करने की विशेष चेष्टा नही की गई है। हा, तितली मे तितली का चरित्र भारतीय नारीत्व का सम्पूर्ण चित्र उपस्थित कर सकने मे समर्थ है।

उनकी मुक्त कविता 'प्रलय की छाया' मे कमला का चरित्र नारी की उच्छृंखलता और पथ विभ्रष्टता का इतिहास प्रस्तुत करता है। समस्त गुजरात की कमनीयता उसकी अग-लतिका मे एकत्र है। गुर्जर महीप उसके चरणो मे प्रणत होते है। लालसा की दीप्त मणियो से युक्त उसको अतीव सम्मान प्राप्त होता है—

१—कामना, पृष्ठ ८०।

२—ककाल, पृष्ठ २३६।

'अनुराग पूर्ण था हृदय उपहार मे
गुज्जरेश पावडे बिछाते रहे पलको के
तिरते थे—
मेरी अगडाइयो की लहरो मे
पीते मकरन्द थे
मेरे इस अधखिले आनन्द सरोज का ।'

गुज्जरेश की मृत्यु के उपरान्त भी वह अपने रूप के गर्व को नही भूल पाती । उसी को साधन बनाकर वह सुल्तान को जलाना, उसे आकर्षित करना चाहती है । अपने शील और चारित्रिक उत्सर्ग को पतित कर वह सुखी नही हो पाती । वह सुल्तान से प्रतिशोध भी नही ले पाती । सौन्दर्य का दर्प और मन की उच्छृखलता तथा अनीति का आचरण उसके जीवन की सुषमा को कालिमा मे परिवर्तित कर देते है । और तब उसे सुन पडता है कि—

'नारी यह रूप तेरा जीवित अभिशाप है,
जिसमे पवित्रता की छाया भी पडी नही
जितने उत्पीडन थे चूर हो दबे हुए
अपना अस्तित्व है पुकारते
नश्वर ससार मे
ठोस प्रतिहिसा की प्रतिध्वनि है चाहते ।'[१]

'चित्रवाले पत्थर'[२] कहानी की 'मगला' अपने वैधव्य मे भी पुरुष के ससर्ग की भूखी है । वह अपने प्रिय को शराब की अचेतावस्था मे छोडकर पूर्व परिचित मुरली के साथ भाग जाना चाहती है क्योकि उसका विश्वास है कि 'स्त्री जीवन की भूख कब जाग जाती है, इसको कोई नही जानता, जान लेने पर तो उसकी बहाली देना असभव है । उसी क्षण को पकडना पुरुषार्थ है ।' मुरली को हिचकता देखकर वह शराबी प्रिय को मृत्यु के घाट उतार कर, उसे अपने प्रणय की पुष्टता का प्रमाण देना चाहती है । परन्तु इस भयानक रूप मे मुरली उसे स्वीकार नही कर पाता और वहाँ से किसी तरह भाग जाता है '। मगला जीवन मे सुखी नही हो पाती । उसे अपने दुर्विनीत स्वभाव पर पश्चात्ताप होता है, जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है .—

'देवता छाया बना देते है । मनुष्य उसमे रहता है । और मुझ सो राक्षसी उसमे आश्रय पाकर भी उसे उखाड कर ही फेकती है ।'[३]

प्रसादजी के नारी-सम्बन्धी नैतिक आचरण के उपर्युक्त अध्ययन से दो बाते

१—लहर, पृ० ७९ ।

२—इन्द्रजाल, मे सग्रहीत ।

३—इन्द्रजाल, पृ० ८० ।

स्पष्ट होती है। पहली तो यह कि वे आचार की शुद्धता पर विशेष जोर देते है। मर्यादाओ का अतिक्रमण और उच्छृखल व्यवहार उन्हे कभी भी इष्ट नही रहा है। ऐसी नारी सदैव ही समय-चक्र और परिस्थितियो के मध्य उत्पीडित होती आई है। उनकी दृष्टि मे सयत स्वतन्त्रता और अपनी सीमाओ की पहचान सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है। नारी अपने शील, सौजन्य और सद्व्यवहार के आचरण से महानता के शीर्ष को प्राप्त कर सकती है। उसको बाहर जाने की आवश्यकता नही है। अपनी सीमाओ का उल्लघन ही उसकी मानसिक अशान्ति और सामाजिक वैषम्य का कारण बनता है। प्रसादजी नारी के व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता पर उस सीमा तक विश्वास करते है जहाँ तक उसकी निर्विघ्न गतिविधि सामाजिक सतुलन के साथ-साथ सामाजिक जीवन की विभिन्न आवश्यकताओ के मध्य सामजस्य बनाये रख सकने मे समर्थ होती है। उनके मत मे स्वतन्त्रता का निकष सामाजिक विकास की सफलता पर निर्भर करना है और अबाध स्वतन्त्रता, जो विकास के स्थान पर विकर्षण का कारण बनती है, प्रसादजी की दृष्टि मे, नारी के लिये निषिद्ध होनी चाहिये, क्योकि उससे सामाजिक मूल्यो की हानि होती है और जीवन के स्वस्थ आदर्शो की महत्ता का लोप होता है। दूसरे, इसके साथ-साथ पथ-विभ्रष्ट नारी के लिये, उत्थान, कल्याण और सुधार की आयोजना भी प्रसादजी के पास है। नारी जैसे ही अपनी भूल स्वीकार करती है और इस तथ्य को स्वीकार कर लेती है कि उसका ग्राह्य पथ व्यक्तिगत सौख्य एव सामाजिक व्यवस्था के लिए कल्याणकर नही है, तथा उससे जीवन के मूल्यो मे विघटनकारी परिवर्तन होने की आशका है, वैसे ही उसके व्यवहार का सत् रूप मे विकास होना आरम्भ हो जाता है। प्रायश्चित के अश्रु-जल मे सब कुछ स्वच्छ कर, नारी फिर से अपना पूर्व स्थायी सम्मानपूर्ण पद प्राप्त करती हुई, समाज के स्थायी कल्याणकारी तत्वो के विकास मे सहयोग देना आरभ कर देती है। यह प्रसाद जी के नैतिक आदर्श का वैशिष्ठ्य है। इसके अनुसार नैतिकता के एक बार टूट जाने से वह सदा के लिए ही खडित नही हो जाती, उसमे सुधार हो सकता है। मागन्धी के चरित्र मे यही भावना प्रकट हुई है। मन की दुर्दम्य भावनाओ से परिपूर्ण, आरम्भ मे, उसके चरित्र को चाचल्य की पृष्ठ भूमि मे अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। श्यामा के रूप मे वह शैलेन्द्र के पथ का कोमल और मनोहर कटक बनती है। यही से उसमे सत् रूप का विकास होता है। वह अपने अतीत के लिए पश्चाताप भी करती है और इसीलिए मल्लिका द्वारा उसका उद्धार होता है। गौतम के चरणो ही मे उसे शान्ति प्राप्त होती है। 'कामना' जब विलास का सग छोड, मन की असयत भावनाओ पर विजय प्राप्त करती हुई करुणा का विकास करती है तो उसका पथ मगलमय बन जाता है। 'दामिनी' के द्वारा अपने मन के अतिवाद का अनुभव किये जाने पर उसे अपने पति से क्षमा और स्नेह प्राप्त हो जाता है। 'सुरमा' परिस्थितियो के बीच अनीति के मार्ग का अनुसरण करती है, परतु अपने निकट सम्पर्क मे आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के प्रति वह निष्ठावान है। यह उसके मन की उदात्त भावना का प्रारूप है। वह अपने अनीतिपूर्ण अतिवादी

व्यवहार की भूल भी स्वीकार करती है। सत स्वरूप के स्थिर विकास होने पर उसको शान्ति प्राप्त होती है। 'किशोरी' का जीवन परिस्थितियो की शृखलाओ मे आबद्ध उत्थान-पतन की कहानी है। उसके पक्ष मे अपने पति के साथ समझौता करते हुए एक प्रण होकर निभते रहने का आदर्श ही श्रेष्ठ था, परन्तु ऐसा नही हो सका, इसीलिए वह जीवन भर अपने बाल-सहचर निरजन के पुरुषत्व की क्रोड मे मनचाही करती हुई भी अनमयस्क बनी रही। हमेशा उसे ऐसा लगता रहा कि जैसे कही वह कर्त्तव्य विमुख हो रही है। अन्त मे श्रीचन्द के सम्पर्क मे ही समझौते को स्वीकार करते हुए, वह जीवन मे निश्चिन्तता का अनुभव करती है। 'तितली' की राजकुमारी अतृप्त वासना के प्रवेग मे पुरुष का सम्पर्क चाहती है। उसका मानसिक पतन होता है। परन्तु उसके चरित्र के शुद्ध सस्कार उसे शारीरिक रूप से पतित नही होने देते। महत्वाकाक्षा के पथ पर अग्रसर होती हुई भी वह सुखदेव को अपने असहाय नारीत्व के जागरण काल मे झिडक देती है—'सुखदेव, मुझे सब तरह से मत लूटो। मेरा मानसिक पतन हो चुका है। मै किसी और की न रही, तो तुम्हारी भी न हो सकूगी मुझे घर पहुचा दो।[1]'

और यही राजकुमारी अपनी समस्त दुर्बलताओ के साथ साथ पाठको की सहानुभूति भी प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार से प्रसाद जी का नैतिक आदर्श जडीभूत नही है।

दूसरे पक्ष मे अनन्त देवी, विजया, शक्तिमती, मगला लालसा, मैना और अनवरी के चित्र है जो आरम्भ से अन्त तक नीति विरोधी आचरण करते हुए अपने स्वार्थ साधना की सिद्धि के उपक्रम मे लगे रहते है। इसीलिए उनका उत्थान नही हो पाता और वे जीवन की विभीषिकाओ के रगमच पर ही अभिनय करते करते अन्त मे थक कर तिरोहित हो जाते है। ऐसे पात्रो के प्रति प्रसाद जी की सहानुभूति नि सृत नही हुई है। स्वस्थ नैतिक नियमो का उल्लघन उन्हे कभी भी स्वीकृत नही हुआ है। 'अशोक[2]' की तिष्यरक्षिता विषय वासना के पाशव रूप मे उपस्थित होती है, इसलिए ऐसी स्त्री को पृथ्वी के ऊपर नही प्रत्युत 'उसके भीतर' रहने की व्यवस्था प्रसाद ने की है।

बाह्य तथा आन्तरिक आचरण एवं स्वरूप—

प्रसाद जी का नीति सम्बन्धी दूसरा पक्ष है बाह्य और आन्तरिक आचरण तथा नैतिकता की अवस्थिति। उनकी धारणा है कि परिस्थितिवश व्यक्ति को नीति विरोधी आचरण करने के लिए विवश हो जाना पडता है। वह कभी-कभी नैतिक आदर्शो के विरुद्ध आत्मा का हनन और आन्तरिक भावनाओ का दमन करते हुए,

---

१—तितली, पृष्ठ १६१।

२—छाया मे सग्रहीत।

समाज की अस्वस्थ परिपाटी पर चल पडता है। प्रसाद जी इसके लिए उस व्यक्ति का सामाजिक बहिष्कार नही करते और न यही मानते है कि नीति-विरोधी कार्य करने से उसका आचरण भ्रष्ट हो गया है। प्रसाद जी मानव मन की उन मूल अनुभूतियो के गहरे मे उतर कर उन परिस्थितियो का अध्ययन करते है, जिसमे उसे किसी प्रकार का विशिष्ट आचरण करने के लिये बाध्य हो जाना पडा है। उन्होने नारी के उन्मुक्त व्यक्तित्व को सदैव सराहा है। उनके विचार मे नैतिक आदर्श स्वस्थ स्वतन्त्रता की भाव-भूमि मे ही श्रेष्ठतर रूप से विकसित हो सकते है। इसीलिए तो अपनी श्रेष्ठतम नारी-कृति को उन्होने उन्मुक्त रूप प्रदान किया है—

हृदय की अनुभूति वाह्य उदार,
एक लम्बी काया उन्मुक्त
मधु पवन क्रीडित ज्यो शिशु साल
सुशोभित हो सौरभ सयुक्त[१]

साथ ही साथ वह यह भी मान कर चले है कि इस स्वतन्त्रता का उपयोग नैतिक पीठिका मे, समाज के किसी उच्चतर आदर्श की आयोजना के लिए होना चाहिए। परिस्थितियो की विवशता मे किसी श्रेष्ठ लक्ष्य की पूर्ति के लिए नैतिक माप दण्डो का प्रयोग प्रसाद जी को अमान्य है। सुवासिनी यमुना, केतकी वन की रानी, इरावती, विलासिनी, बेला, सालवती, ध्रुवस्वामिनी, रामा 'विराम चिन्ह की नायिका तथा कमला के चरित्र प्रसाद जी की इस धारणा को अभिव्यक्त करने मे सफल हुए है।

कुसुमपुर का स्वर्गीय कुसुम सुवासिनी अमात्य राक्षस की धरोधर है। राक्षस के प्रति उसकी निष्ठा कभी भी नही टूटती। परिस्थितियो के व्यूह चक्र मे उसे अपने भरण-पोषण के लिए मगध सम्राट के विलास कानन मे रजन का उपक्रम करना पडता है। अभिनय शाला की नर्तकी के रूप मे वह नन्द के विनोद का साधन बनती है। जीवन की रगमयी विविधता का अभिनय करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ प्रेम की स्मृति मे टीस का अनुभव करती हुई सुखी होती रहती है, क्योकि उसके शब्दो मे यही टीस प्रेम का प्रमाण है। नन्द का विशाल वैभव उसके प्रणय की अडिगता को नही हिला पाता। वह विश्वास भरे शब्दो मे राक्षस से कहती है—'मै तुम्हारी अनुचरी हू। मै नन्द की विलास लीला का क्षुद्र उपकरण बन कर नही रहना चाहता।[२]

इतना ही नही, नन्द के द्वारा उसे शील-भ्रष्ट किये जाने की चेष्टा करने पर वह उसे भी स्पष्ट किन्तु सयत उतर देने से नही चूकती—'महाराज! मैं अमात्य राक्षस की धरोहर हू, सम्राट की भोग्या नही बन सकती।'[३]

१—कामायनी, पृष्ठ ४६।
२—चन्द्रगुप्त, पृष्ठ ७०।
३—चन्द्रगुप्त, पृष्ठ १५५।

प्रसाद के मत मे प्रणय की एक निष्ठा ही सबसे बडी नैतिकता है। अपने स्त्रीत्व और प्रणय की रक्षा करती हुई उस नारी को, जो अपने प्रिय के लिए सम्राट का कोप भोजन बनने से भी भयभीत नही होती और जिसमे उसे खोजने के लिए स्वर्ग मे भी जाने का साहस सञ्चित है, लेखक की पूर्ण सहानुभूति और ममता प्राप्त हुई है। उसे अपनी अनाथावस्था के कारण भले ही गणिका के रूप मे निर्वाह करना पड़ा हो, परन्तु अपनी इस निरवलम्बता के लिये वह किसी भी प्रकार दोषी नही ठहराई जा सकती। उसे नैतिक मान देने के लिए इतना ही पर्याप्त है कि परिस्थितियो की भयकरता के मध्य भी उसका मन कलुषित नही हुआ है, और वह अपनी निष्ठा की रक्षा के लिये पूर्ण सन्नद्ध और समर्थ दिखलाई पडती है। उसके आचरण की यह पवित्रता ही अन्त तक उसकी चारित्रिक स्थिति को ऊचा उठाए रखने मे सहायक हुई है। अपनी इस पवित्रता का हवाला देते हुए वह राक्षस से कहती है—'अमात्य ! मैं अनाथ थी जीविका के लिये मैने चाहे कुछ भी किया हो, पर स्त्रीत्व नही बेचा[1]'। और यही उसकी महानता का रहस्य है।

तारा परिस्थितियो के कुचक्रो मे गुलेनार और यमुना के रूप मे जीवन की भयावहता का सामना करती है। उसका प्रणय दैन्य की छाया मे मगल को देखकर प्रस्फुटित होता है। जीवन-जीवन भर वह मगल के प्रति एकनिष्ठ बनी रहती है। मगल उसे छोड देता है। लेकिन आत्म-पीड़न को अधिक से अधिक ममता देती हुई वह जीवन की अमूल्य कसक को अपने हृदय मे ही सहेजे रखना चाहती है। चाची की प्रताडनाओ से क्षुब्ध जब वह आत्म-हत्या के लिये प्रेरित होती है, तब भी मगल के प्रति निष्ठा पूर्वक शब्द ही उसके मुख से निकलते है—

'मगल ! भगवान जानते होगे कि तुम्हारी शैया पवित्र है। कभी मैने स्वप्न मे भी तुम्हे छोड कर इस जीवन मे किसी से प्रेम नही किया, और न तो मैं कलुषित हुई। यह तुम्हारी प्रेम भिखारिनी पैसे की भीख नही माग सकती और न पैसे के लिये अपनी पवित्रता बेच सकती है[2]।'

मगल के बाद विजय उसके जीवन मे आता है। अब वह तारा नही यमुना है। विजय उसे मन से चाहता भी है। परन्तु वह विजय पर समर्पित नही हो सकती। यह उसके नैतिक सस्कारो की विवशता है। विजय के प्रस्ताव को, जिसमे वह उसकी सर्वस्व बनने जा रही थी, अस्वीकार कर अपने प्रणय की एकनिष्ठा के करुण अभिमान को लिये वह कहती है—'मैं आराध्य देवता बना चुकी हू ··मुझे ··।'

लेकिन विजय यह सब जानते हुए भी उसे पवित्र, उज्ववल और ऊर्जस्वित पाता है। जैसे मलिन वसन मे हृदयहारी सौन्दर्य। वह उसकी उस पवित्र आत्मा को

१—चन्द्रगुप्त, पृष्ठ १७८।
२—कंकाल, पृष्ठ ५८।

विवाह के बन्धन मे बाध कर उसे भविष्य के प्रति निश्चिन्त बना देना चाहता है। तब यमुना कहती है —

'किसी के हृदय की शीतलता और किसी के यौवन की उष्णता—मैं सब झेल चुकी हू। उसमे सफल नही हुई, उसकी साध भी नहीं रही विजय बाबू। मै दया की पात्री एक बहन होना चाहती हू। है किसी के पास इतनी नि स्वार्थ-स्नेह सम्पत्ति, जो मुझे दे सके[1]।'

प्रसाद जी ने यमुना की दुर्भाग्यपूर्ण विवशता मे ही उसके उच्चतर नैतिक आदर्श का विधान रचा है। समस्त कलुषिताओ के मार्ग से होती हुई भी, वाह्याचरण मे नीति मान्य आदेशो की अवहेलना करती सी दिखाई देने वाली यमुना अभ्यान्तर भावनाओ मे कितनी नैतिक, कितनी एकनिष्ठ और कितनी महान है। मगल को अपना सर्वस्व अर्पण करके भी वह विजय के लिये नवाब की मृत्यु के प्रसग मे समस्त अपराध अपने सिर पर ले लेती है और यही उसका देवी रूप प्रकट होता है। दूषित वातावरण की दुर्गन्ध मे विकसित होता हुआ उसका चरित्र प्रत्येक घटना-प्रसग को लेकर नव विकसित पुष्प सा सौरभ बिखेर देता है।

उधर इसी के समानान्तर घटी का चरित्र भी विकसित हुआ है। वह विजय को अपना आराध्य चुनती है। परन्तु विजय यमुना के अनुशासन मे उसको स्वीकार कर पाने मे असमर्थ होता है। फिर भी घटी सामाजिक जीवन मे हमेशा उसी के साथ लगी रहती है। विजय द्वारा समाज को दोषी ठहराए जाने पर वह अपने वास्तविक रूप मे प्रकट होती है। उलाहना भरे शब्दो मे वह विजय से कहती है—'इसमे समाज का क्या दोष है। तुम कहोगे कि मै फिर सब जान कर भी तुम्हारे साथ क्यो घूमती हू, इसलिये कि मैं इसे कुछ महत्व नही देती।(हिन्दू-स्त्रियो का समाज ही कैसा है, उसमे कुछ अधिकार हो तब तो उसके लिए कुछ सोचना-विचारना चाहिए और जहाँ अन्ध अनुसरण करने का आदेश है, वहा प्राकृतिक, स्त्री जनोचित प्यार कर लेने का जो हमारा नैसर्गिक अधिकार है—जैसा कि घटना वश प्राय स्त्रियाँ किया करती है—उसे क्यो छोड दू। यह कैसे हो, क्या हो, और क्यो हो—इसका विचार पुरुष करते है। वे करे, उन्हे विश्वास बनाना है, कौड़ी-पाई लेना रहता है और स्त्रियो को भरना पडता है। तब इधर उधर देखने से क्या ? भरना है' यही सत्य है। उसे दिखावे के आदर से ब्याह करके भरा लो या व्यभिचार कह कर तिरस्कार से। अधमर्ण की सान्त्वना मे लिये उत्तमर्ण शाब्दिक मौखिक प्रलोभन या तिरस्कार है। समझे[2] ?')

घटी फिर कहती है—'मै तुम्हे प्यार करती हू। तुम ब्याह करके यदि उसका प्रतिपादन किया चाहते हो, तो भी मुझे कोई चिन्ता नही। यह विचार तो मुझे कभी

१—ककाल, पृष्ठ १११

२—ककाल, पृष्ठ १७६ १७७।

सताता ही नही । मुझे जो करना है, वही करती हू, करूगी भी । घूमोगे, घूमूगी, पिलाओगे, पीऊगी, दुलार करोगे- हस लूगी, ठुकराओगे, रो दूगी । स्त्री को इन सभी वस्तुओ की आवश्यकता है । मै इन सबो को समभाव से ग्रहण करती हू और करूगी[1] ।'

घटी का यह चरित्र आलोचको के विवाद का विषय रहा है । समाज मे सुव्यवस्था के अस्तित्व की मर्यादा के लिये इस स्वतन्त्र व्यक्तित्व पर मर्यादा के अतिक्रमण का आरोप लगा है । लेकिन प्रसाद जी प्रेम की स्वतन्त्र-सत्ता पर विश्वास करते हैं । घटी को नैतिक मूल्यो से नीचे नही गिरने देते । बाथम घटी की ओर आकर्षित हुआ । इसमे घटी का क्या दोष है । यमुना के मन मे आशका हुई इसमे घटी क्या करे । घटी ने तो अपने जीवन मे विजय को चुना है और विजय को छोड़ कर अन्य कोई कभी उसकी कल्पना मे आता ही नही । तो फिर एकनिष्ठ चरित्र को किस प्रकार नैतिक आदर्शो से पतित मान लिया जाये । इतने पर भी वह ललिता और यमुना की पीडा का अनुभव करती है जो उसके कारण उत्पन्न हुई है । उसके लिये वह प्रायश्चित करना भी नही भूलती —

'मैंने सचित शक्ति से विजय को छाती से दबा लिया था । और यमुना ·· वह तो स्वय राह छोड कर हट गई थी । पर मै बन कर भी न बन सकी—नियति चारो ओर से दबा रही थी । और मैंने अपना कुछ न रखा था, जो कुछ था सब दूसरी धातु का था । मेरे उपादान मे कुछ ठोस न था । लो—मैं चली, बाथम···उस पर भी लतिका रोती होगी···यमुना सिसकती होगी·· दोनो मुझे गाली देती होगी ·· अरे अरे, मैं हसाने वाली, सबको रुलाने लगी । मै उसी दिन धर्म से च्युत हो गई । मर गई, घटी मर गई[2] ।'

घटी के चरित्र को लेकर प्रसाद जी ने नीति की उदार व्याख्या प्रस्तुत की है । उन्हे व्यक्ति के शुद्ध स्वभाव पर अटल विश्वास है । उनके मत मे जो व्यक्ति स्वतन्त्र और मुक्त है वह सदा हित-वस्तु की ही इच्छा करेगा[3] ।'···इसीलिए व्यक्ति पर समाज की विवशताओ और उसके परिणाम मे होने वाले अनर्थों और दुखो को दिखा कर व्यक्ति से पुन· पुन यही आग्रह किया गया है कि वह अपनी हस्ती को समझे और आत्म शक्ति का उपयोग करे[4] ।' इसी आत्म शक्ति का अकुर घंटी के चरित्र में प्रस्फुटित हुआ है ।

'पाप की पराजय' कहानी[5] मे केतकी वन की रानी अपने क्षुधित बच्चो के

१—ककाल, पृष्ठ १७७ ।

२—वही, पृष्ठ १८८ ।

३—प० नन्ददुलारे वाजपेयी, जय शकर प्रसाद पृष्ठ ४४ ।

४—वही पृष्ठ ४३ ।

५—प्रति[illegible]नि में सग्रहीत ।

लिये शरीर बेचने को भी सन्नद्ध हो जाती है। घनश्याम से वह कहती है—शहर चलूगी। सुना है, वहाँ रूप का भी दाम मिलता है। यदि कुछ मिल सके[१]।'

नीति की रूढिवादी परिभाषा के अन्तर्गत शायद नैतिकता के पुरोहित इसे कोई स्थान न देंगे। क्योकि उनके अर्थो मे वेश्यावृत्ति—शरीर का विक्रय, समाज मे दुराचार की सृष्टि का कारण है। इसको वे किस प्रकार सहन कर सकते है। लेकिन इस कहानी का लेखक शरीर बेचने के कारणो की खोज करता है। परिस्थिति के मध्य समस्या को उभार कर वह प्रश्न करता है कि भूख से बिलबिलाते हुए बच्चो को तडप तडप कर मरने देना अनीतिपूर्ण है अथवा शरीर का विक्रय करके उनके लिये रोटी का एक कौर जुटाना जिससे उनके कोमल प्राणो की रक्षा की जा सके।

वेश्या वृत्ति के पथ पर अग्रसर होते हुए भी रानी की चारित्रिक उज्ज्वलता मे कोई अन्तर नही पडता वरन् वह और भी दीप्त हो उठता है। प्रसाद जी यहाँ पर इसी विश्वास को लेकर चले है, कि शरीर स्पर्श से नैतिकता विभ्रष्ट नही होती, यदि मन का पावित्र्य और उद्देश्य की उच्चता अक्षुण्ण रखी गई हो।

'दासी[२]' कहानी की इरावती भी परिस्थितियो के मध्य आततायियो द्वारा विभ्रष्ट की जाती है। वह बलराज की वाग्दत्ता है। वह्नि-वेदी के सम्मुख उनका परिणय होने वाला था। लेकिन इससे पूर्व ही कि वह सिन्दूर—बिन्दी से सौभाग्यशालिनी का पद प्राप्त करे, उसके भाल पर कलक की रेखा खीच दी गई। प्रसाद जी फिर यहाँ पर प्रेम की विस्तृत व्याख्या लेकर उपस्थित होते है। बलराज के मुख से जैसे उनका आदर्श बोलता है :—

'प्रेम की परिभाषा अलग है इरा। मैं तुमको प्यार करता हू। तुम्हारी पवित्रता से मेरे मन का अधिक सम्बन्ध नही भी हो सकता है। चलो हम…और कुछ भी हो, मेरे प्रेम की वह्नि तुम्हारी पवित्रता को अधिक उज्ज्वल कर देगी।'[३]

इस प्रकार प्रसाद जी ने सर्वत्र नीति और आचार की व्याख्या मे परिस्थितियों को महत्व देते हुए मन ही मूल-प्रवृति को विशिष्ठता प्रदान की है। नीति सम्बन्धी उनकी विशद व्याख्या, उद्देश्य को मुख्य मान कर चलती है, वाह्य आचरण को नही।

चूडीवाली'[४] की नायिका चूडीवाली के रूप मे लालसा से उदीप्त विजय कृष्ण की ओर आकर्षित होती है। बहू से प्रताडित होने पर नगर की प्रसिद्ध नर्तकी विलासिनी के रूप मे विजयकृष्ण के रूप, यौवन और चरित्र को आकर्षित करने का उपक्रम होता है। अपने रूप और सगीत कला की सुख्याति एव अपार वैभवमयी होने

१—प्रतिध्वनि, पृष्ठ २८।

२—आधी मे सग्रहीत।

३—आधी, पृष्ठ ५२।

४—आकाशदीप, मे सग्रहीत।

पर भी उसे सन्तोष नही होता । मन मे कुल-वधू बनने की अभिलाषा उत्पन्न होती है । विजय कृष्ण की ओर आकर्षण इसी आकाक्षा को लेकर था । उसमे उसे सफलता भी मिली । विजय कृष्ण जैसे पूर्ण रूप से उसके हो गए । उधर उनकी पत्नी राज्यक्ष्मा से पीडित स्वर्ग सिधार गई । इधर परिस्थितियो के चक्र मे विजय कृष्ण का सर्वस्वान्त हुआ । तब तक विलासिनी मे विजय के प्रति निष्ठा उत्पन्न हो चुकी थी । एक दिन परिहास मे उसने विजय से कहा था—जिसमे बाधा नही, बन्धन नही, जिसका सौन्दर्य स्वच्छन्द है उस असाधारण प्राकृतिक कला का मूल्य क्या बन्धन है ? कुरुचि के द्वारा वह कलकित भले ही हो जाये, परन्तु पुरस्कृत नही हो सकती । उसे आप पीजडे मे बन्द करके पुरस्कार देगे या दण्ड ।'[1]

आज वह इस स्वतन्त्र प्रकृति को छोडकर विजय कृष्ण से बध कर कुलवधू बनने की इच्छा पूर्ण करना चाहती है । परन्तु वेश्या की दी हुई जीविका से पेट पालने मे असमर्थ विजय कृष्ण उसके प्रणय को पत्नी रूप मे स्वीकार नही कर पाते । तब वह सोचती है—

'अपना व्यवसाय और विजय की गृहस्थी बिगाड़ कर जो सुख खरीदा था, उसका कोई मूल्य नही । मै कुलबधू होने के उपयुक्त नही । क्या समाज के पास उसका कोई प्रतिकार नही, इतनी तपस्या और इतना स्वार्थ-त्याग व्यर्थ है ।'[2]

और तब विजय कृष्ण से अस्वीकृत विलासिनी अपनी जीवन-चर्या बदल डालती है । सेवा के महान् आदर्श को लेकर आदर्श हिन्दू गृहस्थ की भाँति तपस्या मे निरत वह 'अब लौ नसानी अब न नसै हौ,' के महत् सकल्प का निर्वाह करती चलती है । तभी उसे एक बार फिर विजय कृष्ण के दर्शन होते है और अपनी निष्ठा के विश्वास मे वह उन्हे प्राप्त कर लेती है । उसका कुल-वधू होने का स्वप्न साकार हो जाता है ।

इसी कहानी में प्रसाद जी ने आचरण की शुद्धता और वेश्यावृत्ति की समस्या पर भी प्रकाश डाला है । नर्तकी का जीवन कला के व्यवसायियो का जीवन है । यह कला अपने आप मे पवित्र है । परन्तु इसके द्वारा समाज मे जिस उच्छृंखलता एव नैतिक भ्रष्टाचार की सृष्टि होती है, उसके लिये कला के मूल्य लगाने वालो की कुरुचि तथा कुत्सित इच्छा उत्तरदायी है न कि कलाकार । इस कला के द्वारा भले ही जीविका प्राप्त करते रहने के लिये बहुत से सामाजिको का मनोरजन करना पडे, परन्तु इसका अर्थ व्यभिचार नही होता । वेश्या होकर भी विलासिनी ने एक व्यक्ति से प्रेम किया है और यही उसके नैतिक सरक्षण के लिये यथेष्ट है । यहा भी प्रसाद बाह्य आचरण को महत्व न देकर विलासिनी की मूल भावना को पकड़ कर चलते है, जहाँ वह कुलवधू बन कर एकनिष्ठ जीवन बिताने का स्वप्न पूर्ण करना

१—आकाशदीप, पृष्ठ ११७-११८ ।

२—आकाशदीप, पृष्ठ ११९ ।

चाहती है। नर्तकी होकर भी वह एक पुरुष के लिये अपना व्यवसाय खो देती है। एक ही पुरुष से अस्वीकृत होने पर वह अपने जीवन की दिशा ही बदल देती है। प्रसाद जी प्रणाय की भावना को बहुत ही स्वाभाविक मान कर चले हैं। इसी भावना के कारण यदि उसको किसी विवाहित पुरुष से प्रेम हो गया हो, और उसके कारण विजय की पत्नी को जीवन की हानि उठानी पडी हो, तो इसमे विलासिनी का कितना दोष है ? उसने कभी भी बहू के रहते विजय को सम्पूर्ण रूप से अपना ही बना कर नही रखना चाहा। वह तो अपने अभ्यास के अनुसार यही समझती रही, 'कि यदि बहूजी की अपार प्रणय सम्पत्ति मे से कुछ अश मै भी ले लेती हू तो हानि क्या ?'[1] यह तो अपने प्रणय के एकाधिपत्य पर पूर्ण विश्वासिनी बहूजी के ही दृष्टि-कोण का दोष है कि वे इतनी-सी हानि को भी सहन नही कर सकी।

इस प्रकार प्रसाद जी वारागना को भी प्रेम करने का अधिकार देते है जो उनकी दृष्टि मे नीति पूर्ण है। उसके व्यवसाय से समाज मे जिस अनीति का विस्तार होता है, उसके लिये प्रसाद, कला पारखी सामाजिकों को दोषी ठहराते हैं जिन्होने अपनी विषय-वासना के वशीभूत होकर उसे यह अनैतिक स्वरूप प्रदान किया है। उनके मत मे प्रत्येक नारी के मन मे कुलवधू बनने की इच्छा होती है। कोई भी स्त्री अपने मन से समाज मान्य वेश्या के विकृत रूप को नही अपनाना चाहती। और इसीलिए प्रसाद ने विलासिनी मे गृहस्थ बनने की आकाक्षा का आरोपण किया है, उसके व्यवसाय की कलुषिता का कारण सामाजिको की कुरुचि मे खोजा है तथा वैविध्य का व्यवसाय करते हुए भी उसको एकनिष्ठा, प्रेमिका और लोक सेविका की स्थिति प्रदान की है।

'सालवती[2]' भी इसी कोटि की पात्री है। सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्यमयी होने के कारण उसे स्वतन्त्र रहने का अधिकार दिया जाकर उससे कुलवधू का अधिकार छीन लिया जाता है। उसकी प्रत्येक रात्रि १०० सुवर्ण मुद्राओ मे विक्रीत होती है। सेनापति मणिधर की पराजय का कारण, उसका ससर्ग दोष माना जाता है। 'काल भुजगिनी' वैशाली का अभिशाप तथा 'विचार स्वातन्त्र्य के समुद्र का हलाहल' उसके विशेषण बनते हैं। परिस्थितियों की भावरों में घिरी हुई वह अपने को स्वतन्त्र होते हुए भी कगाल की तरह, अधिकार नियन्त्रण विहीन सा अनुभव करती है। वह समाज की प्रताडनाओ का लक्ष्य बनती है। उसे वेश्यावृति के पाप की आविष्कर्त्री माना जाता है। राज्य प्रदत स्वतन्त्रता के उपभोग क्षणो मे वह स्वय भी वैसा ही अभिनय करने लगती है। इसी कारण उसे अभय कुमार का प्रत्याखान करना पड़ता है। परन्तु अपनी

१—आकाशदीप, पृष्ठ ११८।

२—इन्द्रजाल मे सग्रहीत।

स्वाभाविक प्रवृत्ति मे सालवती पूर्ण ममतामयी है। वेश्यावृत्ति को वह वैशाली राष्ट्र के लिये अहितकर मानती है । इसीलिये तो वह सघ के सम्मुख अपनी प्रतिज्ञा उपस्थित करती है —

'यदि सघ प्रसन्न हो तो मुझे आज्ञा दे। मेरी यह प्रतिज्ञा स्वीकार करे कि आज से कोई स्त्री वैशाली राष्ट्र मे वेश्या न होगी।[1]'

वह अपने द्वारा अब तक के वेश्यावृत्ति-प्रचार के लिये दण्ड का विधान भी उपस्थित करती है—'मुझे निर्वासन मिले, कारागार मे रहना पडे। जो भी सघ की आज्ञा हो. किन्तु अकल्याणकर और पराजय के मूल इस भयानक नियम को जो अभी थोडे दिनो से वज्जिसघ ने प्रचलित किया है, बन्द करना चाहिए।[2]'

सघ द्वारा उसकी प्रतिज्ञा का स्वीकार्य तथा उसका कुल वधू बनने का स्वप्न दोनो ही सामाजिक व्यवस्था के सचालन मे सहायक होते है। अपने सुप्त मातृत्व की भावना के उद्रेक-क्षणो मे उसे प्रत्याख्यायित अभयकुमार के पुत्र की मा बनना स्वीकार करना ही पडता है।

परिस्थितियो के विधान मे नैतिक आचरण का दूसरी उदाहरण बेला[3] का चरित्र है। वह गोली से प्यार करती है। लेकिन उसका विवाह भूरे से होता है। वह इसे सर झुका कर स्वीकार कर लेती है, लेकिन गोली की स्मृति उसके मन से धूमिल नही हो पाती । उसके सुन्दर अग की मेघमाला प्रेमराशि की रजत रेखा से उद्भासित हो उठी थी। उसके हृदय मे यह विश्वास जम गया था कि भूरे के साथ घर बसाना गोली के प्रेम के साथ विश्वासघात करना है । उसका वास्तविक पति तो गोली है। और इसीलिए वह 'पलास के जगल मे अपने बिछडे हुए प्रियतम के लिए दो-चार विरह वेदना की तानो की प्रतिध्वनि छोड आने का काल्पनिक सुख नही छोड़ सकती थी।[4]

फिर मैकू की कूट मन्त्रणा से वह ठाकुर को दे दी जाती है। समाज मे वह उनकी एक मात्र प्रेमिका समझी जाती है। उसकी प्रतिष्ठा अन्य कुल-बधुओ की भाति होती है। ठाकुर की उमग की राते वही कटती हैं। फिर भी ठाकुर कभी कभी प्रत्यक्ष देख पाते कि बेला उनकी नही है।[5] और एक दिन जब वर्षो का छुटा हुआ गोली नट

१—इन्द्रजाल, पृष्ठ १४६।
२—वही, पृष्ठ १४६।
३—इन्जाल, कहानी की पात्री।
४—इन्द्रजाल, पृष्ठ ७।
५—वही, पृष्ठ १०।

के रूप मे ठाकुर को खेल दिखाता हुआ बेला को लेने उसके समीप पहुचता है, तो प्रेम की तीव्र अनुभूति से पूर्ण एक ही क्षण मे दीन भिखारी की तरह—जो एक मुट्ठी भीख के बदले अपना समस्त सचित आशीर्वाद दे देना चाहता है—वह वरदान देने के लिये[1] प्रस्तुत हो जाती है।

बेला के चरित्रांकन मे लेखक ने शारीरिक पवित्रता और नीति-स्थापना के प्रश्न को उठाया है। क्या शरीर के दूषित हो जाने से नैतिकता भ्रष्ट हो जाती है? क्या विवाह के बाद बेला को अपना प्रिय भूल कर भूरे के प्रति एकनिष्ठ हो जाना चाहिए था? क्या ठाकुर के वैभव विलास को त्याग, बेला का एक कगाल के साथ हो लेना नीति सम्मत था? प्रसाद जी, जैसा कि हम पहले ही कह आए है, प्रेम की अनन्यता को ही श्रेष्ठ नैतिकता मानते है। समाज की क्रूरता ने बेला को गोली से छीन कर भूरे से बाध दिया, इसमे बेला का क्या दोष है? समाज के अन्याय से वह अपनी एकनिष्ठा का व्रत-भग क्यो करे। भूरे और ठाकुर दोनो के द्वारा शारीरिक रूप से भ्रष्ट किये जाने पर भी बेला अपनी आत्मा से पवित्र है, अपनी भावनाओ मे महान है, और अपने प्रणय मे एकनिष्ठ है। नैतिकता की उदार परिभाषा को शारीरिक पावित्र्य की सीमाओ मे आबद्ध नही किया जा सकता, वह आत्मा की वस्तु है।

दूसरे, पलास वन की एकान्तता मे जब बेला ठाकुर से पहले पहल मिलती है तब उसके महत्व का सम्पूर्ण चित्र, जिसे अपने मन की असयत कल्पना मे वह दुर्गम शैल-शृग समझ कर अपने भ्रम की हसी उडा चुकी थी[2], उसकी आखो मे घूम गया। यह उसका मनोवैज्ञानिक पक्ष है। महत्व प्राप्ति की लालसा की कमजोरी मे तथा इससे विशेष कि ठाकुर को प्राप्त कर लेने पर उसका अपने प्रिय गोली के प्रतिद्वन्दी भूरे से सम्बन्ध विछद हो जायेगा, वह ठाकुर के शरीर से अपना सर सटा देती है। शायद उसने उस क्षण भी यह सोचा हो कि ठाकुर चाहे और कुछ भी क्यो न हो पर भूरे की भाँति उसके प्रिय का प्रतिद्वन्दी और शत्रु तो नही है। और हो सकता है, इस तरह ठाकुर के प्रति समर्पण भी गोली के प्रति अनन्य प्रणय की भावना के कारण ही हुआ हो। हाँ, यदि ठाकुर के पास जाने पर वह गोली को भूल जाती, उसके विलास वैभव मे अपने पलास वन-जीवन के दिन बिसरा देती, तो हम इसे उसकी नैतिक मर्यादा का उल्लघन तथा चारित्रिक पतन मान लेते। लेकिन ऐसा नही होता, और इसीलिए वह प्रसाद मान्य नीति का नवीन उदार आदर्श प्रस्तुत करने मे समर्थ होती है।

भारतीय सस्कृति मे नारी के लिये पत्नीत्व की मर्यादा का आदर्श निर्वाह अन्यतम कर्तव्य है। पति के सुख दु खो की सहचरी, उसके प्रति एकनिष्ठा और आज्ञा-

१—इन्द्रजाल, पृष्ठ १२।

२—इन्द्रजाल, पृष्ठ ८।

कारिता उसके जीवन के प्रमुख लक्ष्य है। प्रसाद जी पत्नीत्व के आदर्श को महत्व प्रदान करने के साथ एकनिष्ठा और आज्ञाकारिता के अर्थ को उस बिन्दु तक नही खीच ले जाते, जहा नारी का अपना स्वर, अपनी इच्छा और अपना अस्तित्व ही लोप हो जाता है। उनके मत मे जिस प्रकार नारी से आदर्श निर्वाह की अपेक्षा की जाती है उसी प्रकार से पुरुष को भी अपनी सीमाओ एव अधिकार क्षेत्रो का ध्यान रखना आवश्यक है। यदि वह नारी से नैतिक व्यवहार की आशा रखता है तो उसे भी स्वय नीति विरोधी व्यवहारो का अनुसरण नही करना चाहिए और यदि वह ऐसा करता है तो नारी भी उसका विरोध करने के लिए स्वतन्त्र है। प्रसाद जी ने अपनी अनेक पात्रियो को यह सुविधा प्रदान की है। उनकी पत्नी-पात्रियाँ एकनिष्ठ, कर्तव्यमयी एव सदाचार से युक्त है। उनमे अपने पति के प्रति सम्मान और आज्ञाकारिता की भावना विशिष्ठ है। लेकिन साथ ही वे अपने पति को भी दुराचार करते नही देख सकती। ऐसे अवसरो पर अपनी नैतिक महाशक्ति को लेकर वे अपने आराध्य समझे जाने वाले पति का प्रकट विरोध करती हैं, और प्रसाद जी की दृष्टि मे यह पूर्ण नैतिक है। ऐसा करने से उनके नैतिक आचार की श्रेष्ठता मे कोई अन्तर नही आता।

चन्द्रगुप्त से प्रेम करते हुए भी जब ध्रुवस्वामिनी को राम गुप्त की पत्नी बन जाना पडता है तो नारी स्वभाव के अनुसार नियति पर विश्वास करते हुए वह रामगुप्त के प्रति एकनिष्ठ हो जाती है। अपने जीवन की सम्पूर्ण सवेदनाओ और असफलताओ को ममता और कारुण्य की अनुभूति मे छिपा कर, वह अपने पत्नीत्व का कर्त्तव्य निर्वाह करती चलती है। लेकिन रामगुप्त उसे उपहार मे देने की वस्तु समझता है और पति होते हुए भी शकराज के पास भेजे जाने का आदेश देता है। तब भी ध्रुवस्वामिनी सहनशीलता के शृंग पर चढ कर उससे विनय करती है—'राजा! आज मैं शरण की प्रार्थिनी हू ' मैं तुम्हारी होकर रहूगी ' राज्य और सम्पत्ति रहने पर राजा को—पुरुष को—बहुत सी रानियाँ और स्त्रियाँ मिलती हैं, किन्तु व्यक्तित्व का मान नष्ट होने पर फिर नही मिलता।[1]

लेकिन दुर्विनीति रामगुप्त जब उसे किसी दूसरे को देने पर ही तत्पर हो जाता है तब वह अपने स्वत्व और स्वाभिमान की रक्षा के लिये सन्नद्ध होकर रोष भरे शब्दो मे कहती है—

'निर्लज्ज! मद्यप! क्लीव। ओह, ता मेरा कोई रक्षक नही। नही, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूंगी। मै उपहार मे देने की वस्तु, शीतलमणि नही हू। मुझ मे रक्त की

१—ध्रुवस्वामिनी, पृष्ठ २६

तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमे आत्म सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूगी।'[1]

उसकी भर्त्सना मे वह जैसे शक्तिमान् होकर बोलती है —

'अनार्य ! निष्ठुर ! मुझे कलक कालिमा के कारागार मे बन्द कर मर्म वाक्य के धुए से दम घोट कर मार डालने की आशा न करो। आज मेरी असहायता मुझे अमृत पिला कर मेरा निर्लज्ज जीवन बढाने के लिये तत्पर है · · मैं एकान्त चाहती हू[2] ।'

वह यह भी जानती है कि उसका राक्षस-विवाह हुआ है। अभी तक वह अपनी अपार उदारता और सामजस्य प्रवृति के कारण उसका यो ही निर्वाह कर लेना चाहती थी। परन्तु अब वह उसे मानने से भी इन्कार कर देती है। यह समाज का घोरतम अन्याय है कि 'स्त्रियो को धर्म बन्धन मे बाध कर बिना उनकी सम्मति के, उनके अधिकार का अपहरण होता है और धर्म के पास कोई प्रतिकार, कोई सरक्षण नही होता जिसमे वे अभागी स्त्रिया आपत्तिकाल मे अवलम्ब मान सके।[3]

यही पर प्रसाद जी विवाह का आदर्श स्त्री और पुरुष का परस्पर विश्वास-पूर्वक अधिकार, रक्षा और सहयोग के रूप मे प्रस्तुत करते है ।[4] इनके अभाव मे विच्छेद अनीतिपूर्ण नही कहा जा सकता।

स्कन्दगुप्त की पात्रा रामा अपने पति शर्वनाग से पूर्ण स्नेह करती है, उसका सम्मान करती है। पर साथ ही उसके अनीतिपूर्ण व्यवहार का विरोध भी। सत्य की मान-रक्षा के लिये पति का विरोध अनैतिक नही कहा जा सकता। उसका पति सर्व-नाग महादेवी देवकी के बध की कुमत्रणा का शिकार होता है। उसे इस महान् दुष्कर्म मे सम्मिलित हुआ देख कर रामा उसका विरोध करती है। उसे फटकारते हुए वह कहती है:—'मेरे रक्त के प्रत्येक परमाणु मे जिसकी कृपा की शक्ति है, जिसके स्नेह का आकर्षण है, उनके प्रतिकूल आचरण ? वह मेरा पति तो क्या, स्वय ईश्वर भा हो, नही करने पायेगा।[5]

अपने पति के प्रति प्रताडना भरे इन शब्दों मे उसका रोष और भी उज्ज्वल हो उठता है —

१—ध्रुवस्वामिनी, पृ० २७।
२—वही, पृ० ३२।
३—वही, पृ० ५२।
४—वही, पृ० ५२।
५—स्कन्दगुप्त, पृ० ६४।

'टुकडे का लोभी! तू सती का अपमान करे, यह तेरी स्पर्धा? तू कीडो से भी तुच्छ है। पहले मैं मरूँगी, तब महादेवी।[१]

प्रसाद जी नैतिक आचरण से भ्रष्ट पति के इस व्यवहार के विरोध को नीति सम्मत मानते हैं। इससे पत्नीत्व की नैतिक मर्यादा टूटती नही वरन् सबल होती है। पत्नी का यह नैतिक आदर्श ही तो उसके पति का जीवन बनाने मे सहायक होता है। शर्वनाग को अपराधं के रूप मे उपस्थित किया जाकर स्कन्दगुप्त उसके लिये निर्णय देता है —

'क्योकि रामा—साधवी रामा को मैं अपनी आज्ञा से विधवा न बनाऊगा। रामा सती! तेरे पुण्य से आज तेरा पति मृत्यु से बचा[२]।' रामा इस कृतज्ञता के बोझ से झुकी हुई सम्राट के चरणो पर गिर पडती है। वह वास्तव मे अपने पति से बहुत प्यार करती है। लेकिन उसके अनैतिक आचरणो से नहीं। इसीलिए उसे उमका विरोध करना पडता है, जो वास्तव मे विरोध न होकर उसका सर्व-प्रथम नैतिक कर्तव्य है।

इसी प्रकार 'विराम चिन्ह[३]' का मद्यप राधे अपनी पत्नी द्वारा त्यक्त व्यक्ति है। पति के क्रूर, निर्दय, और दुराचारी होने पर पत्नी द्वारा उसका त्याग लेखक को किसी भी अवस्था तथा किसी भी वर्ग मे अनीतिपूर्ण नही लगा है।

नारी का एक और रूप है, मातृ रूप। अपने पुत्र के सतत् उत्थान के लिये मगल कामना से परिपूर्ण उसका मन सदैव ही सुन्दर कल्पनाओं मे निमग्न रहता है। वह सदैव अपने पुत्र को सत्पथ पर अग्रसर होते देखना चाहती है। परन्तु कर्त्तव्य विमुख पुत्र का विरोध करने से भी उसे नही हिचकना चाहिए। प्रसादजी ने 'स्कन्दगुप्त' की कमला के चरित्र मे मातृत्व का यही नैतिक आदर्श प्रस्तुत किया है। उसका पुत्र भटार्क अनन्त देवी की कुमन्त्रणा मे फस कर राज्य विद्रोही बनता है। कमला का उसका यह नैतिक दुराचरण सह्य नही है। नीति की रक्षा मे तत्पर वह उसके लिये कहती है। 'सुखी घरो मे आग लगाने, हाहाकार मचाने और देश को अनाथ बना कर उसकी दुर्दशा करने के लिये नरक के कीड़े तू जीता रहा? मैंने भूल की, सूतिका-गृह मे ही तेरा गला घोट कर क्यो न मार डाला।[४]'

माता-पुत्र का सम्बन्ध अपार विश्वास पूर्ण, स्नेह और ममता पूर्ण होता है।

१—स्कन्द गुप्त, पृष्ठ ६८।

२—वही, पृष्ठ ८१।

३—इन्द्रजाल मे सग्रहीत।

४—स्कन्दगुप्त, पृष्ठ ११४।

मा अपने पुत्र की हित कामना मे कुछ भी नही उठा रखती। परन्तु आदर्श मा अपने पुत्र को नीति-विरोधी व्यवहार करते देखकर चुप भी नही रह सकती। वह उससे जहा एक ओर अपरिमित, अतुल्य स्नेह कर सकती है वहाँ दूसरी ओर उसी मात्रा मे घृणा भी, और ऐसा करने से मातृत्व के आदर्श का क्षय नहीं होता। कमला के नैतिक आचार की श्रेष्ठता के कारण ही अन्त मे भटार्क को पश्चाताप करना पडा है :—

'अनन्त देवी। एक क्षुद्र नारी—उसके कुचक्र मे, आशा के प्रलोभन मे, मैने सब बिगाड दिया।' (पृष्ठ १३५)

इस प्रकार से प्रसाद जी ने नैतिक आदर्श की विस्तृत और उदार व्याख्या की प्रस्थापना का प्रयास किया है। सक्षेप मे नारी सम्बन्धी उनके नैतिक आदर्शो का सचयन करते हुए हम कह सकते है कि प्रसाद जी को नारी की स्वतन्त्रता पर अटल विश्वास है। स्वातन्त्रता-जन्य वस्तु ही वास्तविक अर्थों मे लाभप्रद और कल्याण कर हो सकती है लेकिन उसके साथ जुडी हुई उच्छृखलता की समस्या सम्बन्धी उनके विचारो को भी अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। वे नारी के द्वारा अपनी यथार्थ और निसर्ग प्रकृति का त्याग कर देने के पक्ष मे नही हैं। नारी की अबाध स्वतन्त्रता का परिणाम उनके साहित्य मे अनिष्टकर ही हुआ है। यहाँ पर वे उनमे सुधार की व्यवस्था करते हैं। उनके नैतिक आदर्श जडी-भूत नही है।

वास्तव मे प्रसाद जी की नैतिकता प्रयोगशील नैतिकता है। विभिन्न चरित्रो के आचरणो मे अनेको प्रयोग करके वे नैतिकता का स्वरूप स्पष्ट करते हैं। नैतिकता उनकी दृष्टि मे शाश्वत नही है। देश, काल, परिस्थिति तथा इतिहास इन सबकी पृष्ठ भूमि मे नैतिक मान्यता भिन्न-भिन्न रूप रेखाओ तथा अर्थों मे व्यक्त होती है। प्रबुद्ध सामाजिक जीवन मे नैतिकता का स्वरूप ग्राम्य जीवन की नैतिकता से भिन्न होता है। प्रदेश-अन्तर के कारण भी नैतिकता परिवर्तित होती है। इसलिये न तो वह चिर स्थायी हैं, न चिर कालीन और इसी मान्यता के कारण वे यह मान कर नही चलते कि एक बार नीति विरोधी आचरण कर लेने पर उसमे सुधार की सम्भावना नही रह जाती। उनके बहुत से पात्र महत्त्वाकाक्षा और लालसा के वशीभूत होकर आरम्भ मे नैतिक मर्यादाओ का उल्लघन करते दिखाई पडते है। परन्तु अन्त में पश्चाताप की अग्नि के सम्मुख उनके चरित्र की मलिनता निर्मलता एव सात्विक तेज मे परिवर्तित हो जाती है। यहाँ पर वे रूढिगत नैतिक आदर्शों की धारा से स्वतन्त्र मत की आदर्श स्थापना करते है। विद्रोही भावना के परिणाम स्वरूप किसी अस्वस्थ रूढि को तोडने की अभिलाषा भी उनकी दृष्टि मे नैतिकता विरोधी नहीं है। इसी प्रसंग मे वे यह भी मान कर चलते हैं कि प्रेम नारी हृदय की सहज सात्विक भावना है। परन्तु साथ ही इस क्षेत्र में संयम की आवश्यकता भी वे बतलाते हैं। असयमित

प्रेम के द्वारा नैतिक मर्यादाओ के उल्लघन की आशका बनी रह सकती है। साथ ही वे आत्मिक प्रणय को शारीरिक प्रेम से श्रेष्ठतर मानते है और इसीलिए वाह्य तथा आन्तरिक आचरणो की व्याख्या करते हुए वे इस आदर्श की स्थापना करते हैं कि शरीर के कलकित होने से नैतिकता भ्रष्ट नही हो जाती। शर्त यही है कि आत्मिक भावना अपने मे पूर्ण स्वच्छ और निष्ठामय हो । इस तरह से प्रसाद जी ने नारी को जडीभूत जर्जर नैतिक आदर्शो के परिबद्ध एव सकीर्ण बाड़े से बाहर निकाल कर विस्तृत भाव भूमि के मध्य बौद्धिक विश्वास के प्रकाश मे नवीन आदर्शों एव मान्यताओ की सृष्टि करते हुए बुद्धि प्रयोग की व्यावहारिक दिशा प्रदान की है। उसकी पृष्ठभूमि मे वह अपने जीवन दर्शन का विकास भली भाति अनुभव करती है, और उसी के अनुसार आचरण भी।

प्रकरण—६

प्रसाद की नारी—मनोवैज्ञानिक भूमिका

: अ : आरम्भ

: ब : सामान्य स्थायी गुण

: स : नारी मनोविज्ञान—विभिन्न वर्गों में

: द : प्रणय प्रसंग और असाधारण मनोविज्ञान

आरम्भ

मानव-स्वभाव की सबसे स्वाभाविक प्रवृत्ति विचार-शीलता है। मानव मानव का समान धर्मी है, इसलिए मानव-स्वभाव का विचार उसके चिन्तन की विशेष महत्वपूर्ण वस्तु होती है। 'मानव के भाव की चिन्तनात्मक और भावात्मक सत्ता पर इस सर्वाधिकार का एक कारण और भी है कि इस व्यापार के द्वारा उसे स्वय अपने को समझने मे सहायता मिलती है। इस प्रकार की मानव के प्रति मानव की चिन्ता को, समझने-समझाने, देखने-बूझने के प्रयत्न को मनोविज्ञान का अध्ययन कहते है। इसमे मानव-व्यापार उसके क्रिया-कलाप, उसके आचरण तथा प्रतिक्रियाओ का अध्ययन होता है[1]।'

मानव के क्रिया-कलापो एव व्यवहार द्वारा ही उसके मन की स्थिति का उद्घाटन होता है। वास्तव मे मन ही वह केन्द्र स्थल है, जहा से प्रत्येक वस्तु का आरम्भ होता हैं। सब कुछ मन ही की क्रीडा है[2]।' मन मे किसी वस्तु के सकल्न, इच्छा तथा व्यवहार की कामना होती है। वह चचल होता है, तथा नियन्त्रण के अभाव मे उच्छृखलता की सीमा तक पहुच जाता है। मनोवैज्ञानिको के अनुसार व्यक्ति और मन ही सृष्टि के समस्त क्रिया-व्यापारो के केन्द्र है। मनोविज्ञान के माध्यम मन का अन्तर्विश्लेषण होता है। इस प्रकार से यह एक विश्लेषण प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मानव-मन के अध्ययन मे सहायता मिलती है।[3] मन की कुछ मूल प्रवृत्तियाँ होती है, जिन्हे प्रसिद्ध वैज्ञानिक ए० डी० मैन्डर ने सस्कार तथा शरीर की अन्तर्जात प्रवत्ति कहा है, जो परिस्थिति विशेष मे विशिष्ठ व्यवहार करती है।

मन सम्बन्धी भारतीय मत

भारतीय ग्रन्थो मे मन का विवेचन ऋगवेद ग्रन्थ, निरुक्त श्रीमद् भगवत् गीता, योगवाशिष्ठ आदि ग्रन्थो के अतिरिक्त बौद्ध दर्शन, न्याय एव वैशेषिक दर्शन,

---

१—डा० देवराज : आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, पृष्ठ ३५।

२—डा० प्रेम शकर, प्रसाद का काव्य, पृष्ठ ३३३।

३—स्टाउट्. मेनुअल ऑफ साइकॉलॉजी, पृष्ठ ३०।

साख्य और योग-दर्शन तथा वेदान्त दर्शन मे भी मिलता है। इन ग्रन्थो मे उल्लिखित मन की व्याख्या के अनुसार वह सत् और असत् दोनो प्रकार की प्रवृत्तियो से पूर्ण है। कही वह ब्रह्म है,[१] तो कही जानने, धारण करने, देखने, सकल्प करने आदि की अनेक शक्तियो से सम्पन्न[२] और कही समस्त इन्द्रियो मे सर्वोच्च शक्तिमान् और सर्व श्रेष्ठ भी।[३] वह बन्धन और मोक्ष का कारण भी है।[४] इसके साथ-ही-साथ उसे चाचल्यपूर्ण तथा वायु के समान वशीभूत् कर सकने मे दुस्कर कहा गया है।[५] इस पर नियन्त्रण कर लेने पर ही शान्ति और कल्याण की प्राप्ति सम्भव है।[६] बौद्ध दर्शन मे मन की उत्पत्ति अविद्या और तृष्णा से मानी गई है।[७] न्याय तथा वैशेषिक दर्शन मे मन को सुख-दुख आदि निसर्ग भावनाओ का अनुभव करने वाली साधन-इन्द्रिय के रूप मे ग्रहण किया गया है।[८]

पाश्चात्य मत

प्राचीन भारतीय धर्म एव दर्शन ग्रन्थो की भाँति मन सम्बन्धी पाश्चात्य मत भी दृष्ट्व्य है। मनोविज्ञान से सम्बन्धित खोज सबसे पूर्व यूनानी दार्शनिको द्वारा की गई थी। उनका विश्वास था कि मन एक ठोस द्रव्य है जो जीवित प्राणियो मे विद्यमान रहता है। इसी के माध्यम जीवन अथवा मृत्यु का ज्ञान होता है। परन्तु एनेक्सेगोरस ने इस विश्वास का खण्डन करते हुए मन को चेतन-प्राणियो पर अधिकार रखने वाली असीम स्वशासित शक्ति के रूप मे ससार के परिवर्तन का कारण माना है।[९] प्लेटो के मत से भी मन सर्वोपरि है।[१०] उनका कहना है कि समस्त कार्यों के मूल मे दो कारण होते है— (अ) बुद्धिगत या स्वतन्त्र (ब) परतन्त्र या परचालित। इनमे से प्रथम मन से सम्बन्धित है जो स्वशासित या उन्मुक्त है। मन के द्वारा ही अन्य ज्ञान भी प्राप्त होते है।

१—छादोग्य उपनिषद् ३।१८।१।

२—एतरेय उपनिषद् ३।२।

३—कठोपनिषद् १।३।१६,२।३।७।

४—कल्याण, उपनिषद् अक, पृष्ठ १६४।

५—श्रीमद् भगवत् गीता, ६।३४।

६—योगवशिष्ठ १४७-१४८।

७—दर्शन-दिग्दर्शन, पृष्ठ ५०५, ५७८।

८—तर्क-संग्रह, पृष्ठ ३५।

९—हिस्ट्री आफ वैस्टर्न फिलासफी, पृष्ठ ८२।

१०—वही, पृ० १७४।

अरस्तू ने मन को विचार करने की शक्ति के रूप मे माना है। उसके मत मे वह आत्मा से भिन्न वस्तु है।[१] जार्ज बर्कले मन को सब का ज्ञाता कहते हैं और ससार को उसके विचार मात्र के रूप मे मानते हैं।[२] डेविड ह्यूम मन को अविच्छिन्न प्रवाह युक्त विभिन्न प्रत्ययो की राशि मानते है।[३] लिबनीज़ उसे प्रत्ययो एव प्रवृत्तियो से निर्मित एक चिद् विन्दु के रूप मे स्वीकार करते है।[४] हेगेल ने मन को तर्कपूर्ण प्रत्यय का विकास कहा है[५] और हर्बर्ट स्पेन्सर उसे निरपेक्ष या अज्ञेय शक्ति के उन्मेष-रूप में मानते हैं।[६] फ्रायड ने मन के चेतन और अचेतन दो रूप स्वीकार किए है तथा चेतन मन की अपेक्षा अचेतन मन को अधिक महत्वपूर्ण माना है।[७] उनके अनुयायी युग और एडलर ने मन के अचेतन रूप को ही अधिक महत्ता प्रदान की है। परन्तु युग अचेतन मन को फ्रायड की धारणा के विपरीत दमित काम अथवा इच्छाओ का ही स्थान नही मानते वरन् भलाइयो का मूल और चेतना का आदि स्रोत भी सिद्ध करते हैं।[८] एडलर ने भी युग की ही भाँति मन मे काम-प्रवृत्ति की अपेक्षा समाज को स्व-स्थापना की शक्ति-प्राप्ति की प्रवृत्ति को ही अधिक प्रबल माना है।[९]

इस प्रकार से प्राचीन दार्शनिको और मनोविज्ञान मनीषियों द्वारा मन सम्बन्धी धारणा उपस्थित करने के विषय को लेकर एक प्रकार की विकास-परम्परा भी स्पष्ट लक्षित होती है। आरम्भ से मन को सर्वोच्च, स्वतन्त्र इकाई के रूप मे माना गया। इसी मे निर्माण, धारणा, अनुभव, विचार आदि कार्यो के परिचालन की शक्ति भी कल्पित की गई। परन्तु मनोविज्ञान-क्षेत्र मे फ्रायड के प्रवेश ने मन के सर्वोच्च और स्वतन्त्र होने की धारणा को नष्ट करके नई मान्यता की प्रस्थापना की। उन्होने उसे स्वतन्त्र और पूर्ण इकाई न मान कर विभिन्न इकाइयो के मिश्रित रूप मे स्वीकार किया। उसको चेतन और अचेतन रूप मे विभक्त कर अचेतन रूप को अपेक्षाकृत सशक्त और समर्थ माना। 'क्योकि उसके द्वारा ही चेतन मन की समस्त

१—हिस्ट्री आफ वैस्टर्न फिलासफी, पृ० १६२।

२—ए हिस्ट्री आफ फिलासफी, पृष्ठ ३६०-३६१।

३—वही, पृष्ठ ३७६।

४—वही, पृष्ठ ३६०।

५—वही, पृष्ठ ४८५।

६—वही, पृष्ठ ५४६।

७—सिन्हा . मनोविज्ञान, पृष्ठ ५१७।

८—वही, पृष्ठ १३-१७।

९—सिन्हा . मनोविज्ञान, पृष्ठ ४६७-४६८।

क्रियाये होती हैं और वही समस्त मानसिक क्रियाओ का मूल है। इसके साथ ही मन तथा शरीर का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, क्योकि मन ही चेतना है जिसकी 'इच्छा, ज्ञान और क्रिया' ये तीन प्रक्रियाये होती है।[1]

इसी प्रसग मे मनोविज्ञान की नवीन आचरणवादी मान्यता के विषय मे भी कुछ कह लेना आवश्यक हो जाता है। १६वी शताब्दी के मनोविज्ञान मे बौद्धिक तत्वो को अधिक महत्व प्रदान किया जाने लगा था, तथा इन्द्रियातीत प्रयोगशाला के कार्य-कारण शृ खला के दृढ तथा वैज्ञानिक नियमो की पकड मे न आने वाली वस्तुओ को सशक दृष्टि से देखना उस बौद्धिक युग का स्वभाव हो गया था। सभी क्षेत्रो मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास ने मनोविज्ञान के क्षेत्र को भी प्रभावित किया और यहाँ भी ऐसी पद्धति की माग की जाने लगी, जो वैज्ञानिक पद्धति की तरह ठोस, दृढ तथा स्पष्ट हो, और जिसे प्रयोगशाला के निश्चित वातावरण मे भिन्न-भिन्न रूप मे परीक्षा लेकर देखा जा सके। फलस्वरूप आचरणवाद का जन्म हुआ। इस विषय को लेकर विशेष रूप से वाट्सन नामक अमरीकी मनोवैज्ञानिक का दृष्टिकोण सामने आया। 'वाट्सन की दृष्टि वस्तु निष्ठ है, जो मनोवैज्ञानिक की भी व्याख्या उन सज्ञाओ के सहारे करना चाहते है, जिनका ठोस रूप हम समझ सकें, जिनके बारे मे किसी तरह के सदेह की गु जाइश न हो।' उन्होने कहा कि मनोविज्ञान मानव के अन्त प्रदेश के अन्धकार मे चलती रहने वाली प्रक्रिया का नाम नही है। वह मनुष्य के वाह्य आचरण, शारीरिक अनुभवो के ऊपर विचार करने वाला एक शास्त्र है।[2]

प्रसाद जी की धारणा

'चित्राधार' मे सकलित 'मानस' कविता के आधार पर प्रसाद जी की मन सम्बन्धी धारणा को जाना जा सकता है। वे उसे सरोवर की भाति निर्मल तथा विशाल मानते है और साथ ही मधुर भावना-तरगो से पूर्ण भी। इसी मन के पुलिन पर बैठ, मानव चिन्ता, हर्ष, विषाद, क्रोध निर्वेद, लोभ, मोह आनन्द आदि विभिन्न भावनाओ मे लीन होता है। ये भावनाए मन-सरोवर के मकर और मत्स्य हैं। यहाँ कल्पना रूपी हस आशा रूप मुक्ताओ को आनन्द पूर्वक चुगता है। कभी कभी कल्पना को महान् मत्स्य निगल जाते है, जिसके कारण दु खो की सृष्टि होती है। इस मन

१—सिन्हा : मनोविज्ञान, पृ० ५७४।

२—डा० देवराज उपाध्याय : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य तथा मनोविज्ञान, पृ० ६१।

मानस की उमगित असीमित तरगो मे चित्त-मराल सुख-पूर्वक विचरण करता है।

प्रसाद जी ने मन को चचल तथा हरिण के समान चौकड़ी भरने वाला कहा है।[१] साथ ही अतृप्त भी,[२] क्योकि मन कभी बूढा नही होता।[३] उनके विचार से मन समस्त रसो का अधिष्ठाता भी है।[४] वह सदैव सुखो की ओर आकर्षित होता है और उसका लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति है।[५] वे उसे सकल्प, विकल्प करने वाला मानते हैं,[६] और साथ-ही-साथ एक रहस्य भी।[७]

इस प्रकार से मन-सम्बन्धी प्रसाद जी की धारणा भारतीय एव पाश्चात्य मनोवैज्ञानिको से मेल खाती है। वे उसमे सभी प्रकार की मनोवृत्तियो का अधिष्ठान मान कर चलते है। विभिन्न मनोभावो की पृष्ठिका पर लिखित 'कामायनी' इस कथन को पुष्ट करती है। वे यह भी मानते है कि मन की चेतन और अचेतन दो अवस्थाए होती है, और दोनो अवस्थाओ मे वह विभिन्न प्रकार की मानसिक प्रवृत्तियो मे व्यस्त रहता है।' तृष्णा और लालसा दो मनोवृत्तियाँ अत्यन्त प्रबल है। इनके वश मे होकर मन अपना नियन्त्रण नही रख पाता और अधिकाधिक सुख या आनन्द की खोज मे पद-पद पर ठोकरे खाने लगता है। हाँ, यदि इनसे छुटकारा मिल जाये, तो इसे आनन्द-प्राप्ति में कोई बाधा उत्पन्न नही होगी। प्रसाद जी ने आनन्द के अन्तर को सरलता और बहिरग को सौन्दर्य कहा है।[८] इसलिए वह मन के निग्रह को आवश्यक समझते हैं, तथा इसे महापुरुषो का स्वभाव बतलाते है। मन सद्बुद्धि और हृदय के साथ सामजस्य स्थापित करके आनन्द मार्ग का अनुगामी होता है।[९]

नारी मनोविज्ञान और रचना मे प्रसाद जी उसके शारीरिक एव मानसिक गठन का विशेष महत्व मान कर चले है। अपने अवयवो की कोमलता के कारण यह स्वभाव मे मृदु, कोमल, सौजन्यपूर्ण एवं लज्जाशील, उदार, सहिष्णु, त्यागमयी और भावना प्रधान है। 'कामायनी' की श्रद्धा के शब्दो मे उनकी इस धारणा का स्पष्टीकरण हो जाता है—

१—चित्राधार, पृष्ठ १७६।
२—राज्य श्री, पृष्ठ १८।
३—चन्द्रगुप्त, पृष्ठ ६१।
४—आँसू, पृष्ठ २८।
५—एक घूट, पृष्ठ १७।
६—ककाल, पृष्ठ १८-१९।
७—अजातशत्रु, पृष्ठ १४१।
८—डा० द्वारिका प्रसाद . कामायनी मे काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ३५४।
९—वही, पृ० ३५४।

यह आज समझ तो पाई हू
मैं दुर्बलता मे नारी हू।
अवयव की सुन्दर कोमलता
लेकर, मैं सबसे हारी हू।' (पृ० १०४)

उनकी दृष्टि मे स्त्रियो का हृदय अभिलाषाओ का, ससार के सुखो का क्रीडा-स्थल है।[१] मन की सवेदनशीलता के कारण वे बहुत उत्साहित हो जाती हैं और उतने ही परिणाम मे निराशावादिनी भी।[२] उनका मन करुणा पूर्ण है, इसी लिए समस्त मानवी सृष्टि को करुणा के लिए ही मानती हैं। क्रूरता का निदर्शन उनकी दृष्टि मे केवल हिंस्र पशु-जगत के लिए ही यथेष्ट है।[३] प्रसाद जी नारी-हृदय को कोमलता का पालना कहते हैं। उनकी दृष्टि मे वह दया का उद्‌गम है, शीतलता की छाया है, और अनन्य भक्ति का आदर्श है।[४] उनका मन सदैव ही चिर-प्रशान्त मगल की कामना से पूर्ण है।[५] मन की अतिशय करुणा के कारण बातो मे ही करुणा-प्लावित होकर उनका दृग-जल झरने लगता है।[६]

प्रसाद जी नारी के इस उदार स्वरूप के साथ उसके कठोर-रूप को भी दृष्टि ओझल नही करते। क्षमा और प्रतिशोध नारी जीवन के दो अनिवार्य अग है। और दोनो ही मे उसकी महानता प्रतिष्ठित की गई है। वह कोमल होते हुए भी कठोर है, और कठोर होते हुए भी कोमल। उसके चरित्र की यह रहस्यमयी विवेचना प्रसाद जी द्वारा, 'रमणी-हृदय' मे इस प्रकार व्यक्त हुई है :—

'कौन जानता है नीचे मे, क्या बहता है।
बालू मे भी स्नेह, कहा कैसे रहता है।
फल्गू की है धार, हृदय वामा का जैसे,
रूखा ऊपर, भीतर स्नेह सरोवर जैसे।
ढकी बर्फ से शीतल, ऊची चोटी जिनकी।
भीतर है क्या बात न जानी जाती उनकी।

१—आधीं, पृ० १०८।
२—ककाल, पृ० ३८।
३—अजात शत्रु, पृ० २४ तथा पृ० ११४ भी।
४—वही, पृ० १११-११२।
५—कामायनी, पृ० १४८।
६—प्रेम पथिक, पृ० १३।

ज्वालामुखी समान कभी जब खुल जाते है।
भस्म किया उनको, जिनको वे पा जाते हैं।
स्वच्छन्द, स्नेह, अन्तर्निहित, फल्गू सदृश किसी समय
कभी सिन्धु ज्वाला मुखी, धन्य धन्य रमणी हृदय[1]।

: २ :

सामान्य स्थायी गुण

'प्रसाद जी मनुष्यो और मानवीय भावनाओ के कवि है। शेष प्रकृति यदि उनके लिए चैतन्य है, तो भी मनुष्य सापेक्ष्य है। यह विकास-भूमि यदि सकीर्ण है तो भी मनुष्यता के प्रति तीव्र आकर्षण से भरी हुई है। उनके साहित्य का मनोवैज्ञानिक आधार प्रौढतर भाव-भूमि पर विकसित हुआ है। मानव मन की सूक्ष्म अनुभूतियो को दृष्टिगत कर, अपनी रचनाओ मे उन्हे अभिव्यक्ति प्रदान करने मे 'प्रसाद' जी का गौरव अन्यतम हो जाता है। मनोभावो का उत्थान पतन और परिवर्तन इतनी स्वाभाविक रीति से चित्रित होता है, कि आदि से अन्त तक कही भी कृत्रिमता का दोषारोपण नही किया जा सकता। उनका प्रत्येक पात्र अपने सस्कारो और परिस्थितियो के परिपार्श्व मे अपने मनोभावो को व्यक्त करता है। साथ ही वे उन परिस्थितियो का निर्माण करने मे भी विशेष सफल सिद्ध हुए हैं, जिनके मध्य पात्रो के चरित्राकन, उनके मनोभाव तथा व्यवहार मे किसी प्रकार की कृत्रिमता नही आने पाती। कही भी पाठक को क्यो, क्या और कैसे आदि प्रश्नो के समाधान के लिए रुक कर सोचना नही पडता। ख्याति-प्राप्त उपन्यास-लेखक और कलाकार जैनेन्द्र कुमार के पात्रो से प्रसाद जी के पात्रो की तुलना करने पर यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है। जैनेन्द्र जी के पात्र रहस्यमय, गोपनीय तथा सामान्य समझ से कुछ परे के हैं। उनके मनोभाव अप्रत्याशित—अस्वाभाविक कहना भी अधिक अनुपयुक्त न होगा—रूप से परिवर्तित होकर क्षण-क्षण नई भावभूमि पर कार्य करते, सोचते और व्यवहार करते दृष्टिगोचर होते हैं। मृणालिनी, सुनीता आदि उनके विशिष्ट पात्र इसके उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किए जा सकते हैं। परन्तु प्रसाद जी के किसी भी पात्र मे यह रहस्यमयता नही है। और यदि है भी, जैसा कि हम लैला, फिरोजा, चम्पा, पद्मा, रमला तथा मधूलिका आदि के चरित्रो का अध्ययन करते समय देखेंगे, तो भी वह समझ मे आने लायक है। उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इतना सूक्ष्म, पूर्ण और पुष्ट है कि किसी भी पात्र का कोई भी चारित्रिक पहलू अस्पष्ट नही रह जाता और पाठक की मनोवैज्ञानिक विचारधारा के प्रवाह मे कही भी कोई गतिरोध उत्पन्न नहीं होता।

१—कानन-कुसुम, पृ० ७६-७७।

प्रसाद जी को नारी-मनोविज्ञान के चित्रांकन मे विशेष सफलता प्राप्त हुई है। वे उनके शारीरिक गठन के आधार पर उनके स्थायी गुणो की विवेचना करते हैं। साथ ही विभिन्न वर्गों के अन्तर्गत, विभिन्न परिस्थितियो और वातावरण की पार्श्वभूमियो मे भी उनका नारी-मनोविज्ञान का सूक्ष्म विश्लेषण, मनोविज्ञान-क्षेत्र मे उनकी सिद्ध-हस्तता का प्रमाण उपस्थित करता है। इसी सदर्भ मे कोमल अवयवी नारी के कठोर हो जाने के तथ्य का निरूपण भी, जिसे हम 'कानन-कुसुम' की कविता का उदाहरण देकर उपर्युक्त पक्तियो मे उद्धृत कर आए हैं, पूर्ण सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया गया है। इन्ही तीन भूमिकाओ के अन्तर्गत हम प्रसाद जी के नारी-मनोविज्ञान की विवेचना करेगे।

+ + + +

प्रसाद जी ने नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण विशेष रूप से कथा साहित्य एव उपन्यासो मे किया है। नाटकीय पात्रो मे भी इसकी मात्रा कम नही है। वे नारी स्वभाव मे मूलत. सद्गुणों की अवस्थिति मान कर चले है। उनकी दृष्टि मे नारी प्रकृति से उदार है। दया, त्याग, क्षमा और ममता उसके स्थायी गुण हैं। इन सब गुणो की स्वीकृति प्रसाद-साहित्य मे कई चरित्रो के माध्यम से बार-बार दोहराई गई है। 'सदेह'[१] कहानी की श्यामा रामनिहाल के मन की यह बात जानते हुए भी, कि वह यह जानते हुए भी कि श्यामा विधवा है, उससे प्रेम करने लगा है, उससे उदारता पूर्वक ही व्यवहार करती है। 'ममता'[२] विधर्मी पर दया करते हुए आपत्-काल मे उसकी सहायता करती है। उससे स्नेहसिक्त स्वरो मे कहती है—"आओ भीतर, थके हुए पथिक। तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हे आश्रय देती हू।"[३] 'तितली' की बजो दया से द्रवीभूत होकर ही चौबे की सहायतार्थ उसे अपने कुटीर मे ले आती है[४]। राज्यश्री विकट-घोष जैसे धूर्त और षडयन्त्रकारी पर भी दया दिखाती है। हर्षवर्धन से उसकी मुक्ति की याचना करती हुई वह कहती है—

"आज हम लोगो ने सर्वस्व दान किया है भाई। आज महाव्रत का उद्यापन है। क्या यही एक दान रह जाए—इसे प्राण-दान दो भाई[५]।"

दया के साथ-साथ नारी त्याग और क्षमा के निसर्ग गुणो से भी पूर्ण है।

१—इन्द्रजाल मे सकलित।
२—आकाशदीप मे सकलित।
३—वही, पृ० २१।
४—तितली, पृ० १३-१४।
५—राज्यश्री, पृ० ७४।

वासवी भिक्षुओ की उदर-पूर्ति के निमित्त अपने कंकरण उतार कर उन्हे देती है[1] । मल्लिका क्षमा की साकार मूर्ति के रूप मे अवतरित होती है । वह औदार्य की चरम स्थिति मे क्षमा को ही सब से बडा दण्ड मानती है तथा राष्ट्र-नीति को इसी के अवलम्बन का आशीर्वाद देती है[2]

क्षमाशीलता के अतिरिक्त नारी ममता के आदर्श गुण से भी अभिसिक्त है । प्रत्येक नारी क मन मे अपने शिशु को देखने की उत्कट लालसा होती है । तारा अपने अवैध शिशु को देखकर भी ममतापूर्ण स्नेह और सौहार्द के मध्य मुस्करा देती है[3] । किशोरी निरजन के कारण अपने पुत्र का तिरस्कार कर देती है, किन्तु उसका सहज ममतापूर्ण मातृस्नेह विद्रोह करने लगता है और फिर वह इसी विषय को लेकर निरजन से लड़ती है[4] । यमुना अपने पुत्र मोहन के कारण ही श्रीचन्द के घर नौकरी करती है । यहाँ भी पुत्र-वात्सल्य की भावना प्रमुख है[5] । 'चित्र-मन्दिर की नारी' हरिणो के झुण्ड को सवेदनशील हृदय से निस्पृह देखती हुई शावक को गोद मे उठा लेती है । उसके निरीह नयनो में नारी अपनी छाया देखती है[6] । उसका कोमल हृदय प्रवचना नही जानता[7] । श्रद्धा के मुख से नारी-जीवन की यह ममत्व भावना अमर हो उठी है । पक्षियो के भरे-पूरे नीडो की ओर सकेत करती हुई वह मनु से कहती है—

'उनके घर मे कोलाहल है
मेरा सूना है गुफा-द्वार
तुम को क्या ऐसी कमी रहेगी
जिसके हित जाते अन्य द्वार' (कामायनी, पृ० १४४)

अपने पुत्र के लिए नारी के मन की ममता कितनी तीव्र होती है । 'कामायनी' अपने भावी शिशु के प्रति कल्पना करती है—

'झूले पर उसे झुलाऊँगी
दुलरा कर लूँगी वदन चूम
मेरी छाती से लिपटा इस

१—अजातशत्रु, पृ० ४० ।
२—वही, पृ० १२६ ।
३—ककाल, पृ० ६० ।
४—वही, पृ० १६६ ।
५—वही, पृ० २६५ ।
६—इन्द्रजाल, पृ० ८७ ।
७—स्कन्दगुप्त, पृ० ५६ ।

घाटी मे लेगा सहज घूम

वह आयेगा मृदु मलयज सा
लहराता अपने मसृण बाल
उसके अधरो से फैलेगी
नव-मधुमय स्मित-लतिका प्रवाल (कामायनी, पृ० १३२)

यही ममत्व छलना के इन शब्दो मे भी प्रकट हुई है—'मेरा कुणीक मुझे दे दो, मैं भीख माँगती हू। मैं नही जानती थी कि निसर्ग से इतनी करुणा, इतना स्नेह, सन्तान के लिए इस हृदय मे सचित था। यदि जानती होती तो इस निष्ठुरता का स्वाँग न करती[1]। श्याम दुलारी के कठोर मन मे भी शैला का घटी सा बोलना सुन कर ममता जाग उठती है, क्योकि वह उसके स्वभाव की निसर्गता है, जिसे वह चाह कर भी नही छिपा पाती[2]।

मातृत्व-ममता के साथ-साथ प्रसाद जी ने नारी के सरल करुणामय, भावुक और कोमल स्वभाव के चित्र भी अकित किए है। इन उदार गुणो के परिपार्श्व मे उसका व्यक्तित्व निर्मल और अर्चनीय बन जाता है। देवसेना और कोमा के चरित्र मे नारी मन की सरलता और भावुकता व्यक्त हुई है। ध्रुवस्वामिनी अपने इन शब्दो मे कितनी कोमल बन जाती है—'आह कितनी कठोरता है। मनुष्य के हृदय मे देवता को हटाकर राक्षस कहाँ से घुस जाता है[3]। कार्नेलिया के चरित्र मे भी सरलता की मात्रा कम नही है। कल्पना के सुख-आकाश मे भावना-पूर्ण विचरण और भारत की हरित उपत्यका के मध्य मन भर सो लेने की चाह, जैसे उसके जीवन के दो उद्देश्य हैं।

प्रसाद जी ने नारी-स्वभाव मे करुणा की भावना को विशेष स्थान दिया है। वैसे तो उनके सम्पूर्ण साहित्य मे बौद्ध-दर्शन से अनुप्रेरित करुणा का अजस्र स्रोत प्रवाहित है। परन्तु उनका नारी मन तो जैसे इस करुणा के लिए शान्ति कुटीर बन गया है। 'देवरथ'[4] की सुजाता के चरित्र मे कारुण्य की यह धारा प्रवेगवती हो उठी है। भैरवी होने के कारण वह अपने प्रिय आर्यमित्र से विवाह कर सकने मे असमर्थ है। वह उससे कहती है—

'मेरी वेदना रजनी से भी काली है, और दु.ख समुद्र से भी विस्तृत है। स्मरण है? इसी महोदधि के तट पर बैठ कर, सिकता मे, हम लोग अपना नाम

१—अजातशत्रु, पृ० १११।
२—तितली, पृ० ४३।
३—ध्रुवस्वामिनी, पृ० १४।
४—इन्द्रजाल मे संग्रहीत।

लिखते थे। मिट जाने दो हृदय की सिकता से प्रेम का नाम । आर्यमित्र इस रजनी के अन्धकार मे उसे विलीन हो जाने दो[1]।

'स्वर्ग के खण्डहर' की मीना भी इसी करुणा को स्वर देती है—

'मैं एक भटकी हुई बुलबुल हू। मुझे किसी टूटी डाल पर अन्धकार बिता लेने दो। इस रजनी विश्राम का मूल्य—अन्तिम तान सुना कर जाऊँगी[2]।' जहाँनारा का चरित्र भी इसी करुणा से प्लावित होकर अपने जीवन की दिशा बदल देता है[3]। 'ककाल' की यमुना का चरित्र आरम्भ से अन्त तक करुणार्द्र है। अपने प्रणय मे असफल हो, वह विजय द्वारा प्रस्तावित होने पर केवल दया की पात्री एक बहन होना चाहती है[4]। कृष्ण मोहन द्वारा त्यक्त कर दिए जाने पर माधुरी का अधिकार और वैभव का दर्प, महान् करुणा की छाया मे विश्राम लेने लगता है। अब वह शैला को अपना आत्मीय समझ कर उससे सब कुछ कह देती है[5]। अग्निमित्र द्वारा अपने प्रणय को अस्वीकार कर दिए जाने पर कालिन्दी स्वय को अपमानित समझती है—

'उसके नेत्र आरक्तिम हो उठे। परन्तु रमणी के नेत्र। उनमे अधिक ताप होते ही जल-बिन्दु दिखलाई पडे[6]।'

भावना से पूर्ण मणिमाला अपने स्वभाव मे करुण भी कम नही है। एक स्थान पर वह अपने भाई से कहती है—

'भाई, इसी से कहती हू कि माँ की गोद मे सिर रख कर रोने को जी चाहता है। मैं स्त्री हू, प्रकट मे रो सकूँगी[7]।'

कामना के चरित्र मे भी इसी करुणा का निदर्शन हुआ है—परन्तु विलास, देखो, यह हरी-भरी घास रक्त से रगी जाकर भयानक हो उठी है। यहाँ का पवन भाराक्रान्त होकर दबे पाव चलने लगा है[8]।' 'कामायनी' की इडा मे भी यही भावना मुखर हुई है—

'मैं आज अकिंचन पाती हू
अपने को नही सुहाती हू

१—इन्द्रजाल, पृ० ११५।
२—आकाशदीप, पृ० ४४।
३—छाया मे सग्रहीत 'जहाँनारा' कहानी देखिये।
४—ककाल, पृ० १११।
५—तितली, पृ० १४४।
६—इरावती, पृ० ५६।
७—जनमेजय का नाग-यज्ञ, पृ० ४७।
८—कामना, पृ० ३४।

दो क्षमा, न दो अपना विराग
सोई चेतना, उठे जाग

(कामायनी, पृ० २४०)

नारी-स्वभाव की यह करुणा भावुकता और कोमलता से परिपुष्ट होकर विस्तार पाती है। कामना का करुण चित्र पिछली पक्तियो मे उपस्थित किया जा चुका है। यह करुणा उसकी भावना के मध्य से ही उद्भूत हुई है। एक स्थान पर वह कहती है—

'ये मुरझाए फूल, उह, कलिया चुनो, उन्हे गूँथो और सजाओ, तब कही पहनो। ले, इन्हे रूठने मे भी देर नही लगती[1]।' इसी प्रकार 'विशाख' की चन्द्रलेखा' प्रणय की पृष्ठभूमि मे भावनामय बन जाती है—

'हाँ! प्रेम का विकास और विपत्ति का परिहास साथ ही साथ दोनो उबल पडे, हृदय मे विपत्ति की दारुण ज्वाला जल रही थी, इसी मे प्रणय सुधाकर ने शीतलता की वर्षा की, मरुभूमि लहलहा उठी[2]।'

प्रसाद ने नारी स्वभाव के अन्तर्गत भय को अधिक महत्व नही दिया है। चन्द्रलेखा के स्वभाव मे ही चैत्य मे दीप के बुझने तथा उसकी आड मे बैठे हुए भिक्षु की आवाज और गर्जना सुनने के कारण ही उसको भय-त्रस्त दिखाया यगा है[3]।

प्रसाद जी ने ध्रुवस्वामिनी के स्वभाव मे नारी की सहनशीलता के महान् गुण को अधिष्ठित किया है। वह भरसक रामगुप्त के अत्याचारो का विरोध करती है। 'यमुना' जैसे जीवन के कठोर आघातो को सहने के लिए ही उत्पन्न हुई है। तितली भी इसी कोटि मे ली जा सकती है। देवसेना के जीवन का उत्तर भाग सहनशीलता का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करता है।

सहनशीलता की इस कठिन अग्नि-परीक्षा के साथ-साथ उसके स्वभाव का एक अन्यतम गुण एकनिष्ठा भी है। प्रसाद की पात्रिया इस कसौटी मे शत-प्रतिशत खरी उतरती हैं। अनन्त देवी, विजया, दामिनी आदि के चरित्र इस कसौटी की असफलता के रूप मे देखे जा सकते हैं। एकनिष्ठा के इस स्थायी गुण का विवेचन अगले पृष्ठो मे प्रेम-प्रसग की विवेचना करते समय किया जायगा।

एकनिष्ठा की भाँति ही प्रसाद ने नारी स्वभाव मे समर्पण के गुण का अधिष्ठान किया है। उनके मत मे नारी पुरुष मे पौरुष देखने की अभिलाषिणी होती है। वह वासना के वशीभूत होकर पुरुष पर समर्पित नही होती। शकराज के प्रति

१—कामना, पृ० ३, देखिये पृ० १ भी।

२—विशाख, पृ० ३९।

३—वही, पृ० ६७।

कामा का यह कथन कितना खोजपूर्ण है—

'प्रेम का नाम न लो । वह एक पीडा थी जो छूट गई।''' मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्वमयी पुरुष मूर्ति की पुजारिन थी, जिसमे पृथ्वी पर अपने पैरो से खडे रहने की दृढता थी । इस स्वार्थ मलिन कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं[१] ।' इसी प्रकार सुवासिनी विलास-जीवन के विरुद्ध राक्षस को समर्पित होना चाहती है—'नही प्रिय ! मैं तुम्हारी अनुचरी हू । मैं नन्द की विलास लीला का क्षुद्र उपकरण नही बनना चाहती[२] ।' कामनी भी पुरुष की तेजस्विता के सम्मुख ही झुकती है—

'हैं ! यह कौन ? मैं क्यो झुकी जा रही हू । और सर पर इसके क्या चमक रहा है, जो इसे बडा प्रभावशाली बनाए है[३] ।'

श्रद्धा भी मनु के पौरुष पर ही समर्पित होती है और उसके विश्वास पर अपना सर्वस्व दे दिया चाहती है—

'सर्वस्व समर्पण करने की
विश्वास महा तरु छाया मे
चुपचाप पड़ी रहने की, क्यो
ममता जगती है माया मे ।'

—कामायनी पृ० १०४

कार्नेलिया के प्रेम का आलम्बन भी 'शृंगार और रौद्र का सगम' चन्द्रगुप्त बनता है। वह उसके तेज, पौरुष, साहस तथा सौजन्यपूर्ण व्यवहार पर अनुरक्त है । इस प्रकार से नारी सदैव ही समर्पित होने से पूर्व पुरुष की शक्ति का अन्दाज लगा लेती है और उसे अपने अनुकूल पाकर वह अपनी सम्पूर्ण एकनिष्ठा के साथ उस पर समर्पित हो जाती है, अपने पर वश नही रख पाती। श्रद्धा के शब्दो मे—

'मैं जभी तौलने का करती
उपचार, स्वय तुल जाती हू
भुज लता फंसा कर नर तरु से
झूले से झौंके खाती हूं।'

—कामायनी . पृष्ठ ५६

समर्पण के उपरान्त नारी मे लज्जा का आविर्भाव भी एक स्वाभाविक गुण

१—ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४५ ।

२—चन्द्रगुप्त, पृ० ७० ।

३—कामना, पृ० ६।

है । मनु को समर्पित होकर श्रद्धा अपनी सुकुमारता के भार से लज्जापूर्वक झुक जाती है—

'झुक चली सव्रीड वह सुकुमारता के भार
लद गई पाकर पुरुष का नर्ममय उपचार ।'

—कामायनी . पृ० ६४

पुरुष का ससर्ग नारी मे एक महान् परिवर्तन की सृष्टि करता है । मन की डाली 'फल भरता के डर मे' जैसे झुक जाती है—

पुलकित कदम्ब की माला सी
पहना देती अन्तर मे
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फल भरता के डर मे

—कामायनी : पृ० ६८

भविष्य-कल्पना और सुरक्षा नारी-स्वभाव के दो महत्वपूर्ण बिन्दु है । वह अपने सुखद भविष्य की कल्पना मे सतोष और सामजस्य की स्थापना करते हुए जीवन का सरलता पूर्वक निर्वाह कर लेने का स्वप्न देखती है । 'परिवर्तन' (कहानी) की बूटी अपने प्रिय नीलधर के विषय मे मालती को बतलाती हुई कहती है—

'फिर हम ऊचे पहाड़ पर अपने गाव मे चले जाए गे । वही हम लोगो का घर बसेगा । खेती कर लू गी । बाल-बच्चो के लिए भी तो कुछ चाहिये । फिर बुढापे के लिए, जो इन पहाडो मे कष्टपूर्ण जीवन-यात्रा के लिए अत्यन्त आवश्यक है[1] ।

'चूड़ीवाली'[2] की विलासिनी भी विजय कृष्ण को पाकर कुलबधू बनने की अभिलाषा मे अपना भविष्य निश्चिन्त कर लेना चाहती है । 'श्रद्धा'[3] के समर्पण मे भी इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है ।

भविष्य को सुरक्षा के साथ साथ उसमे सतोषी, सरल और कलह शून्य जीवन बिताने की मधुर कामना होती है । वासवी का स्वभाव ऐसे ही सतोष की कामना से परिपूर्ण है । वह छोटे से उपवन मे जीवन-निर्वाह करके अपने नाथ की सेवा मे ही सबसे बड़ा सतोष मान लेना चाहती है । बिम्बसार से वह कहती है—

'भगवन् ! हम लोगो के लिए तो एक छोटा सा उपवन पर्याप्त है । मैं वही नाथ के साथ रह कर सेवा कर सकू गी'[4] । चन्द्रलेखा के कथन मे भी नारी स्वभाव

१—इन्द्रजाल पृ० ४६ ।
२—आकाशदीप मे सकलित ।
३—कामायनी की नायिका ।
४—अजातशत्रु पृ० ३२ ।

की यही संतोष भावना प्रतिलक्षित होती है। वह महापिंगल से कहती है—

'मेरी इस झोपडी मे राज मन्दिर से कही बढ़ कर आनन्द है। हमारे नर-पति के सुर-राज्य मे हम लोगो को कानन मे भी सुख है।'

—विशाख, पृष्ठ ५८

इस सतोष की पृष्ठ भूमि मे वह अपनी गृहस्थी को हरा-भरा, फला-फूला देखना चाहती है। यह उसके स्नेहमय, मधुर ममतापूर्ण स्वभाव के कारण ही है। तितली ने समस्त अभावो के बीच मधुवन की छाया मे अपनी गृहस्थी की जडो मे सेवा और त्याग का पानी देकर उसे हरा-भरा बनाया है। शैला उसकी उस सुखद गृहस्थी को देख कर मन ही मन अपनी गृहस्थी की कल्पना करती है। तितली की गृहस्थी मे जैसे उसे अपने मन की भावना का साकार रूप दिखाई पड़ता है[१]।

नारी-स्वभाव मे सामजस्य की प्रवृत्ति विशेष रूप से निहित होती है। इसी प्रवृत्ति के कारण कौटुम्बिक एव सामाजिक व्यवस्था मे एक सतुलन बना रहता है। प्रसाद जी ने सामजस्य की इस प्रवृत्ति को विशेष महत्व प्रदान किया है। प्रसाद जी ने इस भावना को माला की मा के चरित्र मे स्पष्ट किया है। मिरजा और माला की माँ दो विरोधी शिविरो से सम्बन्ध रखते हुए भी सामजस्य के कारण सरल जीवन का निर्वाह करते हैं। माला की मा के इन शब्दो मे —

'यौवन की पहली ऋतु हम लोगो के लिए जगली उपहार लेकर आई। मन मे नवाबी का नशा और माता की सरल सीख। इधर गूजर पति की कठोर दिन-चर्या। एक विचित्र सम्मेलन था। फिर भी मै अपना जीवन बिताने लगी हू[२]।' उसकी सामजस्य प्रवृति स्पष्ट हो जाती है।

ध्रुवस्वामिनी भी इसी सामजस्य स्थापना के प्रयत्न मे अपने को कितना झुका देती है. —

'राजा! आज मैं शरण की प्रार्थिनी हू। मैं स्वीकार करती हू कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नही हुई, किन्तु मेरा वह अहकार चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी होकर रहूगी[३]।'

इसी प्रकार श्रद्धा का उत्तर-जीवन भी सामजस्य का सदेश देता दिखाई पड़ता है। इसी आदर्श की स्थापना के प्रयत्न मे वह सब कुछ देकर भी कुछ लिया नही चाहती—

१—तितली, पृष्ठ १६७।

२—ककाल, पृष्ठ २१४।

३—ध्रुव-स्वामिनी, पृष्ठ ?६।

'विनिमय प्राणो का वह कितना, भय सकुल व्यापार अरे।
देना हो जितना, दे दे तू, लेना! कोई यह न करे।'

—कामायनी, पृ० १७८

उसके समर्पण और उत्सर्ग की भावना भी इसी सामजस्य की स्थापना का प्रच्छन्न संदेश देती है।

इस अर्पण मे कुछ और नही
केवल उत्सर्ग छलकता है।
मैं दे दू और न फिर कुछ लू ।
इतना ही सरल झलकता है।

—कामायनी, पृष्ठ १०५।

प्राणी मात्र के प्रति दया की भावना, नारी स्वभाव का एक विशिष्ठ अ श है। जाव-धर्म की रक्षा मे वह प्रकृति से ही कर्तव्यपरायण एव तत्पर रही है। पद्मावती लुब्धक से इसी भावना के अन्तर्गत कहती है :—

'निरीह जीवों को पकड कर निर्दयता सिखाने मे सहायक न होना[1]।'

'कामायनी' की श्रद्धा मे यह भावना पूर्ण विकसित दिखलाई पडती है। वह मनु की मृगया-प्रवृत्ति का अनुमोदन नही करती। जीव-मात्र के प्रति उसके मन मे अगाध-ममता वर्तमान है। वह उनके जीने के अधिकार को नही छीन लेना चाहती।

पर जो निरीह जीकर भी कुछ
उपकारी होने मे समर्थ
वे क्यो न जिए, उपयोगी बन
इसका मैं समझ सकी न अर्थ।

—कामायनी, पृष्ठ १४६।

नारी-स्वभाव के इन स्थायी गुणो के साथ साथ प्रसाद जी के सूक्ष्म विश्लेषण ने उनकी प्रवृत्ति मे और भी कुछ विशिष्ठ गुणो की अवस्थिति मानी है। प्रसाद-साहित्य में नियतिवाद का स्वर वहुत ऊचा है। उनके स्त्री-पुरुष सभी पात्र इस विश्वास से आविभूत है। प्रसाद जी नारी की प्रवृति मे भी भाग्यवादिता के इस गुण को विशिष्ठ मानते हैं।' 'आकाशदीप' की चम्पा के इन स्वरो मे कि 'मै अपने अदृष्ठ को अदृष्ट ही रहने दू गी'[2] नियति वाद का स्वर मुखरित होता है। 'विशाख' की

१—अजातशत्रु, पृष्ठ २४।
१—आकाशदीप पृष्ठ ६।

चन्द्रलेखा भाग्य और भगवान के भरोसे ही विषम परिस्थितियो का सामना करने को प्रस्तुत है[1] । ध्रुवस्वामिनी मे भी जीवन की प्रतिकूलता से ऊब कर यही भाग्यवादी प्रवृति विकसित होती दिखाई देती है ।

'तो जाने दो, छिपी हुई बातो से मैं घबडा उठी हू । हा, मैंने उन्हे देखा था, वह विनम्र प्राची का बाल अरुण । आह ! राज चक्र सबको पीसता है, पिसने दो, हम निस्सहायो को और दुर्बलो को पिसने दो[2] ।'

अपनी विषम नियति, पराजय और विवशता के क्षणो मे नारी निराश भी बहुत शीघ्र हो जाती है । यमुना अपने दुखी जीवन की दयनीयता मे एक स्थान पर लतिका से कहती है :—

'बहुतो का दिन कभी न लौटने के लिए चला जाता है । विशेष कर स्त्रियो का । मेरी रानी ! जब मैं स्त्रियो के ऊपर दया दिखाने का उत्साह पुरुषो मे देखती हू तो जैसे कट जाती हू ।'

—कंकाल, पृष्ठ २७५

प्रसाद जी की नारी यदि नियतिवादिता और विवशता के प्रसग मे इतनी दयनीय और करुण है तो वह इसकी क्षति-पूर्ति उसके स्वभाव मे पूर्ण आत्म-सम्मान की भावना का निरूपण करके कर देते है । उनकी अधिकाँश नारी पात्रियो मे स्वाभिमान की इस भावना का सन्निवेश उच्चतर और स्वस्थ स्तर पर हुआ है । 'पुरस्कार' की मधूलिका आत्म-सम्मान की तेजस्विता मे राजा का अनुदान ग्रहण नही करती । अरुण के प्रणय को भी पहली बार इसी लिए तिरस्कृत कर देती है । 'भिखारिन' की किशोरी बालिका अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए निर्मल द्वारा उससे विवाह की बात कह दिये जाने पर उसे फटकार बतलाती हुई कहती है :—

'दो दिन मागने पर भी तुम लोगो से एक पैसा तो देते नही बना, फिर गाली क्यो देते हो बाबू[3] ?' प्रेम-प्रसग मे नारी का आत्म-सम्मान अपनी समस्त तेजस्विता लेकर प्रस्फुटित हुआ है । वह अपने प्रेम का अपमान किसी भी दशा मे सह सकने के योग्य नही है । 'दासी' कहानी की इरावती के चरित्र मे उस भावना का विकास मिलता है :—

'मेरे दुखी होने पर जो मेरे साथ रोने आता है । उसे मैं अपना मित्र नही मान सकती फिरोजा ! मैं तो देखूगी कि वह मेरे दुख को कितना कम कर सकता है । मुझे दुख सहने के लिए जो छोड जाता है, केवल अपने अभिमान और आशका के लिए मेरे दुःख मे हाथ बढाने का जिसका साहस नही, जो मेरी परिस्थिति मे साथी

१— विशाख, पृष्ठ ७४ ।

२—ध्रुवस्वामिनी, पृष्ठ १४ ।

३—आकाशदीप, पृष्ठ ७३ ।

नही बन सकता, जो पहले अमीर बनना चाहता है, फिर अपने प्रेम का दान करना चाहता है, वह मुझसे हृदय मागे, इससे बढ कर दृष्टता और क्या होगी[१] ।'

नारी अपनी विषम परिस्थितियो से लडना स्वीकार कर सकती है परन्तु दूसरे के महत्वपूर्ण प्रदर्शन के सम्मुख अपनी लघुता बता कर अपने आत्म-सम्मान को छोटा नही करना चहती । तितली मधुवन के वियोग मे जीवन के वैषम्य की मार सहते हुए भी इन्द्र देव की दया-पात्री नहीं बनना चाहती । वह शैला को बताती है:—

'वे (इन्द्रदेव) कुछ करते भी, इसका मुझे विश्वास है, परन्तु मैने यही समझा कि मुझे दूसरो के महत्व प्रदर्शन के सामने अपनी लघुता न दिखानी चाहिए । मुझे अपनी शक्तियो पर अवलम्ब करके ससार से लडना अच्छा लगा[२] '

इसी प्रकार देवसेना अपने एकनिष्ट प्रणय का मूल्य देकर अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करती है । स्कन्दगुप्त द्वारा प्रस्ताव किये जाने पर कहती है—

'परन्तु क्षमा हो सम्राट् ! उस समय आप विजया का स्वप्न देखते थे । अब प्रतिदान लेकर मै उस महत्व को कलकित न करूगी । मैं आजीवन दासी बनी रहूगी, लेकिन आपके प्राप्य मे भाग्य न लूगी[३] ।

आत्माभिमान का यही तेज वासवी के स्वभाव मे भी प्रकट हुआ है । मगध साम्राज्य की वैषम्यपूर्ण प्रवचना की स्थिति मे वह चिन्तित विम्बसार को धैर्य देती हुई कहती है—

'काशी का राज्य मुझे, मेरे पिता ने आचल मे दिया है । उसकी आय आपके हाथ मे आनी चाहिए, और मगध साम्राज्य की एक कौडी भी आप न छुए[४] ।'

इसी प्रकार अश्वसेन की विषय लोलुपता देख कर दामिनी नैतिक पतन की राह पर गिरते गिरते भी अपने सम्मान की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाती है । वह दर्पपूर्ण स्वर मे उसे रोकते हुए कहती है—

'हटो, अश्वसेन ! मेरा मानस कलुषित हो चुका है, पर अभी तक मेरा शरीर पवित्र है । उसे दूषित न होने दूगी[५] ।'

मनु द्वारा श्रद्धा त्याग के बाद, जब वह स्वप्न मे अतीत की स्मृतियो का लेखा जोडती-घटाती है, तो अपने निठुर प्रिय की जय को वह अपनी पराजय स्वीकार

१—आंधी, पृष्ठ ५६ ।

२—तितली, पृष्ठ २३५-२३६ ।

३—स्कन्द गुप्त, पृष्ठ १४० ।

४—अजातशत्रु, पृष्ठ ३७ ।

५—जनमेजय का नाग-यज्ञ, पृष्ठ ६० ।

नही करती। यहा भी उसके आत्म-सम्मान का उन्मेष हुआ है। अब वह इस प्रकार सोचती है—

'विस्मृत हो वे बीती बाते, अब जिन मे कुछ सार नही,
वह जलती छाती न रही, अब वैसा शीतल प्यार नही।
सब अतीत मे लीन हो चली, आशा मधु-अभिलाषाए ।
प्रिय की निष्ठुर विजय हुई, पर यह तो मेरी हार नही।

—कामायनी, पृष्ठ १७७

यही आत्म-गौरव की भावना 'चित्राधार' की गन्धर्व कुमारी उर्वशी मे प्रकट हुई है। पुरुरवा द्वारा अपने विषय मे पूछे जाने पर वह अपना परिचय देते हुए आगे बतलाती है—

'राजन्! क्या मैं सामान्य नर्तकी होने योग्य हू ? क्या मैं दूसरो के विलास की सामग्री बनूगी ? क्या मेरे हृदय मे अपना कुछ नही है[1]।'

पूर्व-पृष्ठो मे हम कह आए है कि नारी मे पूर्ण समर्पण की भावना निसर्ग से होती है। इसी समर्पण से वह अपना भविष्य भी निश्चित कर लेना चाहती है। इसके साथ ही साथ इसी से सम्बन्धित उसके स्वभाव का एक महत्वपूर्ण अग प्रतिदान की भावना है। वह अपना सर्वस्व देकर बदले मे वही वस्तु अपने लिए भी लिया चाहती है। प्रसाद जी की आदर्श पात्रियो को छोड कर यह प्रतिदान की भावना उनके बहुत से चरित्रो मे मुखरित हुई है। 'प्रसाद' कहानी की सरला देव-मन्दिर मे पुजापा चढा कर प्रतिदान की भावना से ही देर तक प्रतीक्षा करती है। उसके अपने ही शब्दो मे 'प्रसाद की आशा ने, शुभ कामना के बदले की लिप्सा ने मुझे छोटा बना कर अभी तक रोके रखा।'

—प्रतिध्वनि, पृष्ठ ६

कालिन्दी इसी प्रतिदान का अनुग्रह अग्निमित्र से करती है—

'मैं तुम्हे······केवल तुम्हारी सहायता इस ससार के सुख-दुख मे चाहती हू। कालिन्दी को और कुछ नही चाहिए। देखो, मगध का साम्राज्य तुम्हारा होगा, और तुम मेरे, केवल मेरे हो जाओ।'

—इरावती, पृष्ठ ६५

इसी तरह श्रद्धा के समर्पण मे भी ग्रहण का भाव निहित है—

१—चित्राधार, पृष्ठ १४।

'था समर्पण मे ग्रहण का एक सुनिहित भाव,
थी प्रगति, पर अडा रहता था सतत अटकाव।'

—कामायनी, पृष्ठ ८१।

और जब उसे अपनी सेवा, समर्पण तथा अपरिमित विश्वास का प्रतिदान उसी रूप और उसी अनुपात मे नही मिलता, तब उसका मन क्षुब्ध होकर कह उठता है—

'जिस के हृदय सदा समीप है,
वही दूर जाता है।
और क्रोध होता उस पर ही,
जिससे कुछ नाता है।'

—कामायनी, पृष्ठ १७६।

और इसी लिए नारी मे अधिकार-भावना का दर्प विकास पाता है। अनवरी द्वारा शैला के प्रति माधुरी के मन मे ईर्ष्या का भाव उत्पन्न कर दिये जाने पर, माधुरी अपने लोभी मन के कारण, अधिकार च्युत होने की आशका मे, अधिकार-प्राप्ति के लिए और भी प्रयत्नशील होती है। वह जानती है कि उसके गौरव की ऊषा शैला की चादनी मे फीकी पड़ेगी, जिसकी दृढ सम्भावना थी भी; इसीलिए अपने अधिकारो को अक्षुण्ण बनाये रखने के निमित्त वह युद्ध के लिए तत्पर होती है[1]। जय माला, मधूलिका आदि के चरित्रो मे भी वह भावना बहुत ही प्रच्छन्न रूप से प्रकट होती है।

आत्म-समर्पण, आत्म-सम्मान, प्रतिदान और अधिकार-भावना के साथ-साथ नारी-मनोविज्ञान का एक तथ्य और स्पष्ट होता है। वह कभी भी अपनी उपेक्षा सहन नही कर सकती। देवसेना के साथ बहुत कुछ यही हुआ है। विजया के प्रति स्कन्द-गुप्त के आकर्षण ने देवसेना के मन मे दुराव की एक रेखा खीच दी है, इसमे किसी भी प्रकार का सदेह नही किया जा सकता। भले ही प्रणय का विवाह मे परिवर्तन न होने का कारण अन्य रहा हो। इसी प्रकार 'गाला' नए को प्यार करती रही है। लेकिन नए की अपने प्रति उपेक्षा इसे सह्य नही है। बदन के द्वारा उससे विवाह का प्रस्ताव किये जाने पर वह उसी समय विवाह-सम्बन्ध की आवश्यकता का अनुभव करने लगती है। परन्तु नए की उपेक्षा के कारण वह बदन से रोकर केवल इतना ही कह पाती है—

'आप मुझे अपमानित कर रहे हैं। मैं अपने यहा पले हुए मनुष्य से कभी विवाह न करूगी।'

१—तितली पृ० ४७।

नारी के मन मे सुखी जीवन के प्रति बडा मोहक स्वप्न सजा होता है, और इसीलिये वह वैभव की ओर आकर्षित होती है। चम्पा और बेला के चरित्रो मे यही भावना अभिव्यक्त हुई है। लेकिन सच्चे प्रणय के सम्मुख वे कभी भी वैभव को महत्व नही देती। मन की बात को वाह्य आचरण से छिपा रखना भी नारी-स्वभाव की एक विशेषता है। किशोरी को यमुना की धार्मिक प्रक्रिया सह्य न थी, क्योकि धर्म का ढोंग करते हुए भी वह स्वभाव से धार्मिक न थी[1]। यह भावना ध्रुवस्वामिनी द्वारा चन्द्रगुप्त को कहे गये इन शब्दो मे और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है—

'तुम्हारे उपकार और स्नेह की वर्षा से मै भीगी जा रही हू। ओह! इस वक्षस्थल मे दो हृदय हैं क्या? जब अन्तरग 'हाँ' करना चाहता है, तब ऊपरी मन 'ना' क्यो कहला देता है[2]।'

नारी का मन विश्लेषण प्रधान होता है। किसी भी वस्तु को करने के पूर्व या उपरान्त वह एकान्त के क्षणो मे बैठ कर उसका विश्लेषण करना आरम्भ कर देती है। किशोरी निरजन के आकर्षण मे बैठी हुई श्रीचन्द के साथ न जाकर हरिद्वार मे ही ठहर जाती है, और फिर श्रीचन्द के चले जाने के बाद अपने ठहर जाने के औचित्य पर विचार-विश्लेषण करती है[3]। माला बच्चो को शिक्षित करना आरम्भ करने के बाद अपने पिता की आज्ञा न मानने और उनकी उपेक्षा करने की बात को बार बार सोचती है[4]।

विश्लेषण प्रवृति के समानान्तर उसमे अतीत का हिसाब-किताब खोल कर बैठ जाने का भी स्वभावगत संस्कार होता है। प्रसाद ने अतीत-घटनाओ का विश्लेषण करने की इस प्रवृत्ति को नारी मनोविज्ञान का विशेष अ श माना है। 'गुण्डा'[5] कहानी की राजमाता पन्ना विधवा हो जाने के पश्चात् भी किशोरावस्था मे नन्हकू सिंह से भेंट होने के परिणाम स्वरूप दूर की एक सम्भावना पर विचार करने लगती है। 'नूरी' अपने प्रेमी याकूब खा को देखकर १८ वर्ष पूर्व की एक घटना के विषय मे सोचना आरम्भ कर देती है—

'आज जीवन का क्या रूप होता? आशा से भरी ससार यात्रा किस सुन्दर विश्राम-स्थल मे पहुचती? अब तक ससार के कितने सुन्दर रहस्य फूलो की तरह अपनी पखुरियाँ खोल चुके होते[6]।'

१—ककाल' पृष्ठ १०१।
२—ध्रुवस्वामिनी, पृष्ठ ३२।
३—ककाल, पृष्ठ १७।
४—ककाल, पृष्ठ २५८।
५—इन्द्रजाल मे सग्रहीत।
६—इन्द्रजाल, पृष्ठ ४४।

इसी प्रकार 'आकाशदीप' की चम्पा बुद्धगुप्त के वैभव की प्राचीरो से मुक्त होने की कामना ले कर उससे कहती है—'मुझे इस बन्दीगृह से मुक्त करो। मुझे उन दिनो की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी, और चम्पा के उपकूल मे पुण्य लाद कर हम सुखी जीवन बिताते थे[१]।

'ककाल' की लतिका भी बाथम द्वारा त्यक्त हो जाने पर अपनी कल्पना मे अपने अतीत का लेखा उपस्थित करती है। यमुना, घटी सभी मे यह निसर्ग प्रवृति वर्तमान है। अन्धेरे शून्य मे घटी अपने अतीत क्षणो की स्मृति करती है[२]। शैला भी शेरकोट के खण्डहर मे रामजस और मधुवन के साथ चलते-चलते अपने अतीत की स्मृति मे भूल जाती है[३]। राजकुमारी गगा के शीतल जल मे खडी अपनी विगत घटनाओ का स्वप्न देखती है[४]। और इसी प्रकार इरावती सोचती है—

'वेत्रवती का किनारा। माता के दाह-कार्य के उपरान्त उसका अकेले शरद सन्ध्या मे बैठना। अग्निमित्र का आना। सान्त्वना। फिर उसका आना-जाना बद। वह विदिशा का कुल पुत्र। वह पथ की भिखारिणी, आदि आदि[५]।'

यही भावना असत् कार्य-व्यापारो मे दूर तक चली जाने वाली नारी-पात्रो के स्वभाव मे भी व्यक्त की गई है। मागन्धी जीवन की सध्या मे अपनी असफलता पर क्षुब्ध अपने अतीत की स्मृति करती है। ठीक इसी प्रकार 'प्रलय की छाया' की कमला आत्म-ग्लानि के सबसे निकृष्ट प्रहर मे अपने अतीत की स्मृति-रेखाओ का जाल बुनती-बिछाती दिखाई पडती है—

पागल हुई मैं अपनी ही मृदु गन्ध मे
कस्तूरी मृग जैसी
गुर्जरेश पावडे बिछाते रहे पलको के
तिरते थे
मेरी अगडाइयो की लहरो मे।

वह सुल्तान को जलाना चाहती थी, इसीलिए जीवित रही थी। उसने सोचा था—

पद्मिनी जली थी स्वय, किन्तु मैं जलाऊँगी
वह दावानल ज्वाला—
जिसमे सुल्तान जले।

१—आकाशदीप, पृष्ठ ८।
२—ककाल, पृष्ठ १८७-१८८।
३—तितली, पृष्ठ ६६।
४—तितली, पृष्ठ ८५-८६।
५—इरावती, पृष्ठ ३८।

परन्तु रूप वैभव और ऐश्वर्य की चकाचौंध मे वह पति का प्रतिशोध लेना भूल कर भारतेश्वरी का पद प्राप्त करना चाहने लगी—

'रूप ने बनाया मुझे रानी गुजरात की
वही रूप आज मुझे प्रेरित था करता
भारतेश्वरी का पद लेने को[1]।'

और अन्त मे अपनी असफलता के क्षण मे वह अतीत की इस घटना का स्मरण कर, आत्म-ग्लानि की दावा मे दग्ध होती है।

नारी स्वभाव की अन्य महत्वपूर्ण विशेषताओ मे अन्तर्संघर्ष की प्रवृत्ति मुख्य है। अन्तर्संघर्ष का मूल-सम्बन्ध मन के अस्थैर्य्य अथवा चाचल्य से होता है। प्रसाद जी ने नारी की चचल प्रवृत्ति का निदर्शन और अन्तर्संघर्ष दोनो को नारी स्वभाव का स्थायी गुण माना है। विजया, श्यामा, दामिनी आदि के चरित्रों मे चचलता की मात्रा प्रचुर है। अन्तर्संघर्ष की प्रौढ भावना चम्पा के स्वभाव मे अकित हुई है। एक ओर वह बुद्धगुप्त को प्यार करती है, क्योकि वह उसका प्रेमी है, दूसरी ओर वह उससे घृणा करती है, क्योकि उसे यह शका है कि यही उसके पिता का हत्यारा है। अत: उसके मस्तिष्क मे बुद्धगुप्त के प्रति घृणा और प्यार की भाव-धाराए साथ साथ बहती हैं। वह कहती है—

'मेरा पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण जलदस्यु! हट जाओ। विश्वास? कदापि नही, बुद्धगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नही कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहू? मैं तुम्हे घृणा करती हू, फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हू। अन्धेर है जलदस्यु! तुम्हे प्यार करती हू।[2]

इसी प्रकार 'पुरस्कार' की मधूलिका के मन मे प्रेम और कर्तव्य को लेकर द्वन्द्व मचता है। एक बार वह अरुण के प्रणय को ठुकरा देती है, लेकिन दूसरी बार उसी के लिए वह देश तक से विश्वासघात करने के लिये तैयार हो जाती है।' आँधी की लैला मनोभावो के इस सघर्ष का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। श्रीनाथ ने उसे उसके प्रिय रामेश्वर के विषय मे एक दिन कोई सुन्दर बात कह कर सुख दिया है, बस इसी लिये वह श्रीनाथ को क्षमा किये रहती है। रामेश्वर की पत्नी के विषय को लेकर भी उसमे अन्तर्संघर्ष का भयावह स्वरूप खडा होता है। वास्तव मे वह भी नारी का एक मनोवैज्ञानिक पहलू है कि वह कभी भी अपने से प्यार करने वाले को उपेक्षा की आखो से नही देख पा सकती। इस पहलू को हम 'प्रणय प्रसग' के अन्तर्गत अधिक विस्तार से देखेंगे।

१—'लहर' मे सग्रहीत।

२—आकाशदीप, पृष्ठ ६, ११।

प्रसाद जी ने नारी-स्वभाव मे स्पष्ट विरोध के अभाव को भी लक्ष्य किया है। उनकी धारणा है कि नारी कभी भी स्पष्ट विरोध नही करती। किशोरी के स्वभाव मे यह गुण कई प्रसगो मे व्यक्त हुआ है। इसी प्रकार 'तितली' की नन्द रानी मे भी यह प्रवृत्ति प्रकट हुई है। मुकुन्द लाल इन्द्रदेव से छोटे बगले को नन्दरानी के नाम लिखाने की बात कहते है। नन्दरानी इसे सुनती है, लेकिन प्रतिवाद करना चाह कर भी वह कुछ नही कह पाती। नारी मे वस्तुओ को जानने, उनसे परिचय प्राप्त करने की भी उत्सुकता होती है। श्रद्धा के शब्दो मे उसकी यह प्रवृत्ति व्यक्त हुई है।

'भरा था मन मे उत्साह
सीख लू ललित कला का ज्ञान,
. ...
दृष्टि जाती जब हिम-गिरि ओर
प्रश्न करता मन अधिक अधीर
धरा की यह सिकुडन भयभीत
आह कैसी है क्या है पीर,

—कामायनी, पृष्ठ ५१

इसी प्रकार बजो प्रथम परिचय मे ही शैला का परिचय प्राप्त करने की उत्कृष्ट अभिलाषिनी हो उठती है। अनवरी शैला को 'दृष्टि विनिमय से ही पहचान लेना चाहती है।[१]

नारी का स्वभाव अपने पर प्रेम करने तथा आत्म-प्रशसा सुनने का भी होता है। अपने 'स्व' पर प्रेम करने का स्वभाव जयमाला के इन शब्दो मे व्यक्त हुआ है—

'विश्व प्रेम, सर्वभूत हित कामना परम धर्म है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि अपने पर प्रेम न हो। इस अपने ने क्या अन्याय किया है कि इसका बहिष्कार हो।'

—स्कन्द गुप्त, पृष्ठ ७२

इस सदर्भ मे नारी के आत्म प्रशसा सम्बन्धी स्वभाव के विषय मे भी एक उद्धरण दे देना आवश्यक हो जाता है। यह गुण उनकी सबलता नही, वरन् दुर्बलता का भाव प्रकट करता है। अपनी प्रशंसा के सम्मुख नारी सदैव ही नत-सिर होती आई है। 'सिकन्दर की शपथ' कहानी मे सिकन्दर सरदार का बध करके सरदार पत्नी के सम्मुख उपस्थित होता है। सिकन्दर को अपने पति का हत्यारा जान कर, प्रतिशोध के प्रण मे वह अपने हाथ मे चमकता छुरा ले लेती है। लेकिन तभी घुटनों के बल बैठ कर सिकन्दर कहता है'—

१—तितली, पृष्ठ १४-१५।

वाक्य मे कि 'दिखला दूंगी, स्त्रिया क्या कर सकती है।' रूप का दर्प और वासना भाव का ही प्राधान्य है।

नारी-स्वभाव का एक प्रधान गुण है, व्यग्य के माध्यम अपने मनोभावो की अभिव्यक्ति करना। 'भिखारिन' कहानी की किशोरी भिखारिन के द्वारा निर्मल को दिये गए उलाहने मे यह भावना प्रतिलक्षित है। 'देवदासी' की पद्मा के इन शब्दो मे व्यंग्य का भाव करुणाद्र होकर व्यक्त हुआ है—

'मन्दिर के दर्शन करने वालो का मनोरजन करना मेरा कर्तव्य है। मैं देवदासी हू।'

—आकाशदीप, पृष्ठ ८७

'प्रतिध्वनि[१]' कहानी मे तारा के प्रति उसकी ननद का व्यग्य कितना कटु है—

'अरे भैया रे, किसका पाप किसको खा गया रे।'

'कलावती' की शिक्षा[२] मे भी चीनी पुतली को सिखाते हुए कलावती वास्तव मे अपने पति को सुनाती है। इसी प्रकार से अनन्त देवी भी देवकी को उलाहना भरे स्वरो मे कहती है :—

'क्यो देवकी! राजसिंहासन लेने की स्पर्धा क्या हुई ?'

— स्कन्दगुप्त, पृ० ६७

ईर्ष्या और प्रतिशोध की भावना का भी नारी-मनोविज्ञान से निकट का सम्बन्ध है। 'स्वर्ग के खण्डहर' मे बहार और गुल को साथ-साथ तैरता देखकर मीना मे ईर्ष्या-भाव का उदय होता है, और वह हताश हो धीरे-धीरे तैरने लगती है[३]। तारा की चाची तारा को सुखी नही देखना चाहती, इसीलिए मगल से तारा की वर्ण-संकरता के विषय मे बतला कर उसका मन तारा के प्रति वितृष्णा से भर देती है[४]। लतिका घटी के हाथ मे बाथम की अगूठी देखकर, उसके निकट से चली जाती है[५]। तितली की शान्त, सरल गृहस्थी से शैला को ईर्ष्या होती है। वह सोचती है—

'यह गवार लडकी! अपनी वास्तविक स्थिति मे कितनी सरलता से निर्वाह कर रही है। सो भी पूरी स्वतन्त्रता के साथ। और मैं, मैंने अपना जीवन, थोड़ा-सा

१—आकाशदीप में सग्रहीत।
२—प्रतिध्वनि, मे सग्रहीत।
३—आकाशदीप, पृ० २८।
४—ककाल, पृ० ५२।
५—वही, पृ० १४१।

काल्पनिक सुख पाने के लिए जैसे बेच दिया।'

—तितली, पृ० २४१

इसी प्रकार—स्कन्दगुप्त विजया को आसक्ति की आँखो से देखता है। देवसेना स्कन्दगुप्त को इस प्रकार देखता हुआ देख लेती है। ईर्ष्या की एक हल्की सी जाली जैसे उस पर छा जाती है। वह अपने आप से कहती है—

'आह! जिसकी मुझे आशका थी, वही हुआ। विजया! आज तू हारकर भी जीत गई।'

—स्कन्दगुप्त, पृ० ८३

छलना का मन वासवी के प्रति ईर्ष्या-भाव से उत्तप्त है। इसी कारण उसके चरित्र के सभी उदात्त गुण विच्छिन्न हो गये से दिखाई पडते हैं।

इस प्रकार जीवन के सभी क्षेत्रो एव व्यापारो मे नारी-मन की ईर्ष्या-भावना की अभिव्यक्ति होती है। चाहे वह सामाजिक समादर का ही प्रश्न हो अथवा वैभव का प्रसग। परन्तु इस भावना का विकास प्रणय के क्षेत्र मे अधिक होता है, जैसा कि हम उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट कर आए हैं।

ईर्ष्या की इस भावना के साथ-साथ नारी-स्वभाव मे प्रतिशोध का एक गुण विशेष भी होता है। अपमान की ज्वाला मे वह प्रतिकार किए बिना सन्तुष्ट नही रह सकती। बहूजी द्वारा अपमानित होने पर 'चूडीवाली' विजयकृष्ण को 'घायल' कर देती है[1]। भले ही उसके लिए उसे विपथगामिनी क्यो न बनना पडा हो। 'चन्दा'[2] मे यही प्रतिशोध की भावना प्रबल रूप से व्यक्त की गई है। उसके प्रिय तथा पति हीरा को रामू की क्रूरता के कारण बाघ की लडाई मे अपने प्राणों की बलि देनी पड़ती है। चन्दा इसी का बदला लेने के लिए जीवित रहती है। वह अपना सुख आश्रय छीनने वाले को कभी भी क्षमा नही कर सकती। इसी प्रकार 'सुरमा' भी जनमेजय से अपमानित होकर उग्र बन जाती है। विजया के चरित्र में भी यही भावना विशिष्ट है। 'प्रतिध्वनि' की तारा ने रामा की मृत्यु के उपरान्त भी उसकी बेटी श्यामा तक से प्रतिशोध लिया परन्तु अन्त मे उसके प्रतिशोध भाव का यह कलुष उसके प्रायश्चित की निर्मल भाव-धारा मे बह जाता है, और इस स्थल पर वह पुनः अपने सम्मान के उच्च शीर्ष को प्राप्त कर लेती है। प्रसाद जी ने नारी स्वभाव के इस उदात्त स्थायी स्वरूप की प्रतिष्ठा कर नारी के शील, सौजन्य और सदाचार की रक्षा की है।

नारी स्वभाव मे प्रायश्चित का गुण भी उतना ही विशिष्ट है जितना प्रति-

---

१—आकाशदीप, पृ० ११७।

२—छाया, मे सग्रहीत।

शोध का। उसे शान्ति और सन्तुलन के क्षणो मे अपने किये पर पश्चात्ताप होता है और उसी क्षण उसमे निसर्ग उदार भावना जन्म लेती है। प्रसाद जी ने अपने बहुत से चरित्रो के माध्यम से उक्त तथ्य की पुष्टि की है। वासना, आकाक्षा और वैभव-दर्प की उद्दाम भावना मे बहने वाली विजया अपनी असफलता के क्षणो मे स्वय से कहती है—

'स्नेहमयी देवसेना का शका से तिरस्कार किया। मिलते हुए स्वर्ग को घमड से तुच्छ समझा। देवतुल्य स्कन्दगुप्त से विरोध किया, किसलिए ? केवल अपना रूप, धन और यौवन दूसरे को दान करके उन्हे नीचा दिखाने के लिए। स्वार्थपूर्ण मनुष्यो की प्रतारणा मे पडकर खो दिया, इस लोक का सुख, उस लोक की शान्ति। ओह!'

—स्कन्दगुप्त, पृ० १११

ऐसी ही ग्लानि उसे अनन्तदेवी से प्रताडित होने पर होती है—

'मै कही की न रही''' 'दुर्बल रमणी हृदय'' '''यह मन का विष, यह बदलने वाले हृदय की क्षुद्रता है। ओह!'

—स्कन्दगुप्त, पृ० ११०

छलना देवदत्त के प्रवचनापूर्ण व्यवहार को समझ कर अपने प्रति ग्लानि से भर जाती है। देवदत्त की उपेक्षा करती हुई वह कहती है—

'तेरी प्रवचना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई। पुत्र बन्दी होकर विदेश चला गया और पति को स्वय मैंने बन्दी बनाया।'

—अजातशत्रु, पृ० १०६

और इन पश्चात्ताप के क्षणो मे वह वासवी से दया और अपने पुत्र के प्राणों की भीख मागती है। श्यामा (मागधी) मल्लिका के निर्मूल उदार देवत्वपूर्ण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर स्वय ही अपनी प्रतारणा करती है—

'जिसे काल्पनिक देवत्व कहते हैं, वही तो मनुष्यता है। मागन्धी धिक्कार है तुझे।'

—अजातशत्रु, पृ० १२१

इसी प्रकार शक्तिमती राजकुमार को उपेक्षित करने की अपनी भूल पर पश्चात्ताप करती हुई मल्लिका से क्षमा-याचना करती है—

'वह मेरी भूल थी देवी! वह बर्बरता का उद्रेक था। पाशव-वृत्ति की उत्तेजना थी।'

—अजातशत्रु, पृ० १२६

वह प्रसेनजित से भी क्षमा-याचना करती है—'वह मेरा ही अपराध था

आर्य ! क्या उसके लिए क्षमा नही मिलेगी ? मैं अपने कृत्यो पर पश्चात्ताप करती हू। अब मेरी सेवा मुझे मिले, उससे मैं वचित न होऊ, यही मेरी प्रार्थना है।'

—अजातशत्रु, पृ० १२८

सत्पथ की अनुगामिनी होकर दामिनी भी वेद से पश्चात्ताप भरे स्वरो मे कहती है—'वह मेरा भ्रम था, परन्तु हृदय से नही, आप अपनी स्वाभाविक कृपा से पूछ देखिए। वही मुझे क्षमा कर देगी। मेरा और कौन है।'

—जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ७१

वपुष्टमा के इन शब्दो मे भी यही पश्चात्ताप प्रकट हुआ है—

'बहन सुरमा, मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हारा बडा अनादर किया था। आज मुझे तुम्हारे सामने आँख उठाते लज्जा आती है।'

—वही, पृ० ६६

ममता भी प्रायश्चित करती है—

'भाई, मुझसे क्या चाहते हो ? क्या मैं उत्तेजना की एक सामग्री नहीं हू।'

—वही, पृ० ६८

आकाक्षा और अतृप्ति के लम्बे पथ पर चलते-चलते जब कामना थक सी जाती है, तो वह स्वय अपने अपराध का दण्ड स्वीकार कर लेती है—

'अपने हाथो जो विडम्बना मोल ली है, उसका प्रतिफल कौन भोगेगा ?'

—कामना, पृ० ७३

सुरमा भी इसी आकाक्षा के पथ पर रुक कर सोचती है—

'राज्यश्री को देखती हू तो मुझे अपना स्थान सूचित होता है, पता चलता है कि मैं कहाँ हू।'

—राज्यश्री, पृ० ७१

इडा को अन्त मे यही प्रायश्चित करना पडता है। कमला[१] भी इसी आत्म-ग्लानि की ज्वाला मे दग्ध होती है। उसके इन स्वरो में कितनी दयनीयता है—

'आज सोचती हू, जैसे पद्मिनी थी कहती—
अनुकरण कर मेरा
—समझ सकी न मैं।'

—लहर, पृ० ६७

नारी-स्वभाव की प्रायश्चित प्रवृत्ति के अश को उठा कर प्रसादजी ने नारी-मनोविज्ञान के इस तथ्य की ओर सकेत किया है कि नारी को अपने असत् व्यवहार

१—प्रलय की छाया (कविता), की पात्री।

या कठोरता पर कभी भी अभिमान नही होता। अपने दुर्व्यवहार अथवा अनीतिपूर्ण आचरण के लिए वह सदैव ही लज्जित रही है। परिस्थितिवश, भले ही उसका सद् स्वरूप कुछ क्षण के लिए आकाक्षा अथवा तीव्र लालसा के आवेश मे बहुत पीछे छूट जाय, लेकिन उससे उसका साथ सदा-सदा के लिए छूट गया हो, ऐसा नही है। उपर्युक्त उद्धरणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है। इसी प्रसग मे एक और उद्धरण मातृगुप्त की प्रेयसी मालिनी का दिया जा सकता है, जो अवगुठन मे उसके सम्मुख उपस्थित की जाती है। समाज मान्य अपने अनैतिक आचरण के कारण वह मातृगुप्त के सम्मुख अपने मुख का आवरण उठा सकने का साहस भी नही करती। दयनीय होकर वह मातृगुप्त से कहती है—

नही, मातृगुप्त मैं ही हू। अवगुठन केवल इसीलिए था कि मैं तुम्हे मुख नही दिखा सकती थी।'

—स्कन्दगुप्त, पृ० ११७

: ३ :

नारी-मनोविज्ञान : विभिन्न वर्गो मे

सामान्य रूप से नारी-मनोविज्ञान के आधार पर उसके स्थायी गुणो का विवेचन उपर्युक्त पक्तियो से किया जा चुका है। किन्तु विभिन्न परिस्थितियो और वातावरण मे नारी की मनोवैज्ञानिक धारणाओ मे परिवर्तन होते रहते हैं। इसीलिए विभिन्न वर्गो मे नारी-स्वभाव मे भी अन्तर होता है। प्रसाद जी ने अपनी कहानियो, उपन्यासो और नाटको मे इस अन्तर को काफी स्पष्ट किया है। मोटे तौर से हम कह सकते है कि उनकी कहानियो मे सामान्य वर्गीय नारी-स्वभाव का चित्रण मुख्य रूप से हुआ है। उपन्यासो मे मध्य-वर्गीय नारी को ले सकते है तथा नाटको मे उच्च वर्गीय नारी को अधिक अभिव्यक्ति मिली है। लेकिन इस विभाजन के द्वारा कोई सुनिश्चित रेखा नही खीच दी गई है। उपन्यासो मे भी उच्च और सामान्य वर्गीय नारी-स्वभाव का चित्रण मिलता है। नाटको मे सामान्य और मध्य वर्गीय नारी के चित्र भी अकित हुए हैं और इसी प्रकार कहानियो मे भी मध्य-वर्गीय नारियाँ विद्यमान हैं।

सामान्य वर्गीय नारी मे विचार-पक्ष की अपेक्षा भाव-पक्ष की प्रबलता होती है। उसके द्वारा रूढिगत आदर्शों का पोषण होता है। अन्ध-विश्वास उसके स्वभाव का स्थायी गुण है। इसके साथ-साथ वह अपेक्षाकृत स्वतन्त्र भी होती है। नारी मे व्यग्य की जिस भावना की बात हम पिछले पृष्ठो में कह आए हैं, सामान्य-वर्गीय नारी मे साधारणतया उसका अभाव होता है। वह अधिक स्पष्टवादिनी होती है। नूरी, लैला, चम्पा तथा मधूलिका के स्वभाव इस सन्दर्भ मे देखे जा सकते हैं। इस

वर्ग की नारी का मनोवैज्ञानिक विकास दृढ धारणाओं तक ही सीमित होता है। अविद्या और स्वस्थ विस्तृत वातावरण का अभाव उसके कारण हो सकते हैं। इस वर्ग की नारियो मे वैभव के प्रति एक सहज आकर्षण होता है। परन्तु सच्चे प्रणय और स्वस्थ हृदय के आदान-प्रदान के सम्मुख इस नारी के लिए सभी कुछ तुच्छ है। विलासिनी[1] का चरित्र इस बात की सफल पुष्टि कर देता है। इस वर्ग की नारी के स्वभाव की अनन्य विशेषता उत्कट आत्म-सम्मान की भावना है। उपर्युक्त सामान्य विवेचना मे इस सदर्भ मे कई उद्धरण दिए जा चुके हैं। प्रणय, कर्त्तव्य और व्यवहार वह कही भी आत्मसम्मान को खोकर, कुछ भी प्राप्त नही किया चाहती। बेला भिखारिन, मधूलिका, चम्पा, चन्दा आदि के स्वभाव इसी आत्म-सम्मान की भावना के प्रतीक है। और इन सबसे विशेष 'गुदडी मे लाल' की निर्बल बुढिया पात्री है, जो अपनी असहाय और दयनीय परिस्थितियो मे भी काम करके ही पैसा प्राप्त करना चाहती है। वह सोचती है—

मैं बिना किसी काम के किए इनका पैसा कैसे लूगी। क्या यह भीख नही?'

—प्रतिध्वनि, पृष्ठ १५।

वह अपनी कोठरी मे अपने एक मात्र सचित धन आत्म-सम्मान की पोटली को अपनी कोख मे दबाए केवल यही सोचती है—

'जीवन भर के वचित आत्म-धन को एक मुट्ठी अन्न की भिक्षा पर बेच देना होगा? असह्य।'

—प्रतिध्वनि, पृष्ठ १६।

मध्यवर्गीय नारी-मनोविज्ञान का चित्रण प्रसाद साहित्य मे अधिक मात्रा मे नही हुआ है। जितना हुआ है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामाजिक स्वीकृति के अभाव मे उसे स्वतन्त्र भाव-भूमि पर विचार विनिमय करने के अवसर नही मिले हैं। अत भावनाओ के दमन के कारण उसमे बहुत सी कुठाए प्रवेश कर गई हैं। व्यग्य, ईर्ष्या, स्वय को धिक्कारने की प्रवृत्ति, सकीर्णता, अन्धविश्वास, भाग्यवादिता तथा पश्चाताप उसके स्वभाव के मुख्य अग बन कर रहे हैं। 'परिवर्तन' मे मालती का यही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। उसे अपने पर रोष आता है। काम बिगाडती है, दूसरो पर दोषारोपण करती है। स्वय को धिक्कारती है और ईर्ष्यावश अपने पति चन्द्र देव को किसी दूसरे का नही होने देना चाहती। 'ककाल' की किशोरी, 'तितली' की राजकुमारी तथा 'प्रतिध्वनि' कहानी की नन्द और तारा आदि के चरित्र भी इसी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को पुष्ट करते हैं।

प्रसाद जी सुवर्ण अतीत के कलाकार कहे जाते हैं। अतीत का गौरव उप-

१—चूडीवाली, कहानी की पात्री।

स्थित करने में उन्होने साम्राज्यो, सिहासनो तथा सम्राटो के परिपार्श्व की सहायता ली है। साथ ही साम्राज्ञियो तथा उच्च वर्गीय महिषियो के चरित्र भी आलोक मे लाए गये हैं। उन्ही के आधार पर उच्च वर्गीय नारी के मनोभावो एव व्यवहार मे उदार और उदात्त कल्पना के साथ साथ दर्प-भाव, आत्म-सम्मान, समानाधिकार का भाव, प्रबल 'ईर्ष्या तथा शिक्षा और विस्तीर्ण स्थली पर व्यवहार करने के कारण तर्कवादिता की भावना प्रबल है। इस प्रकार यदि सत् रूप में मल्लिका, देव सेना, पद्मावती, वासवी, मालविका, जयमाला, देवकी, कार्नेलिया, सुवासिनी आदि के उदार मनोभावो को अभिव्यक्ति मिली है, तो दूसरी ओर छलना, शक्तिमती, विजया, अनत देवी, दामिनी, लालसा आदि की असत् दिशा मे विकसित मनोवैज्ञानिक दृष्टि की ओर भी लेखक ने सकेत किया है।

विभिन्न वर्गों एव परिस्थितियो मे नारी-मनोविज्ञान का उद्घाटन करने के साथ साथ प्रसाद जी यह भी बतलाते चले है कि स्थायी सत्-गुणो से रहित नारी कभी भी किसी क्षेत्र मे सफल नही हो सकी है। यह उनकी आदर्श-स्थापना की दिशा मे महत्वपूर्ण सत्प्रयास है।

प्रणय प्रसग और असाधारण मनोविज्ञान

प्रसाद जी के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने नारी-स्वभाव के प्रणय-प्रसगो सम्बन्धी मनोभावो के विषय मे कुछ नवीन रहस्यो का उद्घाटन किया है। वे इस प्रकार से हैं:—

प्रसाद जी यह मानकर चलते हैं कि (१) नारी के लिये प्रणय का महत्व सबसे अधिक है। (२) प्रणय के लिए वह सभी कुछ त्याग कर सकती है। (३) उसके प्रणय मे एकनिष्ठा की भावना प्रबल होती है। (४) अपने प्रणय तथा सम्मान के प्रति प्रवचना किए जाने पर वह कोमल अवयवा दुर्वह कठोर हो जाती है। यह प्रसाद जी के विश्लेषण का मुख्य अश है। (५) वह सभी अवस्थाओ मे दुलार की प्रत्याशा करती है। (६) अपने को प्रेम करने वाले को वह कभी नही भूल पाती। (७) विशेष अवस्थाओ मे वह कर्त्तव्य के लिए प्रणय की उपेक्षा भी सहन कर लेती है, लेकिन स्नेह की मीठी टीस को कभी भी भूल नही पाती। तथा (८) इसी प्रणय की पीठिका मे कभी-कभी उसके मनोभावो की असामान्यता भी प्रकट होती है।

नारी अपने जीवन मे प्रणय को मुख्य स्थान देकर चलती है। देवसेना, विजया, सुवासिनी, मालविका और 'दासी' कहानी की इरावती के लिए प्रेम की भावना ही प्रमुख है। बलराज जब इरावती से अधिक महत्व धन को देकर उसे दु:ख सहने के लिए छोड जाता है, तो वह इसे सहन नही कर पाती। 'मालविका' अपने प्रणय के मौन आदर्श पर ही अपने प्राणो की बलि दे देती है। विजया प्रणय के लिए

जीवन भर भटकती है। देवसना स्कन्दगुप्त के प्रति प्रणय भाव को अपने सगीत का नि:श्वासो मे भर कर जीवन के दिन काट चलती है। सुवासिनी का प्रणय, राक्षस की अमूल्य धरोहर है। वह उसे कही भी खडित नही होने देती। अपने प्रणय के भावातिरेक मे वह सभी कुछ त्याग करने के लिए तत्पर रहती है। 'इन्द्रजाल' की बेला के लिए ठाकुर का ऐश्वर्य छोडने क्षण भर की भी देर नही करती। विजया स्कन्दगुप्त का प्रणय प्राप्त करने के लिए अपने अपार वैभव को उसकी सहायतार्थ दे देने मे अपना मान समझती है। मधूलिका प्रणय के लिए राष्ट्र की विरोधिनी बनती है। लैला[1] इसी प्रणय की भावना के प्रवाह मे अपने टोली के लोगो की उपेक्षा करती है। प्रसाद जी ने इसी प्रणय प्रसग मे उत्सर्ग और दान की भावना को यो व्यक्त किया है—

'पागल रे, वह मिलता है कब
उस को तो, देते ही है सब'

—लहर, पृष्ठ ३७।

'इस एकान्त सृजन मे कोई
कुछ बाधा मत डालो
जो कुछ अपने सुन्दर से है
दे देने दो इन को'

—लहर, पृष्ठ ४४-४५

नारी का प्रणय त्याग का नही, वरन् एकनिष्ठा का उच्चतम आदर्श भी प्रस्तुत करता है। 'इन्द्रजाल' की बेला भूरे और ठाकुर के पास रहती हुई भी अपने प्रिय गोली को नही भूल पाती। और अवसर आने पर अन्त मे उसी को समर्पित होती है। सुवामिनी, देव सेना, मालविका, मधूलिका, नूरी तथा विलासिनी आदि सभी प्रणय-पात्राओ मे यही एकनिष्ठा की भावना लक्षित होती है। 'ककाल' की गाला की माँ मे भी यह भाव अपने अनन्य रूप मे प्रकट हुआ है। मिरजा गाला की मा को गर्भ देकर चला जाता है, फिर भी गाला की मा केवल उसी के प्रति एकनिष्ठ रहती है। आपत्तिकाल मे जब मिरजा गाला की मा से अप्रत्याशित रूप से मिलता है तब भी गाला की मा उसकी सेवा सुश्रुषा कर अपनी निष्ठा को बनाए रखती है। अपराधी[2] की वन-पालिका के स्वभाव मे भी प्रणय की यही अनन्यता प्रकट हुई है। यमुना[3] भी मगल को समर्पित होकर उसे नही भूल पाती, भले ही उसने यमुना के प्रति अन्याय किया हो।

नारी स्वभाव से ही दुलार की प्रत्याशिनी होती हैं। वह चाहती है कि कोई उसे स्नेह करने वाला हो, उसे अपना कहने वाला हो, उसके मन की सुनने वाला

'१—आँधी' कहानी की पात्री।
२—आकाशदीप, मे सग्रहीत।
३—ककाल की पात्री।

हो। और इस दिशा मे सोचने के लिए अवस्था, परिस्थिति और वातावरण का कोई बन्धन, कोई सीमा निर्धारण नही होता । राजकुमारी के जीवन मध्यान्ह मे चौबे का प्रवेश होता है। चौबे उसे स्नेह दिया चाहता है। राजकुमारी अपनी निसर्ग भावना के प्रतिकूल क्या कर सकती है ? दुलार का प्रत्याशी निर्मल हृदय दिन प्रति-दिन सहज स्निग्धता और सहानुभूति के प्रवाह मे एक दूसरे के निकट आने लगता है। अब उसकी झोपडी मे प्रसाधन की सामग्री भी दिखाई पडने लगी है। कही छोटा सा दर्पण, तो कही तेल की शीशी ।[1] और इस प्रकार वह चिकने पथ पर फिसल रही रही होती है।

इसी दुलार की कामना के साथ साथ नारी अपने प्रेमी को कभी भी नही भूल पाती। यह दूसरी बात है कि वह उसका प्रणय स्वीकार करे या न करे, परन्तु अपने प्रेमी के प्रति उसके हृदय का एक कोना कोमल हो ही जाता है। इस निसर्ग प्रवृति का त्याग उसके सामर्थ्य के बाहर की वस्तु है। 'रसिया बालम[2]' राजकुमारी से प्रेम करता है, और उसी के लिए वह अपने प्राणो का त्याग भी कर देता है। हालाकि यह प्रेम एकागी है, परन्तु फिर भी, राजकुमारी उसके इस प्राण त्याग की उपेक्षा या अवहेलना नही कर सकी है, और उसके मन मे 'रसिया बालम' के प्रति एक श्रद्धा-सिक्त स्नेह भावना का उदय हो ही जाता है। इसी प्रकार से 'देवदासी' की पद्मा को प्राप्त करने के लिए राम स्वामी को अपने प्राणो का उत्सर्ग करना पडता है। पद्मा अशोक से प्यार करती है, पर अशोक द्वारा राम स्वामी की हत्या कर दिये जाने पर वह राम स्वामी को नही भूल पाती, केवल इसीलिए कि राम स्वामी ने उसके लिए—केवल उसके प्रणय के लिए अपने प्राणो की बलि दी है। उर्वशी का शैशव सहचर केयूरक उर्वशी के लिए अपने प्राणो की बाजी लगा कर पुरुरवा द्वारा आहत होता है। उस समय पुरुरवा की प्रेयसी बनी हुई भी वह उससे कहती है—

'एक दिन मैं इसे चाहती थी। आज यह तुम्हारे हाथो से आहत हुआ है तो मैं क्या इसकी थोडी सी भी सुश्रुषा नही कर सकती ? सैकडो बार इसने मेरे लिए अपने प्राणो की बाजी लगा दी है।'

—चित्राधार, पृष्ठ २१।

वास्तव मे नारी यह नही सोच पाती, कि जिस पुरुष ने उसके लिए प्राणों की बाजी लगा दी हो, उसे वह क्यो न प्यार करे।

कभी कभी प्रसाद जी की नारी को अपने आत्म-सम्मान और कर्तव्य-निर्वाह के लिए प्रणय के त्याग का आदर्श भी प्रस्तुत करना पड़ता है। परन्तु इस के लिए प्रणय भाव की हत्या नही करनी पडी है। बस, हृदय के किसी प्रशान्त कोने मे उसे छिपा कर सुरक्षित रख देना पडा है। सुवासिनी राक्षस के प्रणय को लेकर अपनी

१—तितली, पृष्ठ १५३।

२—छाया मे सग्रहीत।

विवशता और निरीहता के दिनो को काटे चलती है। वह केवल राक्षस की ही है, और उसे ही अपना मानती है। इतने पर भी बिछडे हुए पिता को अप्रत्याशित रूप से पाकर, उनकी दयनीय दया से करुणाद्र हो, राक्षस द्वारा विवाह की बात कही जाने पर उससे कहती है—

'मैं तुम्हारा प्रणय अस्वीकार नही करती, किन्तु अब इसका प्रस्ताव पिता जी से करो। मेरे चिर दु खी पिता। राक्षस, तुम वासना से उत्तेजित हो, तुम नही देख रहे हो कि सामने एक जुडता हुआ घायल हृदय बिछुड जाएगा। एक पवित्र कल्पना सहज ही नष्ट हो जाएगी।

—चन्द्रगुप्त, पृ ठ १७८।

यही से प्रणय प्रसगो मे प्रसाद जी द्वारा खोजी हुई नारी की कोमल प्रवृति मे कठोरता का सन्निवेश होता है। जिसका सस्थान प्रसाद जी के अपने सूक्ष्म दृष्टिकोण की उपलब्धि है। चन्द्रगुप्त की 'कल्याणी' चन्द्रगुप्त को प्यार करती है। लेकिन चन्द्रगुप्त उसके पिता का विरोधी है, इसीलिए—पिता के आत्म-सम्मान के लिए, उनकी आत्मा की शान्ति के लिए, वह उस प्रणय को—प्रेम की पीडा को—पैरो से कुचल कर, दबा कर खडी रहती है।[1] 'आकाशदीप' की चम्पा, 'बुद्ध गुप्त' से प्यार करते हुए भी इसी शका के कारण कि वह उसके पिता का हत्यारा है, उसका वरण नही करती। इसी पितृ-सम्मान की रक्षा के लिए कोमा शकराज के प्रणय-प्रस्ताव को स्वीकार नही करती। मधूलिका अपने स्वर्गीय पिता के प्रति राजा के विश्वास को नही तोडना चाहती। देश-सेवक सिहमित्र की कन्या होकर वह किस प्रकार अपने देश के साथ विश्वासघात कर सकती है। इसीलिए अरुण को मन-प्राण से चाह कर भी वह उसे बन्दी बनाने की साधन बनती है।

नारी-स्वभाव की कठोरता का यह भाव विशेष रूप से दो प्रसगो को लेकर व्यक्त हुआ है। १—प्रणय प्रसगो मे, २—आत्म-सम्मान की रक्षा के क्षेत्र मे।

बाल-विधवा मगला[2] अपनी असहाय दशा मे छवि नाथ की सेविका सी बन कर अपना कर्तव्य निर्वाह करती है। उसका सुख साधन बनती है। परन्तु अपने पूर्व-परिचित मुरली के अकस्मात् मिल जाने से वह छवि नाथ से उसके दुर्व्यवहार एव अत्याचारो का प्रतिशोध लेने के लिए इतनी कठोर हो जाती है कि उसकी हत्या करने के प्रयत्न से भी नही चूकती। 'देवरथ' की सुजाता आर्य मित्र की वाग्दता भावी पत्नी है। वह उसी के लिए भिक्षु बनता है। सुजाता भी आर्य मित्र को अपनी पूर्ण निष्ठा के साथ चाहती है, परन्तु पारिवारिक पवित्र बन्धनो को तोड कर वह मुक्ति, निर्वाण और शान्ति की मरीचिका—बौद्ध सघ मे भिक्षुणी का स्वरूप लेकर भैरवी का जीवन बिता रही होती है, तो अब वह किस प्रकार कुल-

१—'चन्द्रगुप्त', पृष्ठ १७६।

२—'चित्रवाले पत्थर', कहानी की नायिका।

वधू बने । आर्य मित्र से वह पूछती है—कि वह अमूल्य उपहार—जो स्त्रिया, कुल वधूए अपने पति के चरणो मे समर्पित करती है, वह कहा से लाएगी । 'वह वरमाला जिसमे दुर्गा सदृश कौमार्य हरा-भरा रहता है, जिसमे मधूक कुसुम सा हृदय-रस भरा हो, कैसे, कहा से तुम्हे पहना सकू गी ?'

—इन्द्रजाल, पृष्ठ ११४ ।

और इसी अछूते उपहार के अभाव मे वह आर्य मित्र को पति-रूप मे स्वीकार नही करती । लेकिन आर्य-मित्र के बिना उसके जीवन का अभाव पूर्ण नही हो सकता इसलिये वह मृत्यु का आलिगन करती है।

—इन्द्रजाल, पृष्ठ ११७ ।

'आकाशदीप' की चम्पा उद्दाम भावना से युक्त है। वह बुद्धगुप्त को प्यार करते हुए भी, उसके द्वारा विवाह का प्रसग उठाए जाने पर कठोर हो उठती है।

'चुप रहो, महानाविक ! क्या मुझे निस्सहाय और कगाल जानकर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा ।

—आकाशदीप, पृष्ठ १३ ।

उसके मन मे पिता के प्रति उत्पन्न ममता, बुद्ध गुप्त के प्रणय को सदैव पराजित करती है । उसने पिता की स्मृति को सजोय रखने के लिए अपने 'स्व', सौख्य और भविष्य का बलिदान कर दिया, कठोर बन कर ।

'आधी' कहानी की पात्री लैला अबोध गति से चलने वाली निर्झरणी है । अब वह यह जानती है कि जिसे वह प्यार करती है, वह भी उसे प्यार करता है, तो जैसे उसकी आँखो से स्वर्ग हसने लगता है ।[1]

परन्तु वह अपने प्रणय के साथ खिलवाड़ करना नही सह सकती । वह ऐसे अवसरो पर आधी से भी अधिक वेगवती और भयानक हो उठती है । श्रीनाथ से वह कहती है—'ऐ तुम झूठे ! दगाबाज !' और यह कहती हुई वह अपनी छुरी की तरफ देखती हुई दात पीसने लगी ।' वह आगे भी कहती है—

'तुम भूल सकते हो, मै नही । मैं खून करूगी ' ओह नही, तुम्हारा नही । तुमने एक दिन मुझे सबसे बडा आराम दिया है। हो, वह झूठा । तुमने अच्छा नही किया तो भी मै तुमको अपना दोस्त समझती हू ।'

—आँधी, पृष्ठ २४ ।

अपनी निष्ठा को टूटते देख कर नारी हमेशा भयकर हो जाती है । लैला के मनोभाव इसी दिशा मे व्यक्त हुए हैं । 'पुरस्कार' की मधूलिका पहली बार अरुण के प्रणय-प्रस्ताव को अपनी निर्धनता पर व्यग्य समझ कर ठुकरा देती है । और दूसरी बार अपने देश की रक्षा के निमित्त । प्रणय की भावना से अभिसिक्त, अपने व्यवहार मे निर्मल मधूलिका का चरित्र परिस्थितियो के चक्र मे कठोर बन गया है ।

१—आधी, पृष्ठ १० ।

प्रणय वंचिता रमणी के मनोभाव विजया के इन शब्दो मे स्पष्ट मुखरित हुए हैं—

'प्रणय-वंचिता स्त्रियां अपने राह के रोड़े-विघ्नों को दूर करने के लिए वज्र से भी दृढ होती है। हृदय को छीन लेने वाली स्त्री के प्रति हृत सर्वस्वा रमणी पहाड़ी नदियों से भी भयानक, ज्वाला-मुखी के विस्फोट से वीभत्स और प्रलय की अनल शिखा से भी लहरदार होती है।'

-- स्कन्दगुप्त पृष्ठ १०६।

मागन्धी के स्वभाव मे भी गौतम को पा सकने की असफलता मे यही कठोरता प्रतिलक्षित हुई है। दूसरे अवसर पर शैलेन्द्र द्वारा उसके एकनिष्ठ प्रेम के प्रति की गई प्रवंचना से यह क्षुब्ध हो उठती है, और मल्लिका के सम्मुख उसकी प्रताड़ना करती हुई कहती है—

'हा, शैलेन्द्र। तुम्हारी नीचता का प्रत्यक्ष उदाहरण मैं अभी जीवित हूं। निर्दय! चाँडाल के समान क्रूर कर्म तुमने किया। ओह, जिसके लिए मैंने अपना सब छोड़ दिया, अपने वैभव पर ठोकर लगा दी, उसका ऐसा आचरण! प्रतिहिंसा और पश्चाताप से सारा शरीर भस्म हो रहा है।'

—अजातशत्रु पृष्ठ १२०

यही प्रतिहिंसा 'चन्दा' कहानी की पात्री मे लक्षित होती है। अपने प्रिय का कल्याण और निधन करने वाले को यह क्षमा नही कर सकती। वह उससे प्रतिशोध लेकर ही शान्त होती है।

नारी स्वभाव मे उपर्युक्त कठोर भावना का आरोपण प्रसाद जी के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित है। 'आंसू' के नायक स्वयं प्रसाद हैं। उस नायक के जीवन मे प्रभूत सुख और सौन्दर्य-राशि को लिए हुए कोई प्रेयसी आती है। कुछ क्षणो की धूम-धाम के उपरान्त वह नायक को छोड कर चली जाती है। प्रसाद जी का नायक एक ओर उसके मृदुल स्वभाव, औदार्य और अप्रतिम सौन्दर्य की ओर देखता है, और दूसरी ओर स्वयं को छले जाने की कठोरता को। उनके मनोवैज्ञानिक विकास के मूल मे यह घटना विशेष चिन्ह और धारणा छोड जाती है। और इसी लिए इसी आधार पर उन्होंने नारी स्वभाव के चित्रण की स्थापना की है।

प्रेम-प्रसंगो के अतिरिक्त भी आत्म-सम्मान की रक्षा के हेतु, प्रसाद जी ने नारी के कठोर स्वभाव को अभिव्यक्त किया है। देवसेना आत्म-सम्मान की भावना के कारण ही स्कन्दगुप्त का प्रणय स्वीकार नही कर पाती। वह यह नही चाहती कि लोग कहे कि मालव देकर उसके लिए स्कन्दगुप्त के प्रणय को मोल लिया गया है। मंगल द्वारा ऋषिकुल की बात बतलाई जाने पर परित्यक्ता तारा के रोये खडे हो जाते हैं। वह सोचने लगती है—मंगल क्या है? देवता है? उसी समय उसे अपने तिरस्कृत हृदय पिंड का ध्यान आ गया। उसने मन मे सोचा—

'पुरुष को उसकी क्या चिन्ता हो सकती है...उसने कहा—मगल ही नहीं, सब पुरुष राक्षस हैं, देवता कदापि नही हो सकते ।'

—कङ्काल, पृष्ठ १०६ ।

कालिन्दी को शतधनुष ने अपनी कामवासना की पूर्ति के लिए पकड मगवाया था । लेकिन जिस दिन वह प्रासाद मे आई सयोगवश उसी दिन शतधनुष की मृत्यु हो गई । और एक बार जब वह अपने जीर्ण गृह से निकल आई है, तो अब अपने इस अपराध का प्रतिशोध लेना चाहती है, वह मौर्यो का विनाश किया चाहती है, क्योकि उन्होने नन्दो का विनाश किया था । वह अग्निमित्र से कहती है—

'हा, मैं सावधान हू, प्राण हथेली मे लिए मैं किसी भविष्य की प्रतीक्षा मे हू मित्र ।'

—इरावती, पृष्ठ ५६ ।

कठोरता की यह भावना कोमल मना ध्रुव-स्वामिनी के चरित्र में स्पष्ट प्रतिलक्षित होती है । जब उसकी निष्ठा को उपहार मे देने की वस्तु कह कर उपहास का उपक्रम होता है, तब वह कठोर होकर, रामगुप्त, सामाजिक और धार्मिक विधान तथा आडम्बर पूर्ण व्यवहार सभी का प्रतिशोध करती है, और उनके उस नवीन स्वरूप मे नारी का गर्जन मुखर हो उठता है ।

सरमा[1] जातीय एकता के लिए जीवन के सुखो को तिलाजलि देकर नवीन स्वरूप मे उपस्थित होती है । वह नागकुल से अपमानित होकर अपने कठोर स्वभाव को स्वरूप देती है ।

राज्य श्री, जो विमला के सम्मुख भूली हुई यातना, अन्याय और अत्याचार की कहानी कहते कहते करुणा को सजीव कर देती है, वही राज्य श्री देवगुप्त से अपमानित होकर अपने सम्मान की रक्षा के हेतु कठोर होकर तिरस्कार भी कर सकती है—

'तुम देवगुप्त मुझसे बात करने के अधिकारी नही हो । मैं तुम्हारी दासी नही हू । एक निर्लज्ज प्रवचक का इतना साहस ।'

—राज्य श्री, पृष्ठ ३८

नारी-मन की कोमलता कठोरता विषयक यह भावना कामायनी मे सुन्दर रूप से प्रकट हुई है .—

'नारी का वह हृदय ! हृदय मे
सुधा-सिन्धु लहरे लेता,
बाडव-ज्वलन उसी मे जल कर
कचन-सा जल रग देता ।'

—कामायनी, पृष्ठ २१९

१—'जनमेजय का नागयज्ञ' की पात्री ।

कठोरता-कोमलता की इस पार्श्व-भूमि मे कुछ रहस्यमय नारी-चरित्र विकसित हुए हैं। देवदासी की 'पदमा' का चरित्र उनमे से एक है जिसकी विस्तृत व्याख्या 'प्रसाद के नारी सम्बन्धी सामान्य आदर्श' वाले प्रकरण मे 'मनोवैज्ञानिक पक्ष' के अन्तर्गत की जा चुकी है। इसी कोटि के अन्य चरित्र लैला, चम्पा, फिरोजा तथा मधूलिका आदि हैं।

'रमला' कहानी की पात्रा गोप-पालिका 'रमला' अपने व्यवहार मे स्वच्छन्द है। वह एक दिन खेल खेल मे, मजुल द्वारा पहाडी से गिरा दी जाती है। कुछ दिनो के बाद नीचे झील के पास उसका परिचय साजन—अपने पुराने गोप-सहचर मे होता है। वह उसके साथ रहने लगती है। परन्तु साथ-साथ रहते हुए भी वे अलग-अलग रहते हैं। एक दिन रमला और साजन अपने गांव मे आते हैं। वहां रमला युवक मंजुल से मिलती है। वह तब साजन को छोड देती है। साजन झील के देश में एकाकी लौट आता है।

इसी प्रकार लैला के मन मे महान अर्न्तद्वन्द्व चलता है। वह एक क्षण श्रीनाथ का खून करने के लिये तैयार हो जाती है, दूसरे क्षण उसे अपना दोस्त मानती है। चम्पा के स्वभाव मे भी बुद्ध गुप्त के प्रति ठीक यही भावना प्रकट हुई है। मधूलिका पहले अरुण का प्रणय अस्वीकार करती है, फिर उसी के लिए देश-विद्रोहिनी बनने मे भी नही हिचकती। उसका सघर्ष यही पर नही रुक जाता, वरन् वह अपने अरुण को बन्दी भी बनवा देती है, और जब उसे विद्रोह के अपराध मे प्राण-दण्ड मिलता है, तो स्वर भी अरुण के साथ इसी प्रकार दडित हो जाना चाहती है। फिरोजा बलराज को इसीलिये प्यार करती है कि वह एक नारी को प्यार करता है। वह यह नहीं समझ पाती कि एक नारी को प्यार करने वाले पुरुष से किस प्रकार घृणा की जाए। वहाँ पर बरवस ही प्रेमचन्द जी के 'गबन' की जोहरा याद आ जाती है। वह भी रमानाथ की सहायता इसीलिए करती है कि वह एक नारी से—जालपा से—सच्चा स्नेह करता है। इसी प्रकार फिरोज़ा बलराज से कहती है—

'बलराज, न जाने क्यो मैं तुम्हे मरने देना नही चाहती। वह तुम्हारी राह देखती हुई कही जी रही होगी, तब ? आह ! कभी उसे देख पाती, तो उसका मुंह चूम लेती। कितना प्यार होगा उसके छोटे से हृदय मे।'

सामान्यत: नारी का मन ऐसे अवसरो पर ईर्ष्या से जल उठता है, जैसा कि प्रसाद जी ने कई पात्रो मे चित्रित किया है। विजया, लैला आदि के चरित्र इसी रूप में देखे जा सकते है। परन्तु नारी कब क्या सोच ले, इसके विषय मे निश्चय और विश्वास पूर्वक कुछ नही जा सकता। प्रसाद जी ने नारी मनोविज्ञान के सूक्ष्म चित्र उपस्थित किए है। उनके सीधे चरित्राकन मे वैशिष्ठ्य नही है, परन्तु बिशिष्ठ चरित्रो के अ कन

मे—गूढ मनोवृत्ति का सघर्ष उपस्थित करते हुए, नारी के आचरण का रहस्यमय पहलू प्रकट कर उन्होने विशेष प्रकार के मनोविज्ञान की झांकिया प्रस्तुत की है। उपर्युक्त पक्तियो मे विवेचित चरित्र इसी असामान्य आचरण का भाव प्रकट करते हैं। प्रसाद जी ने नारी के इस असाधारण मनोविज्ञान को विशेष रूप से प्रणय प्रसगो के अन्तर्गत ही गूथा है। मन मे भरा हुआ अपरिमित स्नेह, स्वय मे एकनिष्ठा के भाव का प्राचुर्य, विरोधी मनोवृत्तियो का पारस्परिक सघर्ष और मन की कोमल तथा उदार वृत्ति एव परिस्थितिवश कठोर हो जाने का विरोधी स्वाभाविक गुण प्रसाद की नारी के इस असाधारण मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के कारण कहे जा सकते है। इसी लिए उनके नारी-मनोविज्ञान की अभिव्यक्ति स्पष्ट रेखाओ मे विभाजित नही हुई है। नारी के असाधारण मनोविज्ञान का सूक्ष्म विश्लेषण, विस्तृत अध्ययन एव वैचारिक विवेचन करने के पश्चात् भी वे उसे अत्यन्त जटिल, दुर्बोध तथा रहस्यमय ही मानते हैं। अपनी अन्तिम कृति 'इरावती, के पात्र अग्निमित्र के माध्यम जैसे उन्होने अपनी ही भावना व्यक्त की है—

'चुप रहो कालिन्दी। मै स्त्रियो के प्रेम का रहस्य नही समझ पाता हू। जब कोई चचल लास्य से मन को···अथवा जाने दो, मैं प्रणय के स्वाध्याय का असफल विद्यार्थी हू। (पृष्ठ ५३)।

प्रकरण— १०

प्रसाद की सांस्कृतिक नारी

(अ) आरम्भ

(ब) उदात्त भावना

(स) राष्ट्रीय स्वरूप

आरम्भ

राष्ट्रीय नवोत्थान की प्रेरणा मे प्रसाद जी का साहित्य भारत की अतीत समृद्ध सस्कृति के बहुरगी चित्र लेकर उपस्थित हुआ है । सामान्यतः सस्कृति शब्द का अर्थ व्यापक अर्थों मे व्यवहरित होता है । विभिन्न विद्वानो ने विभिन्न प्रकार से इस शब्द की व्याख्या प्रस्तुन की है । सस्कृति का शाब्दिक अर्थ सशोधन, सुधार अथवा पारिष्कार आदि होता है। लावी के अनुसार सस्कृति 'समस्त सामाजिक परम्परा है।[1] लिटन इसे 'सामाजिक विरासत कहता है[2] ।' हर्स कोविट्स के मत मे सस्कृति मनुष्य का 'समस्त सीखा हुआ व्यवहार' है अर्थात् वे वस्तुएं जो मनुष्यो के पास हैं, वे वस्तुए जो वे करते है, और वह सब जो वे सोचते है, सस्कृति है[3] । टाइलर ने उन्नीसवी शती के अन्तिम चरण मे सस्कृति की प्राचीनतम व्यापक परिभाषा उसे वह जटिल तत्व कह कर दी थी, जिसमे नीति, कानून, रीति-रिवाज तथा दूसरी उन योग्यताओ और आदतो का समावेश है, जिन्हे मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते प्राप्त करता है[4] । मैलिनाउस्की के अनुसार सस्कृति सामाजिक विरासत है, जिसमे परम्परा से पाया हुआ कला-कौशल वस्तु सामग्री, यांत्रिक क्रियायें, विचार, आदते और मूल्य समावेशित है[5] ।

भारतीय विद्वानो मे श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती का मत है कि जिन चेष्टाओ द्वारा मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रगति करता हुआ सुख-शान्ति की प्राप्ति करता है, वे ही सस्कृति कही जा सकती है[6] । करपात्री जी 'लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, अभ्युदय के लिए उपयुक्त देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि,

---

नोट—उद्धरण क्रमाक १ से ५ तक—सस्कृति का दार्शनिक विवेचन : डा० देवराज; पृष्ठ १४३ से उत्कथित ।

६—कल्याण : हिन्दू सस्कृति अंक, पृष्ठ ७४ ।

अहकार आदि की भूषणभूत सम्यक चेष्टाओ और हलचलो को ही संस्कृति मानते हैं[१]।'

डा० सम्पूर्णानन्द का मत है कि सस्कृति उस दृष्टिकोण को कहते है जिसमें कोई समुदाय विशेष जीवन की समस्याओ पर दृष्टि-निपेक्ष करता है। यह दृष्टिकोण कई बातो पर निर्भर करता है। थोडे मे कह सकते है कि समुदाय की वर्तमान अनुभूतियो और पुरातन अनुभूतियो के सस्कारो के अनुरूप उसका दृष्टिकोण होता है[२]। राजगोपालाचारी के अनुसार किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषो मे विचार, वाणी और क्रिया का व्याप्त रूप ही सस्कृति है[३]। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल संस्कृति की व्याख्या 'मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन के सर्वांगपूर्ण प्रकार' के रूप मे करते है[४]। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी सभ्यता के आन्तरिक प्रभाव को ही सस्कृति मानते है। उनके मत मे सभ्यता समाज की वाह्य व्यवस्थाओ का नाम है, सस्कृति व्यक्ति के अन्दर के विकास का[५]। डा० गुलाबराय के अनुसार सस्कृति शब्द का सम्बन्ध सस्कार से है, जिसका अर्थ है सशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। सस्कृत शब्द का भी यही अर्थ है, और सस्कार व्यक्ति के भी होते हैं, और जाति के भी, किन्तु जातीय सस्कारो को ही सस्कृति कहते हैं[६]। डा० सत्यकेतु के अनुसार मनुष्य द्वारा अपनी बुद्धि प्रयोग के बल पर विचार और कर्म के क्षेत्र मे किया गया सृजन ही सस्कृति है[७]। श्री रामधारी सिंह दिनकर ने चार अध्यायो में भारतीय सस्कृति की कहानी प्रस्तुत करते हुए सस्कृति की उदार, सरल और सुगम्य परिभाषा की है। उनके अनुसार 'सस्कृति, जिन्दगी का एक तरीका है, और यह तरीका सदियो से जमा होकर उस समाज मे छाया रहता है, जिसमे हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज मे हम पैदा हुए है, अथवा जिस समाज से मिल कर हम जी रहे है, उसकी सस्कृति हमारी सस्कृति है, यद्यपि अपने जीवन मे हम जो सस्कार जमा करते हैं, वह भी हमारी संस्कृति का अग बन जाता है, और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओ के साथ अपनी सस्कृति की विरासत भी अपनी संतानो के लिए छोड

१—कल्याण : हिन्दू सस्कृति अक, पृष्ठ ३५।
२—कल्याण : हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ ७०।
३—वही, पृष्ठ ६३।
४—कला और सस्कृति, पृष्ठ १।
५—विचार और वितर्क, पृष्ठ १८१।
६—भारतीय संस्कृति की रूप रेखा, पृष्ठ १।
७—भारतीय संस्कृति और उसका विकास, पृष्ठ २०।

जाते हैं। इसलिए सस्कृति वह चीज मानी जाती है, जो हमारे सारे जीवन को व्याप्त हुए है तथा जिसकी रचना और विकास मे अनेक सदियो के अनुभवों का हाथ है।

—सस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ ६५३।

उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर हम कह सकते है कि सस्कृति का सम्बन्ध व्यक्ति और जाति के परम्परागत आचार, व्यवहार, नियम, रुचि, मान्यता, विश्वास तथा सस्कारो से सम्बद्ध होता है। जीवन के सभी क्षेत्रो मे इनका हाथ होता है। इनके ही द्वारा उस जाति, वर्ग अथवा देश के सस्कारों को अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार सस्कृति को हम 'सस्कारो का इतिहास' कह सकते है।

भारतीय सस्कृति विश्व मैत्री, राष्ट्र प्रेम, मानवतावाद आदि उच्चतम आदर्शों के साथ साथ क्षमा, त्याग, शान्ति, करुणा, सहयोग, उदारता, सामजस्य, सतोष, सहिष्णुता, विश्वास, निस्वार्थ भावना, सत्यनिष्ठा, सयम, आतिथ्य सत्कार, प्राणी मात्र के प्रति सहज स्नेह तथा पति-व्रत के उदात्त गुणो की आधार शिला पर ही खडी हुई है। इन सब महान् आदर्शो के आलोक मे भारतीय सस्कृति का उज्ज्वल रूप देखा जा सकता है। प्रसाद जी अपने नारी-पात्रो के चरित्राकन मे भारतीय सस्कृति के इसी महान् स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। उन्हे अपनी प्राचीन सस्कृति से बडा मोह रहा है। भारतीय इतिहास और सस्कृति के प्रति इस अनुराग के मूल मे प्रसाद जी की राष्ट्रीय भावना कार्य करती है। वे एक ऐसे युग मे उत्पन्न हुए थे जबकि देश दासता के बन्धनो से मुक्त होने का प्रबल प्रयत्न कर रहा था। अन्य कलाकारो की भाँति उन्होने भी इसमे सहयोग दिया। उनकी भावना सामान्य राष्ट्रीयतावादी कवि से किंचित् भिन्न है। मैथिलीशरण गुप्त के कवि का राष्ट्रीय स्वरूप स्पष्ट ज्ञात होता है। प्रसाद का दृष्टिकोण सास्कृतिक अधिक है। वे किसी क्रान्तिकारी कवि की भाँति उद्बोधन-गीत नही गाते लगते, किन्तु क्रमश एक ऐसी परिस्थिति की योजना करते है, जिसमे राष्ट्र की सस्कृति और परम्परा का चित्र हो[1]।'

प्रसाद जी ने समय की आवश्यकता को समझ कर भारतीय नारी मे भारतीय सस्कृति के उदात गुणो को—अधिष्ठित करते हुए उसे राष्ट्रीय योजना मे जो नवीन स्वरूप प्रदान किया, वह उनके साहित्य—विशेषतया नाटक साहित्य की आधुनिक भारत को एक अमूल्य देन है। उनके सभी नाटक सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर ही लिखे गए हैं। जैसा कि ऊपर कह आए है कि 'आर्य-सस्कृति मे उन्हे गहन आस्था थी, इसी लिये उनके नाटको मे भारत के इतिहास का प्राय. वही परिच्छेद है, जिसमे उसकी

१—डा० प्रेम शकर · प्रसाद का काव्य, पृष्ठ ५६०।

संस्कृति अपने पूर्ण वैभव मे थी[१] । वे भारतीय संस्कृति पर मुग्ध थे । स्वभाव से चिन्तन-शील और कल्पना प्रधान होने के कारण वे उसी युग मे रहते थे । वे विदेशी छाया से आच्छादित भारतीय जीवन को फिर से उसी स्वर्ग की ओर प्रेरित करने की बात सोचा करते थे । उन्होने भारतीय संस्कृति के बिखरे अवयवो को जोड कर अपनी भावुकता, चिन्ता व कल्पना द्वारा उसमे प्राण सचार किया[२] ।

प्रसाद जी के मन मे आरम्भ से ही नारी जाति के प्रति श्रद्धा-सिक्त भावना विद्यमान थी । अत सांस्कृतिक चेतना और पुनरुत्थान के महान् आदर्श की स्थापना, तथा राष्ट्रीय भावना के विकास को भी उन्होने नारी-चरित्रो के माध्यम से ही व्यक्त किया है । उनका विश्वास था कि राष्ट्रीय समुन्नति के साथ साथ लोक मगल की साधना भी परम आवश्यक है, और लोक-मगल की साधना नारी द्वारा अधिक सम्भव है, इसीलिए नारी का सांस्कृतिक निरूपण उनकी साहित्यिक साधना का मुख्य विषय बना । नारी चरित्रो के माध्यम भारत की प्राचीन संस्कृति के द्वार को अनावृत कर, उन्होने राष्ट्रीय गौरव एव ऐश्वर्य-शाली अतीत का पुनरुद्धार किया है । और उनकी आँखो मे वही सपना झूल उठा है, जो कभी कालिदास की आँखो मे झूल उठा था[३] । उनके नारी-चरित्र जातीय गौरव, राष्ट्र प्रेम और विश्व-मगल आदि की उदात्त प्रवृत्तियो से गौरवान्वित हुए है । उनकी सत्प्रेरणा पुरुषो को सत्कार्यो और राष्ट्रीय हितो की ओर प्रोत्साहित और प्रेरित करती हैं । अपनी अन्य उदात्त प्रवृत्तियो से वे सामाजिक भावभूमि मे उच्चादर्श स्थापना के पुनीत कार्य मे सलग्न होती है, तथा मानवतावाद की प्रतिष्ठा मे अपने मन की सम्पूर्ण सच्चाई और निष्ठा के साथ अग्रसर दिखाई पडती हैं ।

उपर्युक्त कथन के आधार पर प्रसाद जी की सांस्कृतिक नारी का अध्ययन दो विभिन्न विभागो के अन्तर्गत स्पष्टता और सरलतापूर्वक किया जा सकता है । पहले विभाग मे हम उनके उदात्त गुणो की विवेचना करेगे, जिनके कारण वे पुरुष से उच्च शीर्ष पर आसीन होती है, और दूसरे विभाग के अन्तर्गत उनके राष्ट्रीय स्वरूप का अध्ययन, जो आज की राष्ट्रीय परिस्थिति मे उनके व्यक्तित्व को और भी अधिक महत्व प्रदान करता है ।

उदात्त भावना

प्रसाद जी की संस्कृतिनिष्ठ उदात्त-भावना देवसेना, मालविका, मल्लिका, कार्नेलिया, श्रद्धा, तितली, ममता, वासवी, पद्मावती, सरमा, मणिमाला, वपुष्टमा,

---

१—डा० नगेन्द्र प्रसाद के नाटक; जयशकर प्रसाद, चिन्तन व कला, मे सकलित, पृष्ठ १६६ ।

२—जय शकर प्रसाद : चिन्तन व कला, पृष्ठ १६७ ।

३—राम रतन भटनागर : प्रसाद साहित्य और समीक्षा, पृ० २१० ।

देवकी, कोमा और चन्द्रलेखा आदि नारी-पात्रो मे अभिव्यक्त हुई है।

देवसेना प्रेम, त्याग, वेदना और कोमलता की साकार, सुन्दर मूर्ति है। उसके हृदय की विशालता, स्वभाव की उदारता और व्यवहार की—नि स्वार्थपरता उसके जीवन मे करुणा के विस्तार के लिए उत्तरदायी है। उसके चरित्र की आदर्शवादिता मे भी व्यावहारिक व्यक्तित्व की—अपूर्णता विद्यमान है। उसके व्यवहार की अलौकिकता मे गाम्भीर्य का आच्छादन सुशोभित है तथा 'गाम्भीर्य की सहयोगिनी दृढता' भी उसमे उच्च कोटि की है। देवसेना की विचारधारा कुछ उच्चतर भावभूमि पर चलती है। उसके जीवन का आदर्श एकान्त टीले पर, सबसे अलग, शरद के सुन्दर प्रभात मे फूला हुआ, पारिजात वृक्ष है[1]। वह अपनी भावनाओ मे रहस्यमयी और कल्पना के किसी सुख-कोने मे बैठी हुई विचार निमग्न सी प्रतीत होती है। उसकी दृष्टि मे प्रत्येक परमाणु के मिलन मे एक सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने मे एक लय है··· ' पक्षियो को देखो, उनकी चह-चह, कल-कल, छल-छल मे, काकली मे एक रागिनी है।'

—स्कन्दगुप्त, पृ० ५४

देवसेना के चरित्र मे उदारता का रग उभरा हुआ है। देश-कल्याण के लिए मालव के राज्य को देने मे वह जयमाला के सम्मुख कितनी उदार भावना प्रकट करती है—'क्षुद्र स्वार्थ। भाभी जाने दो, भैया को देखो। कैसा उदार, कैसा महान् और कितना पवित्र।'

—स्कन्दगुप्त, पृ० ७१

बधुवर्मा के साथ युद्ध-भूमि मे जाकर आहत वीरो की सेवा का कार्य उसकी सेवा-वृत्ति का आदर्श प्रस्तुत करता है। नीच भावनाओ से भ्रष्ट नागरिको की बातो का वह तनिक भी बुरा नही मानती[2]। ऐश्वर्य और वैभव के मध्य लाड-प्यार से पली होने पर, विषम परिस्थितियो मे गाकर भीख माँग लेने पर भी वह अपने दु ख को प्रकट नही करती[3]। शान्ति से वह इन सब विभीषिकाओ को सहती चलती है। सहिष्णुता की यह चरमता उसके व्यक्तित्व को और भी निर्मल बना देती है। देवसेना का उदात्त स्वरूप उसके प्रणय-प्रसग मे अपने महान् उत्सर्ग की पीठिका पर अभिव्यक्त हुआ है। वह स्कन्दगुप्त को अपनी प्रतिस्पर्धिनी विजया के हाथ सौपकर भी उससे कभी विद्वेष प्रकट नही करती। सुख-दु ख दोनो अवसरो पर समान आचरण और व्यवहार उसके चारित्रिक समरसता की आदर्श प्रतिष्ठा करता है। सगीत उसके

१—डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १०२ उत्कथित।

२—स्कन्दगुप्त, पृ० १३७।

३—वही, पृ० १६६।

जीवन का प्राण है । जहाँ वह मन की वेदना को मधु बना कर सम-भाव से उसे अपनाए चलती है । देवसेना का चरित्र आदर्श और अलौकिक होते हुए भी व्यावहारिक जीवन में प्रतिष्ठित होने के कारण परम लोकोपयोगी एव मगलमय है । वास्तव मे देवसेना प्रसाद जी की अमर कल्पना का प्रसाद है[1] ।

देवसेना के चरित्र के समानान्तर परन्तु उसमे कम विकसित 'चन्द्रगुप्त' की मालविका का चरित्र है । भारतीय सस्कृति की करुण भावना और उत्सर्ग का उदात्त गुण उसके इस चरित्र मे अपनी सच्ची अभिव्यक्ति पा सका है । वह सेविका, दूती और ताम्बूलवाहिनी के रूप मे राजनैतिक जीवन से परिचित होती है । लोगो की सेवा करती है और अपने मन से किसी स्वच्छ अन्तरिक्ष मे अपने प्रणय के शिशु को पाले हुए उसकी मगल कामना में ही अपने जीवन का अन्त कर देती है । वह विशाल जन-समूह में एक सुगन्ध-धारा बनकर आती है और झुटपुटा-सा प्रभाव छोड़कर विलीन हो जाती है । यही उसके जीवन की व्याख्या है और इसी मे उसका व्यक्तित्व स्फुट हुआ है[2] । अहिंसामय और सेवावादिनी नारी के रूप मे उसके चरित्र की उदात्तता मन मे करुण छाया सी छोड जाती है ।

प्रसाद जी की सास्कृतिक नारी-कल्पना का भव्य रूप मल्लिका के रूप में मूर्तिमान हुआ है । उदार सेवा, कर्तव्य-निष्ठा, सहिष्णुता, निष्कपट पति परायणता, करुणा, स्नेह, विश्वमैत्री एव राष्ट्र-प्रेम --सभी कुछ उसकी चारित्रिक विशेषताओ के अमूल्य रूप मे प्रकट हुए हैं । आततायियो के प्रति भी वह उदारतापूर्ण व्यवहार करती है तथा अपने आचरण की शुद्धता से उन्हे शान्ति, सौजन्य और मर्यादा का पाठ पढाती है । पति के हत्या विषयक षड्यन्त्र को जान कर भी वह उन्हे कर्तव्य से विमुख कराने मे विश्वास नही करती । वीरता के गौरव मे भरी हुई वह कहती है—

'कठोर कर्मपथ मे अपने स्वामी के पैर का कटक मैं नही बनना चाहती । वह मेरे अनुराग, मेरे सुहाग की वस्तु है । फिर भी उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व है, जो हमारी शृ गार मजूषा मे बन्द करके नही रखा जा सकता ।'

—अजातशत्रु, पृ० ७४

कर्त्तव्य की इस उत्कट भावना के साथ-साथ उसमे आतिथ्य भाव की मर्यादा भी उसी भाव मे विद्यमान है । वैधव्य के कठोर दु.ख को सहन करते हुए वह अपनी विषम परिस्थिति मे आतिथ्य धर्म का पालन धैर्य और निष्ठा के साथ सम्पन्न करती है। उसका यह कथन—

१—जगदीश नारायण दीक्षित : प्रसाद के नाटकीय पात्र, पृ० १०१ ।

२—जगन्नाथ प्रसाद शर्मा : प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १६६ ।

'नही सरला ! मैं भी व्यवहार जानती हू, आतिथ्य परम धर्म है । मैं भी नारी हू, नारी के हृदय मे जो हाहाकार होता है, वह मैं अनुभव कर रही हू । जी रो उठता है, तब भी कर्त्तव्य करना ही होगा[1] ।

—उसकी उदारता को महत्वपूर्ण बना देता है।

उदयन के द्वारा घायल हुए विरुद्धक की वह सेवा करती है तथा उसके पिता से उसे क्षमा दान दिलवा कर उसे युवराज के पद पर अधिष्ठित कराती है। न्याय और सहनशीलता उसके स्वभाव के प्रमुख अग बनकर प्रकट हुए है। विश्व-मैत्री का उदात्त रूप उसके चरित्र मे चित्रित हुआ है। वह जीवन के सुख-दु खो उत्थान-पतन और शत्रु-मित्र के मध्य सदैव ही समदृष्टि रखती है । यह उसके जीवन की उच्च और आदर्श स्थिति है । 'स्त्री-सुलभ सौजन्यता और सवेदना, कर्त्तव्य और धैर्य की शिक्षा' को वह व्यवहार-क्षेत्र मे अपने पुनीत आचरणो द्वारा सार्थकता प्रदान करती है । उसके चरित्र में सद्वृत्तियो का चूडान्त निदर्शन हुआ है । 'वह अपने महान् गौरव-शाली गुणो की गरिमा के द्वारा सामान्य लौकिक धरातल से बहुत ऊची उठी प्रतीत होती है[2] । यह कहा जा सकता है कि गौतम की आत्मा को मल्लिका के व्यवहार मे ही सही अभिव्यक्ति मिली है ।

प्रसाद जी 'सस्कृति को विभिन्न मानवीय अर्जन का समन्वय मानकर चलते हैं, जो कोई स्वतन्त्र पदार्थ नही किन्तु विभिन्न क्षेत्रो मे अर्जित मानव-श्रम का नवनीत है । उनका कथन था कि भारतीय जीवन-दर्शन का आशावादी स्वरूप समन्वय की भीत्ति पर आधारित होकर ही इतना उन्नत हो सकता है[3] ।' इसी प्रकार वे विभिन्न सस्कृतियो के समन्वय पर भी विश्वास करते हैं, परन्तु भारतीय सस्कृति को उन्होने प्राथमिकता प्रदान को है । इसीलिए उनके विदेशी पात्र भी इस पौर्वात्य सस्कृति से प्रभावित हो, उसी के स्वर मे बोलने लगते हैं । ग्रीक नवकुमारी कार्नेलिया का तन भले ही यूनान का रहा हो, किन्तु उसमे पैठी हुई आत्मा शुद्ध भारतीय है । उसकी भावनाओ मे भारतीय सस्कृति की उदात्तता मुखरित होती है । वह भारत के नैसर्गिक सौन्दर्य, यहा के ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, सगीत आदि सभी से प्रभावित है । उसके लिए यह स्वप्नो का देश, त्याग और ज्ञान का पालना, प्रेम की रगभूमि तथा मानवता की जन्म-स्थली सब कुछ तो है, तभी उसे इस देश से जन्म-भूमि के समान स्नेह होता जाता है[4] । इसी प्रभाव के कारण वह भारतीय और ग्रीक युद्ध मे चाणक्य की ही

१—अजातशत्रु, पृ० ८३ ।

२—जगदीश नारायण दीक्षित : प्रसाद के नाटकीय पात्र, पृ० १५८ ।

३—पं० नन्द दुलारे वाजपेयी, प्रसाद का साहित्य (सकलन); पृ० १६३ ।

४—चन्द्रगुप्त, पृ० १४५ ।

विजय मानती है,[1] तथा भारत को रक्त-रजित नही देखना चाहती। उसके द्वारा सेल्यूकस की महत्वाकाक्षा को दबाने की पृष्ठभूमि मे भी यही भावना विशिष्ट है। वररुचि के शब्दो मे यह यवन बाला सर से लेकर पैर तक आर्य-सस्कृति मे पली है। इसीलिए भारतीय सस्कृति का पाठ वह बार-बार दोहराना चाहती है, उसे भूलना नही चाहती[2]। अपने स्वभाव की इसी उदात्त-वृत्ति के कारण जैसे उसे भारतीय सस्कृति द्वारा चन्द्रगुप्त का उपहार दिया जाता है।

कार्नेलिया की भाति 'तितली' की अग्रेज रमणी शैला भी भारतीय सस्कृति से प्रभावित है। इन्द्रदेव की माता से विनीत व्यवहार, गाँव वालो के साथ अलाव पर बैठकर उनके दुःख-सुख की चर्चा, भारतीय जीवन की दीक्षा प्राप्ति और सस्कृत भाषा का अध्ययन उस पर भारतीय सस्कृति का प्रभाव ही स्पष्ट करते हैं। उसके चारो ओर भारतीय वायुमण्डल हवन, धूप, फूलो और हरियाली से स्निग्ध हो रहा होता है। जिसकी निर्मलता मे वाट्सन के हृदय से उसके प्रति द्वेष का आवरण हट जाता है। इसके बदले अब उसके सौन्दर्य मे वह श्रद्धाभाव एव मैत्री को विकसित करने की चेष्टा करता है[3]।

यही पर प्रसाद जी भारतीय और पाश्चात्य सस्कृति का विभेद-निर्देशन भी करते है। शैला एक स्थान पर इन्द्रदेव से कहती है—

'तुम्हारे भारतीय हृदय मे जो कौटुम्बिक कोमलता मे पला है, परस्पर सहानुभूति की—सहायता की बडी आशाएँ परम्परागत सस्कृति के कारण, बलवती रहती हैं। किन्तु मेरा जीवन कैसा रहा है, उसे तुमसे अधिक कौन जान सकता है। मुझसे काम लो और बदले मे कुछ दो।'

—तितली, पृ० ७६।

इस कथन से अवश्य ही भारतीय सस्कृति पाश्चात्य सस्कृति से ऊंची ठहरती है।

परन्तु अपनी इस सस्कारगत भावना के होते हुए भी वह भारतीय जीवन की ठोस मेहनत, सतोष से भरी, हसती खेलती शान्ति से प्रभावित होती हुई, उसको अपनाने के लिए सभी सम्भव प्रयत्न करती है। कार्नेलिया की भाँति वह भी भारत को पवित्रता का देश मानती है—

'कहाँ भारत, कहाँ मै और कहाँ इन्द्रदेव! और फिर तितली! जिसके कारण

१—चन्द्रगुप्त, पृ० १४।

२—वही, पृ० १००।

३—तितली, पृ० ११६।

मुझे अपनी माता की उदारता के स्वर्गीय सगीत सुनने को मिले। यह पावन प्रदेश देखने को मिला।'

—तितली, पृष्ठ ७०।

प्रसाद जी ने अपने विदेशी नारी-पात्रो को भारतीय सस्कृति से प्रभावित करने मे बडी रुचि दिखलाई है। 'ककाल' की मारगेरेट लतिका बन कर भारतीय ढग से रहती है। उसे भारतीय गृहिणी का रूप प्रभावित किए हुए हैं। उसका पति भारतीय गृहिणीत्व की सुन्दर योजना को अन्यत्र दुर्लभ मानता है। एक स्थान पर वह कहता है—

'इतना आकर्षक, इतना माया ममतापूर्ण स्त्री-सुलभ गार्हस्थ्य जीवन और किसी समाज मे नही।'

—ककाल, पृष्ठ १२१।

इसी प्रकार 'शरणागत', कहानी की एलिस, सुकुमारी के भारतीय ढग एव व्यवहार से प्रभावित होती है। उसकी सलज्जता, सेवा भावना, सयम तथा आतिथ्य सत्कार जो भारतीय सस्कृति के मुख्य अंग है, उसको लुभा लेते हैं। वह सुकुमारी के घर गाऊन पहने, घोडे पर बैठ कर आई थी, किन्तु जाते समय वह रेशमी लहगा और कचुकी पहने है। अधर पान की लाली से रक्तिम, आखो मे काजल, वेणी-रूप मे सवारे गए केश और इन सब से विशेष उसके जाने के लिए घोडे के स्थान पर पालकी आती है[1]। X

भारतीय सस्कृति मे नारी के पत्नी और गृहिणी रूप का विशिष्ठ स्थान है। प्रसाद जी के दृष्टिकोण से गृहस्थ नारी की मगलमयी कृति, भक्ति की वस्तु है। जो साधारण सन्यास से भी दुष्कर और दम्भ विहीन उपासना है[2] /पत्नीत्व का यह रूप ध्रुवस्वामिनी, तितली और श्रद्धा के चरित्रो मे व्यक्त हुआ है। रामगुप्त के साथ राक्षस-विवाह कर दिए जाने पर भी आत्म-पीडन और उपेक्षा से क्षुब्ध ध्रुव-स्वामिनी उस समय तक कोई विरोध नही करती, जब तक कि रामगुप्त की नृशसता तथा उसका क्लीवताजन्य दुर्व्यवहार उसकी मान-हानि तथा पत्नीत्व की मर्यादा का प्रश्न नहीं बन जाता। अपने पत्नीत्व की रक्षा के लिए वह कितनी झुक जाती है। स्वय को उपहार मे दिए जाने की बात सुन कर वह रामगुप्त से कहती है—

'मैं स्वीकार करती हू कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नही हुई। किन्तु मेरा वह अहकार चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी हो कर रहूगी।'

—ध्रुवस्वामिनी, पृ० २६।

१—छाया मे सकलित, शरणागत कहानी।

२— तितली, पृष्ठ १६८।

यह वास्तव मे ही भारतीय सस्कृति का ही प्रभाव है कि जहाँ नारी अपने पत्नीत्व की सीमाओ को समझती है । उसी की रक्षा के लिए वह अपने अस्तित्व को मिटा देने के लिए भी सकोच नही करती ।

श्रद्धा के चरित्र मे भी यही पत्नीत्व की आदर्श-मर्यादा व्यक्त हुई है । मनु के चले जाने पर वह बावली सी भटकती हुई उसे खोज रही है—

'अरे बता दो मुझे दया कर
कहाँ प्रवासी है मेरा
उसी बावले से मिलने को
डाल रही हू मैं फेरा ।'

—कामायनी, पृष्ठ २११ ।

रूठ गया था अपनेपन से
अपना सकी न उसको मैं
वह तो मेरा अपना ही था
भला मनाती किस को मैं ।

कामायनी, पृष्ठ २१२ ।

पति के लिए पत्नी ही सब कुछ है । पति की सेवा ही पत्नीत्व के आदर्श की कसौटी है । 'चित्रकूट' मे सीता जी कहती हैं—

'नारी के सुख सभी पति के साथ रहते हैं ।'

—कानन कुसुम, पृष्ठ १०३ ।

'प्रेम पथिक' मे पुतली का विवाह उसके प्रेमी से न होकर किसी अन्य व्यक्ति से हो जाता है । फिर भी वह अपने पति के चरणो पर सम्पूर्ण निष्ठा के साथ समर्पित होती है—

'मैं भी सब-कुछ देकर वेतन-भुक्त पुजारी-सी, उस पत्थर का आराधन दिन-रात किया करती थी ।'

—प्रेम पथिक: पृष्ठ २६ ।

तितली मे नारी के गृहिणी रूप का आदर्श मूर्तिमान हो उठा है । अपनी सीमित सुविधाओं के माध्यम, वह अपनी छोटी-सी गृहस्थी का निर्माण करती है । वह उसी मे सन्तुष्ट है । और उसको चलाने के लिए उसने एक व्यवस्थित तरीका अपना लिया है, जिसमे किसी भी परिस्थिति मे कोई विक्षेप नही आ पाता । इन्द्रदेव उसके विषय मे सोचते हैं—

'तितली, यही तो है । एक दिन मेरे साथ इसी के ब्याह का प्रस्ताव हुआ था ।

उस समय मैं हस पडा था, सभवत. मन-ही-मन। अपना दुर्बलता मे, अभावो और लघुता मे दृढ खडी होकर रहने मे यह कितनी तत्पर है। यही तो हम खोज रहे थे न। ·· मै तो समझता हू इसके जन्म लेने का उद्देश्य सफल हो गया। तितली वास्तव मे महीयसी है, गरिमामयी है। शैला—वह अपने लिए सब कुछ कर लेगी। स्वावलम्ब, हाँ, वह उसे भी पूरा कर लेगी। किन्तु स्त्री का दूसरा पक्ष—पति। उसके न रहने पर भी उसकी भावना को पूरी करते रहना, शैला से भी न हो सकेगा। वह अपने पैरो खडी हो सकती है, किन्तु दूसरे को अवलम्ब नही दे सकती।'

तितली, पृ० २४०।

इस प्रकार तितली के चरित्र की पर्वत सी अटलता, सागर-सा गाम्भीर्य और पृथ्वी-सी सहिष्णुता उसे समन्वित रूप से महान् बनाये हुए हैं।

श्रद्धा के स्वरूप मे गृहणी भाव का सास्कृतिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है। श्रद्धा गृहस्थी के निर्माण कार्य मे सलग्न हो कर अपने निवास के लिए एक छोटा-सा नव-कुटीर रचाती है, और मनु को उसे दिखाती है—

'थे वातायन भी कटे हुए
प्राचीर पर्णमय रचित शुभ्र
आवें क्षण भर तो चले जाए
रुक जाए कही न समीर, अभ्र'
उसमे था झूला पड़ा हुआ
वेतसी पूर्ण लता का सुरुचिपूर्ण
बिछ रहा धरातल पर चिकना
सुमनो का कोमल सुरभिचूर्ण।

—कामायनी, पृ० १४६।

इतना ही नही, श्रद्धा के चरित्र मे भारतीय सास्कृतिक नारी का सम्पूर्ण चित्र उपस्थित हुआ है। वह मानवता का पोषण करना चाहती है, हनन नही। मनु का अहेरी रूप उसे तनिक भी नही रुचता। वह उससे कहती है—

'मनु ! क्या यही तुम्हारी होगी
उज्ज्जवल नव-मानवता
जिसमे सब कुछ ले लेना हो
हन्त, बची क्या शवता।'

—पृ० १३०।

'भारतीय सस्कृति की दृष्टि से नारीत्व का चरम विकास उसके मातृत्व रूप में निहित है। विश्व के प्रति पुत्रवत् प्रेम मातृत्व का प्रधान गुण है। साथ ही प्राणी

मात्र के प्रति करुणा की भावना तथा निर्माण की—सृजन की इच्छा—सभी मातृत्व की मान-प्रतिष्ठा मे सहायक होते हैं। श्रद्धा का चरित्र इन्ही गुणो की पार्श्व-भूमि मे चित्रित हुआ है। वह अपनी प्रकृति के अनुसार पशु, पाषाण और जीव सभी मे नृत्य का नव छन्द देखती है—

पशु कि हो पाषाण, सब मे नृत्य का नव छन्द
एक आलिंगन बुलाता, सभी को सानन्द।

—कामायनी, पृ० ८६।

उसके मन मे प्राणी मात्र के प्रति दया की अजस्र धारा सतत प्रवाहित होती है। मनु को समझाते हुए वह कहती है—

पर जो निरीह, जी कर भी कुछ
उपकारी होने मे समर्थ
वे क्यो न जियें उपयोगी बन
इसका मैं समझ सकी न अर्थ।

—पृ० १२६।

प्रणय के क्षेत्र मे भी श्रद्धा भारतीय संस्कृति का ही स्वरूप उपस्थित करती है। प्रसाद जी की प्रेम भावना 'भारतीय दर्शन और संस्कृति के अनुकूल है। हिन्दू संस्कृति की दृष्टि से वैवाहिक प्रेम एक ऐसा पुनीत असाधारण बन्धन है, जिससे मुक्ति, भारतीय नारी, मृत्यु के अनन्तर, शरीरान्तर मे भी नही चाहती। भारतीय दृष्टि से व्यष्टि प्रेम एक ऐसा सम्बन्ध-सूत्र है जिसके द्वारा एक अनेक मे बधता हुआ सदा अभेदत्व की ओर बढता रहता है'[1]। प्रसाद जी ने श्रद्धा मे इसी भाव की अभिव्यक्ति की है। साथ ही कर्त्तव्य के क्षेत्र मे भारतीय संस्कृति का अनुगामी, सदैव ही अपना सम्बन्ध विश्वात्मा से जोड़ता है। वह अपने को सभी प्राणियो मे और सभी प्राणियो को अपने मे देखता है। श्रद्धा अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे इसी कर्त्तव्य के आदर्श का आचरण करती दिखलाई पडती है[2]। वह जीवन की उपयोगिता उपभोग मे नही वरन् त्याग मे मानती है। मनु जब अपने दो दिन के जीवन मे लौकिक सुख को अधिक महत्त्व देने की बात कहते हैं, तब श्रद्धा उनसे कहती है—

'अपने मे सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा ?

१—रामलाल सिंह, कामायनी अनुशीलन, पृ० २२५।
२—रामलाल सिंह, कामायनी अनुशीलन, पृ० २७।

यह एकान्त स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा।'
—कामायनी, पृ० १३२।

भारतीय सस्कृति मे सामजस्य का विशिष्ट स्थान है। विश्वासमयी श्रद्धा के चरित्र मे इस सामजस्य और समन्वय की पीयूष मदाकिनी प्रवाहित हुई है। श्रद्धा का चरित्र सही अर्थों मे कोलाहलमय रगमच पर शान्ति का विश्राम-स्थल है। उसके अपने ही शब्दो मे—

'तुमुल कोलाहल कलह मे
मैं हृदय की बात रे मन।'

वास्तव मे 'श्रद्धा नाम के अनुसार हृदय की सारी उदात्त वृत्तियो की वह साकार मूर्ति है। नारीत्व की शाश्वत प्रतिमाओ की प्रतीक है। सेवा उसकी साधना है, कर्म उसका साधन। त्याग उसका सकल्प है, विश्व-मगल उसका व्रत। क्षमा उसका निलय है। सहिष्णुता उसका सम्बल। समरसता उसका सिद्धान्त है, परमार्थ उसका सतोष। अनुराग उसकी निधि है, करुणा उसका आभूषण। प्रकृति की गोद मे उसका वास है, सुसस्कृत जीवन उसका सरल है, पर सिद्धान्त बहुत ऊँचा। हृदय उसका कोमल है पर शरीर स्फूर्ति, दीप्ति और शक्ति से पूर्ण।'

—रामलाल सिंह कामायनी अनुशीलन, पृ० ७६।

प्रसाद जी की नारी-सम्बन्धी उदात्त भावना अन्य पात्रियो के चरित्र मे भी अभिव्यक्त हुई है। जहां वे अपने सामान्य जीवन मे भी यह गुण लिए हुए हैं।' 'ममता' कहानी की ममता कुटीर मे दुरावस्था के दिन बिताती हुई भी विधर्मी और आततायी का अतिथि-सत्कार करती है। राज्यश्री पति की इच्छा मे ही सन्तोष मानती है। उसकी अनुपस्थिति मे सदैव उसी के विषय मे सोचती है। उसके स्वरूप मे धर्म-भाव से उद्दीप्त उत्साह एव त्याग-भावना का सम्मिश्रण प्राप्त होता है[1]। उसके चरित्र का विशेष गुण उदारता है। कोई याचक उसके द्वार से निराश और विमुख होकर नही जाता। क्षमा का गुण भी उसमे विशिष्ट है। विकट घोष सदृश नीचात्मा तक के प्रति भी वह कोई प्रतिहिंसा का भाव नही रखती, वरन् उस क्षमा करने का अनुरोध करती हुई वह हर्षवर्धन से कहती है—

'आज हम लोगो ने सर्वस्व दान किया है भाई! आज महाव्रत का उद्यापन

१—जगन्नाथ प्रसाद शर्मा प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन पृ० २२।

है। क्या यही एक दान रह जाय ? इसे प्राण-दान दो भाई[1]।'

महाश्रमण सु-एन चाग उसके चरित्र की इस दृढता से अभिभूत है—

'सर्वस्व दान करने वाली देवी ! मैं तुम्हे कुछ दूँ। यह मेरा भाग्य। तुम्ही मुझे वरदान दो कि भारत से जो मैने सीखा है, वह जाकर अपने देश मे सुनाऊँ।'

—राज्यश्री पृ० ७३।

निःसन्देह प्रसाद जी ने राज्यश्री के नारीत्व मे भारतीय सस्कृति की उदारता का सम्पूर्ण चरित्र उपस्थित कर दिया है।

अजातशत्रु की वासवी का चरित्र क्षमा और वात्सल्य से आपूर्ण है। उसमे ममता की स्निग्धता व्याप्त है। वह अपने सौतेले पुत्र अजातशत्रु की कुटिलताओ से क्षुब्ध न होकर, उल्टे अपनी उदारता से उनका मन जीत लेती है। उसका चरित्र पवित्र उज्जज्वलता से पूर्ण है। प्रेम, दया और अपनत्व उसके जीवन के मन्त्र है। वह भारतीय आदर्शों का आरक्षण करने वाली नारी की शुद्ध प्रतिमूर्ति है। माता का स्नेह, सती का उत्तरदायित्व और नारी का गौरव उसमे मिलता है[3]। पति की त्याग तितिक्षा मे वह साथ देती है। सन्तोष का गुण उसके चरित्र को वैशिष्ठ्य प्रदान करता है। सतोष-भावना की इस भूमिका के विस्तार मे वह कहती है—

'भगवन् ! हम लोगों के लिए एक छोटा-सा उपवन पर्याप्त है। मैं यहीं नाथ के साथ रहकर सेवा कर सकूँगी।'

—अजातशत्रु, पृ० ३२।

अपनी सपत्नी छलना की कटूक्तियो तथा दुर्व्यवहार की उपेक्षा करते हुए वह सदैव ही उसकी कल्याण-कामना करती है। एक स्थान पर अपनी स्वाभाविक सहिष्णुता का परिचय देती हुई वह केवल इतना ही कहती है—

'बहिन, जाओ ! सिंहासन पर बैठकर राजकार्य देखो। व्यर्थ झगड़ने मे तुम्हें क्या सुख मिलेगा ? और अधिक तुम्हे क्या कहू ? तुम्हारी बुद्धि।'

—अजातशत्रु, पृ० ८८-८९।

उसकी सहिष्णुता का चरम उत्कर्ष बिम्बसार के इन शब्दो मे व्यक्त हुआ है—

'वासवी, तुम मानवी हो कि देवी ?' —अजातशत्रु, पृ० १४४

इसी नाटक की अन्य पात्रा मगध की राजकुमारी पद्मावती के चरित्र पर

२—राज्यश्री पृ० ७४।

३—गुलाबराय : प्रसाद जी कला, पृ० १२८।

वासवी के आदर्श गुणो की छाया स्पष्ट अकित है । उसके चरित्र का प्रधान गुण करुणा है जो उसे गौतम के व्यक्तित्व की देन है । गौतम का अप्रतिभ व्यक्तित्व उसके लिए शुद्ध हृदय से उपासना की वस्तु है । वह विश्व-कल्याण की सद्भावना से प्रेरित अपने व्यक्तित्व मे इस उदात्त गुण की स्थापना के लिए सतत प्रयत्नशील है। प्रसाद जी ने उसके चरित्र मे सहिष्णुता, कोमलता, पति परायणता तथा विश्व-कल्याण कामना आदि भावो को प्रदर्शित कर उसके व्यक्तित्व को परम श्रद्धास्पद बना दिया है। वह कभी किसी का विरोध नही करती । सहनशीलता उसमे प्रभूत मात्रा मे है। पति की प्रत्येक इच्छा के सम्मुख उसका सर नत है । उसके हृदय की सरलता और निश्छलता ही उसके हृदय की सबसे बडी शक्ति है।

'स्कन्दगुप्त' की देवकी अपने उदात्त स्वरूप मे महान् है । वह उदार धर्म-परायण, सत्यनिष्ठ और कोमल भावनामयी नारी है । निर्भीकता का गुण भी उसमें विद्यमान है। घोर आपत्तिकाल मे उसका धैर्य अनुकरण की वस्तु है । वह विपत्ति के समय भगवान की 'स्निग्ध करुणा का शीतल ध्यान' करती है । जीवन की महान् करुणा के समारोह मे भी वह दृढता के साथ सभी विषमताओ का सामना करती हुई आगे की ही ओर देखती है । पुत्र-वियोग मे उसका प्राण-त्याग करना उसके वात्सल्यपूर्ण स्वभाव का परिचायक है । धातुसेन के इन शब्दो मे देवकी के उदात्त चरित्र की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है—

'आर्य नारी सती ! तुम धन्य हो। इसी गौरव से तुम्हारे देश का सिर ऊँचा रहेगा।'

'ध्रुवस्वामिनी' की कोमा विनम्रता, समर्पण, त्याग, करुणा, दैन्य आदि परम उदात्त गुणो के निदर्शन से भारतीय सस्कृति का स्वरूप अभिव्यक्त करती है । 'वह जीवन-मधु की अनुभूति से सचलित है ।' अभावमयी अपनी लघुता मे वह इसीलिए स्वय को महत्वपूर्ण नही दिखाना चाहती क्योकि वह 'रूठने के सुहाग' से वचित रही है। प्रणय के पन्थ की अनुगामिनी होकर उसे उत्पीडन, निराशा और उपहास ही मिला है। फिर भी सब कुछ दैन्य और त्याग के बल पर सहती हुई वह अपने प्रेम का सफल निर्वाह करती है। शकराज के प्रति उसकी एकनिष्ठा अनन्य है, परन्तु उसके राजनीतिक प्रतिशोध का विरोध करना भी वह नही भूलती तथा पिता के आत्म सम्मान के लिए अपने प्रणय का त्याग भी कर देती है। परन्तु शकराज की मृत्यु के उपरान्त जिस 'विश्वास भरे दैन्य के साथ वह ध्रुव देवी के पास जाती है, उसी में स्त्रीत्व का शाश्वत रूप प्रकट होता है। इस स्थल पर सम्पूर्ण दार्शनिकता को पराजित करता हुआ उसका अखण्ड नारीत्व जागता दिखाई पड़ता है[1] ।

१—जगन्नाथ प्रसाद शर्मा : प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २२५ ।

इसी प्रकार से विशाख की चन्द्रलेखा स्वाभाविक सरलता एवं प्राणी मात्र के प्रति सहज सहानुभूतिपूर्ण भावना को लिए अवरित होती है। वह महापिंगल और राजा नर देव का आतिथ्य करती है। परन्तु प्रवचनापूर्ण व्यवहार के विरोध मे उसके सतीत्व का तेज भी दृष्टिगत होता है। इसी मे घली-मिली उसकी सम्मान-भावना भी निहित है। सत्यशील के प्रलोभनो को ठुकरा कर वह अपने चरित्र की पवित्रता, उज्ज्वलता को मुखरित करती है। साथ ही प्रेम की अनन्यता भी उसके स्वभाव का एक विशेष गुण बन कर प्रकट हुई है।

—जगन्नाथ प्रसाद शर्मा . प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ १९१।

वटुष्टमा शान्त, उदार और न्यायपूर्ण भावनाओ से युक्त सात्विक भावपूर्ण नारी है। भारतीय सती नारी का आदर्श रूप उसके चरित्र मे देखा जा सकता है।

इसी प्रसग मे मणिमाला और सरमा के चरित्र भी उपस्थित किए जा सकते हैं। ये दोनो ही जातीय गौरव की साकार उत्साहमयी तेजपूर्ण प्रतिमाएं है। मणिमाला नाग-कन्या है, परन्तु आर्य-सस्कृति से विशेष प्रभावित है। उसके चरित्र मे करुणा, उदारता, विश्व-मैत्री आदि उदात्त भावनाओ को अभिव्यक्ति मिली है। अतिथि सेवा, विपन्न-रक्षा आदि उसकी साधना के मुख्य विषय रहे है। विश्व-मैत्री के महान् आदर्श को लेकर वह अपने पिता को समझाती है—

'पिताजी जब आर्यों ने इधर उपद्रव बन्द कर दिया है, और वे एक दूसरे रूप में सन्धि के अभिलाषी हैं, तब आप फिर युद्ध के लिए क्यो उत्सुक है ?'

—जनमेजय का नाग यज्ञ, पृष्ठ ८४।

सरमा कुकुर वशीया यादवी है जो नाटक मे अपनी सम्पूर्ण तेजस्विता और निर्भीकता के साथ प्रकट होती है। नागो की वीरता से प्रभावित होकर वह आत्म-समर्पण कर देती है। परन्तु मनसा के द्वारा किए गये जातीय अपमान को सहन नही कर सकती। उसके चरित्र मे जातीय अभिमान के साथ साथ पतिपरायणता भी उच्चकोटि की है। जो उसका स्वस्थ साँस्कृतिक रूप प्रस्तुत करती है—

'नाथ, अभिमान से मैं अलग हू, किन्तु स्नेह से अभिन्न हू। रमणी का अनुराग कोमल होने पर भी बडा दृढ होता है। प्राणेश्वर ! इस निर्जन वन मे तुम्हारी अप्रत्यक्ष मूर्ति के चरणो पर अभिमानिनी सरमा लोट रही है। देवता ! तुम सकट मे हो, यह सुन कर भला मै कैसे रह सकती हू। मेरा अश्रु-जल समुद्र बन कर तुम्हारे और शत्रु के बीच गर्जन करेगा। मेरी शुभ कामना तुम्हारा वर्म बन कर तुम्हे सुरक्षित रखेगी।'

—जनमेजय का नाग यज्ञ, पृष्ठ ६६।

भारतीय सास्कृतिक वातावरण की पृष्ठभूमि मे ऐतिहासिक कल्पना के माध्यम

प्रसाद जी ने नारी-सम्बन्धी जिन उदात्त गुणो की अभिव्यक्ति की है, उनकी विवेचना हम उपर्युक्त पक्तियो मे कर आए हैं। नारी-जाति के गौरव को उच्चतर भाव-भूमि प्रदान करने के क्षेत्र मे उनकी इस कल्पना का योग स्तुत्य है। समाज की उन्नति के लिए नारी का उदात्त गुणो से पूर्ण होना आवश्यक है, तभी उससे सामाजिक एवं राष्ट्रीय हितो की सुरक्षा और विस्तार की आशा की जा सकती है। प्रसाद जी ने इसी भावना को ध्यान मे रख कर उदात्त नारी चरित्रो को ही राष्ट्रीय योजनाओ के क्षेत्र मे अवतीर्ण कराया है। दूसरे, सस्कृति के मूलभूत आदर्शो और सिद्धान्तो के आरक्षण के लिए भी इस उदात्त भाव की अभिव्यक्ति और स्थापना आवश्यक हो जाती है। प्रसाद जी का इस दिशा मे यह प्रयत्न राष्ट्रीय हित के क्षेत्र मे उनकी दूरगामी दृष्टि का परिचायक है।

राष्ट्रीय स्वरूप

प्रसाद-युग वस्तुतः राष्ट्रीय चेतना के विकास का युग रहा है। इस काल में राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रो मे गाधी जी द्वारा नवीन राष्ट्रवादी सिद्धान्तो की स्थापना हो रही थी। उन्होने ही नारी वर्ग को व्यावहारिक रूप मे राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया और देश ने उनके सहयोग की आवश्यकता समझ उन्हे राजनीतिक क्षेत्र मे निमन्त्रण देकर उनकी सेवाओ का लाभ उठाया। गाधी जी द्वारा नारी को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने का जो कार्य व्याख्यानो, सस्थाओ और व्यावहारिक योजनाओ द्वारा किया गया, वही कार्य प्रसाद जी ने भी अपने साहित्य के माध्यम द्वारा सम्पन्न किया। एक प्रकार से इस दिशा मे प्रसाद जी साहित्यिक क्षेत्र के गाधी है। नारी के उदात्त स्वरूप की कल्पना के साथ-साथ उसे राष्ट्रीय रगमच पर राष्ट्रीय सेवाओ के लिये अग्रसर करने की योजना प्रसाद जी के साहित्य, विशेषत· नाटक साहित्य की अन्यतम विशेषता है। प्रसाद जी के सभी मुख्य नाटको मे नारी के इस गौरवमय राष्ट्रीय स्वरूप के भव्य दर्शन होते हैं जहा वह देश सेवा के व्रत मे तत्पर पुरुष की सहचरी और सहयोगिनी के रूप मे राष्ट्रीय योजनाओ मे भाग लेती दिखाई पडती है। नारी को विस्तृत क्षेत्र मे अधिकार देने के विषय को लेकर प्रसाद जी की धारणा मे बहुत विकास हुआ मालूम होता है। अजातशत्रु मे वे विश्व मे सब कर्म सबके लिये नहीं मानते। उनमे वे विभागो की योजना करते हैं, परन्तु अपने उत्तरकालीन नाटको में उन्होने नारी को सभी स्थान पर पुरुषो के समान ही समान अवसर और अधिकार प्रदान किये है। मूलत· प्रसाद जी नारी और पुरुष के कर्तव्य क्षेत्र को अलग-अलग मान कर चले है, परन्तु आवश्यकता और परिस्थिति के समय यदि नारी का सहयोग पुरुष-क्षेत्र मे वाछनीय और आवश्यक हो जाता है तो प्रसाद जी उसका सबल समर्थन करते हैं। राष्ट्रीय जागृति और स्वतन्त्रता प्राप्ति के अपने युग मे यदि उन्होने नारी का राष्ट्रीय रूप अपनी पूर्ण उज्ज्वलता के साथ चित्रित किया है, तो उसमे यही

भावना प्रमुख रही है कि इस आवश्यकता के काल मे देश को नारी के सहयोग और शक्ति की परम आवश्यकता है और उसे भी राष्ट्र की स्वतन्त्रता प्राप्ति की दिशा मे राष्ट्रवादी के रूप मे अपने कर्तव्य का निर्वाह करना चाहिए। प्रसाद जी के राष्ट्रीय नारी पात्रियो के चरित्र मे इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है।

प्रसाद-साहित्य के नारी पात्रो मे राष्ट्रीय भावना का चरम विकास अलका के चरित्र मे प्रतिबिम्बित हुआ है। अलका चन्द्रगुप्त और सिंहकिरण की सुनी बातो से प्रभावित होकर राष्ट्रीय सेवा के लिए उद्यत होती है। अपने पिता और भाई आम्भीक को राष्ट्र-द्रोह मे हाथ बटाते देख कर उसका मन विद्रोह कर उठता है। उसका यह विद्रोह इन शब्दो मे प्रकट हुआ है—

महाराज ! मुझे दण्ड दीजिए, कारागार मे भेजिए; नही तो मैं मुक्त होने पर भी यही करूगी। कुलपत्रो के रक्त से आर्यावर्त की भूमि सिंचेगी। दानवी बन कर जननी जन्म भूमि अपनी सन्तान को खाएगी। महाराज ! आर्यावर्त के सब बच्चे आम्भीक जैसे नही होगे। वे अपनी मान प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल-मिल कट जायेंगे।'

—चन्द्रगुप्त पृष्ठ ८८।

देश-प्रेम अलका के जीवन की सर्वप्रथम साधना है। यही उसका प्राण है, और वही स्थिति। सिल्यूकस से वह कहती है—

'मेरा देश है, मेरे पहाड हैं, मेरी नदिया हैं और मेरे जगल हैं। इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्ही परमाणुओ से बने हैं।'

—वही, पृष्ठ ९२।

उसका यह देश-प्रेम त्याग और निःस्वार्थ भावना की नीति पर आधारित है। यही उसके कार्यों का सचालक है। इसी के लिए वह नटी बनती है। देशोद्धार के प्रयत्न में ही उसे बन्दी भी बनना पड़ता है। सिंहरण के प्रति आसक्ति के मूल मे भी यह राष्ट्र प्रेम की भावना प्रमुख है। वह अपने प्रिय की वीरोचित देशभक्ति पर मुग्ध है। इसीलिए युद्ध मे भी उसकी सहायता करती है। उससे प्रेम करती है और जीवन की प्रत्येक स्थिति मे उसका साथ देती चलती है। युद्ध मे आहत घायलो की सेवा तथा मालव दुर्ग की रक्षा का भार उसके बहु विस्तृत व्यक्तित्व का परिचय देता है। वह सिंहरण के लिए उत्साह और शक्ति बन कर अवतीर्ण होती है—

'मालव वीर, तुम्हारे मनोबल मे स्वतन्त्रता है, और तुम्हारी दृढ़ भुजाओ में आर्यावर्त के रक्षण की शक्ति है, तुम्हे सुरक्षित रहना ही चाहिए। मैं भी आर्यावर्त की बालिका हूं मैं आम्भीक को शक्ति भर पतन से रोकूगी, परन्तु उसके न मानने पर

तुम्हारी आवश्यकता होगी। जाओ वीर।'

—चन्द्रगुप्त, पृष्ठ ६१।

तक्षशिला मे राष्ट्रीय उत्साह का विस्तार करती हुई वह नागरिको के हृदय मे देश-प्रेम की प्रेरणा का मन्त्र फूँकती दिखाई पड़ती है—

'असख्य कीर्ति रश्मिया
विकीर्ण दिव्य दाह सी
सपूत मातृभूमि के
रुको न शूर साहसी।'
अराति सैन्य सिन्धु मे—सुवाड्वाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो—बढे चलो, बढे चलो।'

—चन्द्रगुप्त पृ० १९४

इस प्रकार के स्वदेशानुराग, साहस, वीरता, सेवा और चातुर्य भाव से आपूर्ण अलका 'चन्द्रगुप्त' की महीयसी, व्यक्तित्व प्रधान नारी-पात्र के रूप मे प्रकट हुई है।

'स्कन्दगुप्त' की जयमाला इस प्रसग मे दूसरा राष्ट्रीय चरित्र है, जिसमे क्षात्र तेज, बल, साहस और देश के प्रति असीम निष्ठा की भावना विकसित हुई है। वह अपने इस गौरव को अभिव्यक्ति प्रदान करती हुई विजया से कहती है—

'श्रेष्ठि कन्ये! हम क्षत्राणी हैं, चिरसगिनी खड्ग लता से हम लोगों का चिर-स्नेह है[1]।'

भीम वर्मा से इसी प्रसग मे उसका यह कथन कितना ओजपूर्ण है—

'वीर! स्त्रियो की, ब्राह्मणो की, पीड़ितो और अनाथो की रक्षा मे प्राण विसर्जन करना क्षत्रियो का धर्म है। एक प्रलय की ज्वाला अपनी तलवार से फैला दो। भैरव के शृ गीनाद के समान प्रबल हुकार से शत्रु हृदय कँपा दो। वीर! बढो, गिरो तो मध्याह्न के भीषण सूर्य के समान। आगे, पीछे सर्वत्र आलोक और उज्ज्वलता रहे[2]।'

अपने इस वीरोचित साहस के साथ-साथ वह पुरुष की प्रेरणा और साहस भी बनती है। शको और हूणो की सम्मिलित वाहिनी से युद्ध करने मे अनमयस्क अपने पति पर वीरतापूर्ण व्यग्य करती हुई वह कहती है—

'नाथ! तब क्या मुझे स्कन्दगुप्त का अभिनय करना होगा? क्या मालवेश को दूसरे की सहायता पर ही राज्य करने का साहस हुआ था? जाओ प्रभु! सेना

१—स्कन्दगुप्त, पृ० ४६।
२—वही, पृ० ४८।

लेकर सिंह विक्रम से सेना पर टूट पडो। दुर्ग रक्षा का भार मैं लेती हू।'

—स्कन्दगुप्त, पृ० ४५

जयमाला 'सर्वात्मा के स्वर मे अपने विशिष्ठ व्यक्तित्व का लय करने मे' स्वभाव से ही तत्पर है। उसमे उत्साह, स्वावलम्ब और गौरव का विस्तार प्रभूत मात्रा मे विद्यमान है। युद्ध उसके लिए गान है, ध्वसमयी महामाया प्रकृति का निरन्तर सगीत है। यह वीरोचित स्वभाव उसके—व्यक्तित्व को श्रेष्ठता प्रदान करता है, जिसके द्वारा वास्तविक रूप मे क्षात्र तेज से आलोकित नारी-जीवन का गौरवपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है।

'अजातशत्रु' की मल्लिका मे उदात्त गुणो की पृष्ठभूमि के मध्य उसके राष्ट्रीय स्वरूप के भी दर्शन होते है। पति के प्रति षड्यन्त्र की बात जान कर भी उन्हे कर्त्तव्य विमुख न करने मे राष्ट्रीय कर्त्तव्य का निर्वाह करने की भावना भी सामान्य नही है।

'स्कन्दगुप्त' की देवसेना आत्म-सम्मान के साथ-साथ देश-प्रेम से ही प्रेरित होकर स्कन्दगुप्त के उस प्रणय प्रस्ताव का विरोध करती है, जिसमे उसने किसी कानन के कोने मे, उसे देखते हुए जीवन के दिन व्यतीत करने की इच्छा प्रकट की थी। राष्ट्रीय गगन का एकमात्र नक्षत्र उसके निमित्त अपने कर्त्तव्य निर्वाह का पुनीत आचरण छोड दे, इससे बढ़कर हीनता और लज्जास्पद बात उसके लिए और क्या हो सकती है? स्कन्दगुप्त को कर्त्तव्य की प्रेरणा देते हुए वह कहती है –

'मालव का महत्व तो रहेगा ही, परन्तु उसका उद्देश्य भी सफल होना चाहिए। आपको अकर्मण्य बनाने के लिये देवसेना जीवित न रहेगी। सम्राट् क्षमा हो।'

—स्कन्दगुप्त, पृ० १४०

देश के कल्याण के लिए राज-त्याग और इससे भी विशेष अपने प्रणय का बलिदान, उसके राष्ट्रीय स्वरूप के साथ-साथ उसके व्यक्तित्व को निर्मल करुणा की चन्द्रिका मे भिगो देता है। इसीलिए उसकी यह राष्ट्रीय भावना उदात्त एकान्तिक प्रेम और सगीत कल्पना की भारी भीड मे नन्हे शिशु सी कही खो गई है।

'मालविका' सिन्धु देश की निवासिनी 'चन्द्रगुप्त' की उदात्त पात्री है। स्नेह और सेवा से अभिभूत अपूर्व करुणा उसके चरित्र की विशिष्ठ निधि है। इन्ही मे घुला-मिला उसका राष्ट्रीय स्वरूप व्यक्त हुआ है। राष्ट्र के लिए जीवन की आहुति देने वाले वीरो से उसका सम्पर्क है। वह उन्ही की सेवा में संलग्न होती है। इस सेवा मे ही उसकी राष्ट्रीय सेवा प्रच्छन्न रूप से अभिव्यक्त हुई है।

कमला भी इसी कोटि की पात्रा है। जो अपने पुत्र भटार्क के राजद्रोह से

क्षुब्ध है। दूसरे मातृत्व रूप मे ही उसकी राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्ति मिलती है। अपने पुत्र के लिए उसकी यह सत्कामना कितनी भावपूर्ण है—

'सोचा था कि पुत्र देश सेवक होगा, मलेच्छो से पद-दलित भारत भूमि का उद्धार करके मेरा कलक धो डालेगा।'

कुम्भा के तीव्र प्रवाह से निकलने पर निरुत्साहित हुए स्कन्दगुप्त को कमला के शब्दो से ही धैर्य मिलता है। वह कहती है—

'कौन कहता है कि तुम अकेले हो। समग्र ससार तुम्हारे साथ है। स्वानुभूति को जागृत करो। तुम्हारे प्रचण्ड और विश्वासपूर्ण पदाघात से विध्य के समान कोई शैल खण्ड खडा होगा, जो इस विघ्न स्रोत को लौटा देगा। राम और कृष्ण के समान क्या तुम भी अवतार नही हो सकते ? उठो स्कन्द ! आसुरी वृत्तियो का नाश करो, सोने वालो को जगाओ और रोने वालो को हसाओ।'

—स्कन्द गुप्त पृ० १३०

रमा' अपने पति को उसके दुष्कृत्यो के लिए प्रताडित करती है। देवकी के लिए, जिसका नमक खाकर उसके शरीर का पोषण हुआ है, उसका मन असीम निष्ठा और सेवा-भाव से आपूर्ण है। उसकी इस निष्ठा और सेवा-भावना मे ही उसके चरित्र का राष्ट्रीय तत्व छिपा हुआ है।

आर्य सस्कृति से प्रभावित नागकन्या—मणिमाला के चरित्र मे राष्ट्रीय भावना जातीय उत्साह के रूप मे प्रकट हुई है। उसमे युद्धोत्साह है तथा राजनीतिक एवं सास्कृतिक रूप की भावना को लेकर ही वह जनमेजय के प्रणय मे बँधती है।

मनसा मे जातीय अभिमान की मात्रा कम नही है। यह ठीक है कि इसका चरित्र स्वस्थ भावभूमि पर लोक कल्याण की कामना से पूर्ण नही है, फिर भी जातीय गौरव उसके द्वारा गाये हुए गीत मे प्रकट हुआ है। नागवीरो को उत्साहित करती हुई वह कहती है—

धिक्कार और अवहेलना की बलिहारी
सचमुच तुम सब हो पुरुष या कि नारी
चल जाय दासता की न कही यह छलना
देखते तुम्हारे लाछित हो कुल ललना
जातीय क्षेत्र मे अयश बीज बोते हो
क्यों निज स्वतन्त्रता की लज्जा खोते हो।

—जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ८३

प्रसाद जी ने अपनी कतिपय कहानियो मे भी राष्ट्रीय प्रेम की इस भावना

का निदर्शन किया है। 'पुरस्कार' की मधूलिका के चरित्र मे यही राष्ट्रीय भावना व्यक्त हुई है। अपने पितामह की भूमि को वह विदेशियो के अधिकार मे नही देख सकती। चाहे वह विदेशी उसका प्रणयी ही क्यो न हो।

फिर सहसा सोचने लगी—'वह क्यो सफल हो ? श्रास्वती दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यो चला जाय ? मगध कौशल का चिर-शत्रु। ओह ! उसकी विजय ! कौशल नरेश ने क्या कहा था—सिंहमित्र की कन्या ?'

—आंधी, पृ० १२३

इसी प्रकार से 'सिंदूर की शपथ'[1] मे मिंगलौर दुर्ग की महिलाएं अपने दुर्ग की रक्षा के लिए जीवन देकर अपना धर्म अक्षुण्ण बनाये रखती हैं।

उनकी कविता 'प्रेम राज्य' मे भी राष्ट्रीय भावना को देखा जा सकता है। सैनिक की पत्नी राष्ट्र और राजा के प्रति अपने पति के कर्त्तव्य-निर्वाह की इस शिथिलता को नही सह पाती और उसे एक अवहेलनापूर्ण पत्र लिखकर स्वय आत्म-ग्लानि से विदग्ध, आत्म-हत्या कर लेती है—

पढ्यौ ताहि, नहिं अहौ हो तुम पती हमारे
तुम्हारे सम्मुख महाराज, किमि स्वर्ग सिधारे
तुम आशामय बाला को, लीन्हे हिय षोखौं
तुमहि क्षमा हित स्वर्ग-माहिं महराजहि तोखौ।

—चित्राधार, पृ० ७८

प्रसाद के नाटको में विजया और कल्याणी के चरित्र मे भी राष्ट्रीय स्वरूप के दर्शन होते हैं। परन्तु इन दोनो मे स्वस्थ राष्टीय भावना का अभाव है। विजया स्कन्दगुप्त को प्राप्त करने और स्वार्थ सिद्धि के लिए राष्ट्रीय क्षेत्र मे अवतीर्ण होती है। ऐसे अवसर पर उसका महत्वाकाक्षामय विलासी रूप एकदम विलुप्त होकर, नया तेजोमय स्वरूप ग्रहण कर लेता है। मातृगुप्त को प्रेरणा देती हुई वह कहती है—

'सुकवि शिरोमणि ! ... ... गा चुके कोमल कल्पनाओ के लचीले गान, रो चुके प्रेम के पचडे ? एक बार वह उद्बोधन गीत गा दो कि भारतीय अपनी नश्वरता पर विश्वास करके अमर भारत की सेवा के लिए सन्नद्ध हो जायें।'

—स्कन्दगुप्त, पृ० १२६

परन्तु विजया की इस भावना मे एक स्वार्थपूर्ण आवेग ही है। अपनी असफलता के क्षण मे वह निराश होकर आत्म-हत्या करती है, देश के लिये आत्मोत्सर्ग नही।

१— छाया मे सकलित।

विजया की भाति कल्याणी भी पर्वतेश्वर से प्रतिशोध लेने और चन्द्रगुप्त की भव्य मूर्ति के दर्शन करने की कामना स ही पचनद के युद्ध मे भाग लेती है । अपने पिता नन्द से वह कहती है—

'मै पर्वतेश्वर के गर्व की परीक्षा लू गी । मैं वृषल कन्या हू । उस क्षत्रिय को यह सिखा दू ंगी कि राजकन्या कल्याणी किसी क्षत्राणी से कम नही ।'

—चन्द्रगुप्त, पृ० ७५

इसी प्रकार उसकी अन्य स्वार्थ-कामना भी उसके ही शब्दो मे प्रकट होती है । पचनद युद्ध मे चन्द्रगुप्त द्वारा उसके युद्ध मे भाग लेने की बात पूछने पर वह कहती है —

'केवल तुम्हे देखने के लिये । मैं जानती थी कि तुम युद्ध मे अवश्य सम्मिलित होगे ।'

—चन्द्रगुप्त, पृ० ११३

परन्तु अपनी स्वार्थ-परता की दुर्बलता मे उसकी कोई भी कामना पूर्ण नही हो पाती और उसका राष्ट्रीय स्वरूप मात्र प्रदर्शन की वस्तु से अधिक महत्व नही रखता ।

इस प्रकार प्रसाद जी के सास्कृतिक पात्रो मे राष्ट्रीयता का गुण कूट-कूट कर भरा हुआ है । आर्य जाति के जीवन मे समय-समय पर प्रतिष्ठित आदर्श उनके साहित्य की आकर्षण व्यजना के विषय बने हैं । जातीय गौरव, राष्ट्रीय प्रेम और विश्व-कल्याण कामना आदि उदात्त वृत्तियो से उनकी नारिया गौरवान्वित हैं । वे अपनी सत्प्रेरणा से पुरुषो का भी प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन करती है[1] । वास्तव मे देश प्रेम और राष्ट्रीय गौरव के प्रति प्रसाद जी की चिन्ता इन उपर्युक्त चरित्रों के माध्यम से स्पष्ट भाव-भूमियो मे प्रतिष्ठित हुई है । उनका यह राष्ट्रीय प्रेम अन्धा और सकीर्ण प्रेम नही है, इसीलिए उसका निदर्शन उदात्त गुणो के परिपार्श्व मे किया गया है । उनके सम्पूर्ण साहित्य पर राष्ट्रीय सस्कृति की छाप स्पष्ट है[2] ।

१ — जगदीश नारायण दीक्षित, प्रसाद के नाटकीय पात्र, पृ० १० ।
२—प० नन्ददुलारे वाजपेयी जयशकर प्रसाद, पृ० १६१ ।

प्रकरण—११

प्रसाद की नारी—दार्शनिक पीठिका

(अ) आरम्भ

(ब) दार्शनिक भाव-भूमि

(स) नवीन आदर्श

(क) प्रेम सम्बन्धी आदर्श

(ख) कर्त्तव्य सम्बन्धी आदर्श

(ग) सेवा-समर्पण का आदर्श

(घ) सौन्दर्य सम्बन्धी आदर्श

आरम्भ

पिछले प्रकरणो मे हम सामाजिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक परिपार्श्व मे प्रसाद जी के नारी पात्रो की विवेचना कर आए है। इन सभी क्षेत्रो मे नारी को उच्चतर, सम्मानपूर्ण स्थिति प्रदान करने का प्रयास रहा है। और अनुकूल वातावरण तथा परिस्थिति का निर्माण कर प्रसाद जी ऐसा करने मे पूर्ण सफल भी हुए है। परन्तु उनकी नारी-भावना का मूल्य और महत्व नारी को दार्शनिक स्वरूप प्रदान करने के क्षेत्र मे और भी बढ जाता है। वास्तव मे प्रसाद जी ने भिन्न भिन्न भाव भूमियो पर नारी पात्रो का चित्रण कर उनकी स्थिति के क्रमिक विकास की योजना की है। उनकी आखो मे नारी को सर्व मगला, सर्वोच्च, आनन्दवाद की अधिष्ठात्री के रूप मे देखने का एक मोहक श्रद्धामय स्वप्न पला था, जिसे उन्होंने उसके दार्शनिक स्वरूप मे प्रकट किया है।

और भी एक बात है। प्रसाद जी का युग प्रगतिवादी मान्यताओ से प्रेरित नए चरण के विकास का युग रहा है। इस काल मे समाज मे स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृ भाव के आदर्शों की प्रतिष्ठा का प्रयत्न हो रहा था। व्यक्ति की स्वतन्त्रता का मूल्य आँका जाने लगा था और मानवतावाद की भावना बल पकड़ रही थी। मानवतावाद के इस बढते हुए प्रहर,मे सदियो से उपेक्षित प्रताड़ित और हताश नारी-वर्ग के प्रति लोगो का ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होने सामाजिक व्यवस्था, राष्ट्रीय योजना तथा साहित्यिक क्षेत्र मे नारी की महत्ता का प्रतिपादन किया। साहित्यिक दृष्टि से इस दिशा मे नारी का योगदान अपूर्व रहा है। नारी को दार्शनिक स्वरूप प्रदान करने के क्षेत्र मे उनके शैव-दर्शन सम्बन्धी अध्ययन का विशेष हाथ रहा है। पहले हम नारी के दार्शनिक स्वरूप की इस प्रेरणा भूमि से सम्बन्धित सामान्य संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करेगे।

ऋग्वेद मे शिव के रुद्र रूप की चर्चा हुई है। परन्तु अपने रुद्र रूप में वे अनन्त शक्ति से सम्पन्न बताये गए हैं।

—ऋगवेद २।३३

शैव-दर्शन मे ३६ तत्वो की विवेचना हुई है। परन्तु सभी का विकास शिव

की माया शक्ति से माना गया है। माया शक्ति के बिना शिव की महत्ता का प्रतिपादन नहीं हो पाता।

इसके अन्य रूप लिंगायत दर्शन में भी शक्ति विशिष्ठ शिव को ही परम सत्य माना गया है। शक्ति विहीन शिव अपूर्ण है।

प्रसाद जी पर शैव दर्शन के अन्य स्वरूप प्रत्यभिज्ञादर्शन का विशेष प्रभाव पड़ा है। इस दर्शन के प्रवर्तक आचार्य वसु गुप्त हैं। इस दर्शन के अनुसार आत्मा अपनी इच्छा पूर्वक स्वतन्त्र रूप से अपनी भीत्ति पर ही विश्व का उन्मीलन करती है। विश्व के इस विकास के विषय को लेकर आत्मा का शक्ति रूप भी माना गया है जो उस परमात्मा या परम शिव से पूर्णतया अभिन्न है। यह चिद् शक्ति यद्यपि अनन्त रूपा है, फिर भी उसके पाँच रूप प्रमुख है—चिद्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया।' जिस तरह स्त्री तत्व और पुरुष तत्व के योग में साधारण संतति की उत्पत्ति होती है, उसी तरह प्रत्यभिज्ञादर्शन में भी आनन्द रूपी शक्ति एवं चित् रूप को सोम तत्व तथा अग्नितत्व एवं नाद तथा विन्दु कह कर दोनों के पारिवारिक संघठनात्मक सामरस्य से सम्पूर्ण विश्व का विकास सिद्ध किया गया है। परन्तु इस आनन्द रूपा शक्ति को, जिससे विश्व की सृष्टि होती है, शैव दर्शन में काम कला के नाम से अभिमत किया गया है। प्रसाद जी ने इसे अपने काव्य में प्रेम-कला का नाम दिया है—

यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला
उसका संदेश सुनाने को
संसृति में आई वह अमला।

—कामायनी, पृष्ठ ७६।

प्रत्यभिज्ञादर्शन में विवेचित ३६ तत्वों में दूसरा तत्व शक्ति है। शक्ति तत्व शिव का अभिन्न अंग है। ये दोनों तत्व शाश्वत है और एक रूप होकर साथ रहते हैं। न शिव शक्ति रहित है, और न शक्ति, शिव से पृथक।

—शिव दृष्टि, पृष्ठ ६६।

यहीं पर विशेष दृष्टव्य यह है कि शिव तत्व प्राण रूप में विद्यमान रहता है। शक्ति तत्व उस प्राण पर नियन्त्रण करने वाला या उसमें व्यवस्था को बनाए रखने वाला माना जाता है।

—कश्मीर शैविज्म, पृष्ठ ६५।

प्रत्यभिज्ञादर्शन में शक्ति शिव की सृजन-शक्ति के रूप में अवतरित हुई है। इसीलिए उसमें अभेदत्व का भाव विशिष्ठ है।' शिव प्रकाश रूप है, शक्ति विमर्शरूपिणी।

विमर्श का अर्थ है पूर्ण अकृत्रिम अहम् की स्फूर्ति[1] ।' इसी प्रसग मे आचाय सोमानन्द का कथन है कि शक्ति से सम्पन्न शिव ही अपनी इच्छा से पदार्थों का निर्माण करता है । शक्ति तथा शिव मे भेद की कल्पना कदापि नही की जा सक्ती[2] ।

दार्शनिक भावभूमि

प्रसाद जी ने शिव-शक्ति के उपर्युक्त स्वरूप की भाव-भूमि पर ही नारी की दार्शनिक कल्पना की है । उसे महाचिति कह कर सदैव लीलामयी, आनन्द दायिनी, जगत की निर्मात्री तथा इच्छा, ज्ञान और क्रिया रूपिणी कहा है[3] । उनके इस दर्शन के आधार पर नारी सृष्टि और विश्व बधुत्व भावना की पोषिका सर्वमगला, मानवता वाद की अधिष्ठात्री, आनन्द पथ की निर्देशिका, शक्तिमयी, समरसता की प्रसारिका, हृदय और बुद्धि की समन्वयिका, पुरुष की पूर्णता, प्रेरणा तथा उद्धारकर्त्री तथा जीवन का रहस्य बतलाते हुए श्रद्धावाद की स्थापना करने वाली है ।

प्रसाद जी नारी को व्यापक, विशुद्ध और विश्वास मयी स्वरूप मे ससृति का रहस्य मानते हैं[4] ।' उसका मूल स्वरूप श्रद्धामय है, जिसके द्वारा जीवन के सुन्दर समतल मे पीयूप वर्णन होता है—

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत पग तल मे
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल मे

—कामायनी ।

वह विश्व की मगल-कामना करती हुई मानव मात्र के प्रति शान्ति और समृद्धि का सदेश देती है । 'अजातशत्रु' की वासवी विश्व-कुटुम्ब का स्वप्न देखती है ।

'भगवन, क्या कभी वह भी दिन आएगा, जब विश्व भर मे एक कुटुम्ब स्थापित हो जाएगा, और मानव-मात्र स्नेह से अपनी गृहस्थी सभालेगे ।'

—पृष्ठ १३२ ।

मानव-मात्र के प्रति ही नही, प्राणी मात्र के प्रति नारी के मन मे सुहृदयता का भाव निहित है । श्रद्धा पशु हिंसा का विरोध करती हुई मनु से कहती है—

१—भारतीय दर्शन, पृष्ठ ६०६ ।

२—भारतीय दर्शन, पृष्ठ ६०७ ।

३ – कामायनी, पृष्ठ ६३ ।

४—कामायनी, पृष्ठ १६६ ।

वे द्रोह न करने के स्थल हैं
जो पाले जा सकते सहेतु
पशु से यदि हम कुछ ऊंचे हैं
तो भव-जलनिधि मे बने सेतु ।

—पृष्ठ १४७।

व्यक्ति का प्रेम व्यष्टि से आरम्भ होकर विस्तृत भाव-भूमि मे विकसित होते हुए समष्टि की ओर अग्रसर होता है। आत्म-विस्तार की इस योजना मे एक दिन सम्पूर्ण विश्व कुटुम्बवत् दिखाई देने लगता है, श्रद्धा के चरित्र में इसी व्यष्ठि प्रेम का समष्टि प्रेम में पर्यवसान हुआ है। प्रसाद जी के मत से नारी अपनी उदात्त भावनाओ के विस्तार में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की आदर्श-स्थापना कर सकती है । स्त्री रूप मे वह दया, माया, ममता की मूर्ति है। स्नेह का बल है और इसीलिए प्राणी-मात्र के प्रति उसके मन मे सौहार्द और सवेदना की भावना निहित है। इसी संवेदना का विकास उसके मगलकारी स्वरूप का उद्घाटन करता है। श्रद्धा चेतना का वास्तविक रूप, मातृमूर्ति विश्व-मित्र है, लोक कल्याण की प्रचारिका तथा विश्व मैत्री की सदेशवाहिका है। विश्व बन्धुत्व की कामना से प्रेरित, तभी तो वह मनु से कहती है—

अपने मे सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा ।

—कामायनी, पृष्ठ १३२ ।

वह जीवन के सुखों को सभी मे विकसित देखना चाहती है—

औरो को हंसते देखो मनु
हंसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत करलो
सबको सुखी बनाओ ।

—कामायनी, पृष्ठ १३२ ।

और इसी मंगल कामना में वह स्वयं दुख सहने के लिये तत्पर है। परन्तु अन्य प्राणियों को सुखी करना उसका जीवन का चरम लक्ष्य है। उसकी इस उदात्त प्रवृति के कारण ही मनु उससे कहते हैं—

'हे सर्व मंगले ! तुम महती
सबका दुख अपने पर सहती'

—पृष्ठ २४६।

उसका यह मगल रूप इन पक्तियो मे और भी अधिक प्रस्फुटित हुआ है—

'वह कामायनी जगत की
मगल-कामना अकेली
थी ज्योतिष्मती प्रफुल्लित
मानस तट की बन बेली

—कामायनी, पृष्ठ २६० ।

इस प्रकार श्रद्धा की प्रत्येक गति मगल कामना से स्फूर्त है। श्रद्धा के नारीत्व मे इस विश्व-कल्याण और विश्व-मैत्री के भाव को अधिष्ठित कर प्रसाद ने नारी की महानता को पुरुष से अधिक ऊंचा उठा दिया है।

प्रसाद जी की नारी के दार्शनिक स्वरूप का दूसरा पहलू उसका मानवतावाद की अधिष्ठात्री होना है। पुरुष (मनु) नारी (श्रद्धा) के सयोग से अभिनव मानव की सृष्टि करता है। उन्होने नारी को कल्याण भूमि, सर्वमगला, सस्कृति का व्यापक रहस्य, विश्व-मित्र, सुहाग की वर्षा, अमृत धन आदि विशेषणो से अभिहित कर मानव जीवन की उच्चतम भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया है। सृष्टि के मूल कारण, काम की पुत्री होने से वह सृष्टि के विकास और परिचालन का स्वाभाविक कारण बनती है। इसीलिए वह तप से जीवन को अधिक महत्व प्रदान करती है—

'तप नही केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद'

जीवन का उल्लास और आशावाद मानवता की स्वस्थ स्थिति निर्माण करने में सहायक होता है—

'विश्व की दुर्बलता बल बने
पराजय का बढता व्यपार
हुसाता रहे उसे सविलास
शक्ति का क्रीड़ामय सचार'।

—कामायनी, पृष्ठ ५६।

पुरुष को मानवता के प्रसाद की प्रेरणा नारी से ही प्राप्त होती है। उसी की प्रेरणा से वह कर्मक्षेत्र मे अवतीर्ण होता है—

'बनो संसृति के मूल रहस्य
तुम्ही से फैलेगी वह बेल
विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुन्दर खेल'

—कामायनी, पृष्ठ ५७।

कामायनी मे मनु और श्रद्धा के रूप मे आधुनिक पुरुष और नारी का चित्रण हुआ है। वहीं नही शाश्वत पुरुषत्व और नारीत्व भी वही है। यहा नारी का स्थान विशिष्ठ है। पलायनवादी प्रवृति से आहत, उदासीन चेष्टाओ मे विभ्रमित मनु को कर्तव्य-पथ की प्रेरणा श्रद्धा ही से प्राप्त होती है। उसके द्वारा मनु को सुनाया गया जागृति—सदेश समस्त पथ-भ्रष्ट मानवता का पथ प्रशस्त करने के लिए सशक्त है—

'यह नीड मनोहर कृतियो का
यह विश्व कर्म रग स्थल है
है परम्परा लग रही यहा
ठहरा जिसमे जितना बल है'

—कामायनी, पृष्ठ ७५।

इलाचन्द्र जोशी के शब्दो मे कामायनी की रचना मानवता की उस चिरन्तन पुकार को लेकर हुई है जो आदि काल से चिर अमर-आनन्द और चिर-अमर शक्ति प्राप्त करने की आकाक्षा से व्याकुल है। इस घोर अहम्मन्यता पूर्ण दुर्दम आकाक्षा की चरितार्थता के प्रयत्न मे मानव को जिन सकट-सकुल गिरि-पथो, जिन जटिल जाल जड़ित गहन अरण्य प्रान्तरो तथा घोर अन्धाकाराच्छन्न कराल-रात्रियो का सामना करना पडता है, उसके सघात की वेदना कामायनी मे बिजली के शब्द सी कडकती हुई बोल उठी है[1]।'

कामायनी की विवेचना के प्रसग मे आचार्य वाजपेयी जी का यह कथन महत्व पूर्ण है—

'शताब्दियो के पश्चात् मानस का ऐसा सुन्दर चरित्र हमे देखने को मिला है। यहां मानवता का कल्याण कारी आदर्श कल्पना की जगह बुद्धि की नीव पर खडा किया गया है। और उस नीव मे श्रद्धा का रस है। श्रद्धा और बुद्धि से सतुलित जीवन

१—विनय मोहन शर्मा द्वारा 'कवि प्रसाद, आंसू तथा अन्य कृतियां' मे पृष्ठ ९६ पर उत्कथित।

की मगल दृष्टि से कामायनी की हमारे युग की अव्यवस्थित मानवता को बहुत बड़ी देन है[1]।'

कामायनी मे प्रसाद जी ने नारी का दार्शनिक स्वरूप व्यक्त किया है। कामायनी की रचना मे शैव-दर्शन के विशुद्ध आनन्दवाद की प्रेरणा और झलक है। प्रसाद जी का विश्वास है कि विश्व की उत्पत्ति आनन्द से होती है। और अवसान भी उसी मे। ससार का दुख-सुख मन का मनोविकार है, दृष्टि-दोष के कारण हमे सारा विश्व दुखमय ही दीख पडता है। वैसे यदि यथार्थ रूप से देखा जाय तो न तो ससार मे आलिप्त होने की आवश्यकता है, न उससे विरक्ति की ही। इसी ससार मे रहते हुए निरन्तर साधनाओ द्वारा शिवत्व की—विशुद्ध आनन्दवाद की—प्राप्ति की जा सकती है। और उस निसर्ग आनन्द की प्राप्ति के लिए नारी के पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता है।

प्रसाद जी की नारी पुरुष को पतन की ओर न ले जाकर उच्चता की ओर शीर्ष की, मगल की ओर ले जाती है। अपनी सत्वृत्ति की प्रेरणा से उसे जीवन की विभीषिकाओ मे से निकालती हुई आनन्द के शिखर तक पहुचा देती है। श्री रामनाथ सुमन ने नारी के इस आनन्द-प्रदायिनी रूप को यो व्यक्त किया है—

'विश्वात्मा के चिर-मगल का जो तत्व है वही शिव है। इसे यू भी कह सकते है कि शिव ही एक मात्र प्रेम या आनन्द का तत्त्व है, शक्ति इस आनन्द का स्फुरण है। शिव और शक्ति समुद्र की लहरो के समान एक है। शिव आनन्द और शक्ति प्रकृति के रूप मे व्यक्त है, जैसे शक्ति शिवमय है, वैसे ही प्रकृति भी आनन्दमय है[2]।'

श्रद्धा (नारी) की प्रेरणा से मनु (पुरुष) शक्ति ग्रहण करता है। और उसके स्वभाव की चचल प्रवृत्ति मे स्थायित्व का भाव आविर्भावित होता है। सृष्टि के सत्त्व तम और रज—ये तीन शक्ति सम्पन्न तत्त्व हैं, जो परस्पर विच्छिन्न होकर अनन्त, वैषम्य का वातावरण उत्पन्न करते हैं। इन तत्त्वों की पृथकता समाप्त होने पर ही शाश्वत और नित्य आनन्द का अभिषेक हो सकता है।' मनु को श्रद्धा ही कैलास पर्वत की ओर, जिसे हम आनन्द का प्रतीक मान सकते हैं, ले जाती है। इस आनद प्राप्ति के मार्ग की बाधाओ का विनाश श्रद्धा द्वारा ही होता है। मनु मे इन कठिनाइयों का

१—रामनाथ सुमन द्वारा-प्रसाद की काव्य साधना, पृष्ठ ९४० पर उत्कथित।

२—रामनाथ सुमन 'प्रसाद की काव्य साधना' पृष्ठ २४४ पर।

सामना करने का साहस तथा धैर्य नही है। तभी तो वह हताश से श्रद्धा से पूछते हैं—

'कहाँ ले चली हो अब मुझको
'श्रद्धे ! मैं थक चला अधिक हू
साहस छूट गया है मेरा
निस्सम्बल भग्नाश पथिक हू,'

मनु का जीवन इस दशा मे आध्यात्मिक असफलता मे आपूर्ण है। अतः उनका समस्त मानस नैराश्य और दुर्बलता की भावना से व्यापत है। इस समय उन्हे स्नेह और आश्वासन की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता को समझ कर श्रद्धा उनसे कहती है—

'घबराओ मत यह समतल है
देखो तो हम कहाँ आ गये
मनु ने देखा आंखे खोल कर
जैसे कुछ कुछ त्राण पा गए'

इसके साथ साथ चरम आनन्द का रहस्योद्घाटन भी पुरुषो को नारी द्वारा ही होता है।' पुरुष इच्छा, कर्म और ज्ञान के अंत मे लीन रहते हैं, और जब तक वे उसके फेर में है, तब तक उन्हे सच्चा आध्यात्मिक आनन्द और शान्ति प्राप्त नही हो सकती। इस त्रिपुर के रहस्यो की तालिका नारी के हाथ मे है। वही अपनी स्थिति के माध्यम से इच्छा कर्म और ज्ञान मे सामजस्य द्वारा विश्व की इस मरुभूमि मे सुख शान्ति की गगा प्रवाहित करती है'—

'ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से न मिल सके
यह बिडम्बना है जीवन की'

—कामायनी, पृष्ठ २७२।

इस विडम्बना पूर्ण स्थिति में—

महाज्योति रेखा सी बन कर
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमे।'

—वही, पष्ठ २७३।

इस प्रकार प्रसाद जी ने आध्यात्मिक भाव-क्षेत्र मे नारी को पुरुष के साहचर्य की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता माना है। उसी के द्वारा विश्व मे आनन्दवाद की भाव-धारा प्रवाहित हो सकती है।

प्रसाद जी ने आनन्दवाद की प्रतिष्ठा के साथ साथ नारी को विभिन्न तत्वो की समन्वयिका के रूप मे भी प्रतिष्ठित किया है। उनका मत है कि विभिन्न विच्छिन्न उपकरणो मे समन्वय स्थापित करने से जिस शक्ति का निर्माण होगा, उससे मानवता की विशाल भावना का समृद्धिपूर्ण विकास हो सकेगा—

'शक्ति के विद्युत कण, जो व्यस्त, विकल बिखरे हैं निरुपाय
समन्वय उसका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय।'

—कामायनी, पृष्ठ ५६।

ससृति के विकास के लिए पुरुष और नारी का एक दूसरे मे लय हो जाना भी आवश्यक है। तभी विश्व-सौरभयुक्त होकर आनन्द की प्रतिष्ठा मे सलग्न हो सकेगा। श्रद्धा कहती है—

'दब रहे हो अपने ही बोझ, खोजते भी न कही अवलम्ब
तुम्हारा सहचर बन कर, क्या न, उऋण होऊ मैं बिना विलम्ब।'

—वही, पृष्ठ ५६।

दानो का समुचित परिवर्तन जीवन के शुद्ध विकास का कारण बनता है—
'दोनो का समुचित प्रतिवर्तन, जीवन मे शुद्ध विकास हुआ।'

—वही पृष्ठ ७६।

बिखरे तत्वो मे श्रद्धा द्वारा इसी समन्वय की भावना हम उसके आनन्दवादी रूप मे देख आये है—जब इच्छा, ज्ञान और क्रिया के लय होने पर मनु श्रद्धामय होकर आनन्द के निनाद मे लय हो जाते है—

'स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद मे
श्रद्धा-युत मनु बस तन्मय थे।'

—वही, पृष्ठ २७३।

इस समन्वय दर्शन के क्षेत्र मे प्रसाद जी का विशेष योगदान श्रद्धा और बुद्धि के समन्वय को लेकर है। व्यक्ति श्रद्धायुक्त भावनाओ का तिरस्कार कर तर्क और

बुद्धि के माध्यम सुख और आनन्द की खोज करना चाहता है। परन्तु इस प्रयास मे उसे अशान्ति, तिक्तता, उपेक्षा, युद्ध, दुख, उद्वेग, तथा क्षोभ ही प्राप्त हो सका। मनु अपनी ईर्ष्या के वश श्रद्धा को तथा अनिवाद के कारण इडा को खो देते हैं। दाम्पत्य जीवन मे जिस सामजस्य की अपेक्षा होती है, और जो आवश्यक सयम सदाचार के द्वारा ही प्राप्त है, मनु मे उसका अभाव है। इसीलिये वे भटकते रहे। प्रसाद जी का निर्देश है कि मनु को श्रद्धा के नेतृत्व तथा आदेशो मे रह कर ही अपने मगल-पथ पर अग्रसर होना चाहिए। तभी उन्हे शान्ति तथा आनन्द की प्राप्ति हो सकेगी और बुद्धि की प्रतीक इडा भी उनके सम्मुख नत सिर हो जायेगी। हृदय की सत्ता का सुन्दर सत्य श्रद्धा द्वारा ही खोजा जा सकता है। श्रद्धा हृदय पक्ष और बुद्धितत्व दोनो का समन्वय करने वाली प्रेरक शक्ति है। अपने पुत्र मानव को इडा के पास छोड़ती हुई वह कहती है—

'यह तर्कमयी तू श्रद्धामय
तू मननशील कर कर्म अभय
इसका तू सब सताप निचय
हर ले, हो मानव-भाग्य-उदय।'

—कामायनी, पृष्ठ २४४।

अपने मन की इस उदात्त भावना के कारण ही श्रद्धा विषम वातावरण, परिस्थितियो तथा तत्वो में शान्ति की स्थापना करती है। सत् और असत् के चिरन्तन सघर्ष को, जो वाह्य और आन्तरिक जगत दोनो मे विद्यमान है, शान्त करने मे श्रद्धा का ही नेतृत्व विशिष्ठ है।

'एक घूँट' मे भी प्रसाद जी ने प्रेमलता को इसी प्रकार की समन्वयिका के रूप में उपस्थित किया है। उसके द्वारा ही आनन्द कुमार की बुद्धि का हृदय से सम्मिलन होता है। हृदय की अधिष्ठात्री प्रेमलता को पाकर बुद्धिवादी आनन्द कहता है—

'मेरे कल्पित सदेश मे सत्य का कितना अश था, उसे अलग झलका दिया। मैं प्रेम का अर्थ समझ सका हू। आज मेरे मस्तिष्क के साथ हृदय का जैसे मेल हो गया है।'

—एक घूँट, पृष्ठ ४३।

प्रसाद जी इस प्रकार से समन्वय-दर्शन को अधिक महत्ता प्रदान करते हैं। वे संघर्षात्मक जीवन दर्शन के अनुगामी नही है। साथ ही आदर्शों की दार्शनिक उडान मे वे धरती के सत्य को भी दृष्टि ओझल नही करते। इन दोनो का सामजस्य और समन्वय ही उनकी लक्ष्य सिद्धि का विषय है। आज की बौद्धिक सभ्यता के युग में

बुद्धिवादी मान्यताओ तथा सिद्धान्तो के विकास की अन्ध उपेक्षा नही की जा सकती। वे भी जीवन के सत्य रहस्य का उद्घाटन करने मे समर्थ है, परन्तु एकागी होने के कारण अपूर्ण और असफल है। इसीलिए उनमे श्रद्धातत्व का होना आवश्यक है। यह कार्य नारी द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है, क्योकि दया, माया ममता और अगाध विश्वास के स्वाभाविक गुण उसके इस महान् कार्य को सहज ही सरल बना देते है। इसी उदात्त आदर्श की स्थापना के पश्चात् जीवन मे समरसता का विकास हो सकता है। अतः समरसता की प्रतिष्ठा भी नारी द्वारा ही होती है। प्रसाद जी की यही मान्यता है।

'शैवागमो के प्रत्यभिज्ञादर्शन से प्रसाद जी ने समरसता का सिद्धान्त लिया है। वह शिव शक्ति के सामरस्य से उत्पन्न आनन्द तथा उल्लास का वर्णन है। शिव सूत्र विमर्शिनी मे कहा गया है कि शिव-शक्ति मथ्य-मथ्यक भाव से परस्पर सगठित होकर इच्छा कर्म ज्ञान तीनो मे सामरस्य लाकर उल्लास या आनन्द का नवनीत उत्पन्न करते है[1]।

कामायनी मे समरसता की प्रतीक श्रद्धा है। अहम् और इद्म का पूर्ण परित्राण उसी के द्वारा होता है—

'शापित न यहा है कोई, तापित पापी न यहा है
जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहाँ है।'

इसी प्रकार पुरुष और नारी दोनो जीवन तत्वो के बीच मे भी समरसता की कल्पना की गयी है। इस सामरस्य के अभाव मे प्रेम और विषमता की अवतारणा होती है और जीवन को शान्ति और पूर्णता नही मिल पाती। नारी—'निज कोमलता से, मन की माधुरी से[2]' इसी सामरस्य भाव की प्रतिष्ठा करती है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे ही नही, भौतिक तथा मानसिक क्षेत्र मे भी श्रद्धा द्वारा ही सामरस्य का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। सुख-दुख, बुद्धि-हृदय, भौतिक-अलौकिक, अह्म, इद्म, ममत्व-परत्व, व्यक्ति-समाज, गृहस्थ-सन्यासी, शासक-शासित सभी मे समरसता का रस प्रवाहित हुआ है। इन सब मे विशेष जैसा कि हम ऊपर कह आये है, उन्होंने बुद्धिवाद के साथ श्रद्धावाद का समन्वय करके अथवा तर्कमयी बुद्धि के साथ श्रद्धामय हृदय का समन्वय करके अथवा तर्कपूर्ण बुद्धि और भाव सकलित हृदय का समन्वय करके मानव मात्र के लिए समरसता की योजना प्रस्तुत की है[3]।' श्रद्धा के जीवन

१—रामलाल सिंह . कामायनी अनुशीलन, पृ० १५६-१५७।

२—प्रलय की छाया, पृ० ७१।

३—डा० द्वारिका प्रसाद : कामायनी मे काव्य सस्कृति और दर्शन पृ० ४३८।

का लक्ष्य वैषम्यपूर्ण स्थिति मे समरसता का प्रचार ही है। वह सब प्राणियो मे समरसता की इच्छुक है। इस प्रकार यदि एक ओर आधुनिक समाज मे तीव्र वेग मे फैली वासना का भारतीय समाधान प्रसाद जी के काव्य मे मिलता है तो दूसरी ओर वे सुख-दुख की अनुभूति मे समरसता का प्रचार करते हैं। वे जीवन की प्रत्येक परिस्थियो को समान रूप से ग्रहण करने का उपदेश देते है। और जीवन की सफलता का उसे महत्वपूर्ण साधन मानते हैं।

इसी प्रसग में प्रसाद जी नारी को पुरुष की सहयोगिनी, पूर्णता और प्रेरणा के रूप मे भी प्रस्तुत करते है। वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पुरुष की सहायिका बन कर आती है। पुरुष को जीवन के रहस्य उसी से ज्ञात होते है। श्रद्धा मनु को जग और जीवन का रहस्य बताती है—

'दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात
एक पर्दा यह झीना नील
छिपाये है जिसमे सुख-गात
जिसे तुम समझे हो अभिशाप
जगत की ज्वालाओं का मूल
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाओ भूल'

—कामायनी, पृष्ठ ५३।

वह बतलाती है कि भूमा पूर्णता का ही नाम है। 'भूमा वै सुखम्।' दुख के द्वारा ही जीवन की अमूल्य मणिया प्रकाश में आती हैं—

'व्यथा की नीली लहरो बीच
बिखरते सुख-मणि गण द्युतिमान।'

—कामायनी पृष्ठ ५४।

यह पुरुष को कर्म क्षेत्र के भले बुरे का भी ज्ञान कराती है। यह भावना 'विशाख' की महारानी के इन शब्दों मे व्यक्त हुई है। नर देव को कुपथ पर जाता देख कर वह कहती है—

'आपने कुपथ पर पैर रक्खा है और मैं आपको बचा न सकी। परिणाम बड़ा ही भयंकर होने वाला है। वह मैं नही देखना चाहती। किन्तु कहे जाती हू कि अन्याय का राज्य बालू की भीत है।'

—पृष्ठ ७३।

जीवन की पूर्णता के रूप मे नारी का सहयोग अतुल है। पुरुष और नारी के सम्मिलन के बिना जीवन अपूर्ण है[1]। मन श्रद्धा के अभाव मे नितान्त निष्क्रिय है। नारी पुरुष के लिए सुखो की अजस्र वर्षा है। उसके द्वारा सचालित मन ही आनन्द की परम सिद्धि प्राप्त कर सकता है। वही जीवन की अतृप्ति मे सतोष का मधु बन कर कामनाओ के देश मे विस्तीर्ण होती हैं—

'तुम अजस्र वर्षा सुहाग की
और स्नेह की मधु रजनी
चिर अतृप्ति जीवन यदि था तो
तुम उसमे सतोष बनी।'

—कामायनी, पृष्ठ १२६।

प्रसाद जी नारी को हृदय का प्रतिनिधि मानते है और इसीलिए वह समस्याओं का उदार समाधान तथा प्रश्न का उत्तर है—

'एक गृह पति, दूसरा था अतिथि विगत विकार
प्रश्न था यदि एक, तो उत्तर द्वितीय उदार।'

—वही, पृष्ठ ८१।

नारी के सहयोग से पुरुष-जीवन की समस्त समस्याओ का अन्त हो जाता है। एक शान्त स्निग्ध रिक्तता रहित पूर्णता की भावना जीवन मे लहरा उठती है[2]। 'तितली' की नन्द रानी का यह कथन महत्वपूर्ण है—

'मैं कहती हू कि पुरुष और स्त्री को ब्याह करना ही चाहिए। एक दूसरे के दुःख-सुख और अभाव-आपदाओ को प्रसन्नता मे बदलने के लिए सदैव प्रयत्न करता रहे। एक की कमी दूसरे को पूरी करनी चाहिए।'

—पृष्ठ २११।

स्त्री पुरुष जीवन की पूर्णता के विषय मे 'प्रतिध्वनि' मे सकलित 'प्रलय' मे भी यही विचार व्यक्त हुए है—

'जैसे मेरा अस्तित्व स्वप्न था, आध्यात्मिकता का मोह था। जो तुमसे भिन्न स्वतन्त्र स्वरूप की कल्पना कर ली थी, वह अस्तित्व नही, विकृति थी।'

—पृष्ठ ७१।

१—कामना, देखिए विनोद का कथन, पृष्ठ ४।
२—कंकाल, देखिए पृष्ठ ४६।

नारी पुरुष जीवन मे पूर्णता की सहयोगिनी ही नहीं, वरन् उसका उद्धार करने मे भी अग्रगण्य है। द्वन्द्व, विभीषिका और जीवन की निराश परिस्थितियो से परितप्त मनु को श्रद्धा ही आनन्द लोक तक ले जाती है। जहां उनका मन मधुमति भूमिका मे पहुच कर ममता और आकर्षण की भावना से शून्य हो जाता है। सम्पूर्ण मानस मे समरसता के भाव का प्रसार होकर विराट् आनन्द की धारा प्रवाहित होने लगती है। नारी पुरुष के लिए प्रवृति का संदेश लेकर आती है; कर्तव्य के पथ पर वही प्रेरणा भी बनती है तथा पथ विभ्रष्ट पुरुष के सस्कार भी उसी के द्वारा सम्पन्न होते है। पुरुष को मानवीय गुणों से परिचित कराने का कार्य भी वही पूर्ण करती है। यद्यपि प्रसाद जी के नाटकों मे जयमाला, कमला, देवसेना, तथा अलका के चरित्रो मे इस भावना का प्रस्फुटन हुआ है, परन्तु चरम परिपुष्टि श्रद्धा के नारीत्व मे ही हो पाई है। यह प्रसाद जी के बौद्ध दर्शन के अध्ययन का ही फल है कि उन्होने करुण भाव तथा अहिंसा के साथ-साथ नारी शक्ति के सम्मान की प्रतिष्ठा की। कामयानी सब प्रकार से मनु का उद्धार करती है। प्रसाद जी की नारी-सृष्टि मानो पुरुषो का उद्धार करने के लिए ही हुई है। इस विषय में प्रसाद जी की इतनी अडिग आस्था है कि इस सम्बन्ध मे तर्क करना व्यर्थ होगा[1]। नारी के इस आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्रण उसकी आधुनिक वस्तु स्थिति के क्षेत्र मे एक नवीन क्रान्ति का सूत्रपात्र करता है, जिसका पृष्ठभूमि में प्रसाद जी की आखों में झूलता हुआ अतीत का सुवर्ण स्वप्न और नारी के प्रति असीम श्रद्धा का भाव ही विशिष्ठ है।

प्रसाद जी ने श्रद्धा के रूप में नारी को परात्पर शक्ति के रूप मे प्रस्तुत किया है। श्रद्धा के दर्शन से ही मनु को शिव का ताण्डव नृत्य दिखाई पड़ता है। उसके द्वारा ही त्रिपुरो का एकत्रय होता है। नारी का इस परात्पर शक्ति के विषय में शैवागमों मे कहा गया है—'शक्तया विना परे शिवे नाम धाम न विद्यते।

जैसा कि हम उपर्युक्त पंक्तियो मे कह आये हैं कि शिव प्रकाश रूप है और शक्ति विमर्श रूपिणी। शिव अहमंश है तथा शक्ति इदम् अंश। शक्ति के बिना शिव को अपने प्रकाश रूप का ज्ञान नहीं हो सकता इसी तरह शक्ति भी शिव के अभाव में महत्वहीन है। शक्ति और शिव दोनो की सत्ता एक दूसरे पर अवलम्बित है। जिस प्रकार शिव तत्व मे शक्ति भाव गौण है, और शिव भाव प्रधान, उसी प्रकार शक्ति तत्व मे शिव भाव गौण है तथा शक्ति भाव प्रधान। परन्तु 'तत्वातीत दशा में न शिव की प्रधानता है, न शक्ति की, प्रत्युत दोनो की सम्यावस्था है। यही शिव शक्ति

१—आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी—जयशंकर प्रसाद, पृ० ८६।

का सामरस्य है। इस सामरस्य रूप को शैव लोग परम शिव तथा शक्ति लोग पराशक्ति मानते हैं। कहने की आवश्यकता नही कि कामायनी मे श्रद्धा पराशक्ति के अवतार रूप मे दिखाई गई है। प्रसाद जी शक्ति अद्वैतवाद के सदेशवाहक है, और इसी कारण वे इदम् को अहम् मे पर्यवसित करने का समर्थन नही करते, प्रत्युत अहम् को इदम् मे लीन करने की साधना स्वीकार करते हैं[1]। तभी तो मनु से श्रद्धा के नेतृत्व की याचना कराई गई है—

'यह क्या ? श्रद्धे, बस तू ले चल
उन चरणो तक, दे निज सम्बल
सब पाप-पुण्य जिसमे जल-जल
पावन बन जाते हैं निर्मल
मिटते असत्य से ज्ञानलेश
समरस अखण्ड आनन्द वेश'

—कामायनी, पृ० २५४।

नारी के इस शक्ति-रूप को प्रसाद जी ने अपने उपन्यासो मे भी चित्रित किया है। जहा पुरुष के लिए नारी की कल्पना ही बल बनती है। जेल जीवन में तितली की स्मृति मधुबन मे आशा का सचार करती है। उसका दिव्यज्योति से भरा मुखमण्डल उसके हृदय मे उत्साह को भर देता है[2]। इरावती मे भी यही भावना व्यक्त हुई है—

नारी शक्ति स्वरूपा है। अन्तर्निहित आनन्द की अग्नि प्रज्वलित करने पर सब मलिन कर्म उसमे भस्म हो जाते हैं। उस आनन्द के समीप पाप आने से डरेगा।'

—पृ० ५६।

प्रसाद जी ने नारी के इस दिव्य दार्शनिक रूप की प्रतिष्ठा से समाज मे श्रद्धावाद की स्थापना करनी चाही है। उनकी दृष्टि मे श्रद्धा ही श्रद्धेय है। लौकिकता, द्वैत, बौद्धिकता और अतिचारो के साम्राज्य मे श्रद्धामय नारी ही सुमगल का पुण्य बिखेर सकती है, इसी विश्वास से उन्होने तर्कमयी इडा को विश्वासमयी श्रद्धा के सम्मुख प्रणत किया है। इड़ा अपने नितान्त भ्रम का अनुभव कर, अपनी विफलता को सम्मुख देखती हुई श्रद्धा के सम्मुख क्षमा याचना करती है—

१—रामलाल सिंह : कामायनी अनुशीलन, पृष्ठ १७४।
२—तितली, पृ० २५६।

'मैं आज अकिंचन पाती हूं
अपने को नही सुहाती हूं
मैं जो कुछ भी स्वर गाती हूं
वह स्वय नही सुन पाती हूं,
दो क्षमा, न दो अपना विराग
सोई चेतनता उठे जाग ।'

—कामयानी, पृ० २४० ।

\+ + + +

नवीन आदर्श

नारी की दार्शनिक प्रतिष्ठा का जो स्वरूप प्रसाद जी ने अभिव्यक्त किया है, उसकी विवेचना उपयुंक्त पक्तियो में की जा चुकी है । अपनी इस दार्शनिक मान्यता मे उन्होने नारी को पुरुष से सभी क्षेत्रो मे महान् और श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया है। हृदय की प्रतिनिधि होने के कारण वह अन्तर्भावनाओं में पुरुष के धरातल से स्वभावत: ही ऊंची उठ जाती है । परन्तु व्यावहारिक क्षेत्र मे भी वह पुरुष का पथ निर्देश करती है । विश्व का सुमगल भी उसी की प्रेरणा से होता है, शान्ति की प्रतिष्ठा मे भी उसीका योगदान है यह सब हम कह आये हैं । नारी के इस दार्शनिक स्वरूप के साथ-साथ प्रसाद जी ने उसके सम्बन्ध में नवीन आदर्शों की सृष्टि भी की है और उन आदर्शों का महत्व भी दार्शनिक स्वरूप के महत्व से कम नही है । इन आदर्शों की विवेचना हम प्रेम, कर्त्तव्य,सेवा-समर्पण तथा सौंदर्य सम्बन्धी आदर्शों के अन्तर्गत करेंगे ।

प्रेम सम्बन्धी आदर्श

प्रसाद जी का सम्पूर्ण साहित्य प्रेम के आदर्श को लेकर चलता है । इनकी पात्राएं स्वस्थ सौंदर्य और विश्वासमय प्रेम की आदर्श पात्राएं हैं । उनका प्रेम वासना, आसक्ति और मोह की संकीर्ण सीमाओ से विमुक्त है । हृदय की एक लयता उनके प्रणय की श्रेष्ठ उपलब्धि है, जहां प्राप्ति की आकांक्षा के स्थान पर उत्सर्ग की भावना विशिष्ट है । 'लहर में उन्होने गाया है—

'पागल रे ! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब
आंसू के कन से गिन कर'

—पृष्ठ ३५-३६ ।

प्रसाद जी का प्रेम 'सदा चेतना के प्रकाश से प्रकाशित रहता है जो कायिक सौंदर्य या दृष्टिगत सौदर्य की भीति पर स्थिर नही है[1] ।' नारी के प्रेम की शीतल छाया मे पुरुष अपनी क्रूरताये भूल जाता है। वाजिरा का प्रेम अजात की नृशसता को शान्त कर देता है[2] । प्रसाद जी प्रम के आदर्श को मन की एकनिष्ठा—अनन्यता के साथ सम्बद्ध करते हैं। उसके प्रचार मे उन्हे विश्वास नही है। मालविका चन्द्रगुप्त से प्रेम करती रह कर भी अन्त तक उसे अपने तक ही सीमित रखती है और मौन होकर ही अपने प्रणय की प्रतिष्ठा के लिए अपने प्राणो का उत्सर्ग कर देती है। सुवासिनी मे यही एकनिष्ठा विद्यमान है। कोमा शकराज से बार बार लाछित होकर भी उसके निधन पर उसका शव मागने जाती है। प्रेम सम्बन्धी इस आदर्श के सदर्भ मे देवसेना का चरित्र बहुत ऊँचा ठहरता है। स्कन्द गुप्त पर उसने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है। परन्तु अपने को पराजित पाकर भी वह क्षुब्ध नही होती। उसे अपनी प्रतिद्वन्द्विनी विजया से न तो ईर्ष्या ही होती है, न उस पर क्रोध ही आता है, वरन् उसे क्षोभ होता है कि विजया अपने भावावेश की शीघ्रता में भटार्क का वरण कर लेती है। दूसरे, स्कन्दगुप्त से प्रेम करते हुए भी वह अपनी प्रेमाकाक्षा को कभी भी उससे प्रकट नही करती। उसकी दृष्टि मे स्कन्दगुप्त से प्रणय चर्चा करना उसका अपमान करना है।' युवावस्था के उन्माद काल मे सगीत की एकान्त साधना मे लीन, भाव-विभोर दूर की रागिनी सुनती हुई वह कुरगी सी कुमारी, चरित्र की यही विशेषता लेकर हमारे सम्मुख आती है[3] ।

प्रसाद जी ने सर्वत्र प्रेम के आदर्शमय स्वरूप का ही उद्घाटन किया है। उनके द्वारा प्रेम का अर्थ हमेशा ही विस्तृत भाव मे ग्रहण किया गया है। प्रेम, उसकी दृष्टि मे प्रगति का अन्त नही, वरन् उसके चरम विकास का साधन है—

> 'इस पथ का उद्देश्य नही है, श्रान्त भवन मे टिक रहना
> किन्तु पहुचना उस सीमा पर, जिसके आगे राह नही।
>
> —प्रेम पथिक

'प्रेम पथिक' की मूल-भावना प्रणय के सम्बन्ध मे यह वक्तव्य कितना अर्थपूर्ण हो जाता है। 'क्षुब्ध और कुपित आकाश पाताल मे आग लगा डालने वाली मानव हृदय की आदि वासिनी यह प्रणय कामना, सौम्य होकर, निखर कर, शालीन होकर मानवात्मा को शुभ्रता, शान्ति और शिवत्व के कितने ऊचे लोको में उड़ा ले जाती

१—रामलाल सिंह : कामायनी अनुशीलन।

२—देखिए अजातशत्रु मे वाजिरा का चरित्र।

३—परमेश्वरी लाल प्रसाद के नाटक, पृ० २१५।

है, उसका अनुभव करना हो तो प्रेम पथिक का बार बार पारायण करना कल्याण-कारी व आनन्ददायक होगा। ··· ··· प्रेम को प्रसाद ने अत्यन्त व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित करके मानव आनन्द और विश्व-कल्याण इन दोनों ही भावनाओ को अमर प्रेम-रस से सन्तुष्ट कर दिया है। क्षुद्र वासना का उबाल या त्वचा का स्पर्श मात्र प्रेम नही[1]।'

प्रसाद जी की नारी के प्रणय मे एकनिष्ठा के साथ-साथ मानवता के कल्याण की कामना भी निहित रहती हैं। एकनिष्ठा के लिए वे विश्वास की आवश्यकता का अनुभव करते है। विश्वास के अभिष्ठान के लिए स्थूल सौन्दर्य और लौकिक उपादानो की आवश्यकता न होकर अन्तर भावनाओ मे सच्चाई और ईमानदारी की अपेक्षा होती है। इसीलिए प्रसाद जी की प्रेम कल्पना मे अतीन्द्रियता और निर्मलता का समावेश है। उनके प्रेम-सम्बन्धी आदर्श-पात्र इसी अलौकिकता और निष्ठा को लेकर अपने प्रेम की सुरक्षा और निर्वाह करते हैं। और इससे विमुख होने पर अपनी दुरावस्था को प्राप्त होते हैं। प्रेम का वाणिज्य प्रसाद जी को कभी भी प्रिय नही रहा है। इसीलिए दामिनी, विजया आदि पात्रियो को जीवन का वैषम्य भोगना पडा है। प्रेम की वास्तविक सफलता उसके विश्व-व्यापी होने मे है—

'किन्तु न परिमित करो प्रेम
सौहार्द, विश्वव्यापी कर दो,
—प्रेम पथिक, पृष्ठ ३०।

प्रसाद जी के मत मे प्रेम की चरम सीमा दो आत्माओं के मिलन मे है। आत्म-समपर्ण ही प्रेम की कसौटी है। एक बार समर्पित होने पर फिर कुछ नही रह जाता, इसीलिए प्रेम केवल एक के लिए ही होता है। विविधता की स्थिति मे प्रेम प्रेम नही, स्वार्थ वासना हो सकता है। कार्नेलिया के प्रणय मे भी यही समर्पण भावना विद्यमान है। प्रथम दर्शन मे वह चन्द्रगुप्त की ओर आकर्षित होती है। रौद्र और शृगार का सगम—चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व उसके आकर्षण का केन्द्र बनता है, और यह आकर्षण अनन्यता म परिपूर्ण हो, अन्त मे फलसिद्धि प्राप्त करता है। 'तितली' मे इसी प्रेम की एकनिष्ठा है। मधुबन की अनुपस्थिति में भी वह उसी की स्मृति को सहेजे हुए जीवन के कठोर कर्त्तव्य का निर्वाह किए चलती है। कहानियो में भी इसी प्रेम दर्शन की अभिव्यक्ति नूरी, नेरा, चम्पा, मालिन,[2] चन्दा, मधूलिका, तथा सुजाता आदि पात्रियो मे हुई है। 'विशाख' की चन्द्रलेखा मे भी यही एकनिष्ठा विद्यमान है। यादवी सरमा जातीय

१—महाकवि प्रसाद, पृ० ४४ व ४६।
२—'अपराधी' कहानी की नायिका,

अभिमान से युक्त होकर भी प्रेम के आदर्श का निर्वाह करती है।

श्रद्धा का चरित्र प्रसाद के प्रेम सम्बन्धी आदर्श की उदार व्याख्या प्रस्तुत करने मे समर्थ है। मनु के प्रति श्रद्धा की एकनिष्ठा असीम हैं। वह मनु के चले जाने पर स्वप्न मे भी किसी दूसरे का ध्यान नही करती। उसे खोजने के लिए वह बावली सी इधर उधर घूमती है। घायल मनु को पाकर वह विश्वस्त हो, अपने प्रणय की सुरक्षा के लिए तत्पर हो उठती है—

श्रद्धा नीरव सिर सहलाती
आखो मे विश्वास भरे
मानो कहती, 'तुम मेरे हो'
अब क्यो कोई वृथा डरे।

—कामायनी, पृष्ठ २१६।

इतने पर भी, मनु के द्वारा आत्म-ग्लानिवश फिर एक बार श्रद्धा को छोड देने पर भी उसकी एकनिष्ठा मे कोई अन्तर नही पडता, और वह उसे खोजने के लिए फिर चल पडती है—

मैं अपने मनु को खोज चली
सरिता मरु नग या कुज गली,
वह भोला इतना, नही छली
मिल जायेगा, हू प्रेम पली,

—कामायनी, पृष्ठ २४३।

प्रेम की भावना को प्रसाद जी नारी का जन्मसिद्ध अधिकार मानकर चले हैं। उसे इस भावना का निर्माण नही करना पड़ता। उसे मागना नही पडता। 'कंकाल' की गाला मगल से कहती है—

'स्त्रियो का यह जन्मसिद्ध उत्तराधिकार है मगल। उसे खोजना परखना नहीं होता, कही से ले आना नही होता। वह बिखरा रहता है असावधानी से। धन-कुबेर की विभूति के समान। उसे सभाल कर केवल एक ओर व्यय करना पड़ता है, इतना ही तो[1]।'

प्रसाद जी ने यहां 'केवल एक ओर व्यय करने' का सकेत देकर प्रणय की

१—ककाल, पृष्ठ २४६।

एकनिष्ठा का आदर्श ही उपस्थित किया है जो गाला की मा के शब्दों मे और भी अच्छी तरह से अभिव्यक्ति किया गया है—

'जिसे हृदय देना, उसी को शरीर अर्पण करना। उसमे एकनिष्ठा बनाये रखना। मै बराबर जायसी की पद्मावत पढा करती हू। वह स्त्रियो के लिए तो जीवन-यात्रा का पथ-प्रदर्शक है। स्त्रियो को प्रेम करने के पहले यह सोच लेना चाहिए, मैं पद्मावती हो सकती हू कि नही।'

सक्षेप मे प्रसाद जी का प्रेम सम्बन्धी आदर्श अपने मूल रूप में परम्परा मुक्त होकर हृदयो की स्वच्छन्दता, स्वच्छता, निश्छल आदान-प्रदान, एकनिष्ठा, स्वस्थ साहचर्य तथा सौन्दर्यपूर्ण भावना की पीठिका मे विकसित हुआ है। साथ ही आत्मा से सयुक्त भौतिकता की उपेक्षा भी उसमे नही है। परन्तु अधोगामी विलास को कही भी स्वीकृति प्रदान नही की गई है। उदात्त परिष्कृत काम-कला का सतुलित जीवन की रचना के लिए उपयोग ही उनका लक्ष्य रहा है। इस प्रकार उनका 'प्रेम-काव्य उनके एक व्यवस्थित व मौलिक जीवन दर्शन के आधार पर खडा हुआ है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पीपल के पत्ते के व्यवस्थित स्नायु-जाल पर पत्ते की चिकनी व सरस हरियाली मढी रहती है। प्रसाद ने अपनी मूल रोमान्टिक जीवन दृष्टि, और विविध दर्शनो और शास्त्रो को अपनी मेधा से छानकर प्राप्त की हुई दार्शनिक दृष्टि—इन दोनो के योग से एक व्यापक विचारधारा तैयार की है।'

—महाकवि प्रसाद, पृष्ठ २७६।

कर्त्तव्य सम्बन्धी आदर्श

प्रणय-सम्बन्धी आदर्श के अन्तर्गत हम कह आए है कि प्रसाद जी ने नारी को एकान्तिक, विश्व से दूर, प्रणय की सुविधा नही दी है। प्रणय उसके मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, ठीक है, परन्तु वह प्रणय उसके कर्त्तव्य-पथ की बाधा न बन कर साधना बनना चाहिए, प्रसाद जी ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है। अतः उनके कर्त्तव्य-सम्बन्धी आदर्श प्रणय की धूप में चमक उठे हैं। वे कर्त्तव्य को उपभोग की वस्तु न मानकर त्याग और सेवा की वस्तु मानकर चलते हैं। श्रद्धा द्वारा मनु को इस तथ्य से परिचित कराया गया है। कर्म से भ्रान्त, इन्द्रिय-सुखों से आकर्षित, अतृप्त मनु को श्रद्धा कर्त्तव्य का सदेश देती है—

'रचना मूलक सृष्टि यज्ञ यह
यज्ञ-पुरुष का जो है

संसृति सेवा भाव हमारा
उसे विकसने को है ।'

—कामायनी पृ० १३२ ।

यही कर्त्तव्य-भावना मल्लिका के चरित्र मे अभिव्यक्त हुई है । वह अपने पति के कर्त्तव्य-मार्ग मे अवरोध उत्पन्न नही करना चाहती । अपने प्रेम-पाश से उन्मुक्त कर वह उन्हे कर्त्तव्य निर्वाह के लिए स्वतन्त्र कर देती है । यही मल्लिका के कर्त्तव्य का आदर्श है, जहाँ वह राष्ट्र के लिए अपने व्यक्तिगत सुख की बलि दे देती है । महा-माया से वह कहती है—

'मुझे कुछ नही, केवल स्त्री-सुलभ सवेदना तथा कर्त्तव्य और धैर्य की शिक्षा मिली है ।'

—अजातशत्रु, पृ० ७६ ।

'स्कन्दगुप्त' की रामा इसी कर्त्तव्य परायणता का आदर्श लेकर अपनी स्वामिनी की रक्षा के लिए, पति का विरोध करते हुए मरने से भी नही डरती । वह यह मान कर चलती है कि नारी के कर्त्तव्य की सीमा विस्तृत है । इसीलिए पुरुषो को सन्मार्ग पर लाना भी वह अपना धर्म मानती है । अजातशत्रु मे नारी के कर्त्तव्य के आदर्श को यो व्यक्त किया गया है —

'स्त्रियो का कर्त्तव्य है कि पाशव वृत्ति वाले क्रूरकर्मा पुरुषो को कोमल और करुणालिप्त करे । कठोर पौरुष के अनन्तर उन्हे जिस शिक्षा की आवश्यकता है—उस स्नेह, शीतलता, सहनशीलता और सदाचार का पाठ उन्हें स्त्रियो से ही सीखना होगा । हमारा यह कर्त्तव्य है । व्यर्थ स्वतन्त्रता और समानता का अलकार करके उस अपने अधिकार से हमको वञ्चित न होना चाहिए ।'

—पृ० १२७ ।

कर्त्तव्य की उत्कृष्ट भावना का विकास तितली के चरित्र मे देखने को मिलता है । मधुवन के न रहते हुए भी वह अपने कर्त्तव्य का पालन संकोच, सहन-शीलता और धैर्य के साथ किए चलती है । अपने प्रिय के अभाव मे वह निराश होकर भाग्य के सहारे नही बैठ जाती, वरन् उसके लौटने की आशा लेकर ससार से लड़ते हुए अपना अस्तित्व बनाए रखने मे विश्वास करती है ।

श्रद्धा के नारीत्व मे प्रेम की अनन्यता का सुकोमल भाव निहित है । परन्तु इस प्रणय की ममता को वह कभी भी एकान्तिकता या स्थूलता का जामा नहीं पहनाती । उसे किसी भी क्षेत्र मे अपने कर्त्तव्य से विमुख नही देखा जाता । मनु के प्रति वह सदैव ही प्रेयसी, पत्नी, सहचरी और पथ-निर्देशिका के रूप मे अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करती है । परन्तु व्यक्तिगत कर्त्तव्य-निर्वाह के इस प्रयास मे वह राष्ट्र के

प्रति भी अपना धर्म नहीं भूलती। राष्ट्र-कल्याण के लिए वह मानव को इडा के पास छोड देती है। श्रद्धा के इस कर्त्तव्य-परायण स्वरूप का देखकर ही मनु को लगता है कि—

'कुछ उन्नत थे वे शैल शिखर
फिर भी ऊँचा श्रद्धा का सिर
वह लोक अग्नि मे तप गल कर
थी ढली स्वर्ण प्रतिमा बनकर।'

—कामायनी, पृ० २५७।

सेवा-समर्पण का आदर्श

सेवा और समर्पण की भावना नारी की निसर्ग प्रवृत्तियो मे से मुख्य है। प्रसाद जी ने निःस्वार्थ सेवा को आदर्श मान कर नारी-चरित्र मे उसका अधिष्ठान किया है। मालविका इसी नि स्वार्थ सेवा की मूर्ति बन कर प्रकट हुई है। मालव के युद्ध में घायल वीरो की सेवा उसका मुख्य धर्म बन जाता है। इसी सेवा व्रत के कारण वह अलका की रक्त की प्यासी छुरी से घृणा करती है, क्योंकि सेवा की भावना मे, सहयोग का, सवेदनशीलता का और करुणा का व्रत लिया रहता है—अत. हिंसा, क्रूरता अथवा प्रतिशोध के प्रति वहा केवल उपेक्षा ही विद्यमान रहती है। मालविका के चरित्र मे भी यही सेवा-भावना प्रस्फुटित हुई है। रामा के चरित्र में उसकी कर्त्तव्य भावना के साथ घुला-मिला उसका सेवा-भाव भी निहित है। 'ध्रुवस्वामिनी' की मन्दाकिनी सेवा का अनुपम आदर्श प्रस्तुत करती है। ध्रुवस्वामिनी को भाभी कहने के नाते उसका सारा जीवन उसकी सेवा और सकट निवारण मे ही बीतता है। 'कंकाल' की घटी 'धात्री', उपदेशिका, धर्म प्रचारिका और सहचारिणी बन कर सेवा का आदर्श प्रस्तुत करती है। अपने भाषण मे वह कहती है—[1]

'संसार में इतनी आवश्यकता अन्य किसी वस्तु की नहीं जितनी सेवा की।'

और स्वयं भी वह सेवा की उदात्त प्रकृति सी बन कर प्रकट होती है। कमला और ममता के चरित्रो मे भी यही सेवा-भावना मुखरित हुई है। सालवती अपने अभावों के बीच भी सेवा के आदर्श की उपेक्षा नहीं करती। मैत्रायण से वह कहती है—

'मैं उतनी सम्पन्न नहीं हूं कि आप जैसे माननीय अतिथियो का स्वागत कर सकूँ, फिर भी जल-फल-फूल से मैं दरिद्र भी नहीं। मेरे साल कानन मे आने के लिए मैं आप लोगो का हार्दिक स्वागत करती हू। आज्ञा हो, मैं सेवा करूं।'

—इन्द्रजाल, पृ० १३३।

१—कंकाल, पृष्ठ २९७।

श्रद्धा का चरित्र इस सेवा के आदर्श की महानता प्रकट करता हैं । ईर्ष्यालु मनु के पास आकर वह उनकी कुशल-क्षेम पूछकर, अपनी सहज कोमलता के साथ उनकी उद्विग्नता का कारण पूछती हैं तो मनु का वह दृप्त स्वरूप नत हो जाता है—

'नत हुआ फण दृप्त ईर्षा का, विलीन उमग ।'

—कामायनी, पृ० ८५ ।

इसी प्रकार मनु के घायल हो जाने पर वह उनकी सेवा मे तत्पर होकर उनके व्यथा भार को अपने मधुर स्पर्श से हर लेती है—

'इडा चकित, श्रद्धा आ बैठी
वह थी मनु को सहलाती
अनुलेपन सा मधुर स्पर्श था
व्यथा भला क्यो रह जाती ।'

—वही, पृ० २१५ ।

मनु को आनन्द-मार्ग मे ले जाते हुए भी उनके प्रति सेवा के भाव-उदय लहर मे वह सेवा-मयी मुस्करा उठती है—

'वह विश्वास भरी स्मित निश्छल
श्रद्धा मुख पर झलक उठी थी
सेवा कर पल्लव मे उसके
कुछ करने को ललक उठी थी ।'

—कामायनी, पृ० २५६ ।

सेवा के इस आदर्श के अनुरूप ही नारी के समर्पण का आदर्श भी प्रसाद जी की अभिव्यक्ति का विषय बना है । उनकी प्रत्येक आदर्श प्रणयिनी अपने प्रिय पर पूर्णतया समर्पित है । मणिमाला जनमेजय के वीरत्व व्यजक स्वरूप पर अपना मन वार देती हैं । इन दोनो का प्रणय राजनीतिक एव सास्कृतिक ऐक्य की पृष्ठभूमि में दो प्रणय पूर्ण, समर्पण भावना स परिसिक्त हृदयो का यथार्थ सम्मिलन है। देवसेना के इन शब्दो मे समर्पण भावना का ही आदर्श प्रस्तुत हुआ है—

'आह ! कहना ही पडा, स्कन्दगुप्त को छोडकर न कोई दूसरा आया और न वह जायेगा··· 'नाथ, मै आपकी ही हू । मैने अपने को दे दिया है, अब उसके बदले कुछ लिया नही चाहती ।'

—स्कन्दगुप्त, पृ० १४० ।

प्रसाद जी का समर्पण सम्बन्धी आदर्श स्वार्थ की प्रवचनापूर्ण भूमि में न खिलकर त्याग की वाटिका मे विहसता है । तितली शैला को इसी आदर्श का पाठ सिखाती है—

'बहन तुम कहीं भूल तो नहीं कर रही हो। तुम धर्म के बाहरी आवरण से अपने को ढक कर हिन्दू स्त्री बन गई हो सही, किन्तु उसकी संस्कृति की मूल शिक्षा भूल रही हो। हिन्दू स्त्री का श्रद्धापूर्ण समर्पण उसकी साधना का प्राण है। इस मानसिक परिवर्तन को स्वीकार करो।'

—तितली, पृष्ठ २४६

श्रद्धा इस सेवा और समर्पण की साधना के बल पर ही मनु को सृष्टि-निर्माण-कार्य मे नियोजित करने का श्रेय प्राप्त करती है। अपनी प्रणय के महत्वपूर्ण समर्पण से मनु का शृ गार करती हुई वह जीवन मे आनन्द की अजस्र धारा प्रवाहित करती है। मनु के प्रति उसका समर्पण उसके महान उत्सर्ग की कहानी है—

'समर्पण लो सेवा का सार, सजल ससृति का यह पतवार
आज से यह जीवन उत्सर्ग, इसी पद-तल मे विगत विकार,'

और इस समर्पण के साथ साथ वह अपना कितना और भी तो समर्पित कर देती है—

'दया माया ममता लो आज
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास,'

—कामायनी, पृष्ठ ५७

प्रसाद जी की नारी का यह समर्पण भाव भी व्यष्टि के लिये नहीं समष्टि के लिए, उसके सौख्य, उसके मगल और उसकी समृद्धि के लिये है। श्रद्धा मनु को समर्पित होकर उन्हे सृष्टि के विकास के लिए अनुप्रेरित करती है—

'बनो ससृति के मूल रहस्य
तुम्ही से फैलेगी वह बेल,'

—कामायनी, पृष्ठ ५७

समर्पण की इस आदर्श भावना के साथ साथ प्रसाद जी ने पत्नीत्व की भी आदर्श-प्रतिष्ठा की है। वासवी के चरित्र में पत्नीत्व की इस मर्यादा का विकास हुआ है। वह जीवन की प्रत्येक परिस्थिति मे पतिसेवा के व्रत का पूर्ण निर्वाह किए चलती है। उसका जीवन पति सेवा का ही लक्ष्य लेकर आगे बढता है। यही जैसे उसकी साधना है। उसकी सफलता है, उसके जीवन की सार्थकता है। राज्य का परित्याग करने पर बिम्बसार वानप्रस्थ धारण करते हैं, तो वह उन के उस त्याग का समर्थन करती हुई स्वय भी उन का अनुसरण करती है। इसी प्रकार पद्मावती भी पतिव्रत की कसौटी पर खरी उतरती है। एक स्थान पर वह कहती है—

'मेरे नाथ ! इस जीवन के सर्वस्व ! और पर जन्म के स्वर्ग, तुम्ही मेरी गति हो और तुम्ही मेरे ध्येय हो।'

—अजातशत्रु, पृष्ठ ६०

राज्यश्री मे भी इसी पति-परायणता का निर्वाह हुआ है। वपुष्टमा मृत्यु के उपरान्त भी पति सेवा के पुनीत कर्त्तव्य से विमुख नही होना चाहती। उतक से वह कहती है—

'आर्य ! आशीर्वाद दीजिये कि पति देवता के कार्य मे मैं सहकारिणी रहूं, और मरण मे भी पश्चात्पद न होऊ।

—जनमेजय का नागयज्ञ, पृष्ठ ८२ .

श्रद्धा के चरित्र का यह भाव हम अन्य प्रसगो मे देख आये है। प्रसाद जी ने पत्नीत्व के आदर्श मे सेवा, समर्पण और गम्भीर भावना के साथ साथ विश्वास और सहिष्णुता की अनुभूतियो को विशेष महत्व दिया है। इन्ही गुणो से नारी के चरित्र की उदात्तता का विकास होता है और जीवन मे उस को श्रद्धातत्व की उपलब्धि हो सकती है।

सौन्दर्य सम्बन्धी आदर्श

प्रसाद जी मूलत प्रेम यौवन और सौन्दर्य के कवि है। वे सौन्दर्य के अधिष्ठान को मुख्य रूप से नारी मे मान कर चले है। जड वस्तुओ की अपेक्षा चेतन पदार्थों मे, गतिशीलता का गुण होने के कारण सौन्दर्य भावना अधिक प्रस्फुटित होती है। इन सचेतन पदार्थों मे कल्पना शील सचेतन और भी अधिक सौन्दर्यशील लगते है। क्यो कि इन मे सहज विनम्रता के साथ साथ आत्मा की आभा भी दीप्त होती है। सचेतन कल्पनाशीलो मे नारी का स्थान विशिष्ट है। वह निसर्ग से कोमल है, छायापथ मे द्युति सी झिलमिल करने की मधुलीला है, और इससे भी अधिक पुरुष के लिए वह शीतल विश्राम है। नारी सौन्दर्य की मूल केन्द्र है। वह कल्पना की प्रत्यक्ष सभावना की साकारता तथा दूसरे अतीन्द्रिय रूप लोक की अपेक्षा अधिक सौन्दर्य शालिनी है।

—कामना, देखिए पृ० ७०

सौन्दर्य यौवन-जीवन के वसन्त मे पचम की सुस्वर पुकार है। यौवन की वाटिका मे सौन्दर्य के गतिशील और स्थिर दोनो रूप खिले रहते है। जहां प्रत्येक स्पन्दन सजीव और प्रत्येक परिवर्तन अभिनव होता है। सौन्दर्य के द्वारा ही यौवन प्रीति मे, प्रीति प्रणय मे, और प्रणय स्वर्गीय सुख मे ढलता रहता है।

प्रसाद जी की सौन्दर्य दृष्टि वाह्य तथा आन्तरिक दोनो दिशाओ मे गहरी

उतरी है। बाह्य सौन्दर्य मे उन्होने तेजोज्ज्वल पवित्रता और तीव्रता के साथ साथ ही दर्शन किए है। श्रद्धा के रूप वर्णन मे उनकी सौन्दर्य भावना अधिक मुखरित हो उठी है—

'नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग,'

—कामायनी, पृष्ठ ४६

परन्तु उसके सौन्दर्य की तीव्रता मे नारी के सौन्दर्य वैभव की विमलता अक्षुण्ण बनी रहती है—

'उषा की पहली लेखा कान्त
माधुरी से भीगी भर मोद
मद भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक, द्युति की गोद,'

—कामायनी, पृष्ठ ४७

इसी विमलता मे उन्होने नारी सौन्दर्य का कोमल भी देखा है —

नई कोंपल पर किरण माला सी
खेलती है वह देव बाला सी,

—झरना, पृष्ठ ७६

उज्जवलता, मधुरता और मनोहरता नारी सौन्दर्य-पक्ष के मुख्य तत्व हैं। 'बभ्रु वाहन' मे चित्रांगदा का रूप-वर्णन इन्ही सामग्रियो के साथ हुआ है—

'उसका यौवन, निविड कादम्बिनी मे सौदामिनी के समान, अलक पाश मे हीर खण्ड के समान, मधुकर निकर अनास्वादित प्रफुल्ल राजीव के समान, उज्जवल, मधुर और मनोहर था।'

—चित्राधार, पृष्ठ ३३

प्रसाद जी इस बात को मान कर चले हैं कि 'सौन्दर्य बोध बिना रूप के नही हो सकता।' लेकिन वाह्य अवयवों के सौन्दर्य को ही सौन्दर्य मानना उन्हे कभी भी मान्य नही रहा है। मन के सौन्दर्य को महत्व प्रदान करते हुए स्थूल सौंदर्य लोभियो को उन्होने फटकार भी दी है—

'पर तुमने तो पायी सदैव उसकी सुन्दर जड देह मात्र
सौन्दर्य जलधि से भर लाये केवल तुम अपना गरल पात्र,'

—कामायनी

कामायनी के 'लज्जा-सर्ग मे अभिव्यक्त अवयवी एव मानसिक सौन्दर्य का समन्वित रूप प्रसाद जी की सौन्दर्य भावना को वैशिष्ठ्य प्रदान करता है । उनका सौन्दर्य व्यक्ति को आकर्षित ही नही करता, वरन् उसमे चेतना का विस्तार कर, उस का पथ निर्देश भी करता है—

'उज्जवल वरदान चेतना का
सौदर्य जिसे सब कहते है
जिस मे अनन्त अभिलाषा के
सपने मव जगते रहते है,
मै उसी चपल की धात्री हू
गौरव महिमा हू सिखलाती,
ठोकर जो लगने वाली है
उसको धीरे से समझाती,'

प्रसाद जी ने सौन्दर्य सम्बन्धी दार्शनिक विवेचना भी प्रस्तुत की है। वे आनन्द-वादी थे। आत्मा आनन्दमय है । सृष्टि के मूल मे आनन्द की ही प्रेरणा है। आनन्द और सौन्दर्य साथ साथ चलते है। इसी आनन्दवाद को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए शैवागमो मे प्रेमकला, या सौन्दर्य कला की प्रतिष्ठा की गई है। विश्व चिति का विशाल स्वरूप है। प्रेम और सौन्दर्य उसके अस्तित्व के आधार है। आनन्द का अन्तरग सरलता है और वहिरग सौन्दर्य। 'एक घूट' मे उनका यही विचार व्यक्त हुआ है—

'विश्व चेतना के आकार धारण करने की चेष्टा का नाम जीवन है। जीवन का लक्ष्य सौन्दर्य है ।'

वे मृत्यु मे भी सौन्दर्य का स्वरूप देखते है—

'मृत्यु अरी चिर निद्रे
तेरा अक हिमानी सा शीतल,'

—कामायनी, चिन्ता सर्ग

प्रसाद जी ने नैसर्गिक रमणीयता को ही सौन्दर्य का स्वरूप माना है। जीवन मे दिव्यता का सचार भी सौन्दर्य के माध्यम से होता है। रमणीयता अपने मूल रूप मे पावित्र्य की धारा है, जहा कलुष धुल जाते है—

'भगवती ! वह पावन मधु धारा
देख अमृत भी ललचाए,
वही रम्य सौन्दर्य शैल से
जिसमें जीवन धुल जाए,'

'प्रसाद जी ने अपने नेत्र, अपना हृदय, अपनी कल्पना, अपनी प्रतिभा ज्ञान इन सबका सहारा लिया है सौन्दर्य की अनुभूति में। उनका सौन्दर्य बाह्य अवयवों की सीमा लांघ कर हृदय लोक में आलोकित होता है और अन्त में आत्मा की दीप्ति बन जाता है। जिसके बाहर प्रकाश और भीतर रस है।'

—रामसुरेश त्रिपाठी 'प्रसाद की सौंदर्यानुभूति,
विशाल भारत, जुलाई, १६५०।

प्रकरण १२

आधुनिक भारतीय जीवन में नारी की स्थिति
और
प्रसाद की नारी-कल्पना

(अ) सामाजिक स्थिति का विकास-क्रम
(ब) वस्तु-स्थिति
(स) प्रसाद की नारी कल्पना
(द) सुधार योजना
(य) नारी स्वातन्त्र्य
(फ) प्रेम भावना और विवाह संस्था
(ज] सामाजिक सुव्यवस्था और नीति
(ह) संक्षेप

सामाजिक स्थिति का विकास-क्रम

प्रारम्भिक अध्यायो मे हम विभिन्न स्तरो पर नारी-स्थिति सम्बन्धी सुधार, विकास और प्रगति विषयक चर्चा कर आए है, जिससे आधुनिक भारतीय जीवन मे नारी की वस्तु स्थिति का विकास-क्रम ज्ञात हो जाता है। हम पहले कह आये है कि उन्नीसवी शदी के उत्तरकाल मे नारी सम्बन्धी सुधारो का प्रादुर्भाव हुआ। भारत ने सुधारको की एक लम्बी परम्परा को जन्म देकर, उनके द्वारा विकास का पथ प्रशस्त किया। इन सुधारको ने तत्कालीन प्रचलित रूढिवादिता के विरुद्ध, जिसने नारी को महत्व की दिशा मे अग्रसर होने से रोक रखा था, सर्वव्यापी आन्दोलन आरम्भ किया और उसे नये आदर्शो के नये आलोक मे अपने 'स्व' को पहचानने के लिये प्रेरणा दी। उन्नीसवी शती के सुधारको का अभियान सकीर्ण, जर्जर और अकल्याणकारी परम्पराओ के विरुद्ध ही विशेष रूप से रहा। घर की सीमाओ मे आबद्ध नारी मे शिक्षा का प्रचार किया गया। सती प्रथा, बाल-विवाह प्रथा, बहु तथा वृद्ध विवाह प्रथा को नष्ट करने के लिए आन्दोलन हुआ। देवदासी प्रथा के विनाश तथा पुनर्विवाह की योजना की गई।

सुधारो को सफल और कार्यान्वित करने के लिये सर्व प्रथम सुधार्य वर्ग के मस्तिष्क को प्रबुद्ध करने की अपेक्षा होती है। इसके लिये शिक्षा का प्रचार और प्रसार आवश्यक हो जाता है। प्रारम्भिक सुधारको ने इस भावना से प्रेरित होकर सबसे पहले महिला समाज मे शिक्षा के विकास की बात सोची, और इसीलिए वर्नाक्यूलर सोसायटी तथा 'एलफिन्सटन इन्स्टीट्यूट' ने नारी शिक्षा को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया। इन सस्थाओ से पहिले इसी दिशा मे १८४७ मे 'बैथ्यून कालेज' की स्थापना द्वारा व्यावहारिक प्रयत्न आरम्भ हो चुका था। १८८२ मे हण्टर आयोग से नारी शिक्षा को राजकीय प्रोत्साहन और प्रश्रय प्राप्त हुआ। १९०४ मे लार्ड कर्जन ने नारी शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया और इस तरह नारी शिक्षा के प्रसार मे निरन्तर प्रयोग होने आरम्भ हो गये। अभी १९५६ मे भी केन्द्रीय सलाहकार समिति की सिफारिश पर शिक्षा मत्रालय ने प्रादेशिक सरकारो से प्रार्थना की है कि वे ग्राम्य क्षेत्रो मे शिक्षा के विकास का प्रयत्न करे।

विवाह नारी के जीवन का एक विशिष्ट प्रसंग है । प्रारम्भिक सुधारको ने विवाह के संदर्भ मे तत्कालीन प्रचलित कुप्रथाओ-जैसे बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहु विवाह आदि का खण्डन किया । उन्होंने यह अनुभव किया कि इन कुप्रथाओ के कारण महिला वर्ग के विकास का अवसर अवरुद्ध हो जाता है, और उनकी वैयक्तिक प्रतिभा समाज को किसी भी विशिष्ट प्रकार का योग देने मे समर्थ नही रह जाती है । उनकी स्थिति के विकास तथा उनसे सामाजिक एव राष्ट्रीय क्षेत्रो मे सहयोग प्राप्त करने की इच्छा से नारी के विवाह सम्बन्धी प्रश्न पर बडी गम्भीरता से सोचा गया । इस दिशा मे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महादेव गोविन्द रानाडे, मालाबारी, एनी बीसेंट तथा मोहनदास करमचन्द गाधी द्वारा विशेष प्रयत्न किए गये । ये सभी सुधारक यह मान कर चले कि स्वस्थ सामाजिक जीवन की स्थापना के लिए विवाह-आयु मे वृद्धि आवश्यक है । बालिकाओं को उनके विकास काल मे ही मां बना देना धर्म सगत नही कहा जा सकता । उन्होने कहा कि बहु-विवाह प्रथा नारी के मूल्य और महत्व को पतन के स्तर पर पहुचा देती है । वृद्ध विवाह् अवश नारी का करुण चित्र उपस्थित करती है । उन सबने (विवेकानन्द को छोड कर) पुनर्विवाह का भी समर्थन किया । वैधव्य की पीडा और नारकीय जीवन उनसे अदृष्ट नही था । १८५३ मे विद्यासागर की एक पुस्तक 'विडो रिमैरिज' प्रकाशित हुई, जिसमे विधवा विवाह् का समर्थन किया गया था । उन्ही के प्रयत्न से १८५६ मे 'विडो रिमैरिज' एक्ट पास हो गया । इसी दिशा मे १८७२ में 'अन्तरजातीय विवाह अधिनियम' पारित हुआ । बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षो मे सयाजी राव गायकवाड ने अपने राज्य क्षेत्र में बाल विवाह् निषेध सम्बन्धी कानून प्रचलित किया । इस शती मे विवाह क्षेत्र मे हर विलास शारदा के प्रयत्न भी महत्वपूर्ण है । १८ मई १९५५ को पारित 'हिन्दू विवाह् विधेयक' इस दिशा मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी प्रकार नारी वर्ग को अधिक सुविधा देने के क्षेत्र मे भिन्न-भिन्न राज्यो मे भिन्न-भिन्न अवसरो पर सम्बन्ध-विच्छेद सम्बन्धी नियम भी पारित किए गए हैं ।

विवाह् सम्बन्धी उपर्युक्त सुधारो के अतिरिक्त नारी के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारो की ओर सुधारको और सरकार का ध्यान बीसवी शती मे ही आकर्षित हुआ । १९२९ के 'हिन्दू उत्तराधिकार नियम' के अन्तर्गत नारी को सभवत पहली बार सम्पत्ति सम्बन्धी क्षेत्र में अधिकार मिले । १९३७ मे हिन्दू महिला अधिकार सम्बन्धी अधिनियम' के अन्तर्गत विधवा के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारो की समुचित व्याख्या की गई ।

दूसरे सुधारों मे शती कुप्रथा का अन्त राजा राम मोहन राय द्वारा उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध मे ही हो चुका था । अब बीसवीं शती मे १९२३ से आरम्भ हो कर १९५५ तक विभिन्न राज्यो ने वेश्यावृत्ति निवारण सम्बन्धी नियमो का नियमन

किया तथा इस प्रकार नारी को स्वस्थ मनोभूमि पर सम्मानित करने की दिशा मे ठोस और सक्रिय कदम उठाया। नारी को राजनैतिक अधिकारो के क्षेत्र मे राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति से भी प्रोत्साहन मिला। बीसवी सती के दूसरे दशक मे गाधी जी ने राजनीति मे प्रवेश किया। इस उदीयमान नेता ने नारी की शक्ति को पहचान कर, राष्ट्रीय आन्दोलन की शक्ति बढाने के हेतु उसका राष्ट्रीय क्षेत्र मे आवाहन किया। उसी समय सरोजनी नायडू, एनी बीसेंट तथा हीरा बाई टाटा आदि विदूषियाँ स्वय भी राष्ट्रीय जागरण से उत्प्रेरित हो रही थी। यह १९१७ का समय था। विश्व युद्ध समाप्ति पर था। इसी समय महिलाओ ने मताधिकार की माग की। यह माग १९१९ मे फिर दोहरायी गई। जिसका फल बम्बई तथा मद्रास राज्य की महिलाओ को १९२९ मे मिला। उसके उपरान्त मताधिकार की माग दूसरे राज्यो की महिलाओ मे भी बढती चली गई। और १९२८ तक बहुत से राज्यो की महिलाओ को यह अधिकार प्राप्त हो गया। गाँधीजी द्वारा आरम्भ किए गये आन्दोलनो एव सत्याग्रहो मे नारी ने सक्रिय भाग लिया और १९४२ के 'भारत छोडो' आन्दोलन मे तो उसकी राष्ट्रीय भावना का उज्जलतम उदाहरण प्रस्तुत हुआ। और १९५० के स्वतन्त्र भारत के सँविधान द्वारा अब नारी को पुरुष के समान अवसर प्रदान करने की घोषणा हो गई है।

इस प्रकार आधुनिक भारत मे नारी-स्थिति का विकास कुप्रथाओ के विनाश और सुधार कार्य से आरम्भ होकर उन्हे राष्ट्रीय स्थल पर समान कार्य क्षेत्र एव अधिकार प्रदान करने तक हो चुका है। इस परम्परा मे राजा राम मोहन राय से लेकर गाधी जी तक बहुत से सुधारको, मनीषियो एव चिन्तको का योगदान विशेष रूप से रहा है। ये १९वी शती के पूर्वार्द्ध मे सती प्रथा के विरोध का स्वर ऊचा कर, सुधार-क्षेत्र मे आगे आये थे। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने शिक्षा, पुर्नविवाह, कुलीनवाद तथा बहु-विवाह की प्रथा का खण्डन कर, सामाजिक व्यवस्था को स्वस्थ दृष्टिकोण से परिष्कृत करने का प्रार्थनीय परिश्रम किया था। वे बाल-विवाह के परिणाम स्वरूप व्याप्त विधवा की दयनीय दशा से सर्वाधिक पीडित थे। उन्होने 'पराशर सहिता' से तर्क उपस्थित करके पुर्नविवाह का समर्थन किया और उसको धर्ममान्य बताया। शिक्षा-पद्धति मे आमूल परिवर्तन करने के विषय को लेकर विद्यासागर जीवन भर परिश्रम-रत रहे। इनके समय बँगाल मे प्रचलित कुलीनवाद की परम्परा ने विवाह-क्षेत्र मे उत्पीडन व्याप्त कर रखा था। गरीब ब्राह्मण कुलीनता के जर्जर दम्भ की मान-रक्षा के लिए योग्य वरो को खोज सकने मे असमर्थ होकर, वृद्ध कुलीनो से ही बाल और किशोरी पुत्रियो का विवाह कर देते थे। विद्यासागर ने पहली बार इस प्रथा का खुलकर विरोध किया। नारी वर्ग को सम्मान दिलाने के पक्ष मे विद्यासागर के प्रयत्न स्तुत्य है। बगाल के विद्यासागर की ही भाति महाराष्ट्र मे रानाडे, सुधार क्षेत्र मे उन्ही के समानान्तर चलते है। बाल-विवाह की हानियो से विज्ञ उन्होने इस

कुप्रथा को समाज के लिए अनिष्टकर बतलाया और भारतीय सांस्कृतिक ग्रन्थो से अपने मत की पुष्टि की। इसी प्रकार विद्यासागर की ही भाति उन्होंने भी पुनर्विवाह की वकालत की।

भारतीय संस्कृति की रक्षा और उसी की पृष्ठभूमि मे सुधारो के विकास का दृढ सकल्प लेकर आने वाले स्वामी दयानन्द का सुधारवादियो की परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान है। सुधार कार्य मे इनकी योजनाये अधिक व्यावहारिक रही हैं। और उनके द्वारा समाज के एक बडे वर्ग को लाभान्वित किया गया है। यह हिन्दुओ की सकीर्णता और कट्टरता के विरुद्ध आर्य-सदेश लेकर आये, जिसके द्वारा धर्म की नवीन और विस्तृत व्याख्या की गई। आर्य समाज के द्वारा नारी-शिक्षा पर विशेष बल दिया गया और उनके लिए व्यावहारिक भूमि पर गुरुकुलो की स्थापना की गई। इन्ही के द्वारा नारी के प्रति पूज्य भावना का वैदिक मन्त्र फिर से भारतीय वातावरण मे गुजरित हुआ। दयानन्द का महत्व निरीह और आक्रान्त हिन्दुत्व को नवीन स्फूर्ति और प्रेरणा देने के विषय को लेकर विशेष हो जाता है।

दयानन्द की ही भाति विवेकानन्द ने भी भारतीय नारी के गौरव की पुनर्स्थापना करनी चाही है। शिकागो तथा पेरिस की धर्म-सभाओ मे उन्होंने भारतीय नारी की महिमा प्रतिष्ठित की। वे नारी को धार्मिक शिक्षा देने के पक्ष मे थे। बाल-विवाह का विरोध उनके द्वारा भी हुआ, परन्तु पुनर्विवाह को इनके द्वारा समर्थन प्राप्त न हो सका क्योंकि उनका विश्वास था कि ऐसे विवाहो से उत्पन्न सन्तान राक्षसी और दुष्ट प्रकृति की होती है। सुधार-क्षेत्र मे विवेकानन्द का विशेष महत्व नारी-स्वातन्त्र्य का प्रबल समर्थन करने मे है। उनका कहना था कि नारी को पराधीन बनाये रखना वास्तव मे उसकी निष्ठा के प्रति अत्याचार करना है। दयानन्द की भांति विवेकानन्द भी पुनरुत्थानवादी थे। किन्तु दयानन्द की भाँति उनके पास नारी-उत्थान के लिए कोई व्यावहारिक पुरोगम न था। अत उनके सिद्धान्तो को अधिक सफलता न मिल सकी। दयानन्द का आर्य समाज आज भी जीवित है। परन्तु विवेकानन्द के सिद्धान्तो और आदर्शों को चलाने वाली किसी विख्यात सस्था के विषय मे अधिकाश जनता अविज्ञ ही है।

इसी काल के दूसरे सुधारवादी बहराम जी मालाबारी हैं, जिन्होंने बाल-विवाह को वैधानिक रूप से नष्ट करने में विशेष योग दिया। केशवचन्द्र सेन स्त्री-शिक्षा और स्वतन्त्रता के लिए आगे आये। उन्होने नारी की वैयक्तिकता को महत्व प्रदान किया और उसे पुरुष के समान ही सभी क्षेत्रो मे अवसर देने की बात का समर्थन किया। इसी दिशा मे बीसवी शती के आरम्भ मे जी के. देवधर ने युवा और प्रौढ़ महिलाओ में शिक्षा-प्रसार का प्रयास किया। एनी बीसेंट ने बाल-विवाह तथा नारी-शिक्षा पर विशेष बल दिया। अभारतीय होते हुए भी एनी बीसेंट पहली महिला थीं, जिन्होने भारतीय नारी के अधिकारों की वकालत की। उन्होने इसीलिए भारतीय

राजनीति मे भी भाग लिया और वहा भी नारी के अधिकारो के लिए लडी । एनी बीसेंट ने तत्कालीन नारी-वर्ग के सम्मुख अपना उदाहरण प्रस्तुत कर, उन्हे प्रेरणा दी और वैयक्तिक सकीर्णता से बाहर निकल कर सामाजिक एव राष्ट्रीय स्थल पर अपने अधिकार-क्षेत्र के विषय मे सोचने का अवसर प्रदान किया । इनकी समकालीन महिलाओ मे सरोजनी नायडू तथा हीराबाई टाटा का नाम विशेष उल्लेखनीय है । सरोजनी नायडू सभवत पहली भारतीय महिला थी जिनका सम्पर्क राष्ट्रीय कॉंग्रेस से था और जिन्होने राष्ट्रीय हितो मे नारी का भाग और अधिकार भी आवश्यक समझा था । महर्षि कर्वे उन्नीसवी शती के अन्तिम दशक से लेकर आज तक भी नारी-शिक्षा के लिए व्यावहारिक कार्य-क्षेत्र प्रदान करने मे श्रम रत है । बम्बई राज्य का महिला-वर्ग उनकी इस शैक्षणिक सेवा से बहुत लाभान्वित हुआ है ।

आधुनिक काल के उत्तर-भाग मे नारी-स्थिति-सम्बन्धी समस्याये और तत्-सम्बन्धी समाधान गाधी जी की सुधार योजना से निकट रूप से सम्बन्धित है । उन्होने नारी-जीवन के प्रत्येक पहलू पर अपने विचार प्रकट किये है, तथा उच्चतर सामाजिक, नैतिक, धार्मिक एव राष्ट्रीय जीवन बिताने की दिशा मे, पुनरुत्थानवादी तथा सुधारवादी आदर्शो के समन्वय से नया दिशा-ज्ञान प्रस्तुत किया है । उन्होने सती-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, शिक्षा, पर्दा, देवदासी तथा राजनीति—सभी क्षेत्रो और समस्याओ पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया हे । उनकी कठिनाइयो को अनुभव किया है तथा अपने समाधान उपस्थित किए है । वे नारी को पुरुप के समान ही अवसर देने के पक्ष मे है । उनका कहना है कि नारी को वैयक्तिक विकास के लिए सामाजिक स्वीकृति मिलनी ही चाहिए । वे नारी के मातृत्व रूप की महानता स्वीकार करते है । ऐसा लगना है कि नारी-स्थिति के विकास के प्रश्न को लेकर सामाजिक क्षेत्र के गाधी जी साहित्यिक क्षेत्र मे प्रसाद का स्वरूप लेकर अवतरित हुए है ।

उपर्युक्त समाज सुधारको की भाति आधुनिक काल मे बहुत सी सुधार-सस्थाओ द्वारा भी नारी-स्थिति को सुधारने विषयक कार्य सम्पन्न किए गए है । इन में बहुत सी सस्थाये उन्ही समाज सुधारको की प्रेरणा का परिणाम थी । उन्नीसवी शती मे ही दयानन्द द्वारा स्थापित 'आर्य समाज' प्रारम्भिक सुधार सस्थाओ मे सर्वाधिक लोक-प्रिय और मुख्य रहा है । आर्य समाज द्वारा विशेष रूप से वैदिक शिक्षा की प्रतिष्ठा की गई तथा भारतीय सस्कृति के पुनरुत्थान के लिए प्रयत्न किया गया है । १८८७ मे रानाडे द्वारा स्थापित 'भारतीय परिषद्' ने सामाजिक कुप्रथाओ के विनाश मे विशिष्ठ योग दिया है तथा नारी को विकसित और उन्मुक्त वातावरण में अपनी शक्ति का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया है । विद्यार्थी-सघ ने नारी-शिक्षा के विकास-कार्य मे जो योग दिया है, उसकी महत्ता को किसी भी प्रकार से दृष्टि-ओझल नही किया जा सकता । इस सघ के तत्वावधान मे नारी-स्थिति मे शिक्षा-प्रचार करने, उनसे सम्बन्धित कुप्रथाओ का निवारण करने तथा उन्हे विस्तृत

अभिजातीय वर्ग तक ही होकर रुक गया है। हा, स्नातक स्तरीय शिक्षा प्राप्त महिलाओ मे भी यदि परिस्थितिया अनुकूल है, इस भावना के अरणु विकास प्राप्त कर रहे हैं।

फिर भी यह तो कहना ही होगा कि नारी सम्बन्धी इन आन्दोलनो द्वारा भारतीय जीवन मे एक नवीन दृष्टि का विकास हुआ है और नारी स्थिति को लेकर लगता है, जैसे युग का परिवेश बदल गया है। आज की नारी सती प्रथा, बाल-विवाह, बाधित वैधव्य तथा वृद्ध विवाह आदि कुप्रथाओ का आहार नही है। वह शिक्षित है। उसका मस्तिष्क प्रबुद्ध है। उसमे सामाजिक चेतना है। अपनी योग्यतानुसार राष्ट्रीय योजनाओ मे भाग लेती है। जीवन के हर क्षेत्र मे उसका सहयोग अपेक्षित है। समाज मे उसे सम्मान की प्राप्ति है और इस प्रकार वह सामाजिक सुविधाओ का अपनी सामर्थ्यानुसार उपयोग कर सकने की अधिकारिणी है।

तुलना के लिए आप १८५७ की एक सामान्य महिला का चित्र लीजिए। जिसका बाल्यावस्था मे विवाह हो गया है। जो युवा होते होते कई सन्तानो की मा बन गई है। जो निरक्षरा है। जिसका अपना कोई मत नही है। जो पति की दासी है। जो विधवा हो जाने पर अपने पति के पारिवारिक सदस्यो के व्यग्य-बाणों से आहत है। जो एक-एक रोटी के टुकडे के लिए उन पर आश्रित है। जिसे जीवन भर इसी दयनीयता को गले से बाँधे रखना है। जिससे त्राण का कोई मार्ग उसके पास नही है। वह घर की सीमाओ मे बन्दिनी है। शेष समाज से उसका कोई सम्बन्ध नही है। उसके लिए उपेक्षा, घृणा, पीडा और उदासीन जीवन की निराश सासो को चलाये रखना ही जैसे सब कुछ है।

और उसके बाद १६५७ की जागरुक नारी का रूप, जिसको घर के बाहर भी वैयक्तिक महत्ता प्राप्त है। जिसके व्यक्तित्व का सामाजिक स्तर पर सम्मान भी है। जो अब पुरुष की कठपुतली नही, वरन् उसकी सहयोगिनी और कही-कहीं उसकी निर्देशिका भी है जो अपने अधिकारो से परिचित है और जिसकी दृष्टि दूर, धीरे धीरे पास आते हुए अपने उज्ज्वल भविष्य पर रुकी हुई है।

राष्ट्रीय जागरण के साथ-साथ भारत मे साम्य-भाव की प्रतिष्ठा का आयोजन हुआ। इस समानता के आदर्श की प्रतिष्ठा मे भारत की सामन्तवादी प्रथा का अन्त हो गया। इससे परम्परा से चले आये हुये ऊच-नीच के विश्वास पर प्रहार हुआ। परिणामस्वरूप दलित मानवता ने अपनी प्रतिष्ठा के लिए सघर्ष आरम्भ कर दिया। नारी वर्ग भी पुरुष के अत्याचारो से दलित था, अतः इसका भी उत्थान हुआ और नवीन भूमिका के मध्य इसके नवीन स्वरूप की प्रतिष्ठा की गई।

वस्तु-स्थिति--

इस तरह से विहगम दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि आज के भारतीय नारी जीवन के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हो चकी है और किसी भी क्षेत्र में चाहे वह सामाजिक, धार्मिक या राष्ट्रीय ही क्यो न हो, नारी पुरुष से पिछडी हुई नहीं है। परन्तु यदि हम तटस्थ होकर विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखे तो ज्ञात होता है कि आज भी नारी की वस्तु-स्थिति कम दयनीय नही है। भारत की नारी स्थिति में सुधार और विकास का कार्य पुरुष सुधारको द्वारा ही सम्पन्न हुआ है और उस सुधार-कार्य मे एक प्रकार से उस नारी वर्ग के प्रति दया और करुणा की भावना ही प्रमुख रूप से व्यक्त हुई है। करुणा और दया के माध्यम पाई गई वस्तु पर कभी भी अभिमान नही किया जा सकता है। ठीक यही भावना आज की भारतीय नारी के साथ विद्यमान है। उस छोटे से वर्ग को छोड दीजिए जो धनी और शिक्षित है। शेष नारी समाज अपनी वस्तु-स्थिति मे आज भी हीन भावना से त्रस्त है। आज की मध्य वर्गीय पत्नी पति को परामर्श देती है, उसके सम्मुख विशेष दशा मे तथ्य प्रस्तुत करती है, यह ठीक है, परन्तु यह भी ठीक है कि उसकी बात को मानने या न मानने का अन्तिम अधिकार, व्यावहारिक रूप मे, आज भी पति ने अपने लिए ही सुरक्षित रखा है। पुत्री, बहिन या पत्नी के रूप मे आर्थिक सुव्यवस्था के लिए वह घर से बाहर नौकरी करती है, लेकिन उसी समय तक, जब तक उसके अभिभावकों का समर्थन और अनुमति उसे प्राप्त है। इसी प्रकार सामाजिक एव राष्ट्रीय आयोजनों मे भाग लेने की बात है। बिना पुरुष की इच्छा के वह आज भी घर से बाहर आ सकने में असमर्थ है। कुछ बडे नगरो मे, ठीक है, कि नारी-स्वातन्त्र्य का व्यावहारिक रूप देखने को मिल सकता है। वह सब जगह विचरण करती दिखलाई पड सकती है। कार्यालयो मे, शिक्षा-सस्थाओ मे, आमोद-प्रमोद गृहों में, सार्वजनिक सभाओं मे, सुधारवादी एवं राष्ट्रीय सस्थाओ में सभी स्थानों पर नारी के अपेक्षाकृत स्वतन्त्र रूप के दर्शन हो सकते हैं। लेकिन इसका कारण अभिभावकों की उदारता तथा महिलाओ की शैक्षणिक और सामाजिक जागरूकता से अधिक परिस्थितिया और आवश्यकता है। बडे नगरों मे भी उन परिवारों की महिलायें, जो साधन-सम्पन्न हैं, आज भी—इतनी जागरूकता के बाद भी आज से सौ वर्ष पूर्व का जीवन व्यतीत कर रही है। आज भी उनके पुरुष का वाक्य उनके लिए अन्तिम वाक्य है। अपने अधिकारों की बात जान कर भी वे पुरुष का विरोध नही कर सकती, इस का कारण उनके परम्परागत सस्कार है। बडे नगरों के बहुत थोड़े से परिवार, जो उंगलियों पर गिने जा सकते हैं, ऐसे हैं, जहां महिलाओं को उस अवस्था तक स्वतन्त्रता

मिली हुई है, जैसी पाश्चात्य देश की महिलाओ को। जो न तो सास्कारिक हीन-भावना से ग्रस्त है और न अपने रुचिवाले विषयो के सम्बन्ध मे पुरुष पर अवलम्बित ही। जो वास्तविक रूप से स्वतन्त्र है, जिनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व है, और जो व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता पर विश्वास भी करती है।

परन्तु ऐसे महिलावर्ग के सम्बन्ध मे फिर मन मे प्रश्न उठता है कि क्या उनका मार्ग समस्त महिला-वर्ग का योग्य-मार्ग हो सकता है ? हम यहा पर केवल भारतीय महिलाओ की चर्चा कर रहे है। क्या उसके माध्यम देश और जाति के उन्नयन की आशा की जा सकती है ? क्या पाश्चात्य सभ्यता से आलोक मे भारतीय सस्कारो की सीमा को लिए हुए यहा का महिला वर्ग सफलता पूर्वक अपने पथ को प्रशस्त कर सकने मे समर्थ हो सकता है।

इतना ही नही, क्या वे महिलाये भी जो अपनी साधन-सम्पन्नता के दर्प मे इस स्वतन्त्र व्यक्तित्व का लाभ अर्जन कर रही है, वास्तव मे, अपने इस कृत्य के प्रति एक दम आश्वस्त है ? क्या सशय का—इस सशय का कि कही उनका यह कृत्य भारतीय मिट्टी मे अतिवाद के अकुर तो नही उपजा रहा है—कोई भी अश उनके चेतन या उपचेतन मस्तिष्क को उनके अकेले क्षणो मे नही झकझोरता ? हमारे विचार से अपनी गतिविधि मे पूर्णतया स्वतन्त्र होकर भी वे सुखी और शान्त नही है। इसका कारण भारतीय सस्कार और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जो अतिवाद के विरुद्ध समन्वय पर अधिक विश्वास करती है।

इसी वर्ग मे लम्बी अवस्था तक अविवाहित रहने की एक परम्परा धीरे धीरे बल पकड रही है। विवाह योग्य आयु तक तो यह वर्ग अपनी स्वतन्त्र वैयक्तिकता के दर्प मे पुरुष के आधीन रहने मे विश्वास नही करता। (इनके कोष मे 'विवाह' शब्द का अर्थ महिला वर्ग पर पुरुष जाति का अनुशासन और अधिपत्य होता है, इसीलिए।) और आयु निकल जाने के उपरान्त आकाक्षाओ के अप्राकृतिक शमन के कारण उनका मन और मस्तिष्क कुठाओ को जन्म देने लगता है। इस वर्ग की महिलाओं की सबसे बडी भूल विवाह को पुरुष की आधीनता मानने मे होती है। प्राकृतिक आकाक्षाये अपना शाश्वत महत्व रखती है। सत्य तो यह है कि स्त्री विवाह के बिना भी जीवित रह सकती है, परन्तु पुरुष के बिना भी वह जीवित रह जायेगी, सामान्यतः इस पर विश्वास करने के लिए एक हिचक सी होती है। और पुरुष जब अनिवार्य आवश्यकता के रूप मे प्रकट होता है, (ठीक उसी तरह, जिस तरह नारी भी पुरुष के लिए अनिवार्य आवश्यकता बनी हुई है) तो विवाह-सम्बन्ध के अभाव मे व्यक्ति की पाशविक वृत्ति और कुठा को प्रोत्साहन ही नही मिलता बल्कि उसका विस्तार भी होता है। बडे नगरो के इस विशिष्ठ नारी वर्ग की भारतीय समाज को यही

देन है । इन्होने पाश्चात्य आदर्शों को भारतीय मिट्टी मे अकुरित और पल्लवित करने की जो भूल की है, हमारे विचार से वह स्वय इन्ही के लिए हानिकर बन गई है । हम यह नही कहना चाह रहे है कि नारी को पौराणिक काल की भांति पारिवारिक सीमाओं मे आबद्ध कर दिया जाय बल्कि हमारा यह विचार है कि स्वतन्त्रता के इस भाव को पाश्चात्य आलोक मे देख कर इसे 'सैक्स' की स्वतन्त्रता तक न घसीट ले जाया जाय । इससे हमारी सास्कृतिक भावना का हनन होता है । दुर्भाग्य से उपर्युक्त विशिष्ठ वर्गीय नारी की स्वतन्त्रता इस बिन्दु का स्पर्श कर चुकी है ।

अब मध्य वर्ग की नारी को लीजिए । वह आज भी अपने अस्तित्व मे दयनीय तथा अधिकार क्षेत्र मे असमर्थ है । माना, कि वैधानिक और सैद्धान्तिक रूप मे वह अपने कृत्यो के लिए पूर्ण स्वतन्त्र है । लेकिन व्यवहार मे उसकी स्वतन्त्रता का कितना महत्व और अर्थ रह जाता है । पारिवारिक छुट-पुट आयोजनो के अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र मे उसे कौन, कहा, कितना महत्व देता है । अपनी उर्जस्वित कामनाओं को वह मन की घुटन में घोल कर विष बना देती है । विवशता की एक करुण छाया सदैव ही उसके साथ लगी रहती है । आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त और झुंझलाये हुए पति का रोष उसे ही सहन करना होता है । जीवन की विभीषिका से संघर्ष करते-करते वह उसकी अभ्यस्त हो जाती है । जड मशीन की भांति उसका उदासीन जीवन निरपेक्ष भाव से चलता रहता है । और फिर हर कठिनाई के सम्मुख वह अपनी मूक वाणी में जैसे तटस्थ, निर्लिप्त भाव से कहती है—'यह तो होता ही रहता है ।'

मध्य वर्गीय नारी अपनी वस्तु स्थिति में जीवन के उच्चतर मूल्यो को कोई स्थान नही दे पाती । यदि वह धनोपार्जन करती है, तो उसके उपयोग में वह स्वतन्त्र नहीं है । सार्वजनिक आयोजनो में, यहां तक कि मताधिकार के क्षेत्र में भी उसे भाग लेने के लिए पुरुष के निर्देशों पर निर्भर रहना पडता है । जिस प्रकार पाश्चात्य सस्थाओ ने नारी को सार्वजनिक क्षेत्रों मे कुछ सम्मानपूर्ण स्थितिया प्रदान की हैं, उस प्रकार का कार्य भारतीय सस्थाओं द्वारा नही किया गया । मध्य वर्गीय नारी मे लोकभय और शका की मात्रा अधिक है, इसीलिए वे अपने उपलब्ध अधिकारों का भी उपयोग कर सकने मे असमर्थ है । हां, इस वर्ग में शिक्षा के विकास ने उन की आर्थिक स्थिति को किसी सीमा तक प्रभावित किया है । मध्य वर्गीय परिवारों में नारी को देवी के सम्मानपूर्ण पद पर शोभित किया गया है । वह गृहिणी का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है । सारी आदर्शवादिता, नैतिकता और धार्मिकता नारी के मन की पाप-पुण्य की भावना पर आधारित है । सिद्धान्त रूप में नारी को इतना महत्व दे दिया गया है कि वह कभी-कभी इस पृथ्वी से ऊपर का जीव लगती है ।

और इस लोकोत्तर रूप की कसौटी है, उस का सैक्स सम्बन्ध मे पवित्र और निर्मल होना। इस प्रकार से पुरुष ने मध्य वर्गीय नारी को सामाजिक तथा नैतिक नियमो की अर्गला मे इतनी बुरी तरह जकड दिया है कि उसके जरा से हिलने-डुलने से भी सामाजिक मर्यादाओ के क्षय होने की आशका बनी रहती है। सम्मानित होकर भी वह असम्मान पूर्ण बन्धन मे बद्ध जीवन जी रही है। यह उसके भाग्य और उसकी स्थिति की सबसे बडी विडम्बना है।

विशिष्ठ वर्गीय तथा मध्य वर्गीय नारी के बीच मे एक अन्य वर्ग का भी उल्लेख आवश्यक हो जाता है। इस वर्ग को हम सुविधा के लिए अपरिष्कृत वर्ग कह सकते है। यह वर्ग उन महिलाओ का है जो विशिष्ठ वर्ग की भाति जीवन निर्वाह का आदर्श अपनाना चाहती है, लेकिन जिनमे मध्य वर्गीय सकोच विद्यमान है और इसलिए उनका व्यवहार बडा कृत्रिम तथा जीवन निर्वाह की प्रक्रिया बडी अस्वाभाविक सी लगती है। (यह सत्य है कि इस वर्ग की भावना अपरिष्कृत सस्कार के कारण उद्भूत हुई है और कुछ विशिष्ठ जातीय महिलाओ मे ही इस भावना का विस्तार हुआ है।) उनकी आखे पाश्चात्य आलोक से चमत्कृत होती है। परन्तु रूढिवादिता की सीमा-रेखा को लाघने के लिए न तो उनके सस्कारो मे क्रान्ति ही हो सकी है और न उनमे समाज के विरुद्ध चलने का खुला साहस ही हैं। विशिष्ठ वर्गीय नारी तो स्पष्ट रूप से अपनी स्वतत्रता का प्रतिपादन करती है। और व्यवहार मे उसका उपयोग भी। उसकी दृष्टि मे पुरुष के प्रति एक उपेक्षा की भावना होती है। वह खुल कर उसकी अवहेलना भी कर सकती है। वह अपने व्यवहार की बुराई को छिपाना नही चाहती। वह जो है, सब देखे। न तो उसे किसी से भय ही है और न वह किसी की चिन्ता ही करती हैं। लोक-व्यवहार की भी नही। परन्तु इस अर्ध-परिष्कृत वर्ग को समाज से भय है। इस वर्ग की नारी अपने मान-सम्मान की चिन्ता करती है। लेकिन इसके साथ ही उस स्वतन्त्रता का उपभोग भी करना चाहती है जो विशिष्ठ वर्गीय नारी को प्राप्त है। इसीलिए इस स्वतन्त्रता का उपभोग वे छिप कर करती है। दिखाने के लिये, वे दिखाना चाहती है कि वे भारतीय आदर्शों की रक्षिता है, परन्तु मन से वे पाश्चात्य समाज से अधिक प्रभावित प्रतीत होती है। 'सैक्स की स्वतन्त्रता' के विषय मे भी इनका यही रवैया होता है। जो समाज मे गुप्त रूप से व्यभिचार-भावना को फैलाता है और इनके चरित्र का थोथापन समाज की नीव को खोखला और निर्बल बनाने मे योग देता है। (हालाकि इस प्रकार का नारी वर्ग भारत के केवल दस-पन्द्रह बडे बडे नगरो मे ही विकसित हो रहा है। एक तरह से हम कह सकते है कि भारत विभाजन के पश्चात् ही इस अपरिष्कृत वर्ग का जन्म हुआ है।)

जहा तक सामान्य वर्गीय नारी का प्रश्न है, उसकी स्थिति का विश्लेषण दो स्वरूपो मे किया जा सकता है। वह व्यावहारिक रीति से सामाजिक क्षेत्र में मध्य वर्गीय नारी की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र है। वह गृहस्थी की देख-भाल के अतिरिक्त बाहर भी पुरुष के साथ कार्य करती है। उसका कारण आर्थिक पीडन है। वह अशिक्षित होती है और उसका पुरुष भी। इसलिए अपने भरण-पोषण के लिए दोनों को परिश्रम करना पडता है। शायद इसी अर्थ समस्या के कारण इस वर्ग मे मध्य वर्ग की भाति सैक्स-सम्बन्धी 'सकीर्णता' भी अधिक नहीं है। वह अपने पुरुष को निर्देश देती है, जिसका मूल्य होता है। पारिवारिक तथा सामाजिक दोनों क्षेत्रों में उसे समान अधिकारों की स्वीकृति होती है। निरक्षर होने के कारण उसके कार्यों में अधिक-व्यवस्था नही हो पाती। प्रबुद्ध मस्तिष्क के अभाव मे वह भावुक और वाचाल होती है।

दूसरा स्वरूप उसकी अतिशय दीनता की कहानी उपस्थित करता है। उसे दिन रात अपने पति की प्रताड़ना सहनी पडती है। वह पुरुष की सम्पत्ति समझी जाती है और उसके साथ सभी प्रकार की पाशविकता के व्यवहार किये जाते है। उसका जीवन तिल-तिल जलती हुई दीपक की बत्ती के समान होता है जो अपने करुणा मे ही, अन्त मे जीवन की सार्थकता मान लेता है। आज भी नय युग के परिवर्तित होते हुए परिवेश से वह अनभिज्ञ है। उसका जीवन पारिवारिक वातावरण के अतिरिक्त अपने खेत, खलिहान, मिल और फैक्टरी तक ही सीमित है। नव्य युग, किस दिशा मे प्रगतिशीलता का पथ ग्रहण कर रहा है, इस प्रसग में वह सामान्यत उदासीन है। क्योंकि उसका अधिकाश समय अपनी उदर पूर्ति की समस्या को ही हल करने मे चला जाता है। इस प्रकार से सामान्य वर्गीय नारी, जीवन के व्यवहार मे अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता और दुर्भाग्यपूर्ण विडम्बना—दोनो का फल साथ-साथ भोग रही है।

हा, ग्रामीण क्षेत्रो मे जमीदारी के उन्मूलन के पश्चात् नारी की दशा मे सुधार के चिन्ह दिखाई पडने लगे हैं। उनके 'सैक्स' का पावित्र्य अब अपेक्षाकृत सुरक्षित है। वहा पुरुष और महिला, दोनो के मस्तिष्क का स्तर लगभग समान ही होता है। महिलायें पुरुष से अधिक परिश्रमी होती हैं अतः उसी अनुपात मे उनका सम्मान भी है। यह ठीक है कि भारतीय सस्कृति का व्यापक प्रभाव होने के कारण पति आज भी देवता है। लेकिन पत्नी को भी नारायणी का पद मिला हुआ है। हम स्त्री-पुरुष के सामजस्यपूर्ण जीवन की झाकी किसी सीमा तक एक खेतिहर-दम्पति मे देख सकते है। लेकिन उसका अर्थ यह नही हो जाता कि वहा महिला जीवन-क्षेत्र मे वैषम्य का अभाव है। अशिक्षा, कुप्रथाओ की प्रचलित परम्परा तथा

साधनो के अभाव के कारण महिला-जीवन की स्वाभाविक श्रेष्ठता को नही समझा जा सका है और इसीलिए किसी निरीह जीव की भाति ज्ञान-विज्ञान से अविज्ञ, मानसिक विकास से दूर विभ्रष्ट, अभाव जनित कु ठाओ को लिए हुए भारत की सामान्य वर्गीय नारी अपना जीवन निर्वाह करती चल रही है ।

प्रसाद की नारी-कल्पना—

उपर्युक्त पक्तियो मे हम भारतीय जीवन मे नारी-स्थिति का सवैधानिक तथा सामाजिक विकास और विभिन्न वर्गीय महिलाओ की वस्तु-स्थिति का विश्लेषण कर आए हैं । हम कह आये है कि इन सुधार-आन्दोलनो एव सुधारको और विचारको की नवीन दृष्टि ने उनके सामाजिक परिवेश को परिवर्तित और प्रभावित किया है। इसी बदले हुए परिवेश मे प्रसाद ने किस प्रकार की नारी कल्पना को प्रसूत किया है, अब अगली पक्तियो मे हमे इस विषय पर विचार करना है ।

प्रसाद का साहित्यिक उद्‌भव बीसवी शती के द्वितीय दशक से होता है । सामाजिक पृष्ठभूमि के रूप मे उन्होने नवीन-सुधार भावना प्रस्फुटित होते देखी थी । और पिछली परम्परायें भी एक दम नष्ट नही हो गई थी । अत उनके लिए तुलनात्मक अध्ययन का भी क्षेत्र विद्यमान था । भारतीय सास्कृतिक एव दार्शनिक ग्रन्थो के गम्भीर अध्ययन ने उनके सम्मुख प्राचीन वैदिक भारत के कुछ उज्ज्वल तथ्य प्रकट किए थे, और उनका विश्वास था कि देश की उन्नति आज भी उन्ही आदर्शो के माध्यम से सम्भव हो सकती है । हा, परम्पराओ के बहुल उपयोग से जिस सकीर्णता का विस्तार हुआ है, उसका व्यक्ति और समाज के हितो की रक्षा के लिए अन्त होना ही चाहिए । इसीलिये उनकी सुधार योजना—क्योकि वह बहुत सी प्रचलित प्रथाओ के विरुद्ध, जिनकी प्राण—शक्ति नष्ट हो गई है—पडती है, एक क्रान्ति का सा आभास देती है । परन्तु वास्तव मे वह भारतीय आदर्शो, मान्यताओ और स्वस्थ विश्वासो से ही पोषित है । इस पर किसी प्रकार का सन्देह नही किया जा सकता ।

प्रसाद जी ने भारतीय नारी की अध. पतित वस्तु-स्थिति को देखा था, जो उनके युग मे सुधारको एव सुधार सस्थाओ की करुणा और दया पर आश्रित हो, सामाजिक क्षेत्र मे मान्यता प्राप्त करने के लिये उठ रही थी । सामाजिक असमानताओ के सँघर्ष मे उसका कुचला हुआ व्यक्तित्व उसको उन्नति और सम्मान विषयक किसी प्रकार की सुविधा दे सकने मे असमर्थ था । विभिन्न प्रकार की इन विषमताओं से प्रपीडित नारी प्रसाद की दृष्टि मे जैसे मात्र आघात सहने की क्षमता लेकर ही उत्पन्न हुई है । ककाल की गाला 'नारी जाति के निर्माण को विधाता की एक झु झलाहट' कहती है । नारी की वस्तु-स्थिति 'ध्रुवस्वामिनी के स्वरूप मे प्रकट की गई है । वहा उसका नारीत्व आमोद-प्रमोद और समय पडने पर उपहार मे देने की

वस्तु बना दिया जाता है । 'इरावती' के सम्राट इरावती को अपने मनोविनोद के लिये अपनी रंगशाला की नर्तकी के रूप में देखना चाहते है । इस प्रकार से नारी के सामाजिक अधिकारो, नैतिक निष्ठा और आन्मिक शक्ति का उपहास किया गया है । प्रसाद ने अनुभव किया है कि इसका कारण पुरुष की नारी पर परम्परागत आधिपत्य भावना है । सामाजिक नियमों का नियमन सदैव पुरुष वर्ग के द्वारा ही होता आया है । अपनी श्रेष्ठता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए वह सदैव ही सतर्क रहा है । उसने नारी के अधिकारो की व्याख्या इसलिए नही की है कि कही इस प्रकार उसकी सार्वभौम सत्ता की नीव न हिल जाये, और सामाजिक नेतृत्व के उसके अन्य सिद्ध अधिकार का हनन न हो जाये । प्रसाद जी भी पुरुष थे परन्तु उनका मानवत्व स्वार्थ की संकीर्ण सीमाओं मे बद्ध न होकर महान् युग दृष्टाओं की भाति विस्तृत भाव-भूमि मे प्राणी-मात्र के लिए समान सुविधाओं को उपलब्ध करने के आदर्श को लेकर चला था । इसीलिए उनकी नारी-कल्पना अपने साहित्यिक स्वरूप मे तत्कालीन समाज का पथ निर्देश करती हुई जान पड़ती है । सबसे पहले उनके सुधार कार्यों की चर्चा करेंगे, जो तत्कालीन परिस्थितियो, आवश्यकताओं और मागो के अनुकूल थे, और जिनकी प्रेरणा उन्हे भारतीय संस्कृति के अध्ययन के अतिरिक्त अपने समय के सुधारको और सुधार संस्थाओं से भी मिली थी ।

सुधार योजना—

तत्कालीन समाज सुधारकों की भाति प्रसाद जी भी इस बात को मान कर चलते थे कि नारी-वर्ग की उन्नति के लिए सबसे पहली आवश्यकता उसको शिक्षित करने की है। शिक्षा और उसके परिणामस्वरूप प्रबुद्ध मस्तिष्क के अभाव मे नारी अपनी स्थिति के विकास कार्य में स्वयम् तत्पर नही हो सकती । वे चाहते थे कि नारी स्वयम् इस बात को सोचने के योग्य बने कि वह किस प्रकार अपनी सामाजिक स्थिति का विकास कर सकती है । और इसके लिए यह अनिवार्य है कि वह शिक्षित हो । शिक्षा के क्षेत्र मे दयानन्द जी, गांधी जी और प्रसाद जी के विचार मेल खाते हैं । ये सब नारी को भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में ही शिक्षा देने के पक्ष में थे। उनके लिए ऐसी शिक्षा की आयोजना करना चाहते थे, जो उन्हे उनके अपने क्षेत्र में सहायक हो सके । प्रसाद ने अपने सांस्कृतिक नाटको के नारी-चरित्रो को सुशिक्षित एवं प्रबुद्ध ही चित्रित किया है । लेकिन उपन्यासों में उन्होने शिक्षा की समस्या को उठाया है । एक विशिष्ठ बात, जो प्रसाद जी ने नारी शिक्षा के विषय मे उठाई है, वह है ग्रामीण क्षेत्रीय महिलाओं मे शिक्षा का प्रचार । प्रसाद के समय तक नगरों में शिक्षा का विकास हो चला था । उनके लिए उच्चतर शिक्षा-प्राप्ति के अवसर

और साधन उपलब्ध होने लगे थे। परन्तु अभी तक के सुधारको एव सुधार सस्थाओं का ध्यान ग्रामीण महिलाओ मे शिक्षा के प्रचार तक नही पहुच सका था। प्रसाद जी ने सुधारको की सुधार योजना मे इस अभाव का अनुभव किया था और इसीलिये अपनी औपन्यासिक कृतियो मे इस आशय की योजना भी की। 'ककाल' मे मगल गाला को स्त्री शिक्षा के प्रचार की प्रेरणा देता है और इसीलिए वह ग्राम्य-बालिकाओ मे शिक्षा का प्रचार करती है। महिला-जाति मे शिक्षा-प्रचार की प्रेरणा पश्चिम से ही प्राप्त हुई है, इसमे दो मत नही हो सकते। इसीलिए बाथम की लतिका को नारी-शिक्षा के विकास के लिए अपना सर्वस्व दान कर देने की व्यवस्था लेखक का एक प्रशसनीय प्रयास कहा जा सकता है। लतिका इस प्रकार शिक्षा-प्रसार से महिलाओ को जीवन के अनुभवो से अवगत कराना चाहती है और जिसके आधार पर वे सामाजिक वातावरण मे 'क्रियात्मक प्रेरणा का प्रकाश' प्रस्तुत करने मे सफल हो सके। तितली भी इसी तरह की जागरूक ग्राम्य महिला है, जो पाठशाला का सचालन करती है। उपर्युक्त पक्तियो से एक बात और उभरती है. और वह यह कि प्रसाद जी ने शिक्षा-विस्तार की आयोजना महिलाओ के द्वारा ही कराई है। सभव है कि उनका विश्वास रहा हो कि नारी अपनी नैसर्गिक कोमल और उदार तथा सहानुभूति पूर्ण प्रवृत्तियो के कारण पुरुष की अपेक्षा स्वयम् शिक्षा के क्षेत्र मे अधिक सफल हो सकती है, और इसीलिए शिक्षा-प्रचार मे महिला-शिक्षिकाओ की व्यवस्था मनोविज्ञान के विशेषज्ञ प्रसाद जी की अपनी विशेष देन कही जा सकती है।

प्रसाद जी की अर्न्तदृष्टि ने प्रचलित विवाह परम्परा के एकागीपन और विवाह-सस्थाओं को अपने उद्देश्य मे निपट असफल होते देखा था। उन्होने अनुभव किया था कि जिस आत्मिक एकता के पवित्र उद्देश्य को लेकर विवाह सस्था का प्रादुर्भाव हुआ था, आज उसे वह पूर्ण कर सकने मे असमर्थ है। इससे पूर्व कि हम विवाह सस्था विषयक प्रसाद के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करे, हम उनके दृष्टिकोण के सदर्भ मे विवाह-सम्बन्धी प्रचलित कुप्रथाओ की विवेचना करना चाहेगे।

वैधव्य से प्रपीडित नारी को प्रसाद जी की अश्रुल आखो ने 'ग्राम गीत' की रोहिणी और 'ममता' की ममता मे देखा है। जिनका जीवन तिरस्कार और उपेक्षा-पूर्ण व्यवहार की विडम्बना से ग्रस्त है। प्रसाद के मत मे समाज द्वारा किसी ऐसी नारी का तिरस्कार उसे अपने भरण-पोषण के लिये अनैतिक कर्तव्यो की ओर उन्मुख करता है। इसी सदर्भ मे उन्होने पुनर्विवाह की समस्या को भी लिया है। विद्यासागर और रानाडे ने भी पुनर्विवाह का समर्थन किया है। गाधीजी थोडा-सा बचकर विधवा-विवाह की अनुमति देते है। उनकी दृष्टि में बाल-विधवाओ का विवाह ही श्रेयस्कर हैं। पूर्ण युवती विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार गाधीजी द्वारा नहीं

दिया गया है, परन्तु प्रसाद इससे आगे हैं । पहले वे गांधीजी की भांति ही वैधव्य जीवन की पवित्रता पर ही विश्वास करते थे । इसीलिये अपनी प्रारम्भिक रचना 'प्रेम पथिक' की पुतली और किशोर केवल आत्मिक रूप से ही मिल पाते है । यहा उनका भोला आदर्शवाद अभिव्यक्त हुआ है । परन्तु बाद में, जब उनकी सामाजिक मान्यताओ को सुदृढ विचार-पटल का आधार मिला तब उन्होंने समाज की सुरक्षा के लिए, उसकी स्थिति को स्वस्थ बनाये रखने के लिये किसी भी अवस्था में उसको पुर्नविवाह का अधिकार दिया है। 'विजया' की विधवा सुन्दरी कमल के साथ प्रणय सूत्र मे बधती है। 'चित्तौड-उद्धार' मे भी विधवा विवाह को समर्थन प्राप्त हुआ है। लेकिन 'ध्रुवस्वामिनी' में ध्रुवस्वामिनी का विवाह कुछ दूसरे प्रकार का है। यहा उनके प्रगतिशील विचारों का चरम विकास प्रतिलक्षित होता है । पति के रहते हुए भी नारी पुर्नविवाह कर सकती है, यदि उस विवाह के द्वारा विवाह की शर्तों का आरक्षण नही होता। प्रसाद जी ने ध्रुवस्वामिनी मे भी ऐसा ही किया हैं । ऐतिहासिक तथ्यो की पृष्ठभूमि मे पल्लवित यह नाटक सामाजिक क्षेत्र में इस युग की महान् क्रान्ति को लेकर उपस्थित होता है । सम्बन्ध-विच्छेद का यह अधिकार अभी तक पुरुष-वर्ग की ही बपौती है। प्रसाद ने समानता का आदर्श प्रस्तुत करते हुये नारी को भी यह अधिकार दिया है । इस विषय मे प्रायः सभी सुधारक, सुधार संस्थायें तथा नारी-जाति के कल्याण के बड़े-बड़े विद्वत्-भाषी मौन रहे है। गांधीजी ने नारी-आन्दोलन को एक नवीन स्वरूप दिया है। परन्तु कही भी नारी द्वारा सम्बन्ध-विच्छेद विषयक चर्चा नही की गई है । सवैधानिक रूप से भी इस आशय के कानून १६३६ के उपरान्त ही बनना आरम्भ हुये है । १६३६ में पहली बार 'पारसी विवाह एव विच्छेद अधिनियम' के अनुसार कुछ विशेष अवस्थाओ में पत्नी पति से सम्बन्ध-विच्छेद कर सकती थी।

प्रसाद जी की ध्रुवस्वामिनी सहन-शक्ति की अन्तिम सीमा तक अपने पति का विरोध नही किया चाहती । वह अपनी नारी की अवशता और लघुता को जानती हुई रामगुप्त के पैरो को पकड़ कर उससे प्रार्थना करती है—

'राजा ! आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूं, मैं स्वीकार करती हूं कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नही हुई, किन्तु वह मेरा अहंकार चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी होकर रहूंगी।'

—ध्रुवस्वामिनी, पृ० २६ ।

परन्तु क्लीव रामगुप्त उसे केवल उपहार में देने की ही वस्तु मानता है। तब ध्रुवस्वामिनी अपने नारीत्व के गौरव में फुंकार कर उठती है । वह रामगुप्त की

भर्त्सना ही नही करती, उसे त्याग ही नही देती वरन् चन्द्रगुप्त का, रामगुप्त के रहते हुये भी वरण कर लेती है। प्रसाद की यही क्रान्ति दलित नारीत्व को प्रेरणा देती है, उसको पुरुष की पाशविकता से निकल कर स्वय अपना पथ-प्रशस्त करने का साहस देती है। यही पर प्रसाद जी की यह स्पष्ट घोषणा भी पठनीय है—

'धर्म का उद्देश्य इस तरह पददलित नही किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म-विवाह केवल विद्वेष से नही टूट सकते, पर यह सम्बन्ध उन प्रमाणो से भी विहीन है·· यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नही, पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मो से राज-किल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था मे रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नही।'

—ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६२

स्वामी विवेकानन्द ने अपनी सुधार योजना मे अन्तर्जातीय विवाह को उचित नही ठहराया है। ऐसे विवाहो से उत्पन्न सन्तान सद्वृत्ति की नही होती, ऐसा उनका विश्वास है। प्रसाद जी की दृष्टि भी इस विषय पर ठहरी। अपनी प्रारम्भिक रचनाओ मे उन्होने इस समस्या को उठाया तो अवश्य, परन्तु फिर लोकभय या अपनी आदर्शवादिता के कारण वे उसका समर्थन न कर सके। 'मदन-मृणालिनी' ऐसी ही कथा है, जिसके नायक-नायिका अन्तर्जातीय तथा अन्तर्वर्गीय है। वे वर्षों साथ-साथ रहते है, लेकिन फिर भी विवाह नही हो पाता। लेकिन समय के साथ-साथ प्रसाद जी का अध्ययन बढता गया और अन्त मे वे यह मानकर चले कि प्रेम एक निसर्ग स्वाभाविक भावना है और 'हृदय का सम्मिलन ही तो विवाह' है और उसके लिये देशकाल, जाति की मर्यादा का ध्यान रखना अनावश्यक है। इसीलिये उन्होने अपनी उत्तर-कृतियो मे मगल और गाला, इन्द्रदेव और शैला के विवाह की—जो अन्तर्जातीय और अन्तर्देशीय है—आयोजना की है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' की सरमा भी नाग का परिणय स्वीकार करती है। यह ठीक है कि इस विवाह की पृष्ठभूमि मे दो परस्पर विरोधिनी जातियो के एकीकरण की भावना विशिष्ट थी। स्वय जनमेजय मणिमाला के साथ विवाह-सूत्र मे बधता है। चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया का विवाह दो सस्कृतियो के सम्मिलन का स्तुत्य प्रयास है। इन सभी विवाह आयोजनो के मूल में जाने पर ज्ञात होता है कि प्रसाद जी प्रेम-भाव को विशिष्ठ मान कर चले है और प्रेम के साम्राज्य में जातिवादिता की दीवार खडी नही रह सकती है। क्योकि मानव की इस शाश्वत प्रवृत्ति मे बहुत बल होता है। जो निसर्ग से ही प्राप्त है। अतः समाज द्वारा आयोजित अर्गलाए उसको बाधे रखने मे, अपेक्षाकृत हीन-शक्ति होने के कारण समर्थ नही है।

प्रसाद जी ने इसी सदर्भ में वेश्या-वृत्ति की समस्या को भी उठाया है । इस नारी-वर्ग के प्रति उनकी करुणा इन शब्दो में व्यक्त हुई है—

'परन्तु मैं तो आज तक यही नही समझा, कि सुन्दरी स्त्रिया क्यों वेश्या बने ।' वेश्या-वृत्ति और देवदासी प्रथा के विरोध में आधुनिक समाज सुधारकों का ध्यान आकर्षित हुआ है । सभी एक स्वर से इस प्रथा का उन्मूलन करना चाहते हैं, परन्तु किसी ने भी इस विषय को लेकर कोई समुचित समाधान प्रस्तुत नही किया है। प्रसाद जी ने वेश्यावृत्ति निवारण के लिये मालवती म जिस योजना को निश्चित किया है, वह देश के शुभचिंतक नवयुवकों की एक महान् परीक्षा के रूप मे अभिव्यक्त हुई है। उनके मत मे नारी जाति के इस दयनीय रूप से पतित हुये वर्ग को उन्नति और सम्मान की दिशा देने का केवल एक ही उपाय है कि समाज के प्रतिष्ठा प्राप्त नवयुवक उनसे कुल-पुत्रो की भाति विवाह-सूत्र में आबद्ध हो जायें । केवल तभी इस पतित वर्ग के उत्थान की आशा की जा सकती है।

असमान विवाह की प्रथा भी प्रसाद जी को पीड़ित किये हुये है । हम वृद्ध पति की युवा पत्नी पर दुराचार का आरोप लगाते है। ठीक है. उसे ऐसा नही करना चाहिये। परन्तु साथ ही यह भी तो देखना है कि उसमें उसका अपना कितना दोष है और साथ में समाज उसकी आचरण-हीनता के लिये कितना उत्तरदायी है । युवा पत्नी के मन मे युवा आकाक्षाओं का होना स्वाभाविक है और उन आकाक्षाओं की पूर्ति बूढे मन द्वारा कदापि नही हो सकती। तब पत्नी क्या करे ? सभी तो तपी और सयमी मनस्वी नही हो सकते । इसीलिये वह कुपथ पर चलती है । यह बुरा है। लेकिन उसे बुरा बनाने मे समाज का भी हाथ है । बस, प्रसाद जी इतना ही कहना चाहते है कि असमान विवाह की प्रथा का, जो पत्नी को शील-भग का अवसर देती है, अन्त होना ही चाहिये । 'जनमेजय का नागयज्ञ' की दामिनी का चरित्र इसी आशय का विचार प्रस्तुत करता है।

साथ ही उन्होने सपत्नी प्रथा को भी लिया है । सपत्नी प्रथा से पहले तो नारी-सम्मान का हनन होता है । एक पति को जब एक से अधिक पत्नियों का ससर्ग प्राप्त होता है तो स्वाभाविक है कि पत्नी के पद की महत्ता कम हो जायेगी। दूसरे सपत्नियो के परस्पर सघर्ष से घर की शान्ति भंग हो जाती है । 'अजातशत्रु' की छलना और वासवी, 'स्कन्दगुप्त' की देवकी और अनन्त देवी आदि के परस्पर संघर्ष को दिखा कर प्रसाद जी एक विवाह के आदर्श की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं।

नारी-स्वातन्त्र्य—

उपर्युक्त पक्तियो मे हम सामाजिक परिस्थितियो के आलोक मे प्रसाद जी की सुधार योजना की चर्चा कर आए है । नारी जीवन की पीडा ने प्रसाद जी को उसकी हीनावस्था के मूल रहस्य खोजने के लिये प्रेरित किया है और उसमे वे सफल भी हुए है । उन्होने अनुभव किया है कि भारतीय नारी की वैयक्तिकता को सकीर्ण रूढिगत परम्पराओ की शृखला मे जकड दिया गया है और उस सीमित-सी परिधि के भीतर वह पुरुष की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी कर सकने में असमर्थ है । उसका स्त्रीत्व पुरुष के आदेशो तथा इगितो पर अपने कार्यक्रमो की आयोजना करता है और इसीलिये उसके विकास के सभी अवसर नष्ट हो गये है । नारी का इस दयनीय अवस्था से उद्धार करने के हेतु प्रसाद का साहित्य उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का सदेश लेकर आता है । नारी की स्वतन्त्रता, उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व और अपने हिताहित के विषय मे स्वतन्त्र रूप से सोचने का उसका अधिकार—प्रसाद साहित्य की वे नवीन विधाए हैं जो नारी-वर्ग मे प्रचलित परम्परा के विरुद्ध नये आलोक की दिशा मे अभियान की प्रेरणा देती है । प्रसाद जी ने अपने साहित्य द्वारा नारी के स्वातन्त्र्य आन्दोलन का समर्थन किया है । श्रद्धा और इडा का स्वतन्त्र व्यक्तित्व इसका प्रमाण है । सरमा अपने पति के सम्मुख अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने की बात कहती है—

'आपको और सब अधिकार है । पर मेरी सहज स्वतन्त्रता के अपहरण का नही । मैं आपके साथ चलूगी, पर अपमानित होने के लिये नही ।'

—जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ३६

लेकिन स्वतन्त्रता का अर्थ अबाध स्वतन्त्रता या उच्छृखलता नही है । यहा पर प्रसाद जी गाधी जी के निकट लगते है । वे नारी की सर्व-क्षेत्रीय योग्यता को तो स्वीकार करते है, परन्तु फिर भी यह मानते है कि महिलाओ के शारीरिक एव प्राकृतिक विकास मे ही एक परिवर्तन है, जिसके कारण उनका कार्य-क्षेत्र पुरुष के कार्य-क्षेत्र से अलग हो जाता है । वे मानते है कि नारी साधारणतया अपने को अपने कार्य-क्षेत्र—पारिवारिक आयोजनो तक ही सीमित रखे । परन्तु साथ ही अवसर पड़ने पर सामाजिक एव राष्ट्रीय योजनाओ मे भी पीछे न रहे । उन्होने पश्चिमी आदर्शों के समानान्तर भारतीय नारी मे गर्व पूर्ण अधिकार एव स्वातन्त्र्य भावना को बद्ध-मूल होते देखा है । उसके परिणामो से वे चिन्तित थे । अत उन्होने भारतीय पृष्ठभूमि मे भी नारी के व्यक्तित्व के विकास की प्रतिष्ठा की है । तितली और शैला के चरित्रों

के माध्यम से उन्होंने अपने मत को स्पष्ट किया है । गाधीजी की भाति उन्होंने भी भारतीयता के आदर्शों से पोषित तितली को ही, जिसके लिये परिवार का महत्व ही सर्वाधिक है, आदर्श रूप मे प्रकट किया है । शैला का नारीत्व पश्चिमी आदर्शों से पोषित है, इसीलिये उसका पथ अनुकरणीय नही बतलाया गया है, क्योंकि उसके मन मे द्वैत की भावना बद्ध-मूल है । वह पत्नी बनकर पति मे एकलय नही हो सकती, क्योकि अपने व्यक्तित्व के प्रति वह आवश्यकता मे अधिक जागरूक है और इस जागरूकता के अह मे पुरुष और स्त्री के मध्य किसी सामजस्य की सम्भावना नही रह जाती। लेकिन इसी सामजस्य के परिणाम-स्वरूप जिस एकलयता की प्रतिष्ठा होती है वह केवल स्त्री का ही पुरुष मे लय नही, वरन् पुरुष की भी नारी मे लयता है। पुरुष मे अपने व्यक्तित्व के विलीनीकरण मे नारी जो कुछ खोती है, उतना ही पा भी लेती है। यही नारी का भारतीय आदर्श है और स्वतन्त्रता के सदर्भ मे इसी तथ्य की प्रतिष्ठा प्रसाद जी ने भी करनी चाही है ।

प्रेम-भावना और विवाह-संस्था—

स्वतन्त्रता के इसी प्रसग मे प्रसाद जी ने नारी-पुरुष की प्रेम-भावना पर भी विचार प्रकट किये है। वे यह मानकर चलते है कि प्रणय की भावना नारी पुरुष के मन की शाश्वत, स्वाभाविक भावना है और इसका शमन नही किया जा सकता और किया भी नही जाना चाहिये, वे नारी को प्रेम करने की स्वतन्त्रता देते है । उनका कहना है कि प्रेम की स्वतन्त्र सत्ता के अधिष्ठान मे नारी को पुरुष के समान ही अधिकार प्राप्त होने चाहिए। यदि नारी को प्रेम करने की सुविधा प्राप्त हो गई है, तो उसे जैसे सभी स्वतत्रताए अनायास ही उपलब्ध हो जाती हैं । प्रसाद जी की यह क्रातिवादी भावना उनके साहित्यिक जीवन के उत्तर-काल में परिपुष्ट हुई है। वे इस स्वतन्त्रता के साथ-साथ मन की निष्ठा तथा व्यक्तित्व की एकलयता को भी प्रमुख मानकर चलते हैं। इसके अभाव में, हो सकता है कि समाज में प्रेम की स्वतन्त्रता के नाम पर अनाचार की सृष्टि और विस्तार हो और जिससे समाज के स्थायित्व की नींव पर आघात पहुचने का भय उत्पन्न हो जाये । इसी स्थायित्व की रक्षा के लिये प्रसाद विवाह को आवश्यक मान कर चलते हैं । विवाह से सामाजिक मर्यादा के उल्लघन होने का भय कम हो जाता है। हालाकि विवाह-सस्था का खोखलापन भी उन्हे ज्ञात है। 'ककाल' के पटल पर विवाह-संस्था अपने आयोजनो को सफल बनाने की दिशा में पूर्ण असफल है। इसी असफलता को देखकर उन्हे कहना पड़ा है—

'घटी, जो कहते हैं अविवाहित जीवन उच्छृखल है, वे भ्रान्त हैं । हृदय का

सम्मिलन ही तो विवाह है । मै स्वतन्त्र प्रेम की सत्ता को स्वीकार करता हू……मै सर्वस्व तुम्हे अर्पण करता हू, और तुम मुझे, इसमे किसी मध्यस्थ की आवश्यकता क्यो ? मन्त्रो का महत्व कितना ?'

सक्षेप मे, प्रसाद जी स्वतन्त्र प्रेम की सत्ता स्वीकार करते है । उसे मन की शाश्वत, स्वय उद्‌भूत होने वाली भावना के रूप मे मानते है और नारी को भी प्यार करने की सुविधा देते है। साथ ही प्रणय के क्षेत्र मे निष्ठा पर बल देकर चलते है और समाज के सुरुचिपूर्ण अस्तित्व को बनाये रखने के लिये उस स्वतन्त्र प्रेम की परिणति विवाह मे करना चाहते है, भले ही वह किसी प्रचलित आडम्बर पूर्ण व्यवहार द्वारा सम्पन्न न हो । इस प्रकार से प्रसाद जी की नारी आत्मिक दर्शन (प्रणय) के साथ भौतिक जीवन का सामजस्य बनाकर चलती है, जो उसकी सबसे महान् उपलब्धि है।

सामाजिक सुव्यवस्था और नीति—

सामाजिक व्यवस्था के मध्य प्रसाद जी ने एक बात और भी अनुभव की है। यदि किसी कारण वश या परिस्थितियो के कारण नारी को नैतिक मर्यादा के शीर्ष से नीचे उतरना पडा है, और इस तरह से विभ्रष्ट पथ पर चलने के लिये बाध्य होना पडा है तो समाज के पास उसके लिये क्षमा की भावना नही है । समाज कभी भी उसके पतन के नैतिक कारणो की खोज नही करता है। वह तो इतना ही देखता है कि अमुक नारी अपने शील से च्युत हो गई है। बस, अब उसके लिए सामाजिक मान्यता और सम्मान के सभी अवसर समाप्त हो जाने चाहिये। परन्तु प्रसाद नैतिक पतन की गहराइयो में जाकर कारणो की खोज करते है । वे इस बात को जानना चाहते हैं कि समाज उसे जो दण्ड दे रहा है, वह कही उस पर अतिचार तो नही है । नैतिक पतन की पृष्ठभूमि मे उसकी अपनी इच्छा क्या है ? क्या उसने जानबूझ कर पतित और उच्छृखल जीवन बिताने की दिशा मे कदम उठाया है ? और यदि ऐसा है, तो प्रसाद जी उसे क्षमा नही करते, उसे अपने किये के लिये दण्ड स्वीकार करना ही पडेगा। अनन्तदेवी, विजया, मागन्धी, दामिनी, सुरमा, छलना, कमला, मगला आदि पात्र इसके उदाहरण है। परन्तु जो व्यक्ति परिस्थितियो के कुचक्रो मे फस कर नैतिक मर्यादा का उल्लघन करने के लिये विवश हो गया है, प्रसाद जी की दृष्टि मे वह पूर्ण रूप से क्षम्य है। सुवासिनी, तारा, घटी आदि सभी इसी वर्ग की पात्राए है । ये सामाजिक आदर्शों के अनुकूल अर्थ देने वाले 'शील' शब्द की सीमाओ का अतिक्रमण कर, उस जीवन को भोगती है जो नैतिक मर्यादा की दृष्टि से उच्छृखल है

लेकिन इनके प्रति कही भी प्रसाद जी का क्षोभ प्रकट नही हुआ है । उनका क्षोभ प्रकट हुआ है उस वातावरण के प्रति, उन परिस्थितियों के प्रति जिन्होने उनको इस तरह का जीवन बिताने के लिये विवश कर दिया है। प्रसाद जी आचरण की शुद्धता पर जोर देते है, यह ठीक है, लेकिन इसका यह अर्थ नही हो जाता कि जिसका सदाचरण, परिस्थितियों की आंधी में कही भटक गया हो, वह उनकी दृष्टि से हेय हो गया है । उनके विचार से शील और नैतिकता के एक बार भंग हो जाने से वह सदा के लिये ही कुंठित नही हो जाती, उसमे सुधार किया जा सकता है । इस प्रकार उनका संकेत है कि नारी के विषय में कोई निर्णय लेने से पहले सम्बन्धित अपराध के मूल कारणों की खोज होनी चाहिये । यह व्यवस्था स्वस्थ सामाजिक साम्य-भावना को जन्म दे सकेगी, ऐसा विश्वास किया जा सकता है ।

संक्षेप

समाज मे परम्पराओ के बहुल प्रयोग मे उनकी प्राण-शक्ति नष्ट हो जाने के उपरान्त उनमे किसी प्रकार का जीवन-तत्व नही रह जाता । प्रसाद जी व्यक्ति के व्यक्तित्व को कुचल कर ऐसी परम्पराओ का आदर्श बनाये रखने मे विश्वास नही करते । वे रूढिया, जिनसे प्रबुद्ध मस्तिष्क के विकास तथा जाति के उन्नयन की सम्भावना नही होती, प्रसाद जी के मन से नष्ट होनी चाहिये । परम्पराओं के विकृत रूप का स्थायित्व प्रसाद जी को सह्य नही है । उनकी नारी-सम्बन्धी सुधार-योजना मे उनकी इस भावना को भली-भाति देखा जा सकता है । उनकी नारी इसीलिये नवीन परिवेश मे अभिव्यक्त हुई है, जहा उसे सम्मान की प्राप्ति है। उसका अपना सास्कृतिक, पारिवारिक तथा सामाजिक व्यक्तित्व है, जिसके लिये स्वतन्त्रता की आयोजना की गई है । उन्होने समाज के उस प्रत्येक चलन पर आघात किया है, जो नारी के विकास-क्रम मे गतिरोध उत्पन्न करता है । नारी को अपने व्यक्तित्व के विकास की पूर्ण अभिव्यक्ति प्रसाद-साहित्य मे ही मिली है । उसकी स्वतन्त्रता समाज को स्वस्थ वातावरण प्रदान करती है और वह सामाजिक तत्वो के सकलन मे सहयोग देती है । परन्तु कही उसकी स्वतन्त्रता अबाध बनकर सामाजिक हितो का हनन-कार्य न कर बैठे, इसीलिये उसके अधिकार-क्षेत्रो की व्याख्या करना भी प्रसाद जी नही भूले हैं । तितली और श्रद्धा का चरित्र उनके नारी-आदर्श को अभिव्यक्ति प्रदान करता है, जो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है, जिनमें सामाजिकता है लेकिन इतने पर भी जो यह अनुभव करती हैं कि उनका मुख्य कार्य-क्षेत्र पारिवारिक सीमाओ के भीतर ही निहित है । पारिवारिक वातावरण के मध्य उन्होने पत्नीत्व के आदर्श की ही स्थापना की है । लेकिन उनका पत्नीत्व अनाचार के विरुद्ध विरोध का स्वर ऊंचा उठाता

है। उनकी नारी मे एकनिष्ठा की भावना प्रमुख रूप से विद्यमान है, जो समाज के स्थायित्व के लिये अनिवार्य है। यही पर प्रसाद जी ने पाश्चात्य आलोक से प्रभावित भारतीय नारी के लिये भी सन्देश दिया है। ऐसी महिलाओ मे जो द्वैत की दर्पपूर्ण भावना बद्धमूल हो रही है, उसे प्रसाद जी भारतीय समाज के लिये हानिकर मानते हैं। इड़ा और शैला के चरित्र इस तथ्य की पुष्टि के लिये उपस्थित किये जा सकते है। स्वतन्त्रता के अतिरेक मे सीमा-उल्लघन करती हुई नारी की ओर भी प्रसाद जी का ध्यान गया है। इस सीमातिक्रमण को उन्होने बुरा माना है। साथ ही उन्होंने नीति की भी नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है। वे उस व्यवस्था को 'नीति' का नाम नही देना चाहते, जो मनुष्य की वैयक्तिकता को परिबद्ध कर उसके विकास के अवसरो को नष्ट कर देती है। नीति की परिभाषा परिस्थिति, युग और अवस्था के अनुसार बदलती है। इस तरह से प्रसाद जी नैतिकता की जडीभूत व्याख्या मे विश्वास नही करते। वे आचरण की शुद्धता पर बल देते है, लेकिन यदि परिस्थिति वश आचरण पथ-विभ्रष्ट होकर चलाना पडा हो, तो प्रसाद जी उस विभ्रष्टता के कारणो की खोज करते है। इस प्रकार से प्रसाद जी की नारी-कल्पना भारतीय सामाजिक जीवन में जहा एक ओर तत्कालीन सुधारको, सुधार सस्थाओ तथा वैधानिक प्रगति से प्रेरित और अनुप्राणित हुई है, वहाँ दूसरी ओर इस विषय मे उनकी कुछ मौलिक अनुभूतियां और उद्भावनाये भी है, जो प्रबुद्ध सामाजिक का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती हैं।

प्रकरण—१३

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी-सम्बन्धी साहित्यिक सृष्टियों में प्रसाद की नारी सृष्टि का मूल्य और महत्व

(अ) आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी—संक्षेप

(ब) प्रसाद की नारी-कल्पना—नवीन आदर्श

(क) सांस्कृतिक स्वरूप

(ख) राष्ट्रीय स्वरूप

(ग) दार्शनिक व्याख्या

(घ) मनोवैज्ञानिक पीठिका

ग्राधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी—संक्षेप

भारतीय सामाजिक पुनरुत्थान की नवीन धारा ने, जिस का ग्रारम्भ हमने १८५७ से माना है, हिन्दी साहित्य को भी प्रभावित किया है। ग्राधुनिक हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालो के ग्रन्तर्गत नारी चित्रण की विवेचना करते हुए नारी-स्थिति सम्बन्धी विकास-क्रम को लक्ष्य कर, हम कह ग्राये है कि सुधार-भावना का प्रादुर्भाव भारतेन्दु को लेकर होता है। भारतेन्दु से पूर्व रीतिकारो की परिबद्ध ग्रौर कुठाग्रस्त परम्परा मे जकडी हुई नारी-भावना के प्रति मासल ग्रौर स्थूल दृष्टिकोण ही ग्रपनाया गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नवीन उत्थानोन्मुख युग के पहले साहित्यकार थे, जिन्होने नारी की दयनीय दशा, उसकी ग्रशिक्षित, परिष्कृत सस्कारो से विहीन ग्रवस्था ग्रौर विषम वस्तु-स्थिति को साहित्यिक रचना का विषय बनाया था। नवीन चेतना ग्रौर सामाजिक जागृति से ग्रनुप्राणित भारतेन्दु तथा समकालीन साहित्यकारो ने ग्रब प्रणय की लीलाभूमि को छोडकर, नारी सम्बन्धी सामयिक समस्या के उद्घाटन द्वारा साहित्यिक कोण की दिशा परिवर्तित कर दी थी। ग्रौर पुरुत्थानवादी तथा सुधारवादी सुधारको तथा सुधार-सस्थाग्रो के कार्यक्रम को बल देना ग्रारम्भ कर दिया था। नारी-स्थिति ग्रौर नारी-समस्या को लेकर इन साहित्यकारो ने भी प्राय- समाज-सुधारको वाली दिशा मे ही ग्रग्रसर होना ग्रारम्भ किया। क्योकि साहित्यिक-दिशा-परिवर्तन की यह नवीन दृष्टि ग्रौर प्रेरणा उन्हे इन्ही सुधारको के कार्य-क्रमो, ग्रायोजनो तथा ग्रादेशो से प्राप्त हुई थी।

भारतेन्दु-साहित्य मे हमे प्राचीन ग्रौर नवीन की सधि दृष्टिगत होती है। उन के काव्य मे रीतिकारिता भी पूर्ण उल्लास के साथ मुखरित हुई है, ग्रौर रूढ परम्पराग्रों के प्रति क्षोभ ग्रौर ग्राक्रोश भी उसी उत्साह से व्यक्त किया गया है। लेकिन भारतेन्दु के साहित्य का महत्व इन रूढ परम्पराग्रो मे सुधार-भावना के दृष्टिकोण को ही लेकर है। ग्रशिक्षा, सती प्रथा तथा बाधित वैधव्य के प्रति उनकी प्रतिकारात्मक भावना यत्र-तत्र देखी जा सकती है। बालकृष्ण भट्ट, प्रेमघन, राधा कृष्णदास तथा श्रीधर पाठक भारतेन्दु के समकालीन साहित्यकार रहे है, ग्रौर इनमें से लगभग सभी ने साहित्य सृजन के क्षेत्र मे भारतेन्दु से ही प्रेरणा प्राप्त की है।

इसलिए यह स्वाभाविक था कि इनकी लेखनी भी भारतेन्दु की ही भाँति सामाजिक विषमता के विरोध में विष उगलती। आगे चल कर किशोरीलाल गोस्वामी तथा प्रताप नारायण मिश्र आदि साहित्यकारों में भी इसी सुधार भावना को बल मिला है। इस काल के हिन्दी साहित्यकारों की रचना में एक बात बड़ी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है और वह यह कि इन सभी लेखकों के मन में नारी की वस्तु-स्थिति के प्रति एक महान करुणा की भावना विद्यमान थी, अतः इनकी नारी कल्पना, नारी को असहाय, अशिक्षित, दीन और निराश्रय ही देख पाई। और उनके द्वारा किये गये सुधारों का आयोजन जैसे उसकी दशा पर दया कर के उसे उत्थित करने के लिए ही किया गया। इस उत्थानकालीन साहित्यिक नारी का अपना कोई व्यक्तित्व स्पष्ट दृष्टिगत नही होता। केवल एक ऐसी नारी का चरित्र उभरता है, जो अपनी स्थिति मे एकदम निश्चेष्ट है। परम्पराओं और संस्कारों की मार से जो शून्य-मस्तिष्क हो गई है, जो अशिक्षा के अन्धकार मे अपने हित की किसी भी बात को सोच सकने मे असमर्थ है । जिसे सासारिक प्रगति का कुछ भी ज्ञान नहीं है। ऐसी स्थिति में कुछ सुधारक और सवेदनशील साहित्यिक उस के पास खड़े, उस पर दया करते हुए, उसे फिर से प्राण देने का आयोजन और प्रयत्न करते है। वह अपनी स्थिति में सुधार और अपने व्यक्तित्व के उन्नयन के लिए पूर्णतया इन्ही लोगो पर आश्रित है। अपने विषय मे उसका न अपना कोई मत है, न अधिकार और न अधिकार प्राप्त करने की कोई शक्ति ही। और इसीलिए इन साहित्यकारों द्वारा उसकी स्थिति को सुधारने सम्बन्धी उत्थानवादी दृष्टिकोण को ही विकसित किया गया।

इसके अतिरिक्त उत्थान-काल की नारी-भावना का एक अन्य स्वरूप भी अभिव्यक्त हुआ है। उसे परम्परावाद का सकीर्ण प्रभाव ही मानना चाहिए। इसके अन्तर्गत नारी रीतिकालीन नायिका के रूप मे विलास-युक्त वातावरण और परि-स्थिति के मध्य चित्रित की गई है। भारतेन्दु तथा प्रेमघन की काव्य-कृतियो से ऐसे तथ्य की पुष्टि मे उद्धरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं, किन्तु नारी का यह स्वरूप नवोत्थान के आलोक में सशक्त हो सकने में असमर्थ रहा है और इसके मध्य में नारी की वस्तु-स्थिति का चित्रण, जिस की विवेचना इससे पूर्व की पक्तियो में की गई है, सास्कृतिक पुनरुत्थान की अभिव्यक्ति करता हुआ सा प्रतीत होता है।

द्विवेदी काल, जिसे हमने प्रस्तुत प्रबन्ध में जागृति-काल का नाम दिया है, भारतेन्दु युग की इसी स्थूल शृंगारिकता की प्रतिक्रिया के रूप में, नारी सम्बन्धी कठोर नैतिक आदर्शों की स्थापना करता है। नारी कल्पना के क्षेत्र में यह युग क्रियात्मक कम तथा प्रतिक्रियात्मक ही अधिक रहा है। प्रतिक्रिया के कारण ही

चरित्र-कल्पना मे स्वाभाविकता नही आ पाई है । इस काल के साहित्यकारो ने नारी के जिस स्वरूप की कल्पना की, वह उत्थान-काल की नारी-कल्पना के एकदम विपरीत पडती है । महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा रामनरेश त्रिपाठी इस काल के प्रतिनिधि साहित्यकार रहे है, उन्होने नारी के व्यक्तित्व मे साहस, शौर्य, प्रेरणा और प्रबुद्धता की कल्पना की, जो तत्कालीन समाज मे नारी वर्ग की वस्तु-स्थिति से किसी भी क्षेत्र मे मेल नही खाती। यह ठीक है कि इस काल के अन्तिम चरण तक आते-आते सुधारको तथा सुधार सस्था के माध्यम से नारी-वर्ग को अपनी प्रगति-विषयक दिशा-ज्ञान हो चला था और राष्ट्रीय कार्यक्रमो मे सहयोग कर, एक विशिष्ठ नारी-वर्ग अपने अधिकारो को प्राप्त करने की दिशा मे तत्पर हो रहा था । लेकिन सामान्य नारी-वर्ग में किसी भी प्रकार की जागृति उत्पन्न न हो सकी थी और उनकी वास्तविक दशा के सदर्भ मे इन साहित्यकारो का यह नवीन आदर्श बडा अजीब सा लगता था। इस का एक कारण है, इन्होने नारी-वर्ग के क्रमिक-विकास को अभिव्यक्त नही किया, वरन् उसे सीधे शीर्ष पर ले जाकर पूजा की वस्तु बना दिया । इससे अस्वाभाविक और कृत्रिमता का अनुभव ही अधिक हुआ । परन्तु नारी के इस अव्यावहारिक रूप से एक लाभ अवश्य हुआ । अब आधुनिक युग मे पहली बार नारी को भी आदर्शमयी बनने की सभावना स्वीकार की गई और उसके प्रति रीतिमुक्त परम्परा के विरुद्ध एक नवीन आदर्शात्मक नीति पूर्ण दृष्टिकोण का विकास हुआ। इस नवीन आदर्श की प्रस्थापना के सदर्भ मे एक नवीन बात हुई और वह है राधा का स्वरूप-विकास । राधा की सृष्टि मे 'हरिऔध' जी के भावो को एक नवीन अभिव्यक्ति मिली ।

रीतिकारो ने भक्तिकालीन वल्लभ-सम्प्रदाय की जिस राधा को विलास-भवन के रग-मच पर और शृगारिकता की उद्भावना करने वाली नायिका का स्वरूप प्रदान किया था, उस का परिष्कार आधुनिक हिन्दी साहित्य मे पहली बार 'हरिऔध' जी की लेखनी से हुआ । उनकी राधा 'स्व-दुख कातरता' का 'पर-दुख कातरता' मे पर्यवसान कर, सकीर्ण व्यक्तिगत प्रणय विनिमय का स्वस्थ भाव-भूमि पर विस्तार कर लेती है । वह लोक-सेविका तथा लोक-निर्देशिका के रूप मे प्रस्तुत होती है। उसका यह रूप निश्चित रूप से स्वस्थ साहित्यिक रचना की और दिशा-सकेत करता है। इसी प्रकार त्रिपाठी रचित 'मिलन' की विजया आनन्द कुमार के अभाव मे, गाव-गाव मे जाकर देश-प्रेम और जागृति का मन्त्र फूकती है । नवयुवको को प्रेरित करती है और विषमता तथा अत्याचार के विरुद्ध विरोध करने के लिये उन्हे प्रोत्साहित करती है ।

'मिलन' मे व्यक्त त्रिपाठी जी का यह स्वप्न आगे चलकर गाधी आन्दोलनो मे पूर्ण हुआ है, इसमे कोई सन्देह नही। लेकिन जिस काल मे (१६१८) इसकी रचना हुई थी, तब इस का ध्येय केवल नारी को रीतिकालीन वासना की दुर्गन्ध से उबार कर उसके स्वरूप को राष्ट्रीय स्थल पर सामाजिक सम्मान की पृष्ठभूमि मे प्रस्थापित करना तथा उसके लिए भविष्य मे उन्नत एव स्वस्थ सभावनाए प्रस्तुत करना था। द्विवेदी जी की प्रेरणा से इस काल के साहित्य का निर्माण हुआ है, अतः उनका नैतिकतावादी दृष्टिकोण सभी दिशाओ मे व्याप्त है। नारी मे भी इसीलिए, इस युग के साहित्यकारो ने उच्चतम नैतिक-आदर्श की प्रतिष्ठा करनी चाही है। हम कह सकते हैं कि नैतिकता पर सबसे अधिक बल पिछले सौ वर्षों के साहित्य मे, केवल इसी काल मे दिया गया है। नैतिक आदर्शों की स्थापना से विविध सम्बन्धो के अन्तर्गत पत्नीत्व की निष्ठा को प्रमुख माना गया है। प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त तथा 'हरिऔध' जी की तत्कालीन रचनाओं में यही भावना प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुई है। 'पति परमेश्वर' का आदर्श इस युग की महती देन है। चारित्रिक पवित्रता को इसी कारण महत्ता प्राप्त हो सकी है। श्रीधर पाठक तथा भगवानदीन की रचनाओ में जागृतिकाल की राष्ट्रीय भावना के दर्शन किए जा सकते है। नारी आदि जाति की प्रेरणा के रूप मे प्रस्तुत की गई है। उसे विश्व की अजेय शक्ति कहा गया है। वह आर्यकुल की पुण्य-पताका तथा गृह की स्वामिनी मानी गई है। राष्ट्रीय जातीय प्रेम के इस उत्साह काल मे नारी ने स्वयम् भी अपनी पद्-प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया है और उस के इस कार्य-व्यापार को पुरुष द्वारा स्वीकृति भी मिली है। इस काल के साहित्यकारो ने इन नवीन आदर्शों की स्थापना के साथ-साथ उत्थान-काल के साहित्यकारो की भांति जर्जर रूढ परम्पराओ तथा पिछड़ी मान्यताओ के विरुद्ध भी स्वर उठाया है तथा नये सुधारो की आयोजना की है।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि इस काल के साहित्यकार शारीरिक और मानसिक पवित्रता को प्रधानता देकर चले है। नैतिक आदर्शों का पालन बडी कठोरता से किया गया है तथा नारी मे प्रेरणा तथा शक्ति साहस के दर्शन किये गये हैं। नारी को विभिन्न सम्बन्धों मे देखने की बान भी इसी काल से प्रारम्भ हुई है। इस विषय मे श्री मैथिलीशरण गुप्त का नाम उल्लेखनीय है। उन्ही के द्वारा नारी के विभिन्न सम्बन्धों को व्याख्या मिली है। सुधार-भावनाओ का विकास इस काल की नारी-स्थिति में सुधार प्रस्तुत करता है। नारी की सत्-असत् रूपो मे भी व्याख्या हुई है, परन्तु असत् रूप के प्रति कही भी ललक की भावना विकसित नही हो पाई है। नारी का सक्रिय राष्ट्रीय रूप महिला-वर्ग को प्रेरित करता है और इन सबसे विशेष, इस

काल की साहित्यिक नारी-सृष्टि पुरुष से बहुत ऊची है, सम्मान के शीर्ष पर पूजा की वस्तु बनी हुई, आराध्या के रूप मे दृष्टिगत होती है । इस प्रकार इस काल मे नारी-भावना पर एकपक्षीय विचार किया गया । उसके आदर्श-रूप को जिस प्रकार की अभिव्यक्ति मिली, वह उसकी व्यावहारिक स्थिति के एकदम प्रतिकूल थी और उसका स्वरूप सामाजिक क्षेत्र मे विजया और नवीन अभिव्यक्ति प्राप्त राधा के रूप मे कही भी विद्यमान नही था ।

हिन्दी साहित्य के तृतीय विकास चरण मे गाधीजी की प्रेरणा से नारी सामाजिक समारोहो मे भाग लेने लगी थी और उसका राष्ट्रीय स्वरूप मुखर होने लगा था । अब स्वय नारी अपनी स्थिति के कचन-विहान की कल्पना करने लगी थी । तोरन देवी लली की इन पक्तियो मे नारी उत्साह की झलक प्रतिलक्षित होती है—

'मैं नही चाहती सध्या के
युग युग का जर्जर गान
हा, मधुर उषा आगमन सुना
कैसा होगा कचन-विहान ।'

नारी को राष्ट्रीय भावनाओ से अनुप्राणित होने का अवसर इस विकास-काल मे ही प्राप्त हुआ । अब नारी सामाजिक कार्य-व्यापारो मे अपने अधिकारो की माग करने के लिये अग्रसर हुई । प्रथम और द्वितीय महायुद्धो के बीच का यह काल भारत के लिये औद्योगिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा साहित्यिक—सभी दृष्टियो से महत्वपूर्ण रहा है । इस युग की साहित्यिक क्राति पश्चिमी आदर्शो—विशेषतया स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित हुई है । जहा सामाजिक मान्यता और उत्कर्षों से दूर, नितान्त वैयक्तिकता के वातावरण मे नारी के सत्-सौदर्य की कल्पना की गई । इस काल की नारी भी प्रणय करती है, वह यहा भी पुरुष के विश्रमित मन के लिये शीतल छाया का उपचार बनती है, परन्तु उसमे रीतिकालीन नायिका का-सा आवेग और मासलता नही है और न वह पुरुष की वासना पूर्ति के साधन मात्र के रूप मे ही प्रस्तुत होती है । इसके विपरीत उसका निर्मल, सौम्य, प्रेरक तथा प्रणयिनी रूप अभिव्यक्त हुआ है ।

इस काल मे भी नारी सम्बन्धी नवीन आदर्शों की सृष्टि हुई है । उसे दया की मूल मूर्ति के रूप मे प्रस्तुत किया गया है । पुरुष उसकी कृपा के लिये उसके सम्मुख नत सिर है । गोपा का चित्रण ऐसी ही महिमामयी नारी-चरित्र की अभिव्यक्ति करता है—

'दीन न हो गोपे, सुनो
हीन नहीं नारी कभी
भूत दया मूर्ति वह मन से शरीर से ।'

—यशोधरा, पृ० १४५

इस काल में नारी ने जागृति के आलोक में अपनी स्थिति को हीन मानना भी अस्वीकार कर दिया है और अपने उन्नयन के लिए वह स्वयं भी आगे बढ़ी है। यशोधरा एक स्थान पर कहती है—

'तुच्छ न समझो मुझको नाथ
अमृत तुम्हारी अंजलि में तो भाजन मेरे हाथ।'

नारी को मांसल स्वरूप देने के पूर्व-प्रयासों का विनष्टीकरण इस काल की सबसे बड़ी विशेषता है। उसके शुद्ध, सुचि रूप को घर और बाहर—दोनों क्षेत्रों में प्रतिष्ठित कर, इस काल के साहित्यकार ने सामंजस्यवाद का नवीन आदर्श प्रस्तुत किया है। इसी आदर्शवादिता के प्रसंग में विकास-कालीन नारी-सृष्टि की कल्पना, कर्तव्य परायणता की पृष्ठभूमि में भी की गई है। 'स्वप्न' की सुमना पुरुष को कृष्ण की भांति ही कर्मशील बनने का उपदेश देती है। उसे अब पुरुष की वासना अपने कर्तव्य से विमुख नहीं करा पाती। प्रेमचन्द और मैथिलीशरण गुप्त तथा पन्त और निराला आदि के साहित्यकारों में नारी-पद को सम्मान और प्रतिष्ठा मिली है।[a]

छायावादी प्रवृत्ति के विकास ने नारी के मूल्य, महत्व और स्वरूप में एक क्रांति ला दी है, यह स्पष्ट है। इसीलिये उसको स्वच्छतर भावभूमि पर अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। लेकिन इसके साथ ही उसकी वस्तु-स्थिति की भी उपेक्षा नहीं हुई है। नारी के प्रति पुरुष का अत्याचार, कुप्रथाओं की लम्बी आती हुई परम्परा और पुरुष-वर्ग द्वारा उसके लिये संकीर्ण सीमाओं का निर्धारण सभी दिशाओं को साहित्यकार ने दृष्टिगत किया है। उसने छायावादी कोमल व्यंजक शैली में इस बात का विरोध भी किया है। शिक्षा प्रचार के विषय को लेकर इस काल में अपेक्षाकृत कम कहा गया है, क्योंकि इस पक्ष में नारी-वर्ग अब तक जागरूक हो चुका था और उसमें विद्याध्ययन की कभी समाप्त न होने वाली अजस्र परम्परा चल पड़ी थी। कुप्रथाओं और सामाजिक रूढियों की अभिव्यक्ति प्रेमचन्द साहित्य में सबसे अधिक हुई है। उन्होंने सामान्य कुप्रथाओं के साथ-साथ विभिन्न वर्गों में प्रचलित परम्पराओं पर, जो प्राणहीन हो, सामाजिक वातावरण को शैथिल्य प्रदान कर रही थी, कुठाराघात किया। विधवा समस्या और वेश्यावृत्ति को उन्होंने विशेष रूप से लिया है। मध्य-

वर्गीय और सामान्यवर्गीय नारी की वस्तु-स्थिति का मर्मान्तिक चित्रण उनकी अपनी लेखनी का वैशिष्ठ्य है। महादेवी वर्मा ने 'शृखला की कडिया' मे सामान्य नारी के मर्म-स्पर्शी चित्र उपस्थित किये है।

अधिकार-प्राप्ति के इस नवोदित प्रहर मे एक विशिष्ठ नारी-वर्ग मे अधिकारो को प्राप्त करने के सफल प्रयास स्वरूप, दर्प-भावना का प्रस्फुटन हो चुका था। हालाकि इसका विकास नव्य-युग मे ही हुआ है। सामयिक साहित्यकारो ने उस अग पर भी दृष्टि-पात किया है और उसको भारतीय वातावरण के बीच अशुभ बताते हुए उसके प्रति चिन्ता प्रकट की है। शिक्षा के विकास के साथ-साथ अब इस काल की नारी में तर्क-बुद्धि का विकास देखने को मिलता है। वह पूर्व-काल की भाति पुरुष की सभी बातें चुपचाप रह कर ही नही सह लेती परन्तु अब उसके लिए तर्क करती है तथा अपने अधिकारो की सुरक्षा के लिए स्वय भी प्रयत्नशील होती है। इस काल मे हम उसे स्वय विकास और उन्नयन के पथ पर प्रशस्त होते हुये देख सकने है। इस काल की नारी-सृष्टि को लेकर सबसे महत्त्वपूर्ण बात उसके बाह्य सघर्ष के चित्रण को लेकर है। सामाजिक और कौटुम्बिक जीवन की विषमताओ मे उसे किस प्रकार अपनी स्थिति को बनाये रखना होता है तथा सभी प्रकार के अनाचारो को सहते हुये भी जीवन के लिये प्रत्याशी होना पडता है—यह सब इस काल की साहित्यिक सृष्टियो मे विद्यमान है। प्रेमचन्द जी के नारी-चरित्र अधिकतर इसी स्वरूप को लेकर चलते हैं।

इस प्रकार से आधुनिक नारी साहित्य मे सुधार योजनाओ को प्रमुखता देते हुये नारी-स्थिति के उन्नयन की दिशा मे विशेष प्रयत्न किया गया है। उसे रीति-कालीन नायिका के पद से अलग कर, विभिन्न सम्बन्धो मे सत्-स्वरूप की स्वीकृति प्रदान की गई है। द्विवेदी-काल मे उस पर नैतिक आदर्शो का आरोपण कर उसकी स्थिति मे पावित्र्य और शील को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है और सामाजिक स्वीकृति तथा राष्ट्रीय स्वरूप मे उपस्थित करने के प्रयत्न का आरम्भ भी इसी काल से हुआ है। आगे, विकास-काल मे, इस भावना को दृढ भित्ति प्राप्त हुई है।

छायावादी काल मे वह कवियो द्वारा उस प्रणयिनी के रूप मे प्रस्तुत की गई है, जो अपने शील-सौदर्य और कोमल भावकता मे महान है, जहा पुरुष के मन की वासना नही ठहर पाती और उसके सात्विक रूप पर मुग्ध हो, जहा वह उसे आराध्या और पूज्या के पद पर प्रतिष्ठित कर देता है। दूसरे, उसका राष्ट्रीय स्वरूप भी इसी काल में विकसित हुआ। गाधीवादी राष्ट्रीय आदोलनो मे अब वह व्यावहारिक रूप से भी भाग लेने लगी थी, एक नवीन जागृति का चिन्ह उसके व्यक्तित्व मे दृष्टिगोचर

होने लगा था और उस जागृति के आलोक में वह अपने अधिकार-क्षेत्र की पहिचान करने लगी थी। छायावादी-कालीन यह स्वरूप, द्विवेदी युग की राष्ट्रीय जागृति से, जो 'मिलन' आदि रचनाओ मे अभिव्यक्त हुआ है, भिन्न है। इस स्वरूप के साथ एक परम्परा और इतिहास-सा जुडा हुआ लगता है जो उसको व्यावहारिकता और स्वाभाविकता की ठोस और समझ में आने योग्य भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित कर देता है।

छायावादी काल भारत के आर्थिक पक्ष के ह्रास का काल था। अत. व्यक्ति के सम्मुख जीने की समस्या ही मुख्य थी। जीने के लिए सघर्षों की विस्तृत भूमिका को पार करना पडा था। अतः इस काल में अन्य बाह्य सघर्षों के साथ-साथ नारी-सम्बन्धी वाह्य सघर्षों का भी चित्रण हुआ। प्रसाद जी इसी छायायुग के साहित्यकार हैं जिन्होने तत्कालीन साहित्यकारो की ही भाति नारी-स्थिति का अध्ययन कर, उसके उन्नयन के लिए साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। अगली पक्तियों में हम नारी-स्थिति विषयक उनके नवीन आदर्श और नव्य-कल्पना की चर्चा करेंगे।

प्रसाद की नारी-कल्पना—नवीन आदर्श

प्रसाद जी की साहित्य-साधना सामाजिक जागृति तथा जागृति-कालीन साहित्य-आलोक मे प्रदीप्त हुई है। उन्होंने भी अपने काल की उन सभी प्रचलित समस्याओं को उठाया है, जिनकी अभिव्यक्ति उनके साथी साहित्यकारो द्वारा की जा रही थी। परन्तु प्रसाद जी मे समकालीन साहित्यिको की अपेक्षा अधिक सवेदना विद्यमान थी और इसीलिए उन्होंने नारी-जीवन की विषमताओ को अधिक बारीकियों से देखा तथा वास्तविक कलाकार की प्रकृति के अनुकूल नारी-आदर्श को नवीन क्षितिज भी प्रदान किए। उन्होने अपने युग की सामाजिक परिस्थितियो के अनुकूल नारी की राष्ट्रीय कल्पना की स्थापना की, दूसरे साहित्यिको की भाति नारी के विभिन्न सम्बन्धो की व्याख्या की तथा पत्नीत्व के आदर्श को प्रतिष्ठित किया, किन्तु अन्य लेखकों के विपरीत उन्होंने नारी को पुरुष के अनाचार का सशक्त विरोध करने की भी अनुमति दी है। उन्होंने उसे सांस्कृतिक पीठिका पर अधिष्ठित किया है। उसको दार्शनिक भूमि पर भी सर्वप्रथम प्रसाद जी ने ही अवतरित किया है और इन सब से विशेष वाह्य सघर्ष-चित्रण के इस युग में आन्तरिक सघर्षों की झाकी सबसे पहले विशेष रूप से प्रसाद साहित्य मे देखने को मिलती हैं। इस तरह चरित्रों के मनोवैज्ञानिक विकास को पहले पहल इन्ही से अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि मे प्रसाद की नारी-सृष्टि का मूल्य और महत्व निम्नलिखित

शीर्षको के अन्तर्गत आका जा सकता है—

(क) सास्कृतिक स्वरूप
(ख) राष्ट्रीय स्वरूप
(ग) दार्शनिक व्याख्या
(घ) मनोवैज्ञानिक पीठिका

सास्कृतिक स्वरूप

प्रसाद जी की सास्कृतिक नारी की विवेचना करते समय हम कह आए है कि सस्कृति के अन्तर्गत व्यक्ति की चेष्टाओ, उसके द्वारा सीखे गये व्यवहारो तथा सामाजिक परम्पराओ का सन्निवेश होता है। प्रसाद जी ने भारतीय दर्शन, सस्कृति तथा साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था, अत: अपने देश की सस्कृति पर—जिसमे विश्व मैत्री, राष्ट्र-प्रेम, नारी-सम्मान, दया, क्षमा, शील, सौजन्य, समन्वय, सतोष, सहयोग, औदार्य, निस्वार्थता, सयम तथा मानवतावादी प्रवृति का समावेश है—वे विशेष रूप से अनुरक्त थे। अपनी इसी भावना की अभिव्यक्ति उन्होने अपनी साहित्यिक नारी मे की है तथा सास्कृतिक धारा के अवरुद्ध प्रवाह को फिर से साहित्यिक क्षेत्र मे विस्तीर्ण किया है। आधुनिक काल मे सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर साहित्यिक नारी-सृष्टि का आरम्भ वास्तविक रूप से 'हरिऔध, और गुप्त जी को लेकर होता है। गुप्त जी ने यशोधरा और उर्मिला के चरित्रो मे जिस उज्ज्वल पक्ष पर बल दिया है, उसका पोषण भारतीय नारी की परम्परागत सहनशीलता, त्याग, एकनिष्ठता तथा दु:ख और कष्ट सहन करने की क्षमता के माध्यम ही हुआ है। 'प्रिय प्रवास' की राधा सेवा के उस आदर्श को लेकर आई है, जिसने उसे सास्कृतिक आयोजनो के मध्य गौरव प्रदान किया है और इसीलिए वह हिन्दी साहित्य का अमर चरित्र बन गई है। अपने प्रिय की अवस्था मे कलपने की अपेक्षा दु.खी जीवो के प्रति सहायता का हाथ बढाना, उनके दुख को सुख मे परिवर्तित कर स्वय भी सुखी और शान्त हो लेना अधिक श्रेयस्कर है। भारतीय सस्कृति, विषमताओ के मध्य उनसे प्रपीडित हो, दुखी होने का निर्देश नही देती, उसकी मान्यता मे तो वही महान् है जो उस का सामना अधरो पर हास लेकर कर ले। लेकिन सास्कृतिक व्याख्या मे दु ख सहन करते रहने की क्षमता रखने का अर्थ अपने 'स्व' को भूल जाना नही होता। राधा की तुलना में प्रसाद की देवसेना को लीजिए। वह चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है। चन्द्रगुप्त उसके सम्मुख कई बार आता है लेकिन प्रेम की बात को अपने मु ह से कह कर वह न तो अपने प्रेम का ही अपमान करना चाहती है और न अपने प्रिय की श्रेष्ठता को कम ही। वह अपने प्रिय तक कोई सन्देश भी तो नही भेजती। उसके लिए तो इतना

ही पर्याप्त है कि वह किसी को अपने मन से, अपनी सम्पूर्ण निष्ठा के साथ प्यार करती है। और तब वह अपने उस निष्ठावान प्रणय का प्रदर्शन कर, क्यों उस की महत्ता को कम करे ? यहा पर हमारे विचार से नारी का उज्ज्वल रूप व्यक्त हुआ है। प्रणय के क्षेत्र मे देवसेना आत्म-स्वाभिमान के प्रसग मे राधा से पीछे नही रह जाती वरन् कुछ आगे ही बढी हुई दृष्टिगोचर होती है। हा, राधा का लोक-सेविका रूप देवसेना की कर्त्तव्य-परायणता की बराबरी कर सकता है। लेकिन उसी राधा को यदि मालविका के साथ रख कर देखें तो मालविका के मौन प्रणय साधना के सम्मुख राधा का सबल सन्देश कुछ हलका सा लगता है। मालविका अपने प्रिय की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देने के लिए भी तत्पर हो जाती है। वह जानती है कि वह रात उसके जीवन की अन्तिम रात है। लेकिन फिर भी चन्द्रगुप्त पर अपने प्रणय को प्रकट करने की, या यह भावना प्रकट करने की कि कोई अब तक उससे मन ही मन प्यार करता रहा है और आज उसी की प्राणरक्षा हेतु अपने प्राणों की आहुति देने चला है—कोई जिज्ञासा नही होती। यह भारतीय संस्कृति का ही उच्चतम आदर्श है, जहा त्याग की भावना का इतना स्वस्थ विकास हो चला है। इस आदर्श-प्रतिष्ठा मे प्रसाद अपने साथी लेखको से काफी आगे बढ गये लगते है।

राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त सास्कृतिक कवि कहे जाते है, क्योंकि उनके द्वारा भारतीय सस्कृति की पृष्ठभूमि मे ही साहित्य-रचना हुई है और अपने पात्रो के माध्यम से उन्होने देश की प्राचीन सस्कृति के उन्नयन और आदर्श की बात कही है। उन का नारी-सम्बन्धी सास्कृतिक आदर्श सीता, यशोधरा और उर्मिला के चरित्रो मे व्यक्त हुआ है। सीता का गृहिणी रूप, यशोधरा का पत्नीत्व तथा उर्मिला का विरह-वैधुर्य सभी को भारतीय सस्कृति की पृष्ठभूमि पर ही चित्रित किया गया है जो अपने स्वरूप को व्यक्त करने मे सफल भी हैं। अब इन्ही की तुलना मे प्रसाद की श्रद्धा, तितली और मल्लिका को लीजिए। श्रद्धा का चित्रण सृष्टि के विकास की कहानी के प्रसग मे हुआ है। उसम कितनी दया है। उसने कही भी 'मुझे फूल मत मारो' कह कर अपनी अतिशय दयनीयता और परवशता प्रकट नही की है। वह सहनशीलता की प्रतिमा का स्वरूप लेकर उपस्थित हुई है। उसमें सास्कृतिक स्वस्थता अधिक और स्वाभाविक मात्रा मे प्रतिलक्षित होती है। तितली अपनी सीमित सुविधाओ मे भी सतेज है। उसमे दुःखो का सामना करने के लिए पर्वत सी अटलता, सागर सी गम्भीरता और पृथ्वी सी सहिष्णुता विद्यमान है। उसके जीवन की विषमताये सामान्य वर्ग के मध्य, व्यावहारिक भाव-भूमि पर प्रदर्शित की गई हैं और तब भी उसके चरित्र में सास्कृतिक निखार स्पष्ट है। इसके विपरीत यशोधरा और उर्मिला इन दोनो का वर्ग राजसी है, और वहा उनके चरित्र को लेकर

जो कुछ भी कहा गया है, लगता है जैसे उसके द्वारा उनके चरित्रो की स्वाभाविकता का अकन कम तथा आदर्श-प्रतिष्ठा का प्रयत्न ही अधिक हुआ है। आदर्श-प्रतिष्ठा का प्रयत्न श्रद्धा के चरित्र मे भी कम नही है किन्तु फिर भी कही कृत्रिम सा नही लगता। इस का कारण प्रसाद का मनोवैज्ञानिक अध्ययन हो सकता है। यहा मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता के मूल मे ही आदर्श-प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया गया है। इसीलिए व्यावहारिकता की भूमि पर चरित्राकन के साथ साथ सास्कृतिक आदर्शो की रक्षा भी जैसे स्वय ही हो गई है। उनकी एक अन्य सृष्टि मल्लिका अपनी उदारता, सहिष्णुता, निष्कपट पति परायणता, करुणा, स्नेह और विश्व-मैत्री भावनाओ मे महान् है। अपने शत्रुओ को भी वह आचरण की शुद्धता और सौजन्यता की शिक्षा देती है। उसमे भावावेश और आक्रोश है ही नही और न अपनी शीलता मे कही वह दयनीय ही दिखाई पड़ती है। सास्कृतिक मर्यादाओ के मध्य उसके जीवन का सयमित क्रम चलता है। न्याय, सहनशीलता और सवेदन जैसे उसके सास्कृतिक स्वरूप को और भी उज्ज्वल बना देते है।

उपर्युक्त पात्रो के अतिरिक्त कार्नेलिया, शैला, ध्रुवस्वामिनी, वासवी, पद्मावती, कोमा, मणिमाला और सरमा आदि नारी चरित्रो मे उसी उदात्त स्वरूप के दर्शन हुए हैं जिस से भारतीय सस्कृति की मर्यादा का सम्मान बढता है और अपनी सस्कृति के प्रति आस्था उत्पन्न होती है। प्रसाद जी ने इन सास्कृतिक चरित्रो के लिए उस देश-काल को चुना है जिसे भारतीय सस्कृति का उत्कर्ष काल कहा जा सकता है। गुप्त-काल धर्म, राजनीति, सामाजिक चेतना और वैभव—सभी दृष्टियो से महान् है। उस महानता के मध्य, जिस व्यावहारिक दृष्टिकोण को ध्यान मे रख कर प्रसाद जी के चरित्रो का नियमन हुआ है वह अपनी उच्चतर शालीनता एव विशिष्टता के साथ-साथ तत्कालीन भारतीय समाज की परिस्थितियो तथा राष्ट्रीय योजनाओ की प्रगति के मध्य स्वाभाविक सा भी लगता है। ठीक है, कि प्रसाद जी से पूर्व भी सास्कृतिक पीठिका पर नारी चरित्रो का अकन किया गया है और सफलतापूर्वक किया गया है। परन्तु प्रसाद जी मे एक विशिष्ठ प्रकार की गहन अनुभूति है। उनकी लेखनी प्रतिभाशाली कलाकार की लेखनी है। साथ ही उनका अध्ययन भी उसी प्रकार गम्भीर है। उन्होने विस्तृत भाव-भूमि पर कल्पना और व्यवहार का सफलतापूर्वक समन्वय किया है। प्रसाद जी की मनोरम कल्पना देश और परिस्थितियो की व्यावहारिकता मे समन्वित हुई है। और इसीलिए उनकी सास्कृतिक नारी-सृष्टि अपने स्वरूप मे विशिष्ठ प्रतीत होती है। एक बात और है, प्रसाद जी ने विविध नारी-चरित्रो के माध्यम से विविध प्रसंगो की पृष्ठभूमि मे सास्कृतिक निरूपण की योजना की है। इनके चरित्र इतने

बहुल हो गये है कि दूसरे साहित्यिको के चरित्रो का महत्व निश्चय ही कुछ हल्का सा हो जाता है। फिर किसी अन्य साहित्यकार द्वारा कामायनी जैसा सशक्त चरित्र भी उपस्थित नही किया जा सका है और इसीलिए इनके सास्कृतिक नारी चरित्र आधुनिक हिन्दी साहित्य मे अभी तक भी अपनी विशेष स्थिति पर बने हुए है।

राष्ट्रीय स्वरूप

प्रसाद जी की नारी सृष्टि की अन्य विशेषता उनके राष्ट्रीय स्वरूप को लेकर है। वैसे प्रसाद काल मे राष्ट्रीय भावनाओ को लेकर काफी लिखा गया है तथा नारी को भी समग्र रूप से उसमे भाग लेने और सहयोग देने के लिए प्रेरित करने का प्रयास भी हुआ है। प्रसाद के अतिरिक्त अन्य लेखको मे प्रेमचन्द और राम नरेश त्रिपाठी द्वारा ही राष्ट्रीय नारी चरित्र उपस्थित किए गये हैं। किन्तु प्रेमचन्द के राष्ट्रीय चरित्रो का विकास सामाजिक विषमता की धारा के अन्तर्गत ही हुआ है। उनके शायद ही किसी पात्र मे शुद्ध राष्ट्रीय रूप का विकास हुआ हो। हा, रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन' और 'स्वप्न' मे जो स्वरूप उपस्थित किया गया है, उस का उद्देश्य वास्तव मे महिला-वर्ग के मध्य, राष्ट्रीय स्वरूप का विकास करना रहा है। हमे 'मिलन' की विजया के चरित्र मे परिस्थितिवश विकसित राष्ट्रीय भावना का विस्तार देखने को मिलता है। अपने प्रिय आनन्द को मृत जानकर वह उसकी इच्छा को पूर्ण करने का उद्देश्य लेकर, नगर-नगर, गाव-गाव अनाचारी शासक के विरुद्ध जन-जागरण करती है, देश के नवयुवको को उस क्रान्ति के मगल-समारोह मे भाग लेने के लिए प्रेरणा देती है और स्वय भी 'अबला और अनाथिनी' के स्वरूप को वीर बाला के रूप मे परिवर्तित कर लेती है। उस के गीतो में ओज होता है, जो देश प्रेम की भावना को बल प्रदान करता है। 'स्वप्न' की नायिका भी अपने विलासी पति के अन्तसंघर्ष और क्षय-पौरुष चेष्टाओं से ऊब जाती है। वह देश की क्षुधित और बुभुक्षित जनता को देखती है, उसकी इस दयनीय दशा के कारणों की खोज करती है, और स्वयम् इस समस्या के निदान मे अपनी सेवाओ को प्रस्तुत करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ होती है। वह भी विजया की ही भाति शत्रु का सामना करने के लिए प्रस्तुत होती है, अपने प्रिय को प्रेरणा देती है और अन्त में अपने लक्ष्य मे सफल होती है। मैथिलीशरण गुप्त की नारी का राष्ट्रीय स्वरूप भी 'सिद्धराज' में इसी प्रकार अभिव्यक्त हुआ है। इसी प्रकार सोहन लाल द्विवेदी के 'भैरवी' मे सकलित 'दण्डी यात्रा' जैसी कतिपय कविताओं में इसी राष्ट्रीय उद्बोधन के दर्शन होते हैं।

उपर्युक्त लेखकों की भाति दूसरे साहित्यकारों ने भी राष्ट्रीय भावना को

अभिव्यक्त किया है। किन्तु किसी नारी सृष्टि को राष्ट्रीय वातावरण में अधिष्ठित कर, देश के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देने के विषय को लेकर उल्लेखनीय प्रयत्न नही किए गये है। इस प्रसग मे प्रसाद जी की राष्ट्रीय नारी इसीलिए बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। प्रसाद जी अपने समय की सामाजिक गतिविधियो और साहित्यिक सृष्टियो से परिचित थे। उन्होने दूरगामी अलौकिक दृष्टि पाई थीं। परन्तु अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ-काल मे वे प्रचलित प्रथाओ के प्रति एक सुधार-भावना लेकर ही उपस्थित हुए है। उसमे क्राति करते हुए, उन्हे लगता है जैसे पहले हिचक हुई थी। नारी को घर से बाहर कब और कितना अवसर देना अपेक्षित है, इस विषय मे वे अपने पूर्व साहित्य मे बहुत प्रगतिशील नही कहे जा सकते। 'अजातशत्रु' मे उन्होने नारी और पुरुष के कार्य-क्षेत्रो की अलग-अलग व्याख्या की है। क्योंकि उनका विश्वास है कि ससार के सब कर्म सबके लिए नही होते। परन्तु बाद में देश की बढती हुई राष्ट्र-भावना ने उनके सकोच को कम कर दिया और तब उनके साहित्य में नारी-चरित्रो का जो राष्ट्रीय स्वरूप ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर चित्रित किया गया, वह मौलिक तो था ही, साथ ही उसने राष्ट्रीय चेतना को विकसित करने मे भी महत्त्वपूर्ण योग दिया। उनकी मान्यता थी कि नारी मे सार्वजनिक जागृति तो होनी ही चाहिये और अवसरानुकूल उसकी तत्सबधी योग्यता का उपयोग भी। उनकी अलका के चरित्र को लीजिये। वह देखती है कि उसके पिता तथा भाई राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नही कर रहे है और इस तरह से राष्ट्रीय हितों के विनाश की आशका है, तो वह महाराज और आम्भीक के स्थान पर स्वय राष्ट्रीय सेवाओ के लिये तत्पर हो जाती है। उसका तेज, सेवा और कर्त्तव्य की अपूर्व भावना और उत्साह से भरा हुआ रमणी रूप नि.स्वार्थ भाव की भीत्ति पर और भी देदीप्यमान हो जाता है। वह अपने इन शब्दो मे अकर्मण्य भाई के लिए कितना बड़ा व्यग्य और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य-निर्वाह की कितनी महान् सन्नद्धता प्रस्तुत करती है—

'महाराज, मुझे दण्ड दीजिये, कारागार मे भेजिये, नहीं तो मैं मुक्त होने पर भी यही करूँगी''''''महाराज आर्यावर्त के सब बच्चे आम्भीक जैसे नही होगे। वे अपनी इस मान-प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल-तिल कट जायेंगे।'

—चन्द्रगुप्त, पृ० ८८

अलका के चरित्र का राष्ट्रीय वैशिष्ठ्य एक अन्य बात को लेकर भी है। वह विजया की भाति स्कन्दगुप्त पर मोहित होकर, उसे प्राप्त करने की आकाक्षा को लेकर, राष्ट्रीय योजना मे दीक्षित नही होती। विजया मे प्रेम मुख्य है, राष्ट्रीयता गौण। इसके विपरीत अलका सिंहरण से इसलिए प्यार करती है कि वह राष्ट्रीय

भावनाओ की प्रतिमूर्ति है । उसके अग का एक-एक अणु राष्ट्र के उपयोग के लिए, उसकी सुरक्षा और उन्नयन के लिए सुरक्षित है । अलका के प्रणय मे राष्ट्रीय प्रेम वैयक्तिक प्रेम पर हावी हो गया है। दूसरे शब्दो मे इसी बात को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि अलका के राष्ट्रीय प्रेम की पृष्ठभूमि मे ही उसकी वैयक्तिक प्रणय-भावना का विकास हुआ है । उसमे राष्ट्रीयता की काल्पनिक भावना ही नही है परन्तु उस क्षेत्र में वह कर्मशील भी है। स्वय भी वह देश-सेवा के लिए कार्य करती है, रण-क्षेत्र जाती है और साथ ही सिहरण की प्रेरणा भी बनती है । सिहरण की ही क्यो, तक्षशिला के नागरिको में भी उन्हे प्रेरित करने के लिये उसका राष्ट्रीय गान गूज उठता है। अलका की ही भाति जयमाला का चरित्र भी इसी राष्ट्र-भावना को पुष्ट करता है। वह अपने पति की उदासीनता पर व्यग्य करती है और उन्हे देश की रक्षा के लिये प्रेरणा देती है। उसका राष्ट्रीय स्वरूप विकसित है । वह सर्वात्मा के स्वर में अपने विशिष्ठ व्यक्तित्व को लय करने मे तत्पर है । युद्ध उसके लिये गान है, जिसमे उसे जीवन का सगीत सुनाई पडता है।

इसी प्रकार प्रसाद के अन्य ऐतिहासिक चरित्रो—देवसेना और मल्लिका में भी राष्ट्रीय स्वरूप के दर्शन होते है, जो अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपनी इच्छा से देश-हितो को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय योजनाओ मे भाग लेती है। मालविका, कमला और रामा भी इसी कोटि की पात्राए है, जिनमे राष्ट्रीय तत्वो का सन्निवेश उनके व्यक्तित्व को वैशिष्ठ्य प्रदान करता है । 'पुरस्कार' की मधूलिका अपने देश-गौरव की रक्षा के लिए अपने प्रणय को बलिदान कर देने के लिए सन्नद्ध हो जाती है। सास्कृतिक चरित्रो की भाति उनके राष्ट्रीय चरित्र भी अनेकरूपता और बहुरंगी भावनाओ से पोषित हुए हैं। उनके व्यक्तित्व की विविधता उनकी महत्ता को और भी शालीन और आकर्षक बना देती है। प्रसाद जी के ये राष्ट्रीय चरित्र ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर अनुकूल वातावरण के मध्य चित्रित किए गए हैं। दूसरे, भारतीय परि-स्थितियों के अन्तर्गत वे अनुकूल पडते है और इसीलिये साहित्यिक सृष्टियों में उनका स्थान अपनी विशिष्ठता को प्राप्त हो गया है।

दार्शनिक व्याख्या

द्विवेदी काल तक हिन्दी साहित्य सुधार भावनाओ तथा आदर्श स्थापना की प्रतिष्ठा की चेष्टा में ही मुख्य रूप से अभिव्यक्त होता रहा है। नारी-सम्बन्धी भावना भी मुख्य रूप से इन्हीं दो दिशाओ में अभिव्यक्त हुई । छायावादी काल के आरम्भिक वर्षों में प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर युग की विषमताओं से ग्रसित और अभावों से पीड़ित साहित्यकार ने समाज से दूर, काल्पनिक लोक में अपनी दमित कामनाओं की

पूर्ति का प्रयत्न किया। प्रकृति का सौंदर्य उसके लिए विलास, वैभव और सुख का निमन्त्रण लेकर आया। इस प्रवृत्ति के विकास के आरम्भ मे कवि को प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई। पन्तजी की 'मौन निमन्त्रण' जैसी प्रारम्भिक कविताओ मे इस भावना की अभिव्यक्ति भली प्रकार हुई है। जड पर चेतन का आरोप, इसी युग के कवि द्वारा पहले-पहल सत्-रूप की अभिव्यक्ति के साथ किया गया। प्रकृति से—जो जीव-विहीन, गति-शून्य और जड थी, कवि की आस्था, प्रत्युत्तर के अभाव मे कम होने लगी और वह अन्तत नारी पर जाकर रुक गया। उसने नारी मे सत्-सौंदर्य, यौवन, प्रेम, और सलज्ज शालीनता के दर्शन किए। उसके स्वरूप को पूज्या और आराध्या के रूप मे स्वीकार किया। मूर्धन्य छायावादी साहित्यकारो ने इसी दिशा मे साहित्यिक-प्रणयन किया। इन साहित्यकारो ने नारी को जगत की स्वामिनी और प्रकृति के मुकुर के रूप मे प्रतिष्ठा प्रदान की, क्योकि इस आदर्श रूप की प्रेरणा उन्हे प्रकृति की महाशक्ति एव विविध-रगी स्वरूपो से ही प्राप्त हुई थी। 'पल्लव' की कविताओ मे पन्त ने उसे स्नेहमयी, सुन्दरतामयी आदि के विशेषणो से विभूषित किया है। उसके चरित्र मे शक्ति, पूजा, सम्मान और पावनता की भावनाओं को सज्जित किया है। उसका शात, सौम्य स्वरूप पुरुष के सन्तप्त मन के लिए शीतल विश्राम की आयोजना-सी करता है। इस प्रकार से विकास काल, जिसे साहित्य-समीक्षको द्वारा प्रसाद-काल का भी नाम दिया गया है, नारी को शक्ति, प्रेरणा, सौम्यता, पावित्र्य और आदर्श रूप मे देखने का काल है। प्रसाद-काल इसे इसलिए कहा गया है कि नवीन चेतना के उत्सर्ग मे प्रसाद जी का योगदान सबसे अधिक और विशिष्ठ रहा है तथा अन्य साहित्यिक देनो के साथ उनकी यह देन भी महत्वपूर्ण है कि उन्होने छायावादी नारी के इस प्रस्तुत एव प्रचलित स्वरूप की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है, जिससे नारी के दमित कुचले हुए कुठित स्वरूप से भिन्न एक महान्, प्रेरक और मार्ग दर्शक स्वरूप की कल्पना होती है। वहां नारी पुरुष से ऊची, सम्मानित शीर्ष पर बैठी हुई प्रतीत होती है। ऐसा लगता है जैसे सृष्टि का सचालन पुरुष से नही वरन् नारी के निर्देशो पर ही आधारित हो गया है।

प्रसाद जी को नारी के दार्शनिक स्वरूप की प्रेरणा दर्शन-शास्त्र के अध्ययन से मिली है। वह शैव थे, प्रत्यभिज्ञा-दर्शन के समर्थक। इसके अनुसार आत्मा अपनी इच्छा-पूर्वक स्वतन्त्र रूप से अपनी भीत्ति पर ही विश्व का उन्मीलन करती है। विश्व के इस विकास प्रसग में आत्मा के शक्ति रूप को शिव से पूर्णतया अभिन्न माना गया है। यह शक्ति रूप अनन्त है। शिव तत्व प्राण सूत्र मे विद्यमान रहता है। शक्ति तत्व उस प्राण पर नियन्त्रण करने वाला या उसमे व्यवस्था बनाये रखने वाला माना जाता है। प्रत्यभिज्ञा-दर्शन के अनुसार शक्ति शिव की स्रजन शक्ति के

रूप में अभिव्यक्त की गई है। शिव तथा शक्ति में भेद की कल्पना कदापि नहीं की जा सकती।

शिव-शक्ति का उपर्युक्त आदर्श ही प्रसाद जी की नारी-कल्पना को दार्शनिक भाव-भूमि पर अभिव्यक्ति प्रदान करता है। उन्होने उसे महाचिति, लीलामयी और आनन्ददायिनी सिद्ध किया है। वे नारी के व्यापक, विशुद्ध और विश्वासमय स्वरूप को सृष्टि के विकास का रहस्य मानकर चलते हैं। वह सर्वमंगला है। प्राणी-मात्र के प्रति उसके मन में अजस्र दया और स्नेह का स्रोत प्रवाहित होता रहता है।

प्रसाद जी ने नारी द्वारा व्यक्ति का समष्टि मे विकास दिखाया है, जो व्यापक भाव-भूमि की सृष्टि करता है। वह विश्व-मैत्री और विश्व-बन्धुत्व के आदर्श निर्माण में नारी की ही विशिष्ठ शक्ति और प्रेरणा को मान कर चले हैं। एक स्थान पर श्रद्धा मनु से कहती है—

'औरो को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।'

—कामायनी, पृ० १३२।

इसी दार्शनिक स्वरूप की व्याख्या के अन्तर्गत प्रसाद जी की अन्य उपलब्धि नारी के द्वारा मानवतावाद की स्थापना करने में है। पुरुष केवल श्रद्धा के संयोग से ही अभिनव मानव की सृष्टि करता है। श्रद्धा ही पुरुष को मानवतावाद के प्रसाद की प्रेरणा देती है। प्रसाद जी की नारी मे चारित्रिक श्रेष्ठता की इस विशिष्ठता के साथ-साथ पुरुष को उच्चतर भावभूमि मे ले जाकर उसे आनन्दमय बनाने की क्षमता भी विद्यमान है। उसी की प्रेरणा से पुरुष शक्ति ग्रहण करता है तथा शक्तिवान् कहलाता है। पुरुष की आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति, आश्वासन और सहायता नारी से ही प्राप्त होती है। वह तो हमेशा ही इच्छा, कर्म और ज्ञान के त्रैत मे झूला हुआ होता है और इस त्रिपुर रहस्य की कुञ्जी नारी के हाथ में रहती है। उसकी इच्छा से ही इन परस्पर विच्छिन्न शक्तियों मे सामंजस्य की स्थापना होती है और उसकी स्मृति मात्र से ये विच्छिन्न शक्तियां एकाकार हो विश्व में आनन्दवाद की स्थापना करती है। साथ ही वह अन्य विविध शक्तियो की समन्वयित्री भी है, तभी मानव-जीवन की सफलता की अपेक्षा की जा सकती है। प्रसाद जी संघर्ष को प्रदीप्त करने वाले आदर्शों की स्थापना के पक्षपाती नहीं रहे हैं। वे जीवन में सामंजस्य और समन्वय की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। यहां पर भी उन पर प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट

है और इसी के आधार पर उन्होने समरसता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। शिव और शक्ति (पुरुष और नारी) के सामरस्य से ही आनन्दवाद और उल्लास की स्थापना हो सकती है। इसीलिए सामरस्यपूर्ण स्थिति के मध्य ही विश्व की स्थिति को सुखपूर्ण बताया गया है। इसी प्रसग मे प्रसाद जी नारी को पुरुष की सहयोगिनी, निर्देशिका, पूर्णता और प्रेरणा के रूप मे भी प्रस्तुत करते है। पुरुष के जीवन के लम्बे रहस्यो का उद्घाटन नारी द्वारा ही कराया गया है। वह पुरुष को जीवन के दु ख-सुखो की लम्बी परम्परा की पृष्ठभूमि मे सुख का रहस्य बताती है। पुरुष उसकी अनन्त शक्तिका अनुभव कर उसके द्वारा आनन्द प्राप्ति की आकाक्षा को लेकर, उससे अपने जीवन का नेतृत्व करने के लिए कहता है।

प्रसाद की उत्तर-कालीन कृति 'कामायनी' मे नारी के इसी दार्शनिक स्वरूप की व्याख्या प्रस्तुत की गई है जो नारी-स्थिति को सामाजिक सकीर्णता की उमस और घुटन से उबार कर स्वस्थ मनोभूमि पर अधिष्ठित करने के लिए मगल-सदेश देती है। उन्होने नारी को दिव्य-शक्ति के रूप मे प्रस्तुत किया है, जहा पुरुष की पार्थिव उच्चता एव श्रेष्ठता उसकी महानता के सम्मुख बडी सामान्य सी लगने लगती है। इस दार्शनिक नारी-सृष्टि की कल्पना प्रसाद जी की अपनी है तथा हिन्दी के विकास-कालीन साहित्य को, जिसमे नारी की अतीन्द्रियता पर विशेष बल दिया जाने लगा था, एक विभिन्न प्रकार की स्वस्थ, प्रेरणादायक और इन सबसे विशेष समझ में आ सकने योग्य अपूर्व देन है।

मनोवैज्ञानिक पीठिका

आधुनिक साहित्य की कुछ प्रमुख विशेषताओ मे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का विकास भी प्रमुख है। जीवन मे भौतिक द्वन्द्व होते है उन्ही के कारण मानसिक सघर्ष होता है। मानसिक सघर्ष की स्थिति मे ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की स्थिति उत्पन्न होती है। भारतेन्दु से लेकर द्विवेदी काल तक की रचनाओ मे सामाजिक विषमताओं के परिणाम स्वरूप वाह्य सघर्षों का चित्रण तो बहुल मात्रा में होता रहा है। जीवन की विषमताओ को बढा-चढा कर चित्रित किया जाता रहा, किन्तु मानव मन की अन्तर्प्रवृत्तियो का चित्रण बहुत कम साहित्यकारों द्वारा किया गया। प्रेमचन्द-साहित्य में, जो सामयिक समस्याओ की पृष्ठभूमि मे लिखा गया है, वाह्य विषमताओ का सघर्ष सामाजिक चेतना उत्पन्न करने में सफल है। उनके द्वारा समाज के उन रूढ़ परम्पराओ के उद्घाटन और हनन की चेष्टा की गई है जिन्होंने विश्रृखला की अवस्था उत्पन्न कर रखी है। परन्तु इस दिशा मे भी उन के पुरुष चरित्रों का ही अधिक विकास हो पाया है। उनके नारी पात्र अपनी दयनीय दशा से ही पीडित हैं।

हा, जालपा, धनिया आदि पात्रियों की भाति जो कुछ मुखर हो पाई है, उन के द्वारा वहा उनके मानसिक सघर्ष को समुचित अभिव्यक्ति नही मिल पा सकी है। उनकी रुक्मणि, निर्मला, रतन, पुष्पा आदि अन्य पात्र भी अपने भाग्य की दुर्दशा की कहानी ही कहते है। उनमे भी अन्तर्प्र वृत्तियो का सघर्ष कम ही विद्यमान है। प्रसाद कालीन दूसरे साहित्यकार, जिन्होने इस दिशा मे अधिक चेष्टा की है, जैनेन्द्र कुमार हैं। उन्होंने नारी पात्रो को मनोविश्लेषण की पृष्ठभूमि मे ही चित्रित करने का प्रयत्न किया है। परन्तु उनकी पकड को किस सीमा तक स्वाभाविक तथा सफल कहा जा सकता है, यह विवादग्रस्त विषय है। हमारे विचार से जैनेन्द्र के नारी चरित्रो की मन स्थिति का चित्रण कुंठित काम और शमित आकाक्षा के परिवेष्ठन मे तथा कथित नैतिकता की भाव-भूमि पर आदर्श स्थापना के नितान्त असफल उद्देश्य को लेकर हुआ है। उसके चरित्राकन मे कही भी यह स्पष्ट नही होता कि उन्हे नारी स्वभाव के स्थायी गुणो का वैज्ञानिक ज्ञान है और इसीलिए उन के नारी चरित्रो का मनोवैज्ञानिक विकास, जिनमे मृणाल, सुखदा, सुनीता आदि के नाम लिए जा सकते हैं, एक असाधारण (जो अस्वाभाविक ही है) किन्तु आकर्षक भाव-पीठिका पर हुआ सा लगता है। उनकी साहित्यिक सृष्टियो को थोडा सा और झुक कर देखें, तो लगता है कि 'सैक्स'-प्रसगो मे ही उनकी 'मनोविश्लेषणात्मक'—प्रतिभा को अभिव्यक्ति मिल सकी है। इसी प्रसग मे भगवती चरण वर्मा की 'चित्रलेखा' और 'तीन वर्ष' को भी लिया जा सकता है। यहा भी अन्तर्प्र वृत्तियो का सघर्षात्मक विकास एकागी ही है। इस प्रकार से इन प्रभृति साहित्यकारो द्वारा मन.स्थिति चित्रण का आरम्भ ही किया जा सका है। इसका विकसित और प्रौढ रूप हमें विकास काल मे केवल प्रसाद की कृतियों मे ही देखने को मिलता है और इसीलिए अपने काल में उनकी साहित्यिक श्रेष्ठता और भी सिद्ध हो जाती है।

प्रसाद जी ने व्यक्ति की अन्तर्भावनाओ के विकास के मूल रूप को पहचाना है। वे व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक विकास में शारीरिक और मानसिक गठन को विशेष मानकर चलते है। नारी और पुरुष के शारीरिक गठन और प्रक्रिया मे अन्तर है, अतः उनकी मन स्थिति, उनके सोचने का ढग तथा कार्यकलापो की स्थिति भी भिन्न ही होनी चाहिए। उन्होने नारी के स्थायी गुणों की विषद् व्याख्या प्रस्तुत की है और उसके आधार पर उसकी मनःस्थिति को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यहा समस्त प्रक्रिया एक क्रम से गम्भीर अध्ययन के उपरान्त उपस्थित की गई है। अत वह स्वाभाविक लगती है। उन्होने अपने विभिन्न पात्रों में नारी मन के अन्तर्सघर्ष तथा स्थायी गुणों की स्थिति मानी है। उदाहरण के लिए नारी पुरुष में शक्ति देखना चाहती है। अपनी भविष्य की सुखद कल्पना, उसकी कल्पना का विशेष अश होता है। समर्पण के साथ साथ उसमें आत्म सम्मान की भावना भी उसी मात्रा में होती

है । वह सर्वस्व देकर कुछ लिया भी चाहती है, वह वस्तुओ का, घटनाओ का, बातों का विश्लेषण करती है । अन्तर्संघर्ष की भावना उसमे प्रमुख है—इन सभी का अध्ययन, अनुशीलन और स्पष्टीकरण प्रसाद ने किया है, और क्योकि उनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन स्वाभाविक सहज गुणो की भीत्ति पर स्थित है, इसीलिए चरित्रो का सूक्ष्म, गम्भीर और सही मूल्याकन हो सका है । कही भी अस्वाभाविकता नही लगती । जैसा कि इस युग के दूसरे लेखको मे जहा कुछ असाधारण चरित्रो को अभिव्यक्ति मिली है वहा भी नारी के असमान्य मनोविज्ञान की झाकी प्रस्तुत की गई है । नारी की मन स्थिति की असाधारणता विशेष रूप से प्रेम-प्रसगो मे भी अभिव्यक्त हुई है । ऐसे चरित्र निश्चित रूप से असाधारण है किन्तु अस्वाभाविक नही क्योकि उनके चरित्राकन मे मनोवैज्ञानिक विकास-क्रम की उपेक्षा नही की गई है ।

इसी मनोविश्लेषण के प्रसग मे प्रसाद जी ने नारी के मन की दुर्भावनाओ को भी दृष्टिओझल नही किया है । असत् प्रवृत्तिया जो विशिष्ठ प्रवृत्तियो मे प्रस्फुटन का विकास पाती है, प्रसाद जी की लेखनी से नि सृत हुई है । नारी के कोमल स्वभाव मे कोमलता के स्थान पर कठोरता का निरूपण लेखक के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने की प्रतिभा की पुष्टि करता है । नारी के मन के अन्तर्संघर्ष, महत्वाकाक्षा की तीव्र भावना, वैभव के प्रति ललक—सभी प्रसगो का प्रसाद जी ने सस्पर्श किया है । इसके साथ ही विभिन्न वर्गीय नारी-मनोवैज्ञान का चित्रण, विभिन्न परिस्थितियो तथा सस्कारो के सदर्भ मे भी प्रसाद जी द्वारा सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है ।

इस प्रकार प्रसाद जी ने अपने युग को नवीन दृष्टिकोण और नवीन अनुभूतियां प्रदान की है । सामाजिक पृष्ठभूमि मे प्रचलित साहित्यिक विचार-विधाओ मे उनके नवीन आदश ; सृष्टि और विचार-क्षेत्र की मौलिकता अपना विशेष महत्व रखती है । उनके द्वारा राष्ट्रीय नारी-चरित्रो की योजना का व्यावहारिक रूप गाधी-आन्दोलनो एव सार्वजनिक कार्य-क्षेत्रो मे उनके बाद भी अधिक प्रचलित हुआ है । अन्तर्संघर्ष चित्रण का जो सूत्र-पात प्रसाद जी से हुआ, वही आगे चल कर जैनेन्द्र, यशपाल और इन सब से विषेष 'अज्ञेय' की रचनाओ मे देखने को मिलता है । वास्तव मे प्रसाद जी की रचनाये नव्य-काल के साहित्य की आधार-भूमि के रूप में आकी जानी चाहिए, क्योकि इस प्रकार से उन की कृतियो का मूल्य और महत्व विशेष हो जाता है ।

प्रकरण—१४

नारी-सम्बन्धी आधुनिक भारतीय तथा पाश्चात्य आदर्शों में अन्तर और प्रसाद की तत्सम्बन्धी धारणाएँ

(अ) पाश्चात्य समाज में नारी : २०वीं शती

(ब) पाश्चात्य साहित्य में नारी : २०वीं शती

(स) भारतीय तथा पाश्चात्य आदर्श—अन्तर

(द) प्रसाद की धारणाएँ

पाश्चात्य समाज में नारी [२०वीं शती]

यदि हम सम्पूर्ण विश्व के नारी-स्थिति सम्बन्धी विकास-क्रम को देखें तो पता चलता है कि प्राय सभी देशो मे नारी आन्दोलन १६ वी और २० वी शताब्दी मे ही हुए है। इसी काल मे उन्हे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ है, और वे उसे सुधारने के क्षेत्र मे अग्रसर हुई है। भारतवर्ष मे जिस नारी आन्दोलन का सूत्रपात और विकास हुआ, उसमे पुरुषो का भाग ही अधिक था। किन्तु इसके विपरीत पाश्चात्य नारी आन्दोलन मे नारी पुरुषो की अपेक्षा अग्रगण्य है। उसने स्वय भी अपने अधिकारो की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया है और इसीलिए वह भारतीय नारी से अधिक सफल दिखाई पडती है। वैसे इन आन्दोलनो के आरम्भ होने से पूर्व पाश्चात्य समाज मे भी नारी की वही दयनीय दशा थी, जैसी हम उस काल के भारतवर्ष मे देखते है। पुरुषो के अतिचार, उनके द्वारा निर्धारित किए हुए नियम तथा महिला वर्ग को अपने से हीन समझने का भाव—इन सब ने उसकी स्थिति को यथेष्ट रूप से प्रपीडित कर दिया था। और, जैसे अपने ऊपर लादी गई विषमताओ के विरोध में ही खडी होकर पश्चिमी नारी ने अपने अधिकारो के लिए सघर्ष किया और विजय पाई। लेकिन सभी देशो मे नारी की स्थिति मे विकास नही हुआ। जर्मनी और इटली मे वह २० वी शती मे अपने दुर्भाग्यपूर्ण जीवन से छुटकारा नही पा सकी, और नाजियो तथा फासिस्टो की एकाधिकार राज्य शासन प्रणाली मे उसे अपनी स्थिति को सुधारने का अवसर ही प्राप्त न हो सका।

पश्चिम मे नारी आदोलन का आरम्भ जिसे वहा 'सफरैजिस्ट मूवमेन्ट' की सज्ञा दी गई है, अमेरिका मे होता है। १८४८ मे सबसे पहले इसका आरम्भ न्यूयार्क से हुआ। इस आन्दोलन के द्वारा नारी ने अपने राजनीतिक अधिकारो की माँग की। २०वी शती मे इस आन्दोलन का विकास हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के समय तक अमरीकी वातावरण में इसने गम्भीर रूप धारण कर लिया था और विशिष्ट राजनीतिज्ञों का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट होने लगा था। १६१५ के वैधानिक सुधारो में इस विषय को फिर से उठाया गया। किन्तु यह प्रयास असफल रहा। तब महि-

वादियों ने इस प्रश्न को उसी वर्ष फिर से उपस्थित करने की याचना की। इसी समय नारी आन्दोलन का चरम विकास हुआ। १९१५ में इस आन्दोलन में भाग लेने वाली सदस्या-महिलाओं की संख्या केवल न्यूयार्क में ही ५ लाख थी और इतनी ही देश के शेष भाग में भी। अब लगभग ८०१५००० वयस्क महिलाओं ने मताधिकार की माग की, और उन्हें सफलता मिली। इसके साथ-साथ मिशिगन, साउथ डाउटा तथा ओकलाहोमा में भी मताधिकार प्रदान किए गए। १९१७ में आरकन्सस और १९१८ में टैक्सास में नारी को मताधिकार की प्राप्ति हुई। १९१६ में उन्होंने राष्ट्रपति के चुनाव में भी भाग लिया। २६ अगस्त १९२० में अमेरिका के संघात्मक संविधान में सुधार करके नारी के मताधिकार को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई[1]।

इस नारी आन्दोलन का आविर्भाव और विकास ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड में १८६६ से होता है। उसके बाद बड़े बड़े सामाजिक एवं राजनैतिक नेताओं और शिक्षा-शास्त्रियों द्वारा इसे हमेशा ही स्वीकृति मिलती गई है। २० वर्ष के उपरान्त १८८६ से इस आन्दोलन में तीव्रता आई। १९१८ में उन्हें कुछ अनिवार्यताओं के साथ मत देने का अधिकार मिला। उन में से एक शिक्षा तथा आयु सम्बन्धी अनिवार्यता ही थी, कि वह स्नातिका हो तथा कम से कम ३० वर्ष की आयु की हो। किन्तु २ जुलाई १९२८ के संवैधानिक सुधार द्वारा आयु तथा शिक्षा सीमा सम्बन्धी प्रतिबन्ध हटा लिए गए और उसे पुरुष के समान ही मत देने का अधिकार प्राप्त हो गया। इंग्लैंड के साथ साथ उसके अधीन दूसरे उपनिवेशों में भी (भारत तथा दक्षिणी अफरीका को छोड़कर) महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया गया।

कनाडा में सफरेजिस्ट आन्दोलन को वहां की दो मुख्य संस्थाओं—'नेशनल सफरेज् एसोसियेशन' तथा 'नेशनल कौंसिल आफ वोमन' द्वारा प्रोत्साहित किया गया। वहाँ १९०५ में पहली बार विधान सभा के सम्मुख नारी के मताधिकार के प्रश्न को उपस्थित किया गया। जोहन बिल ने इस दिशा में १९०७ तथा १९०८ में प्रयत्न किए। १९०९ में नारी मताधिकार सम्बन्धी बिल को फिर उपस्थित किया गया, लेकिन सफलता न मिली। अब तक लोग नारी मताधिकार की बात को लेकर गम्भीरता से सोचने लगे थे। इसी वर्ष 'टोरोंटो' में 'अन्तरराष्ट्रीय महिला संघ' की चौथी सभा हुई, जिसमें नारी के मताधिकारों को लेकर ही सबसे अधिक विचार विनिमय हुआ और १९१२ में इसी दिशा में फिर चेष्टा की गई[2]। परिणाम स्वरूप १९११ की २६ मार्च को श्री हर्स्ट ने नारी के मताधिकार सम्बन्धी विधेयक को

१—द एनसाइक्लोपीडिया अमेरिका, २९वां भाग, पृष्ठ ४५४।

२—क्लीवरडन : द वीमन सफरेज मूवमेन्ट इन कनाडा, पृ० ३१।

विधान सभा मे उपस्थित किया तथा उनके परिश्रम से चार अप्रैल १९१९ को यह अधिनियम बन गया । इसके अनुसार ओन्टेरियो मे नारी को प्रातीय तथा नागरी चुनावो मे भाग लेने का अवसर मिला । प्रेरिल प्रान्त मे इस आन्दोलन का आरम्भ १९१२ से हुआ तथा १९१४ की ससद-सभा मे तत्सम्बन्धी पहली याचिका उपस्थित की गई । इसी प्रकार १८८० के लगभग ब्रिटिश कोलम्बिया मे भी नारी मताधिकार सम्बन्धी आन्दोलन का आरम्भ हुआ तथा १९३१ मे नारी को पुरुष के समान ही सभी प्रकार के अधिकार प्रदान कर दिए गए । परन्तु अशिक्षा तथा राजनीतिक एव सामाजिक पृष्ठ भूमि के अभाव मे कनाडा की महिलाये अपने अधिकारो का समुचित प्रयोग नही कर पा रही हैं और इसीलिए सामाजिक जीवन मे उन्हे अभी यथेष्ठ व्यावहारिक स्वीकृति नही मिल सकी है[1] ।

इन मुख्य देशो के साथ साथ दूसरे देशो मे भी इस आन्दोलन का प्रभाव यथेष्ट रूप से पडा । १९०६ में फिन्लैड की सरकार ने कुछ अनिवार्यताओ के साथ महिला मताधिकार का समर्थन किया । पुर्तगाली महिलाओ को यह अधिकार १९४५ में मिला । चीन और जापान को १९४६ मे तथा बेल्जियम को १९५० में । भारतवर्ष, बर्मा और फिलिपाइन मे नारी को पुरुष की भाँति समान अधिकारो की स्वीकृति १९४७ मे ही प्राप्त हुई । फ्रान्स और स्वीट्जरलैड नारी आन्दोलनो के इस विकास से प्रभावित नहीं हुए । फ्रान्स मे दूसरे महायुद्ध के पश्चात् ही जनरल डी गोल ने प्रथम निर्वाचन के अवसर पर नारी को पुरुष के समान ही मताधिकार प्रदान किया । इसी समय इटली की महिलाओं को भी यह अधिकार प्राप्त हुआ । इन सभी देशों में इस अधिकार का उपयोग किया गया और नारी अपनी वैयक्तिकता को प्राथमिकता और महत्व देती हुई सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों मे अवतीर्ण होने लगी । इस प्रकार से नारी आन्दोलन के इतिहास मे 'सफरेजिस्ट मूवमेन्ट' एक महत्वपूर्ण घटना है जिसमें पश्चिमी नारी का जीर्ण जर्जर पुरातन विश्वासो, सकीर्ण मान्यताओ तथा प्रपीडन से उद्धार कर उसे सामाजिक स्वीकृति और वैयक्तिक महत्व प्राप्ति के राजपथ पर ला खडा कर दिया है । इस आन्दोलन की सफलता के कारण ही पश्चिमी देशो के आधुनिक युग के नारी आदर्शों मे जो परिवर्तन हुए उन्होने वहा के नारी समाज को प्रबुद्ध वातावरण और जागरुक पृष्ठभूमि प्रदान की है, जो उन को भारतीय नारी की स्थिति और भारतीय समाज द्वारा मान्य नारी आदर्शों से पृथक कर देती है । भले ही इन दो परस्पर विच्छिन्न समाजो के नारी आदर्शों मे कोई मौलिक अन्तर न दिखाई पड़े किन्तु व्यावहारिक भाव भूमि पर भारतीय नारी तथा पश्चिमी नारी सम्बन्धी मान्यताओ एव वस्तु स्थिति के मध्य एक स्पष्ट रेखा खीची जा सकती है ।

\+ + +

१—क्लेवरडन . द वीमन सफरेज मूवमेट इन कनाडा, पृष्ठ २७५ ।

२० वी शती मे पाश्चात्य नारी अपने पारिवारिक क्षेत्र से बाहर निकल कर औद्योगिक तथा व्यावसायिक क्षेत्रो मे अवतीर्ण हुई है। सामाजिक जीवन की कुछ अपरिहार्य आवश्यकताओ ने, विशेष रूप से आर्थिक विषमताओ ने उन्हे पुरुषके साथ सभी स्थानो पर प्रतिस्पर्धा के लिए विवश किया है। अपने दमित व्यक्तित्व के उत्थान की प्रेरणा लेकर, स्वतन्त्र प्रेम और मताधिकार का अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से योरूपीय देशो मे नारी आन्दोलन का प्रारभ हुआ है। अमेरिका इस दिशा मे अग्रगण्य रहा है। गृह-युद्ध काल मे इस देश की महिलाओं को अपनी शक्ति तथा क्षमता दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होने अध्यापक, नर्स, क्लर्क आदि के रूप में पुरुषो के समान अपनी योग्यता का परिचय दिया तथा बडी तेजी के साथ प्रगति के पथ पर अग्रसर हुई। अब वे 'स्टोव' से चल कर टाइपराइटर तक, आगे बढ आई थी। १८७० में जहा केवल ७ अमरीकी महिलाये सेक्रेटरी के रूप मे कार्य करती थी, वहा १९५० मे १०००, ००० महिलाये इसी रूप मे सेवा-रत थी। यह भारी सख्या केवल अमेरिका के बढते हुए व्यवसाय और उद्योगो की ही कल्पना नही देती वरन लैगिक मान्यताओं में क्रान्ति की अभिव्यक्ति करती है[1]। इस नवीन शती में अमेरीकी नारी के जीवन मे कुछ महत्वपूर्ण दिशाओ मे परिवर्तन हुआ है। सर्व प्रथम वैज्ञानिक आविष्कार तथा बौद्धिक विकास के परिणाम स्वरूप उसके सामाजिक एव गार्हस्थ्य स्वरूप को नवीन भाव-भूमि प्राप्त हुई। औद्योगिक क्षेत्र की सेवाओ मे उसके कार्य और क्षमता को स्वीकृति मिली। नारी सस्थाओं का विकास हुआ तथा पुरानी सस्थाओ की सदस्य सख्या मे भारी उन्नति हुई। इस काल में नारी वर्ग ने अपने अधिकार क्षेत्र को बढाने, अपने लिए अधिक सुविधाये प्राप्त करने, धार्मिक, नैतिक, सामाजिक एव सास्कृतिक सुधारो का विकास करने तथा सबसे विशेष सामाजिक समता की भावना को अधिक से अधिक विकसित करने की दिशा मे प्रयत्न किए। नारी-सस्थाओ के अतिरिक्त इन महिलाओ ने सामान्य सस्थाओं मे भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। इन सस्थाओ का सम्बन्ध विशेष रूप से कल-कारखानो तथा सामाजिक विकास के आदर्शो से था। महिला वर्ग के इस विकास कार्य मे कुछ अनुदार पथियो ने नारी अधिकारो का विरोध भी किया है। उदाहरण के लिए कारडिनल गिबन्स ने 'लेडीज होम जनरल' (जनवरी १९०२) में एक स्थान पर कहा है—

'जैसा कि मैंने पहिले भी कहा है कि नारी के अधिकार तथा नारी का नेतृत्व उसकी उन्नति की दिशा में उस के अपने सबसे बड़े शत्रु हैं'।'

१—अर्नेस्ट आर. ग्रोव्ज़ (द अमेरिकन वीमन, पृष्ठ ३२८ पर उद्धृत)।

परन्तु नारी की प्रगति इस प्रकार के अवरोधो एव आलोचना से प्रभावित न होकर दिन-प्रतिदिन तीव्रतर होती गई और प्रथम विश्व युद्ध तक उसकी स्थिति मे बडा अन्तर उत्पन्न हो गया। उसे औद्योगिक क्षेत्र में मान्यता मिली। सार्वजनिक सेवाओ मे उसे अवसर मिलने लगे। नवीन विचारो एव आदर्शों के आलोक मे उसकी परम्परागत हीन भावनाए विलुप्त हो गई तथा सामाजिक क्रान्ति ने उसकी वैयक्तिकता को विकास का अवसर प्रदान किया। अब उसने सभी सेवाओ मे पुरुष के समान ही अपनी महत्ता और आवश्यकता को सिद्ध कर दिया और थोडे ही समय मे अमेरिकी महिलाये सामाजिक जीवन का एक विशिष्ठ अग बन गई। अपने व्यक्तित्व की मान-प्रतिष्ठा के उपरात वे भिन्न-भिन्न सस्थाओ मे दिखाई पडने लगी। सेवा-कार्य की ओर वे प्रवृत्त हुई। इसके विषय मे कुछ कारण दिये जा सकते है। प्रथम विश्व-युद्ध मे अमरीकी जीवन पर आर्थिक दबाव इतना अधिक आ पडा था कि महिला को अपने पुरुष साथी की सहायता करने तथा घर के खर्च को चलाने के लिए नौकरी करनी ही पडती थी और अब भी उसकी मृत्यु अथवा सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने के परिणाम-स्वरूप अपने बच्चो की देख-रेख अथवा गृहस्थी के भार को सम्भालने के लिये भी तत्पर रहना पडता है। दूसरे, अविवाहित महिलाओ के सम्मुख भी नौकरी करने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नही है, क्योकि लौकिक जीवन से आकर्षित और प्रभावित वे वैभवपूर्ण साथी पाने के लिए अपने सामाजिक स्तर को उच्चतर करने का प्रयत्न करती है और उसके लिए धनोपार्जन के साधनो की ओर उन्मुख होती हैं। कही कही पुत्री को अपने माता-पिता की सेवा के लिये भी धनोपार्जन करना पडता है। फिर भी पुरुष की अपेक्षा उन्हे सेवा के कम ही अवसर मिलते है। पुरुष के समान कार्य करने पर उन्हे उसके लिए कम वेतन मिलता है। समाज मे पुरुष का सम्मान आज भी अधिक है। परम्पराओ से चालित जीवन-धारा के कारण आज भी पुरुष उनकी अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।

सामाजिक और आर्थिक स्वीकृति के साथ-साथ अमरीकी नारी की प्रेम और विवाह के क्षेत्र मे भी कम उपलब्धि नही है। वह अपने वैयक्तिक महत्व को अधिक मान्य मानकर चलती है। वह 'सेक्स' का उदार अर्थ ग्रहण करती है तथा अपने लिए भी उन्ही अधिकारो की योजना करती है जो पुरुष ने अपने लिए सुरक्षित कर लिये हैं। नारी और पुरुष के परस्पर सेक्स-सम्बन्धो मे पूर्वकालीन सीमा रेखा, सयम तथा सकीर्णता—जो कुछ भी कहिये, अब अमरीकी नारी मे लक्षित नही होती। धर्म के क्षेत्र मे उसकी प्रगति को देखकर यह विश्वास ही नही होता कि वे कभी पुरुष वर्ग से प्रताडित रही होगी। धार्मिक नेतृत्व का अधिकार पुरुष के समान ही उनको भी प्राप्त है। जिसका वह समुचित उपयोग कर रही है। इस प्रकार सामाजिक

जीवन से लेकर राजनीतिक जीवन के छोर तक अमरीकी नारी सभी क्षेत्रों मे पुरुष की समानता कर रही है। जीवन की नवीन परिस्थितियो मे वह पुरुष की सहयोगिनी है और सामाजिक आदर्शों की रचना मे उसका अपना विशेष महत्त्व है। परन्तु इतनी उपलब्धियो के बाद भी अमरीकी नारी अन्तर्संघर्ष से मुक्ति नही पा गई है। वह अपने नवीन नैतिक वातावरण के अनुकूल नही हो पा रही है। अभी कुछ समय पूर्व अमेरिका मे एक जाच हुई थी, जिसमे पूछा गया था कि स्त्री पुरुष अगले जन्म मे क्या बनना चाहेगे। तब ९१ ५ प्रतिशत पुरुषो ने पुरुष ही बनने की इच्छा प्रकट की थी[1]। अमरीका की विशिष्ठ समाज शास्त्री मार्गरेट मीड का कहना है कि अमरीकी महिलाओ का चतुर्थांश अपने नारीत्व के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न हुए अन्तर्संघर्षों से परेशान है तथा उनमे एक नैराश्यपूर्ण भाव का विस्तार हो रहा है और सबसे विशेष यह कि वह किसी भी स्थिति से सन्तुष्ट नही है। घर से बाहर सार्वजनिक क्षेत्र मे कार्य-रत नारी अपने एकाकी क्षण मे यह सोचती हुई प्रतीत होती है, कि यह जीवन अपना कर कही वह अपने पति तथा बच्चो के प्रति अन्याय तो नही कर रही है, दूसरी ओर घर के भीतर रहने वाली महिला के मन मे कई बार यह विचार उठता है—'मैं ही क्यो हमेशा इन फर्शों को साफ करती रहू, क्यो न सामाजिक जीवन मे अपने योग्य कार्य क्षेत्र चुनू।' इस प्रकार दोनो ही प्रकार के नारी-वर्ग अपनी-अपनी स्थिति से असन्तुष्ट है[2] और सामजस्यपूर्ण स्थिति की खोज निकालने के लिए मानसिक संघर्षों से प्रपीडित हैं तथा सेक्स प्रसग मे भी, वे कोई स्वस्थ दृष्टिकोण नही अपना सकी है। सेक्स की स्वतन्त्रता का अर्थ उन्होने वैभव और विलास की सुखपूर्ण स्थिति माना था। किन्तु नीति और व्यवहार में अन्तर होना ही है। अपनी मान्यताओं के व्यावहारिक रूप से जैसे वे चिन्तित हो उठी हैं और जैसे उनकी स्थिति के भविष्य की सुरक्षा किसी सकट मे पड गई है।

अमरीका की भाति इग्लैंड मे नारी जाति इन्ही समानान्तर परिस्थितियो का सामना कर रही है। वहाँ नारी आदोलन ने नारी मे जिस वैयक्तिकता का अनुष्ठान किया है, उससे वहाँ के समाज में एक विच्छिन्न भावना का विस्तार हुआ है। जिसके कारण सामजस्यपूर्ण स्थिति के लिए अनुकूल वातावरण नहीं बन पा रहा है। औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व नारी का स्थान परिवार था। वह गृह-उद्योगों मे पुरुष का हाथ बंटाती थी। उसका सम्मान था। लेकिन औद्योगिक क्रान्ति के बाद, विस्तृत समाज में पदार्पण करने से उसके सम्मान की हानि ही हुई है। वर्तमान युग मे उसकी आवश्यकता

१—जैनसन : द रिवोल्ट आफ अमेरिकन वीमन।

२—लन्डबर्ग तथा फोर्नहैम : माडर्न वीमन—द लास्ट सेक्स, पृ० ११७।

कम हो गई है। पहले बच्चो की शिक्षा का भार मा पर ही होता था। अब उसके बाहर कार्य-रत रहने से—बच्चो की देखभाल करने के परिणाम-स्वरूप उसे जो सम्मान मिलता था - वह समाप्त-प्राय हो गया है[1]। पुरुष ने घर के बाहर अपने मनोविनोद के साधनो को एकत्र कर लिया है। नया समाज महिला के बिना आ रहा है। औद्योगिक समाज पुरुषो का समाज है और नारी इस क्षेत्र मे मात्र प्रतिद्वन्द्विनी के रूप मे अवतरित हुई है। पुरुष के लिए घर एक अनिवार्यता है और घर मे गृहिणी का होना आवश्यक है। गृहिणी के अभाव मे पुरुष की घर पर आस्था नहीं रह जाती और महिला गृहिणी के स्वरूप को त्याग कर सुखी और निश्चिन्त नही हो सकती। इसीलिए आज उसके जीवन मे इतनी अस्थिरता और आकुलता व्याप्त है[2]।

इग्लैंड मे नारी-आदोलन के विकास ने उसकी सामाजिक असमानता को समाप्त कर दिया है। उसमे शिक्षा का प्रचुर प्रचार हुआ है तथा वैधानिक क्षेत्र में उन्हे पुरुष के समान ही अधिकार प्राप्त हो गये हैं। नीति और पवित्रता के क्षेत्र में उसका कहना है—'यह मेरा अपना दृष्टिकोण है। चाहे मैं किसी भी प्रकार की जीवन-निर्वाह की विधि को अपनाऊँ।' इस प्रकार उसमे ईश्वर, समाज, भावी पति तथा यहा तक कि अपने प्रति भी किसी तरह की ईमानदारी नही रह गई है। विवाह में आत्मिक भावना की प्रमुखता न होकर शारीरिक आकर्षण का भाव अधिक है। सन्तानोत्पत्ति के लिए विवाह-प्रथा के जिस आदर्श का आरम्भ गत युगों में हुआ था, अब उसकी मान्यता शिथिल पड गई है। विवाह एक सामान्य-सी बात, परस्पर समझौते की बात मात्र रह गई है और उसी प्रमाण मे विच्छेद भी बहुत सामान्य हो गया है। सैक्स की स्वतन्त्रता ने उसकी नीति-सम्बन्धी मान्यताओं को बहुत नीचे तक ला दिया है। यहाँ भी उसने पुरुष के समान ही स्वतन्त्र बने रहने की भावना को महत्व प्रदान किया है किन्तु इस अधिकार से उसकी अपनी ही अधिक क्षति हुई है। यह वास्तव मे करुणाजनक स्थिति है, क्योकि शारीरिक पावित्र्य तथा पतिव्रत हमेशा से सास्कृतिक उन्नयन की पृष्ठभूमि के रूप में महत्त्वपूर्ण रहे है[3]।

इस शती मे नारी सम्बन्धी जिस समाजवादी दृष्टिकोण की स्थापना रूस में हुई है, वह अमरीका तथा इग्लैंड के आदर्शों से कुछ भिन्न बैठती है। १९वी शताब्दी की मान्यता के अनुसार रूस की नारी जैसे सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही उत्पन्न हुई है। अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाली नारी को सरकार की ओर से सम्मानित

१—लन्डबर्ग तथा फोर्नहम : माडर्न वीमन—द लास्ट सेक्स, पृ० १९१।

२—जान फिट्ज्सीमन्स : वीमन टु डे।

३—सर ए. अब्राहम : वीमन-मैन्स ईक्वल, पृ० १११।

उपाधि और पुरस्कार दिये जाते थे और उसकी स्वीकृति मात्र सन्तानोत्पत्ति पर ही निर्भर करती थी। इस काल में विवाह करना तथा सम्बन्ध-विच्छेद करना एक बड़ी सामान्य सी बात थी। किसान लोग कार्य की अधिकता के कारण किसी महिला से विवाह कर लिया करते थे और कार्य के पूर्ण हो जाने पर सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते थे[1]। वेश्यावृत्ति मूलतः आर्थिक कारणों से ही होती थी। महिलाओं की रक्षा राज्य द्वारा की जाती थी। परन्तु २०वी शती मे औद्योगिक विकास के फलस्वरूप नारी को पुरुष के साथ समान रूप से प्रतिष्ठित करने के क्षेत्र मे प्रयत्न किया गया। १९१७ की क्रांति मे महिलाओ द्वारा किया गया योग महत्वपूर्ण है। अब उनके लिए पुरुषो के समान ही सभी सुविधायें उपलब्ध हो गई है। यहाँ की नारी मे प्रतिस्पर्द्धा की भावना नहीं है। स्त्री और पुरुष दोनो दिन मे बाहर कार्य करते हैं। यदि सोवियत नारी स्वतन्त्र है, तो भी पति के प्रति उसका प्रेम सुरक्षित है। वह प्रेम और विवाह के क्षेत्र मे स्वतन्त्र है। यह उसका व्यक्तिगत मामला है। विवाह मे दोनो पक्षों के स्वतन्त्र होने से बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित है। किन्तु एक विवाह का आदर्श राज्य भर में माना जाता है। निकट सम्बन्धियो के मध्य विवाह-सम्बन्ध स्थापित नहीं किए जाते। विच्छेद भी बड़ी सामान्य बात है। किसी एक पक्ष की इच्छा से विच्छेद हो सकता है। समाजवादी आदर्शों की प्रतिष्ठा के परिणाम स्वरूप सोवियत नारी का जागृत रूप दूसरे देशों की नारियों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ और सुनिश्चित है। अमरीका तथा इंग्लैंड के महिला वर्ग की भाँति इस देश की नारी को मानसिक संघर्ष का उतना सामना नही करना पड़ता। यह वैधानिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में स्वतन्त्रता का लाभ अर्जन करती है[2]। सोवियत रूस के श्रमिक-संसार में काम करने वाली महिलाओ को मातृत्व सुविधायें प्रदान की गई है। उन के कार्य का समय निश्चित है। गर्भवती महिलाओ से रात के समय कल-कारखानो मे काम नहीं लिया जाता, तथा उनके स्वास्थ्य और भावी बच्चे के विषय मे पूर्ण सावधानी बरती जाती है। अब बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या मे गर्भ-निरोध प्रोत्साहित किया गया है। विशेष परिस्थितियों में गर्भपात के लिए भी प्रमाण पत्र दिया जाता है। मातृत्व का अब भी आदर होता है। बच्चे जीवन के पुष्प समझे जाते हैं तथा उनकी रक्षा का पूर्ण ध्यान रखा जाता है[3]। इस तरह से सोवियत महिला अधिक स्वस्थ भावभूमि

१—हैरी बेस्ट : द सोवियट स्टेट एण्ड इट्स इन्सपेक्शन।

२—हैरी बेस्ट : द सोवियट स्टेट एण्ड इट्स इन्सपेक्शन, पृष्ठ २६४।

३—फेनिवा हाली—वीमन इन सोवियट रशिया।

पर अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करती है। वह आज जीवन की नवीन परिस्थितियो के मध्य से होती हुई अपनी वैयक्तिक महत्ता की स्थापना मे प्रयत्नशील है।

इसी प्रकार से अन्य पश्चिमी देशो मे भी २०वी शती की नारी अपनी महत्ता-स्थापना की दिशा मे विशेष रूप से सतर्क है। फ्रान्स मे सेक्स सम्बन्धी स्वतन्त्रता ने बडी उम्र तक विवाह न होने की समस्या खडी कर दी है। वहा सभी क्षेत्रो मे नारी और पुरुष के अधिकार व्यक्तिगत भूमिका पर अभिव्यक्त होते हैं। वहा की नारी के लिए स्वतन्त्रता सर्व-प्रमुख हे। सार्वजनिक जीवन मे उन्हे पुरुष के समान स्वीकृति मिली हुई है। वे सुशिक्षित है तथा अपने अधिकारो तथा हितो को सोच सकने मे समर्थ है। परन्तु जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण लौकिक अधिक है अतः लौकिक सुखो का अधिक से अधिक भोग उनका लक्ष्य है। अब से बहुत पहले १७वीं शताब्दी मे भी एक सभ्रान्त कुल की महिला अपने स्तर से निम्न व्यक्ति से विवाह नही करती थी क्योकि ऐसा करने मे उसका पद या उपाधि समाप्त हो जाती थी। उस समय भी सामाजिक सम्मान की प्राप्ति के लिए जैसे उपाधि ही विशिष्ठ वस्तु थी[1]। इस प्रकार आरम्भ से ही फ्रास की नारी अपनी वैयक्तिकता मे महत्वपूर्ण रही है और समाज मे उसका एक विशिष्ठ स्थान रहा है।

दूसरे विश्व युद्ध से पूर्व तक पोलैण्ड की नारी अशिक्षा, उपेक्षा और हीन भावना से त्रस्त रही है। यह ठीक है कि इस देश मे नारी के अधिकारो की चर्चा को सब देशों से अधिक सहानुभूति प्राप्त हुई है और इस देश के लेखको, राजनीतिज्ञो तथा समाज शास्त्रियो ने नारीत्व की मान रक्षा के लिए आरम्भ से ही कठिन प्रयत्न किए है। परन्तु नाजियो के प्रभाव मे रहते हुए यहा के नारी वर्ग का उत्थान सम्भव नही था। १९४५ म देश के स्वतन्त्र होते ही नारी को सबसे पहले उसका महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया। आज देश की प्रत्येक योजना में वह पुरुष के समान अधिकारिणी है। उसको अपने 'स्व' के विकास के लिए समान अवसर प्राप्त हैं। वे अपना मत दे सकती है, किसी वस्तु पर निर्णय ले सकती है तथा किसी भी योजना को कार्यान्वित करने के लिए अग्रसर हो सकती हैं। पोलिश गणतन्त्र ने संवैधानिक रूप मे वहा की नारी को सार्वजनिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में समान अवसर प्रदान किए हैं। उसे समान कार्य के लिए समान वेतन मिलता है। उसकी सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा, सम्मान, सज्जा तथा विश्राम आदि में सविधान ने उसकी समानता घोषित कर दी है[2]। इससे भी आगे माता के

१—ह्यूगो पी. थीम : वीमन आफ माडर्न फ्रास, पृष्ठ ७५।

२—द वीमन इन पोलैण्ड, पृष्ठ ८।

रूप में उसकी देखभाल का विशेष ध्यान रखा जाता है। मा बनने के बाद उसको सवेतन अवकाश मिलता है। मा बनने के बाद मातृ-गृह उसकी सेवा के लिए खुले हुए हैं तथा उसके बच्चो की शिक्षा के लिए नर्सरी शालाओं की स्थापना की गई है। उसे निर्वाचन के सभी अधिकार प्राप्त है। विवाह तथा कुटुम्ब की सुरक्षा पोलिश सरकार द्वारा होती है। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त पोलिश नारी में काम करने की, सार्वजनिक योजनाओ मे भाग लेने की तथा विश्व को नये दृष्टिकोण से देखने की भावना का विकास हो रहा है। पोलिश गणतन्त्र के संविधान ने वहा की नारी को कार्य, शिक्षा तथा उन्नति करने के जिन अस्त्रो को प्रदान किया है, उनमे वह वास्तविक अर्थों मे लाभान्वित हुई है, इसमें कोई सन्देह नही। इसीलिए उसका कार्य क्षेत्र आज ग्राम्य क्षेत्रो से लेकर देश की राजनीति तक है[1]। प्रगति का विस्तृत पथ उसके लिए खुला है और वे उस पर आत्मविश्वास के साथ तेजी से अग्रसर हो रही है।

उपर्युक्त देशो के अतिरिक्त फासिस्ट इटली और नाजी जर्मनी मे नारी स्थिति के दयनीय वर्णन मिलते है। मुसोलिनी के नतृत्व मे फासिस्ट शासन के अपने सिद्धान्त रक्तपात और भीषणता की पृष्ठ भूमि पर आधारित थे, जिनमे सर्व शक्ति सम्पन्नता का आदर्श ही सम्मानित था और नारी पुरुष से बहुत निम्न स्तर पर फेंक दी गई थी। फासिस्ट शासन अधिनायकवाद की घोषणा करता है। अतः व्यक्ति की परस्पर समानता पर विश्वास नही करता। वहां व्यक्ति का अस्तित्व राज्य की कृपा पर निर्भर है। व्यक्ति राज्य के लिए है, राज्य व्यक्ति के लिए नहीं है। व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग केवल राज्य की कृपा द्वारा ही कर सकता है। तर्क और बुद्धि से विचार विनिमय करने की बात फासिस्ट सिद्धान्त के प्रतिकूल है। नायक की आज्ञा ही सर्वश्रेष्ठ और इसीलिए सर्वमान्य है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद इटली में इसी अधिनायकवाद का आविर्भाव हुआ और ऐसी शासन प्रणाली के विकास मे नारी की स्थिति उन्नति और प्रगति के अवकाश न पा सकी। जिस शासन प्रणाली मे पुरुष स्वय दयनीय हो, जहा उसकी इच्छा का, उसकी प्रतिभा का कोई मूल्य न हो, वहां नारी किस प्रकार उन्नति कर सकती है। फासिस्ट शासन की नारी केवल सन्तान उत्पन्न करने के योग्य ठहराई गई। क्योंकि युद्ध भूमि में वीरों की आवश्यकता होती थी और इसीलिए वहा नारी का अधिक से अधिक उपभोग संतानोत्पत्ति के लिए ही ठहराया गया। किन्तु मुसोलिनी के पतन के उपरान्त अब जर्मनी नये विश्वासो और आदर्शों का विकास कर, आगे बढ़ रहा है और उसका नारी वर्ग अपनी प्रतिभा का कौशल्य दिखा सकने में समर्थ

१—द वीमन इन पोलेण्ड, पृष्ठ २१-२२

होकर, अब सभी क्षेत्रो मे पुरुष वर्ग का सहयोगी बन गया है। सभी स्थानों मे उसे स्वीकृति प्रदान की गई है और वह सभ्यता के विकास के नये चरणो की खोज मे निरन्तर सलग्न है।

द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व हिटलर के अभ्युदय-काल मे जर्मनी की भी कुछ ऐसी ही स्थिति थी। इस देश मे अधिनायक वादी शासन प्रणाली का विकास व्यक्ति के अधिकारो के ह्रास की कहानी प्रस्तुत करता है। फासिस्ट इटली की भाति नाजी जर्मनी मे भी इसी 'हिरोइज्म' की आदर्श स्थापना के कारण व्यक्ति का मूल्य बहुत कम हो गया। केवल युद्ध भूमि के रक्त-रजित प्रागण मे ही उसके पुरुष होने का कौशल देखा जा सकता था। परन्तु जर्मनी की नारी प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व से ही सार्वजनिक कार्यों मे पुरुष का सहयोग देती रही थी। उसने कभी भी अपने पुरुष को धोखा नही दिया[1]। पुरुष का सहयोग देने के साथ-साथ उसकी काम करने की अयोग्यता के समय उसने गृहस्थी का भार भी चलाया। मिलों, फैक्ट्रियो, रेलवे कार्यालयो, शिक्षण सस्थाओ, बसो तथा दुकानो—सभी जगह उसने कार्य किया। १९१६ मे प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार महिलाओ की बहुत बडी सख्या रात्रि मे बारह घटे काम करती थी तथा १००, ००० महिलाये रेलवे कर्मचारी थी। यह उन की प्रकृति के प्रतिकूल कार्य था। परन्तु प्रथम विश्व युद्ध मे जर्मनी की पराजय ने जर्मन महिलाओ को निराश्रय कर दिया। वे अब बिना पति, बिना प्रिय तथा बिना पुत्र के रह गईं। ककाल, अपाहिज, भग्न अगी, उपेक्षित पुरुषों मे समस्त देश भर गया। तब भी जर्मन महिलाओं ने उत्साह से काम लिया। युद्ध-समाप्ति के बाद 'वीमन-गणतन्त्र' की स्थापना हुई। इसके द्वारा नारी के मातृत्व पद की रक्षा के लिए नियम बनाये गये। इसी समय उसे न्यायाधीश का पद भी प्रदान किया गया। परन्तु नाजी शासन प्रणाली मे नारी के महत्व और सम्मान की उपेक्षा की गई। हिटलर ने १९३३ मे कहा था—'मैं नारी द्वारा अपराध किए जाने को बुरा नहीं मानता, लेकिन उसे किसी पद पर प्रतिष्ठित हुए नही देख सकता हू[2]।' उसने १९३२ में यह भी कहा कि नारी परिवार की अभिभावक है और जो महिला देश के लिए अपने बच्चो का दान कर रही है, वह वास्तव मे सम्माननीय है[3]। इस काल के विचारको ने सभी स्थानो पर यही कहा है कि 'पुरुष आविष्कार, खोज, नवीन अनुष्ठानो तथा रचनात्मक कार्यों के क्षेत्र मे नारी से अधिक महत्वपूर्ण है और नारी

१—वीमन इन नाजी जर्मनी १९४३ में प्रकाशित।

२—वीमन इन नाजी जर्मनी, पृष्ठ २०।

३—वही, पृष्ठ २६।

का कार्य-क्षेत्र केवल रक्त और जाति की सुरक्षा का निर्वाह करते रहना है[1]। इस काल के समाज शास्त्रियों का यह भी विश्वास रहा है कि महिला को राजनीतिक अधिकार देना युग-पतन का आह्वान करना है। यहाँ की नारी-स्थिति में एक बात विशेष रूप से दृष्टव्य है कि प्रेम शब्द यहा के नारी वर्ग में उन अर्थों में अज्ञात और अव्यक्त है जिन अर्थों मे इसका प्रयोग फ्रास, अमरीका तथा इंग्लैंड में होता है। अलफ्रेड रोजेनबर्ग—नाजीवाद का प्रवर्तक—लिखता है कि अमरीकी राष्ट्र के सास्कृतिक पतन में ही वहा के महिला समाज को सभी क्षेत्रों में प्रमुख स्थान प्रदान किया है[2]।

परन्तु नाज़ीवाद के पतन के पश्चात् अब जर्मन-नारी फिर से अपनी सम्मान-पूर्ण पूर्व स्थिति की दिशा में अग्रसर हो रही है, आज उसे, फिर सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है और वह राष्ट्र निर्माण के हित कार्य में पुरुष के समान अपना सहयोग प्रदान कर रही है।

पाश्चात्य साहित्य मे नारी [२०वी शती]

आधुनिक युग मे पश्चिमी समाज की महिला-उत्क्रान्ति ने वहाँ के साहित्यिक जीवन को यथेष्ट रूप से प्रभावित किया है। जैसे जैसे पाश्चात्य महिला वर्ग सामाजिक स्वीकृति एवं समान सुविधाएं प्राप्त करने की दिशा मे अग्रसर होता गया, वैसे ही उसे साहित्यकारो द्वारा भी अनुमोदन और प्रोत्साहन की उपलब्धि होती गई। १९वीं शती की नारी पारिवारिक सीमाओं में आबद्ध होकर पुरुष वर्ग की क्रूर उपेक्षात्मक दुर्व्यवहार से पीडित हो चुकी थी और उसके मन की घुटन जैसे विद्रोह करने के लिए किसी अवसर की प्रतीक्षा मे थी। सामाजिक क्षेत्र मे उसकी इस विद्रोहात्मक भावना का विस्फोट 'सफरेजिस्ट मूवमेन्ट' द्वारा अभिव्यक्त हो रहा था और देश के समाज शास्त्री, शिक्षा शास्त्री, तथा चिन्तनशील विचारक नारी अधिकारो के विषय मे रुचि लेने लगे थे। इधर साहित्यिक क्षेत्र में भी नारी की मुक्ति के प्रश्न पर विचार प्रकट होने लगे और उनकी पुरुष की क्रूरताओ से सुरक्षा के उद्देश्य को लेकर साहित्यिक क्षेत्र मे नारी सम्बन्धी नये दृष्टिकोण का विकास होना प्रारम्भ हुआ। आधुनिक युग मे नारी स्वातन्त्र्य के प्रथम व्याख्याता के रूप में आइरिश लेखक इब्सन का नाम सर्व प्रथम लिया जाता है।

१—वीमन इन नाजी जर्मनी, पृष्ठ २९ पर उत्कथित।

२—वही, पृष्ठ २९ पर उत्कथित।

इब्सन का काल विशेष रूप से १६ वीं शती के अंतिम वर्षों का काल है। उसने व्यावहारिक जीवन मे वैवाहिक विषमता मे जीने वाली महिला वर्ग की दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति तथा उस पर पुरुष वर्ग के अत्याचारो को दृष्टिगत किया। पत्नी के रूप मे नारी की स्थिति कितनी गौण है, इसका सुन्दर और स्पष्ट स्वरूप 'द डौल्स हाउस' तथा 'घोस्ट्स' मे व्यक्त हुआ है। नारी अपने पति से स्वेच्छा से शासित होती है प्रत्येक क्षेत्र मे उसकी आज्ञा का पालन करती है, उसकी सेविका है और अपनी एकनिष्ठा के साथ पूर्ण रूप से उसी पर समर्पित है। वह बीमार पडता है तो अवैध रूप से उसके लिए धन का भी प्रबध करती है। लेकिन इतने पर भी जब उसे पति की प्रताडना सहनी पडती है और अपमानित होना पडता है, तो उसका 'स्व' जागृत होता है और वह अपनी वस्तु-स्थिति को पहचानती है। पति-पुरुष के अत्याचारो से मुक्ति के लिए उसका प्रयास होता है और वह उस पुरुष को, जिसे कभी उसने अपनी पूर्ण निष्ठा समर्पित की थी, जिसकी सेवा मे वह दिन रात लगी थी, जिसको उसने अपना सर्वस्व माना था, अब छोड देती है। क्योंकि उसे आत्म सम्मान की रक्षा करनी है, अपने मस्तिष्क का विकास करना है और समाज मे अपनी स्वीकृति की आवाज को ऊचा उठाना है। 'द डौल्स हाउस' इस प्रकार वैवाहिक जीवन की अपूर्णता तथा असफलता पर व्यग्य प्रस्तुत करता है। दूसरे उपन्यास 'घोस्ट्स' मे भी विवाह की परम्परागत मान्यताओ पर कुटिल व्यग्योक्ति की गई है। इस दूसरे नाटक की नायिका श्रीमती एलविग को विवाहित जीवन की विभीषिकाओ के मध्य से निकलना होता है। उसे पति कहलाने वाले पुरुष के असीम अत्याचार सहन करने पडते है। इब्सन ने इन रचनाओ द्वारा विवाह सस्था के उन थोथे आदर्शों की धज्जी उडाई है, जिसने योरपीय नारी की वैयक्तिकता को अन्धविश्वासो और स्वार्थों के बाड़े मे परिसीमित कर रखा था। इब्सन वस्तुवादी है। उसके साहित्य से व्यक्तिवाद की आदर्श स्थापना हुई है। वह व्यक्ति को व्यक्ति होने के नाते वैयक्तिक सम्मान की प्रतिष्ठा के लिए प्रेरित करता है। नारी के माध्यम से वह उस विवाह सस्था का खण्डन करता है जो व्यक्ति की वैयक्तिकता के दमन कार्य मे सहायक होती है। नारी मे शक्ति है, वह पुरुष से विच्छेद करके भी जीवित रह सकती है परन्तु एलविग की भाति कमजोर होकर नारी का कोई भी हित नहीं हो सकता। इब्सन का सकेत है कि 'सत्यवादी' बनो, स्वतन्त्र बनो और सबसे ऊपर अपने 'स्व' को पहिचानो[1]। इब्सन की ही भाति ब्रिओ के नाटक 'द थ्री डाटर्स आफ एम. ड्यूपन्ट' मे विवाह धन की लालसा से स्वार्थ

१—केन्डलर, एस्पेक्ट्स आफ माडर्न ड्रामा, पृष्ठ १६।

सिद्धि के उद्देश्य को लेकर किया गया है। जो विवाह संस्था के खोखलेपन को प्रदर्शित कर नारी को इस परम्परा का विद्रोह करने की प्रेरणा देता है। बजोर्नसन की कृति 'द न्यूली मैरीड' मे परस्पर सामजस्य की कठिनाइयो का उल्लेख हुआ है। पिनरो की 'लेडी बाउन्टीफुल' पुनर्विवाह की समस्या पर विचार प्रस्तुत करती है। स्ट्रिन्डबर्ग के 'द डान्स आफ डैथ' मे वैवाहिक जीवन की 'सेक्स' समस्या को उठाया गया है और अतिरिक्त सेक्स की प्रतिक्रिया को प्रदर्शित किया गया है। इब्सन के सिद्धान्त को विल्ड और मुडरमेन्स की कृतियो मे भी परिपक्वता प्राप्त हुई है। प्राचीन विश्वास की नारी का सम्मान विवाहित जीवन का यापन करने में ही है (चाहे ऐसे जीवन का निर्वाह करने मे उसे गलीवग की ही भांति अपने अस्तित्व को नष्ट कर डालना पड़े)। इस नवीन सिद्धान्त के मध्य अपनी स्थिति को बनाये रख सकने मे असमर्थ रहा है। विल्ड की कृति 'ए वीमन आफ नो इम्पारटैंस' की नायिका श्रीमती आरबुथनार तथा मुडरमेन्स के डाट हैमेट 'की मैगडा विवाहित जीवन की अनिवार्यता को अस्वीकार कर देती है और स्वतन्त्र जीवन यापन की दिशा मे अग्रसर होती है। इब्सन का यह व्यक्तिवादी आदर्श जार्ज बर्नार्ड शा के नारी चरित्रो में पूर्ण रूप से विकसित हुआ है। शा मे वैवाहिक एवं वैज्ञानिक पक्ष की प्रधानता है। उनका मत है कि जब नारी और पुरुष का परस्पर प्रेम भी एक दूसरे को विवाह बन्धन में बांधने मे सफल नहीं हो सकता, तब विवाह की महत्ता ही नही रह जाती। उन का नायक डान जान एक स्थान पर कहता है कि नीतिपूर्ण विवाह के थोथे आदर्शों ने मनुष्य जाति की आत्मा का हनन कार्य किया है[1]। शा एक विवाह का समर्थन करते हैं और उनका विश्वास है कि यदि विवाह सम्बन्ध दोनों पक्षो को सन्तुष्ट कर सकने मे समर्थ हो और दोनो एक दूसरे से अधिक अपेक्षा न करें तो उसे मान्यता मिलनी चाहिए उनकी कृति 'गैटिंग मैरीड' में यही भावना व्यक्त हुई है।

'फिलैन्डरर' मे शा उन लोगों पर व्यंग्य करते है, जो विवाह को नारी की पराधीनता मानना अस्वीकार करते हैं। और प्रेम करने के उपरान्त विवाह की आवश्यकता पर जोर देते हैं। शा का विश्वास है कि प्रेम एक उन्मुक्त भावना है। विवाह के बन्धनो से उसे परिपक्व नहीं बनाया जा सकता। इसीलिए उसने विच्छेद की भी योजना की है। उन दो व्यक्तियो को, जिन में एक दूसरे के प्रति प्रेम भाव का अभाव हो गया है, साथ साथ बांधे रखना शा की दृष्टि में अनैतिक है[2]।

१—केन्डलर : एस्पेक्ट्स आफ माडर्न ड्रामा, पृष्ठ ८१३ पर उद्धृत।

२—केंडलर : एस्पेक्ट्स आफ माडर्न ड्रामा, पृष्ठ ४१४।

इब्सन ने प्रेम, विवाह और नैतिकता के प्रचलित सामाजिक आदर्शों पर गहरी चोट की थी। उसके साहित्य से तत्कालीन समाज तिलमिला उठा था और प्रतिक्रिया स्वरूप नैतिक पृष्ठभूमि पर जिस साहित्य की रचना हुई थी वह प्राचीन परिपाटी को बनाये रखने की दिशा मे ही एक उपक्रम कहा जा सकता है। हेनरी आर्थर जान्स ने 'माइकल एण्ड हिज़ लास्ट एन्जिल' तथा 'सेन्ट्स एण्ड सिनर्स' मे इसी नीति स्थापना की योजना की है। 'डान्सिग गर्ल' मे पथ-विभ्रष्ट नायिका के चरित्र और परिणाम को अभिव्यक्ति देकर इसी भाव को परिपुष्ट किया गया है। वेडकिन्ड ने नीति विभ्रष्ट लुलू की हत्या की आयोजना करके उच्छृंखल जीवन का दारुण चित्र उपस्थित किया है। हाप्ट मैन की उच्छृंखल नायिकाये भले ही वेडकिन्ड की नायिकाओ की समानता न कर सके परन्तु फिर भी उनकी चारित्रिक दुर्बलता उनके पतन का कारण बनती है। उदाहरण के लिए 'रोज बर्नड' की रोज को लीजिए। वह निर्धन कृषक बालिका है जो सुन्दर है और जिसे अपनी सुन्दरता पर गर्व भी है। एक जिल्द बाधने वाला उससे प्रेम करता है। परन्तु अपने सौन्दर्य दर्प मे वह उसकी ओर आकर्षित नही होती। कालान्तर मे वह दूसरे लोगो द्वारा विभ्रष्ट की जाती है, उसका जीवन दयनीय जीवन की यातनाओ को सहते हुए दुर्भाग्य पूर्ण परिस्थितियो के चक्र मे घूमता रहता है। इसी प्रकार प्रमुख साहित्यकार गाल्सवर्दी कृत 'द फ्यूजिटिव' की नायिका क्लेयर अपने पति को छोड देती है। उसे भी पथ-विभ्रष्ट होना पडता है और अन्त मे प्रपीडित होकर उसे आत्म हत्या करनी पडती है। गाल्स-वर्दी ने इस नाटक मे समाज का पक्ष लिया है। उसे क्लेयर जैसी महिलाओ के प्रति उपेक्षा दिखानी पडी है जो सौन्दर्य और मोहकता के माध्यम से अपनी जीविका चलाना चाहती है। उसका कहना है कि ऐसी चरित्र विभ्रष्ट महिलाये जब अपनी स्थिति मे दयनीय होकर असफल हो जाती हैं तो समाज को दोषी ठहराया जाता है। जो तर्क सगत नही है। इसी परम्परा मे पिनरो अपनी नायिका आइ-रिस की चारित्रिक दुर्बलताओ के माध्यम, उस नीति पूर्ण सामजस्य की स्थापना का सदेश देना चाहता है, जो नारी जीवन में पथ-विभ्रष्टता के इस बढते हुए दौर पर रोक लगा सके। इब्सन की व्यक्तिवादिता की प्रतिक्रिया यही तक हो कर नही रह गयी है। कुछ साहित्यकारो ने विच्छेद को अनावश्यक तथा नैतिक मान-दण्डों से गिरा हुआ ठहराया है। इस संदर्भ मे कैपस का 'द टू स्कूल्स' व्यर का 'द कन्सर्ट' पिनरो का 'द बैनीफिट आफ द डाउट' उल्लेखनीय है। साथ ही स्ट्रिंगबर्ग ने 'द लिंक' मे, हरव्यू ने 'द लेबीरिन्थ' में तथा बुजरगेट ने 'डाइवोर्स' ने सम्बन्ध विच्छेद की हानियों का उल्लेख किया है। परन्तु इब्सन-स्कूल द्वारा प्रतिपादित व्यक्तिवाद की प्रबल धारा को इन प्रतिक्रियावादियों द्वारा प्राचीन धार्मिक विश्वासो एव नैतिक आदर्शों

का हवाला देकर रोक सकना सम्भव न था। इब्सन के बाद उनके नीति सम्बन्धी विचारों को बर्नार्ड शा, डी एच. लारेन्स, एच जी. वेल्स, समरसेट माम, सार्त्र, अलबरटो मोरावियो, हैमिग वे तथा स्टीफन ज्वीग के विचारात्मक साहित्य से पुष्ट होने का अवकाश मिला है। 'मिसेज़ वारेन' में शा ने समाज के मर्यादा के रक्षकों की क्रूरताओं, समाज मे प्रचलित कुत्साओं और अनैतिकताओं का पर्दा-फाश किया है" इस नाटक में उन्होंने वेश्या वृत्ति और वेश्याओं के जीवन का अत्यन्त कलात्मक और मार्मिक चित्रण किया है। वे सिद्ध करना चाहते हैं कि स्त्रियां किसी स्वभावजन्य कामुकता, नैतिक पतन या पुरुषों की लोलुपता के कारण वेश्या-वृत्ति नहीं अपनाती, बल्कि इस कारण कि हमारे तथाकथित सभ्य समाज में मेहनत मजदूरी करके जीविका कमाने वाली साधारण स्त्रियों को पर्याप्त वेतन नहीं मिलता। अधिक परिश्रम, कम वेतन और स्त्रियों के प्रति असम्मान का भाव—ये सब मिल कर स्त्री को वेश्यावृत्ति के लिए प्रेरित करते है।'

इसी प्रकार 'मैन एण्ड सुपरमैन' में शा ने इस बात का प्रतिपादन किया है कि जीवन-शक्ति, नारी को, पुरुष को अपना आहार बनाने के लिए विवश करती है। वह उसे आकर्षित करती है तथा विवाह करके अपने में बांध लेती है। इस तरह शा के मत में नारी सक्रिय है, पुरुष उदासीन। प्रेम का आरम्भ नारी के द्वारा होता है और पुरुष केवल एक साधन मात्र के रूप में ही प्रतीत होता है। शा ने नीति के मान दण्डों को बदलने की बात का, उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन की भावना का शिला-न्यास किया है। अपने द्वारा अभिव्यक्त नवीन नारी आदर्शों की अभिव्यक्ति के कारण ही बर्नार्ड शा का महत्व अंग्रेजी साहित्य में विशेष हो जाता है। 'गैटिंग मेरीड' में नारी की पारिवारिक स्थिति की दयनीयता का निदेशन हुआ है। संकीर्ण मान्यताएं, अपरिपक्व बौद्धिक धरातल तथा स्वार्थ युक्त दृष्टिकोण से वस्तुओं के माप की परम्परायुक्त भावना नारी जीवन मे विष घोल रही है, शा ने इस नाटक से यही सिद्ध करना चाहा है।

एच. जी. वैल्स ने शा की इसी भावना का विस्तार किया है। शा का उद्देश्य बौद्धिक, सामाजिक तथा नैतिक समस्याओं का उद्‌घाटन करना और उन के लिए समाधान प्रस्तुत करना था, परन्तु वैल्स ने परिवर्तित होते हुए इंग्लैंड की जागरूकता तथा नवीन आदर्शों की स्थापना की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करना है। इससे शा के विचारों की प्रतिक्रिया नहीं होती वरन् उन्हें सहयोग और समर्थन मिलता है। उसने भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता को ही प्राथमिकता प्रदान की है। एच. जी. वैल्स की

मिसेज वारेन : अनुवादक—शिवदान सिंह चौहान, भूमिका में।

महत्ता सैक्स सम्बन्धी विषयो की उदार व्याख्या करने को लेकर है। 'मैरिज' तथा 'एन्न वैरोनिका' मे इसी सम्बन्ध मे विचार प्रकट किए गए है। और नारी को भी पुरुष की भाति (किसी भी रूप मे उससे कम नही) सैक्स व्यवहार मे समान अवकाश प्रदान करने की योजना की है। 'द न्यू मैच्यैवली' मे भी सैक्स सम्बन्धो की मनोवैज्ञानिक विवेचना हुई है। इसी परम्परा मे एच. जी लारेन्स का 'नाम' लेडी चेटरलीज लवर' और 'वीमन इन लव' को लेकर उल्लेखनीय है। इन दोनों रचनाओ मे नारी की स्वतन्त्र सत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

प्रेम-सम्बन्धी आदर्शों की व्याख्या मे शा ने क्रान्ति ला दी है। उनकी मान्यता है कि प्रेम के क्षेत्र मे नारी ही नेतृत्व करती है[1]। यद्यपि यह कोई नया आदर्श नही है। शेक्सपियर की अधिकाश नायिकाये प्रणय क्षेत्र मे पुरुषो का पीछा करती है। पियरे लुई की 'एफ्रो डाइट' की नायिका क्राइसिस की भी यही स्थिति है। परन्तु शा का महत्व इस आदर्श की स्थापना के विषय को लेकर इसलिए हो जाता है कि उन्होने इस मान्यता को प्रस्थापित किया और इसका अनुमोदन तथा अनुकरण करने वालो का एक स्कूल ही तैयार कर लिया। सार्त्र, समरसेट माम, ज्वीग, मोराबिया तथा हैमिंग वे द्वारा इसी मान्यता का अनुमादन हुआ है। आज का योरुपीय साहित्यकार प्रेम की भावना को शाश्वत और नैसर्गिक मान कर चलता है और इसीलिए स्त्री पुरुष दोनो को समान अवकास की प्राप्ति हुई है। स्टीफेन ज्वीग की कहानी 'लैपोरेल्ला' मे इस भाव की सुन्दरतम अभिव्यक्त देखने को मिलती है। क्रेसेन्शिया अन्ना एक निम्न जाति की कुरूप महिला है जो अनाथ और ईमानदार है। बैरन उसे अपने घर मे नौकरानी रख लेता है। इस घर मे आने से पूर्व वह भावना-शून्य, निरानन्द और सवेदनहीन ही चित्रित की गई है। बैरन के सहृदय व्यवहार म उसमे परिवर्तन होता है और उसके ससर्ग मे उसकी दमित आकाक्षाए आन्दोलित होने लगती है। अन्त मे बैरन की उपेक्षा उसे आत्म हत्या करने पर विवश कर देती है। इस कहानी के माध्यम प्रेम के शाश्वत भाव की प्रतिष्ठा की गई है। इसी प्रकार दूसरी कहानी 'गवर्नेस' की 'मिस मान' अपने स्वाभाविक प्रणय प्रवृत्ति की असफलता पर आत्म हत्या कर लेती है। एक अन्य उपन्यास बिवेयर आफ पिटी' की एडिथ अपग होने पर भी प्रणय भावना से आविर्भूत होती है। वह अपनी पंगुता पर दया की इच्छुक न होकर कप्तान से प्रेम करती है और प्रेम का प्रतिपादन चाहती है।

स्वतन्त्र प्रणय भावना की आदर्श स्थापना के उपरान्त इन्ही यूरोपीय लेखकों द्वारा सेक्स सम्बन्धी दृष्टिकोण को लेकर नारी और पुरुषो के सम्बन्धो का विवेचन

१—केन्डलर एस्पैक्ट्स आफ माडर्न ड्रामा, पृ० ४१०।

किया गया है। हैमिंग व की महत्वपूर्ण कृति 'द टॉरट्स आफ मिलिंग' में मैन्डी के चरित्रांकन में सेक्स सम्बन्धी स्वतन्त्र भाव का प्रतिपादन हुआ है। मैन्डी के लिए एकनिष्ठा, प्रेम का स्थायित्व तथा अपने प्रेमी के प्रति संवेदनशील व्यवहार- सभी कुछ अपरिचित है। जिस प्रकार से उपन्यास के नायक 'विक्रम' के लिए महिलाओं और उनसे सेक्स सम्बन्ध महत्वपूर्ण नहीं है और जिस प्रकार वह डायना की उपेक्षा केवल इसीलिए कर देता है कि मैन्डी उसकी अपेक्षा सुन्दर और कम प्रगल्भा की है। उसी प्रकार मैन्डी कब तक उसके साथ रह सकेगी, इसके विषय में भी वह विश्वास-पूर्वक कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि मैन्डी का अपना इतिहास है और वह भी विक्रम की भाँति ही सेक्स की स्वतन्त्रता पर विश्वास करती है। इसी प्रकार समरसेट माम अपनी कृति 'द वेसल्स आफ रैथ' में इसी अस्थिर प्रेम तथा बन्धनहीन उच्छृंखल सेक्स का चित्रण करता है। टेड का जीवन महिलाओं के शरीरों में पलता हुआ बीतता है। माम की महिलायें अधिकांश में साहस और स्वतन्त्र वैयक्तिक सम्मान की भावना से पूर्ण है। मिस जान्स इसका उदाहरण है। उसमें मनोवैज्ञानिक संघर्ष की विषम भावना भी स्पष्ट प्रतिलक्षित होती है। मिसेज ए० कोलांबी के प्रसिद्ध उपन्यास : 'लव इन थ्री जैनेरेशन्स' मे शैन्या के चरित्र-चित्रण में प्रेम के सामान्य स्वरूप को ही व्यक्त किया गया है। शैन्या एक स्थान पर कहती है—

'मेरे लिए लैंगिक जीवन शारीरिक आनन्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मैं अपनी रुचि के अनुसार अपने प्रेमियों को बदलती हूं। इस समय भी मैं गर्भवती हूं किन्तु मैं नहीं जानती कि मेरे शिशु का पिता कौन है। मैं इसकी चिन्ता भी नहीं करती।'

—वीमन इन सोवियट रशिया, पृष्ठ १०६ पर उद्धृत।

इसी प्रकार मोराबिया की नायिकायें हैं। 'द वीमन आफ रोम' की पात्री एक बार पथ-विभ्रष्ट होकर अन्त तक पुरुषों का आखेट ही करती रहती है। एच० जी० वेल्स के 'मैरिज' में भी इसी स्वतन्त्र सेक्स सम्बन्ध का प्रतिपादन हुआ है। आन्द्रे ने भी प्रेम की शाश्वत भावना पर बल दिया है और वैयक्तिक स्वतन्त्रता का प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार आधुनिक काल का सम्पूर्ण साहित्य नारी-सम्बन्धी आदर्शों में एक क्रांति का विस्तार करता है। वहां की नारी के लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की भावना सबसे विशिष्ट है। वह सभी क्षेत्रों मे स्वतन्त्र है। नीति सम्बन्धी नये आदर्शों ने उसकी स्थिति का सामाजिक विकास करने में सहायता प्रदान की है क्योंकि वह स्वयं ही अधिकार और सम्मान प्राप्ति की दिशा में अग्रसर और सफल हुई है। इसीलिए वह अपनी सफलता की दर्पपूर्ण भावना के विस्तार में बहुत आगे बढ़ गई मालूम होती

है। ऐसा लगता है कि जैसे उसने अपनी भूल अनुभव की है। यहा से उसके अन्तर्संघर्ष का आरम्भ होता है। आधुनिक साहित्य मे यह भावना प्रभूत मात्रा मे देखने को मिल सकती है। अपनी नैतिक स्वतत्रता से भी पाश्चात्य नारी घबडा गई प्रतीत होती है। ज्वीग की कहानियो मे इस बात की पुष्टि मिलती है[1]। इसी प्रसग मे शॉ की नारी की आदर्श भावना को भी देखा जा सकता है। उनकी नायिका 'कैण्डिडा' का व्यक्तित्व आदर्श पत्नी का स्वरूप प्रकट करता है। वह किसी की सुरक्षा करना चाहती है। किसी की सहायता करना चाहती है और किसी के लिए कार्य करना चाहती है[2]। शॉ की मान्यता है कि प्रत्येक पत्नी मे मातृत्व भाव होता है और एक समय आता है कि वह अपने पति को प्रेम के स्थान पर वात्सल्य प्रदान करती है। शॉ का यह भी मत है कि नारी का हीन निराश्रय प्रणय प्रसगो मे अभिव्यक्त निष्क्रिय रूप वास्तविकता से भिन्न है। वह किसी भी रूप मे पुरुष से हीन, उससे कम समर्थ और अयोग्य नही है।

भारतीय तथा पाश्चात्य नारी आदर्श—अन्तर

उपर्युक्त पक्तियो मे पश्चिमी नारी के सामाजिक व साहित्यिक आदर्शों की विवेचना की गई है। इस विवेचना के निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य नारी क्योकि अपने प्रयासो से सामाजिक, राजनीतिक तथा वैयक्तिक अधिकारों की उपलब्धि मे सफल हुई है, इसी कारण उसमे अपने वैयक्तिक मूल्यो को महत्व देने की भावना प्रमुख है। सामाजिक क्षेत्र मे समता का आदर्श विद्यमान है। वह पुरुष से पृथक अपनी सत्ता की स्वीकारोक्ति को बल देती है। और सभी प्रकार के कार्यक्षेत्रो मे पुरुष के समान अपनी योग्यता का आदर्श स्थापित करती है। पश्चिमी आदर्श लौकिक सुखो की ओर उन्मुख है। अत नीति सम्बन्धी मान्यताएँ शिथिल या स्वस्थ शब्दों मे कहिए स्वतन्त्र हैं। इसीलिए नीति की व्याख्या और आदर्श रूढ़िवादी परम्परा से पृथक जान पडते है। वहाँ की परिभाषा मे शरीर की पवित्रता का शैथिल्य नीति-विरुद्ध नही कहा जा सकता। सैक्स की सयमता वहा की नारी के लिए विशेष महत्वपूर्ण नही है। सभी क्षेत्रो मे अवकाश प्राप्त होने के कारण पश्चिमी नारी का उत्तरदायित्व भी विस्तीर्ण हो चला है। उत्तरदायित्व के विस्तृत होने से वैचारिक सघर्ष की प्रधानता होती है। सघर्ष की रूपरेखा के मध्य सामंजस्यपूर्ण निर्वाह के लिए कठिनाई पडती है और इस प्रकार सामाजिक क्षेत्र मे अशान्ति का विस्तार होता है। आज की पाश्चात्य नारी इन्ही सघर्षों के मार्ग से निकल रही है। भारतीय

१—देखिए चौहान दम्पति द्वारा अनुदित 'स्टीफेन ज्वीग की कहानियां'।

२—एस्पैक्ट्स आफ मार्डर्न ड्रामा, पृष्ठ ४१५-४१६।

नारी आदर्शों से पाश्चात्य नारी आदर्शों की तुलना करने समय यह नहीं लगता कि इनमे कोई मौलिक अन्तर विद्यमान हैं। दोनो समाज की नारियों की चेष्टा अपने 'स्व' के विकास के लिए अपनी प्रगति और उन्नयन के लिए रही है। परन्तु इस 'स्व' की प्रतिष्ठा में जिन परस्पर विरोधी आदर्शों को प्रतिष्ठित किया गया है। उसका कारण अपने अपने समाज की भिन्न भिन्न परम्पराओं और नीति सम्बन्धी आदर्शो का होना है। भारतीय दृष्टिकोण मे नारी की जातिगत पवित्रता की रक्षा प्रधान है। भारतीय नारी का आदर्श नीति सम्बन्धी मान्यताओं की पीठिका मे ही अभिव्यक्त हो सका है। उससे बाहर स्वतन्त्र वैयक्तिकता की प्रतिष्ठा के प्रयास से नहीं। भारतीय नारी को अर्धांग के रूप मे स्वीकृत किया जाकर उसे समान सम्मान की प्राप्ति हुई है। उसका गृहिणी रूप ही प्रधान है। इसके विपरीत पाश्चात्य नारी उस पवित्रता को जिसे भारतीय नारी की मान प्रतिष्ठा के लिए सर्वस्व' समझा गया है, अधिक महत्वपूर्ण मान कर नहीं चलती। दूसरे, पुरुष के समान उससे अलग स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रस्थापना के प्रयास मे पश्चिमी नारी का गृहिणी रूप विनष्ट हो गया है। उसमें द्वैत की भावना विद्यमान है। वह भारतीय नारी के आदर्शों के विपरीत व्यक्तित्व का विलय कर, पूर्णता प्राप्त कर लेने के सिद्धान्त का समर्थन नहीं करती। भारतीय नारी द्वारा सामजस्य की प्रतिष्ठा करने वाली प्रवृत्ति से पारिवारिक जीवन को जो पुष्टता और स्वास्थ्य प्राप्त होता है और जिसके कारण अभी भी सम्मिलित कुटुम्ब का आदर्श-परम्परा का निर्वाह हो रहा है, पश्चिमी समाज मे उसका अभाव है। वहां वैयक्तिक व्यवस्था के परिणाम स्वरूप पुरुष और नारी अपनी स्थिति मे परस्पर विच्छिन्न हैं और इसीलिए मानवीय भावनाओ से सिक्त स्नेह पूर्ण सामजस्य की स्थापना और विकास वहां नही हो पा रहा है।

पश्चिमी नारी की अधिकार-सीमा विस्तृत है। इसीलिए उसका दायित्व भी बढ़ गया है और दायित्व के बढने से उसके वैचारिक संघर्ष भी बढ़ गए हैं इसके कारण स्वयं उसकी अन्तर्भावनाओ मे सामंजस्य नही हो पाता। और अशांति की रूपरेखा विस्तृत होती है। पाश्चात्य नारी आज इसी वैचारिक अन्तर्द्वन्द्व का सामना कर रही है और अपने वैयक्तिक महत्ता की स्वतन्त्र कल्पना की स्वीकृति के सम्बन्ध मे उसके मन मे बहुत सी शकाएं उठ खडी हुई हैं। इसीलिए आज के पश्चिमी साहित्यकार फिर से नारी की इस स्वतन्त्र वैयक्तिकता के विषय मे, जो अबाध स्वतन्त्रता और उच्छृंखलता का स्वरूप लेकर अपनी स्थिति के मूल भाव को खो बैठी है, नवीन वैचारिक दृष्टि प्रदान कर रहे हैं। परन्तु हम यहाँ सामान्यतः सामजस्य पूर्ण जीवन की स्थिति की आदर्श प्रतिष्ठा के क्षेत्र में ही आगे बढ़ रहे हैं और इसीलिए यहाँ इस प्रकार की किसी चिन्ता की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। हमारा नारी वर्ग भले ही

भौतिक विषमताओ से ग्रस्त होकर उदासीन और अपनी स्थिति मे हीन सा लगने वाला प्रतीत होता हो, किन्तु वस्तुत उसके सघर्ष अधिकतर लौकिक ही है जो पाश्चात्य नारी के वैचारिक सघर्षों के अनुपात मे अपेक्षाकृत कम पीडा देने वाले होते हैं। वहाँ की नारी मनोवैज्ञानिक भूमिका पर अधिक सघर्ष-रत रही है किन्तु पौर्वात्य नारी के लिए सामान्य रूप से हम कह सकते है, अभी ऐसी स्थिति नही आई है।

उपर्युक्त विभिन्नताओ के साथ साथ एक बात और भी है। भारतीय और पाश्चात्य नैतिक आदर्श भिन्न भिन्न रहे है। हमारे देश मे नारी के भौतिक अवयवों को अधिक महत्व नही दिया गया है। यहाँ नैतिक आदर्शों के आधार पर नारी की श्रेष्ठता को अभिव्यक्ति प्रदान करने की परम्परा रही है। इसीलिए कभी कभी लगता है कि भारतीय नारी नैतिक नियमो की शृखला मे आबद्ध होकर अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकने मे असमर्थ है। उसका जीवन पुरुष वर्ग से प्रचालित और निर्देशित है, और वह अपनी स्थिति मे मात्र अबला है। पुरुष वर्ग द्वारा जिन आदर्शों की स्थापना उसके लिए हो गई है, और जिन आदर्शों की कसौटी पर उसके व्यक्तित्व और आचरण को आका जाता है, उसका विरोध करने की शक्ति से वह विहीन है। आज का युग भौतिक और व्यक्तिवाद का युग है। बौद्धिक दृष्टिकोण से ही सब वस्तुओ की माप होती है। और यही कारण है कि भौतिकवाद के इस बढ़ते हुए युग मे भारतीय नारी पाश्चात्य नारी से पिछडी हुई या हीन लगती है। इसका कारण भारतीय नारी वर्ग मे शिक्षा का, परिष्कृत सस्कारो का अभाव है। प्राचीन परम्पराओं पर से उसका विश्वास अभी भी कम नही हुआ है। इसी लिए उसकी स्थिति पारिवारिक सीमाओं मे आबद्ध हुई सी लगती है। इसके विपरीत पश्चिमी नारी को विस्तृत क्षेत्र मे अपने मत की अभिव्यक्ति और पुष्टि का अवकाश प्राप्त है और वह प्रगतिशील समाज मे अपना निज का महत्वपूर्ण स्थान रखती हुई प्रतीत होती है। भारतीय समाज मे भी नारी को समाज-स्वीकृत की दिशा मे वैधानिक, सामाजिक एव साहित्यिक प्रयास हो रहे है। उत्तराधिकार, सम्पत्ति सम्बन्धी कानूनों द्वारा उसकी स्थिति को बल प्राप्त हो रहा है और वह समाज के नये आलोक की प्रेरणा से अपने भविष्य की सुरक्षा मे दृढ़-प्रतिज्ञ हो सलग्न है। अन्त मे नारी आदर्शों की इस विवेचना मे इतना कहना और शेष रह गया है कि पाश्चात्य समाज की दृष्टि मूलतः भौतिक होने के परिणाम स्वरूप वहा की नारी के शारीरिक पक्ष को प्रधानता मिली है। वहा का आदर्श इसी बिन्दु तक आकर सीमित हो जाता है। आत्मा की बात वहा विशिष्ट नही है, इसीलिए सामान्य व्यवहार की बातो मे जिनका सम्बन्ध दैनिक जीवन से होता है, वहा आत्मा और दर्शन तथा नीति सम्बन्धी आदर्शों का समावेश नहीं किया जाता। किन्तु भारतीय आदर्श इससे कुछ भिन्न हैं। वहां व्यक्ति के

शरीर की अपेक्षा उसके आन्तरिक व्यक्तित्व को श्रेष्ठता प्रदान की जाती है। इसीलिए भारतीय मान्यता में नारी का दैहिक सौन्दर्य नहीं, वरन् उसका आत्मिक सौन्दर्य, उसके गुणों का पावित्र्य ही विशिष्ट है और इसीलिए उसके व्यक्तित्व के प्रति सम्मान की भावना प्रकट की जाती है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि एक ओर जहां पश्चिमी नारी सम्बन्धी आदर्श बौद्धिक भाव-भूमि पर, लौकिक दृष्टिकोण को महत्व प्रदान करते हुये, व्यक्तित्व की स्वतन्त्र स्थापना के उद्देश्य से प्रतिष्ठित हुए हैं, वहां दूसरी ओर भारतीय नारी के स्थूल सौंदर्य की अपेक्षा उसके आन्तरिक व्यक्तित्व को श्रेष्ठता प्रदान की गई है तथा उसे नैतिक मान्यताओं की पृष्ठभूमि में अभिव्यक्ति प्रदान करके, आदर्शात्मक भावभूमि पर चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है।

प्रसाद की धारणाएं

हम भारतीय तथा पाश्चात्य नारी आदर्शों का उल्लेख कर आये हैं। इन्हीं के संदर्भ में प्रसाद जी की तत्सम्बन्धी धारणाओं की विवेचना करनी शेष है। प्रसाद जी मूलत: नारी स्वातंत्र्य के आदर्श को लेकर चले हैं। नारी सम्बन्धी 'सामाजिक दृष्टि-कोण' के अन्तर्गत इस कथन को भली भांति विवेचित कर दिया गया है। नारी को अपने 'स्व' का विकास तथा अपने व्यक्तित्व की सम्मान प्रतिष्ठा के दृष्टिकोण से भी प्रसाद जी प्रगतिशील तथा उदार रहे हैं। वे भारतीय नारी को उसकी दयनीय वस्तु-स्थिति से उठाकर उसे सम्मानपूर्ण स्थान प्रदान करने के पक्ष में हैं। जिससे उसके संस्कारों में परिष्कार हो, अपने अधिकारों के प्रति वह जागरूक हो और जिससे उसमें सामाजिक चेतना विकसित हो। प्रसाद जी नारी को संकीर्ण सीमाओं के घेरे में बन्दी बना कर उसके व्यक्तित्व का गला घोंटने के पक्ष में नहीं रहे हैं, यह ठीक है। लेकिन इसके साथ-साथ यह भी ठीक है कि वे नारी की स्वतन्त्रता को उस सीमा तक खींच ले जाने के पक्ष में भी नहीं रहे हैं जहां वह अपने व्यक्तित्व के प्रति पश्चिमी नारी की भांति दर्पपूर्ण भावना से युक्त हो, पुरुष से पृथक् अपने अस्तित्व को महत्व देना आरम्भ कर दे। प्रसाद जी की कल्पना मुख्य रूप से भारतीय है। उनकी धारणा है कि नारीत्व का अर्थपूर्ण विकास सामंजस्य की आदर्श स्थापना में है, व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता की प्रतिष्ठा के प्रयास में नहीं। पश्चिम में नारी की स्वतन्त्रता का अर्थ है, उसकी सभी क्षेत्रों में स्वतन्त्रता। और सभी क्षेत्रों की स्वतंत्रता के कारण उसका नैतिक महत्व नष्ट हो गया है। भारतीय आदर्श के अनुसार, क्योंकि नारी मां है, अत: उसका विकास नैतिक मान्यताओं के अन्तर्गत ही हो सकता है और भारत की परम्परा के अनुकूल यहां की नैतिक मान्यताओं के अनुसार, नारी में जाति-गत पवित्रता का होना अनिवार्य है। इसीलिए प्रसाद के नारी चरित्रों में व्यक्तित्व की स्वतंत्रता को मान्यता तो प्रदान की गई है, लेकिन उच्छृंखलता, अबाध स्वतंत्रता तथा नैतिक नियमों के अतिक्रमण की स्वच्छन्दता को स्वतन्त्रता का पर्याय नहीं माना गया है। साथ ही व्यक्तित्व की हंता को भी प्रसाद-साहित्य में प्रोत्साहन नहीं मिल

सका ह । उनके आदर्श नारी चरित्रों मे स्वतन्त्र व्यक्तित्व का सस्कार उच्छृंखलता की सीमा का स्पर्श नही करता है । शैला के चरित्र मे भी भारतीय और पश्चिमी आदर्शों के समन्वय की चेष्टा रही है। परन्तु पाश्चात्य नारी के अनुकूल शैला में स्वतन्त्र व्यक्तित्व का सस्कार इतना अनुकूल है कि वह चाह कर भी भारतीय आदर्शों और वातावरण के अनुकूल बनने मे बडी कठिनाई का अनुभव करती है । उसके चरित्र मे प्रसाद जी ने समन्वय और सामजस्य की चेष्टा तो की है, किन्तु वह इसीलिए पूर्ण सफल नही हो पाई है अतः उसे आदर्श रूप मे ग्रहण नही किया गया है । प्रसाद जी का चरित्र—आदर्श चरित्र—तितली है । जो मुख्य रूप से गृहिणी है और उस पद का निर्वाह करने के साथ अपने व्यक्तित्व को सामाजिक परिस्थितियो के मध्य भी उन्मुख करती है। मधुवन की अनुपस्थिति मे भी जो उसी के प्रति निष्ठावान रहकर अपने गृह कार्य का सचालन भी करती है तथा अपनी सीमाओं के भीतर समाज सेवा भी। जिसके व्यक्तित्व मे निष्ठा है। कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता है तथा परिस्थितियो से सघर्ष करने की क्षमता भी। उसके गुणों मे स्नेह, त्याग तथा सेवा की भावनाएं प्रबुद्ध है, जो उसके नारीत्व को उजलाब ना देती हैं। तितली के चरित्र में—उसके चरित्र के साथ साथ उसकी तुलना में शैला के चरित्र को रखा गया है, जो सामजस्य के अभाव में अनुकूल वातावरण बना सकने मे असमर्थ रहती है । परिणाम स्वरूप इन्द्रदेव के प्रति उसके स्नेह की भीत्ति दृढ़ नहीं हो पाती।

पाश्चात्य आदर्शों के अन्तर्गत नारी के श्रद्धापक्ष पर अधिक बल नही दिया गया है । बौद्धिक विकास ने तर्क पूर्ण अभिव्यक्ति को ही प्राथमिकता प्रदान की है। परन्तु भारतीय आदर्श अनुभूतियो को विशिष्ट मान कर चले हैं और इसीलिए हृदय पक्ष के संदर्भ में नारी का मूल्याकन उचित ठहराया गया है। प्रसाद जी इसी भारतीय आदर्श के पोषक हैं। उनके मत से नारी श्रद्धा का स्वरूप हैं। जिसके द्वारा जीवन के मरुस्थल मे निर्मल स्रोतवाहिनी प्रवाहित होती है । परन्तु प्रसाद जी ने बुद्धिगत वैचारिकता का विरोध नही किया है । समाज के स्वस्थ परिचालन के लिए वे बौद्धिक जागरूकता का भी समर्थन करते हैं। इसीलिए उन्होंने उस नारी आदर्श की कल्पना की है कि जिसमे श्रद्धा और बुद्धि के सामजस्य की चेष्टा निहित है। प्रसाद की अमर पात्री श्रद्धा इसी सामजस्य का आदर्श प्रतिष्ठित करती है। प्रसाद जी की नारी सम्बन्धी ये धारणाए वैयक्तिक प्रबुद्धता के साथ साथ भारतीय जीवन के स्वस्थ सस्कारों का पोषण भी करती है । उनकी नारी कल्पना मानवता के विकास की पृष्ठभूमि मे अवतरित हुई है तथा उसके अधिकार और कर्त्तव्य की व्याख्या में समन्वयात्मक प्रवृति का—परस्पर सामजस्य भाव का—ध्यान रखा गया है, जिससे उसके व्यक्तित्व को उच्च स्तरीय नवीन अभिव्यक्ति प्राप्त हो सकी है।

प्रकरण १५

[उपसंहार]

प्रसाद के नारी-चरित्र—कतिपय निष्कर्ष

[अ] सांस्कृतिक स्वरूप

[ब] विविधता

[स] पूर्ववर्ती नारी-कल्पना से विभिन्नता

[द] समन्वयात्मक चित्र

आरम्भ

प्रसाद जी सवेदनशील अनुभूति के व्याख्याता तथा सौन्दर्य और प्रेम की अन्तर्भावनाओं के सुहृदय साहित्यकार रहे है। अपनी रोमान्टिक प्रवृति के कारण ही नारी चित्रण मे उनकी विशेष अभिरुचि रही है। उनकी तूलिका से विविध रंगी नारी चरित्रो के विभिन्न स्वरूपों को सज्जा मिली है, और इसीलिए उनकी साहित्य-गत विशेषताओ मे उनके नवीन नारी-अकन की विवेचना भी महत्वपूर्ण हो जाती है। प्रस्तुत प्रबन्ध मे प्रसाद के नारी चरित्रो को एक विशिष्ठ दृष्टिकोण से देखने की चेष्टा की गई है, जिससे प्रसाद जी की नारी-सम्बन्धी सामाजिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक एव दार्शनिक दृष्टियो का भी अवलोकन किया जा सका है। वैसे यह कहना तर्क संगत नहीं है कि प्रसाद जी ने इन विभिन्न दृष्टियों को उपस्थित करने के उद्देश्य से ही विभिन्न नारी चरित्रो के अंकन में साहित्यिक कौशल को अभिव्यक्ति प्रदान की है। साहित्यकार व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता मे विश्वास करता है। साहित्य की रचना क्षणिक अनुभूतियो से प्रेरित होती है, और विदग्ध साहित्य की रचना के लिए पूर्व-लक्ष्य बनाने की अपेक्षा नही होती। लक्ष्यपूर्ण-साहित्य की रचना का आयोजन तो निबन्ध, समीक्षा आदि के स्वरूप में होता है, जहा पर मन की अनुभूतियों के स्थान पर वैचारिक दृष्टि की प्रधानता होती है। प्रसाद जी के साहित्यकार ने साधारणतया अपने मत की पुष्टि का, अपने विचारों को सामाजिक भाव भूमि मे जानबूझ कर प्रतिष्ठित करने का, और इस उद्देश्य से कि दूसरे लोग उनकी रचनाओं से प्रभावित हो, साहित्य सृजन का आयोजन नही किया है। विभिन्न अवसरो मे विभिन्न परिस्थितियो के मध्य विभिन्न घटनाओं की क्रिया प्रतिक्रिया के अनुभवों को अपनी भाषा में, अपनी शैली मे कहने का प्रयास ही उन्होंने किया है। हा, अपने अध्ययन, मनन् और सामाजिक परिपार्श्व से प्राप्त अनुभवों का अनुष्ठान स्वाभाविक रूप से ही, बिना किसी प्रयास के उनके साहित्य मे हो गया है, यह भी असत्य नही है। मूलतः उनके भावुक मन की सवेदन शक्ति ने ही उनकी साहित्यिक पीठिका निर्मित की है और उसी संदर्भ में उनका साहित्य विविध रगी हो गया है। नारी

चरित्रों के निरूपण में भी इसी विविधता की बहुलता है । समग्र रूप से नारी सम्बन्धी कतिपय निष्कर्षों की विवेचना निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है—

(अ) सांस्कृतिक स्वरूप
(ब) विविधता
(स) पूर्ववर्ती नारी कल्पना से विभिन्नता
(द) समन्वयात्मक चित्र

सांस्कृतिक वरूप

प्रसाद साहित्य मे, विशेष रूप से उनके नाटको मे भारतीय संस्कृति का निदर्शन हुआ है । इस सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि वे सांस्कृतिक ग्रन्थो के अध्ययन से प्रभावित रहे हैं और इसीलिए समय-समय पर उनके तत्सम्बन्धी संचित भावों की अभिव्यक्ति होती रही है । प्रसाद जी पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव यथेष्ट रूप से पडा था, अतः नारी के चित्रांकन मे भी भारतीय संस्कृति की स्पष्ट रेखायें उभर आई हैं । सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर नारी की आदर्श स्थापना का प्रयत्न यद्यपि प्रसाद की आधुनिक हिन्दी साहित्य को मौलिक देन नही कही जा सकती फिर भी उनका महत्व इस विचारधारा को परिपक्व और आदर्श रूप देने मे कम महत्वपूर्ण नही हो जाता । प्रसाद जी से पूर्व, उनके साथ-साथ और उनके बाद भी श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा साहित्यिक अभिव्यक्ति होती रही है । नारी के जिस सांस्कृतिक स्वरूप को—उनकी उदात्त भावनाओं को--श्री गुप्त द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की गई है, उसका उत्कर्ष प्रसाद साहित्य मे ही लक्षित होता है । वैसे सांस्कृतिक निरूपण, यशोधरा, सीता और उर्मिला के चरित्र मे भी कम नही है । परन्तु प्रसाद जी की अपेक्षाकृत परिमार्जित भाषा, अनुभूतियों की तीव्रता तथा उनकी अभिव्यक्ति की काव्य-युक्त शैली ने देवसेना, मालविका, श्रद्धा, तितली, वासवी और पद्मावती आदि के व्यक्तित्व में एक निखार सा ला दिया है और इसीलिए प्रसाद के चित्र अधिक रंगीन और चटकीले जान पड़ते हैं । हम यहां पर दो सिद्ध कवियो की तुलना नही करना चाह रहे हैं । कहना केवल इतना है कि प्रसाद की नारी कल्पना जो सांस्कृतिक भाव भूमि पर चित्रित की गई है, नवीन न होकर भी अपने मे महत्वपूर्ण है । उसने नारी की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योग देते हुए इस भावना को परिवर्धित और परिष्कृत किया है । हां, एक क्षेत्र मे प्रसाद जी अवश्य ही आगे बढ़े हुए प्रतीत होते हैं । वह है उन की नारी का राष्ट्रीय स्वरूप । राम नरेश त्रिपाठी की रचनाओं मे जिस राष्ट्रीय स्वरूप के दर्शन होते हैं, वह स्वरूप सोद्देश्य चित्रित किया हुआ, और इसीलिए अस्वाभाविक लगता है । मैथिलीशरण गुप्त ने भी नारी के हाथ में खड्ग देने की योजना की है, परन्तु प्रसाद जी द्वारा नारी का राष्ट्रीय स्वरूप ऐसे वातावरण और ऐसी परिस्थिति के मध्य चित्रित किया गया है कि सोद्देश्य होते हुए भी वह

अस्वाभाविक नही लगता। उसके उस नवीन स्वरूप पर विश्वास करने को मन करता है। उसकी स्वाभाविकता कही भी नष्ट नही दिखती। वास्तव मे यह प्रसाद जी की अभिव्यक्ति और शैली का चमत्कार है। जहा पर वैचारिक दृष्टि से यह भी दृष्टव्य है कि प्रसाद जी सास्कृतिक नारी के इस चित्रण मे तत्कालीन सामाजिक प्रभाव से अछूते नही रहे है। भारत की राष्ट्रीय जागृति और उनके अपने समय की जागरूक सामाजिक परिस्थितियो ने उन्हे प्रेरणा दी थी, भले हो बाद मे उनके साहित्य के माध्यम से भारतीय जीवन के प्रेरित होने की बात कही जा सकती है। इस प्रकार, प्रसाद साहित्य नारी के सास्कृतिक पुनरुत्थान की दिशा प्रशस्त करता है, और इस उत्थित आदर्श द्वारा नारी जीवन को भारतीय ढग से समझने और उस के प्रति तद्-नुरूप व्यवहार करने का निर्देश देता है।

विविधता

प्रसाद जी को मानव मनोविज्ञान का सुन्दर ज्ञान था। विभिन्न परिस्थितियो के मध्य विभिन्न आचरण और व्यवहार तथा मनोवैज्ञानिक क्रिया-प्रक्रिया किस प्रकार कार्य-रत रहती है, इसके विश्लेषणात्मक निष्कर्ष उपस्थित करने में प्रसाद जी की उपलब्धि महत्वपूर्ण है। उनकी कहानियो तथा उपन्यासो मे विभिन्न प्रकार के मनो-वैज्ञानिक चित्र चित्रित हुए है, दूसरी ओर उनके नाटको की पात्रिया स्नेह की विविध मनोभूमि, राष्ट्रीय भावनाओ एव सास्कृतिक स्वरूपो को व्यक्त करती है। उनके काव्य मे श्रद्धा जैसी पूर्ण मानवी का भारतीय चित्र रचा गया है। इस प्रसाद साहित्य मे नारी चरित्रो को लेकर विविध दृष्टियो का सन्निवेश हुआ है। उनकी नारी कही अधिकारो के लिए संघर्षरत है, तो कही प्रणय की आकाक्षा से भरी-पूरी। कही वह सामाजिक कर्त्तव्य की प्रतिनिधि के रूप मे अवतरित होती है, तो कही उसका ज्योति-र्मय राष्ट्रीय स्वरूप झलकता दिखाई पडता है। कही वह अन्तर्द्वन्द्व और वैचारिक संघर्षों से जूझती प्रतीत होती है, तो कही पूर्ण समर्पण भावना से युक्त वह अपना सब कुछ खोकर प्रणय की छाया मे भर-नीद सोयी रहना चाहती है। कही उसका आत्म सम्मान जागृत होता दिखाई पडता है तो कही वह पूर्ण त्याग की प्रतिमूर्ति बनी दृष्टिगत होती है। इसी प्रकार यदि कही वह प्रणय को मोल लेने की चेष्टा करते दिखाई पडती है, तो कही छिप छिप कर, सबसे छिपा कर किसी को अपने अन्तस्थल के सुरक्षित कक्ष मे लुकाती हुई नजर आती है। कही उसका औदार्य, उस की सहनशीलता और उसकी संवेदनशीलता प्रतिलक्षित होती है तो कही उसका असत-रूप दृष्टिगत होता है। कही मानवी धरातल पर उसकी वैचारिक दृष्टि के दर्शन होते हैं, तो कही वह समाज के शीर्ष पर चढ़ी हुई आदर्शमयी का स्वरूप प्रस्तुत करती है। इस प्रकार प्रसाद जी की कृतियो

मे नारी के विविध चित्रो का समावेश हो गया है। इन सभी विविध और बहुरंगी चित्रों की विस्तृत विवेचना हम पूर्व प्रकरणों मे कर आए हैं। इतनी विविधता शायद ही अन्य किसी समकालीन हिन्दी साहित्यकार की कृतियों मे दिखाई पड सके। यह विविधता मूलत: उनकी तेजस्विनी काल्पनिक शक्ति तथा उससे भी अधिक उनके मन की संवेदनशीलता का परिणाम है। महिला पात्रों की इस विविधता में उनके मनोवैज्ञानिक ज्ञान का भी पता चलता है वे सौन्दर्य और प्रेम के कवि होने के साथ-साथ मानवीय भावनाओं के गायक भी थे, इसीलिए अपनी दूरस्थ विविधताओं मे भी उनके चरित्र श्रेष्ठ बन पड़े हैं।

पूर्ववर्ती नारी कल्पना से विभिन्नता

नारी विविधता के इस प्रसग में जो महत्वपूर्ण बातें उभरती हैं, वह है प्रसाद जी की पूर्ववर्ती नारी कल्पना से विभिन्नता। मैथिली शरण गुप्त और प्रेमचन्द जी प्रसाद जी के समकालीन रहे हैं। मैथिलीशरण गुप्त की नायिकाएं एक 'टाइप' हैं। लगभग सभी एक प्रकार की हैं। मानवीय उदात्त गुणों से विभूषित। विरही जीवन के सुख दुख, आशा निराशा और संवेदनशील भावनाओं के उतार चढ़ाव में ग्रस्त और विचारशील रहने वाली। सूर्पणखा अपवाद है। कैकेयी के चरित्र की उज्ज्वलता उत्तर भाग मे, इतनी स्वस्थ भाव भूमि पर चित्रित हुई है कि उसके प्रति उपेक्षा की भावना उत्पन्न ही नही होती। उनकी अधिकांश पात्रियां पत्नियां हैं, अत: गार्हस्थ्य धर्म में प्रवीण और पति-व्रत धर्म के आदर्शों का पालन करने वाली हैं। सांस्कृतिक निष्ठा की सुरक्षा और विकास के लिए गुप्त जी के नारी चरित्र 'माडेल' के रूप में उपस्थित किए जा सकते हैं। चरित्र चित्रण के प्रयास मे उनके भाव पक्ष के साथ साथ वैचारिक पक्ष का प्राबल्य भी कम नही रहा है। अत कहीं कहीं रूक्षता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। इसीलिए उनका साहित्य काव्य होते हुए भी प्रसाद काव्य की सी उत्कर्ष-स्थिति को नही पहुंच सका है। इसीलिए उनमे सांस्कृतिक निरूपण की भावना अधिक स्पष्ट रूप मे अभिव्यक्त हो गयी है और इसीलिए उनकी नारी भारतीय गृहिणी के आदर्श की ही प्रतिष्ठा करती हुई प्रतीत होती है। गुप्त जी के साहित्य में विविधता का समावेश अपेक्षाकृत कम हुआ है। हां, भारतीय आदर्शों की प्रतिष्ठा मे उन के चरित्र महान् है, इसमें कोई सन्देह नही किया जा सकता।

प्रेमचन्द जी मुख्य रूप से किसानो और मजदूरों के अभिव्यक्ता थे। उनके स्त्री पात्र सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त हैं। वैधव्य, बाल विवाह आदि रूढ़िगत संकीर्णता एवं पुरुष के पाशविक व्यवहार मुख्य रूप से उनकी विवेचना के विषय रहे हैं। गुप्त जी ने जहां सांस्कृतिक पीठिका पर भारतीय नारी को चित्रित किया है, वहां प्रेम चन्द का प्रयास समाजगत वस्तु स्थिति तथा उसके वैषम्य पूर्ण जीवन के निर्देशन तथा साथ ही निवारण को लेकर रहा है। उनकी प्रथम कृति 'प्रतिज्ञा' में

विधवा समस्या के प्रश्न को उठाया गया है। पूर्णा के जीवन की करुणा बाधित वैधव्य का करुण चित्र उपस्थित कर सकने में पूर्ण रूप से समर्थ है। इसी प्रकार 'वरदान' की बृजरानी, 'निर्मला' की कल्याणी और रुक्मणी तथा 'कर्मभूमि' की रेणुका इसी प्रकार के वैधव्य-दुखो से पीडित है। उनका कहना है कि पुरुष का नारी पर प्रभुता का भाव कभी भी नारी को पुरुष के गर्हित स्वार्थ से मुक्त नही होने देगा। 'वरदान' की बिरजन का सुहाग छिनते ही उसके जीवन मे विभीषिका विस्तीर्ण हो जाती है, और अन्त तक उसे उसमें अपनी भावनाओ का होम करते रहना पडता है। प्रेमचन्द ने वैवाहिक सस्थाओ पर भी गहरा व्यग्य किया है। इस प्रसंग मे उनका 'वरदान' प्रसाद जी के 'ककाल' के बहुत निकट जान पडता है। 'वरदान' मे उन्होने कहा है—

'हृदय का मिलाप सच्चा मिलाप है। सिंदूर का टीका, ग्रन्थि-बन्धन और भावर ये सब ससार के ढकोसले हैं।'

—पृ० १५३-१५४।

प्रसाद जी ने 'ककाल' मे कहा है—

'हृदय का सम्मिलन ही तो विवाह है। मैं सर्वस्व तुम्हे अर्पित करता हू और तुम मुझे। इसमें किसी मध्यस्थ की आवश्यकता क्यो—मन्त्रो का महत्व कितना।'

परन्तु प्रेमचन्द विवाह प्रसग में हृदय के मिलाप की बात कहते हुए धर्म की अवहेलना नही करते। धर्म और प्रेम दोनो के आधार पर ही विवाह की आयोजना होनी चाहिए, ऐसा उनका विश्वास था। 'काया कल्प' मे इसी भावना को अभिव्यक्ति मिली है। 'सेवा सदन' मे दहेज प्रथा का विरोध हुआ है। विच्छेद की समस्या भी उनके द्वारा उठाई गई है। 'कर्मभूमि' मे विच्छेद को समर्थन प्राप्त हुआ है। 'गोदान' में भी वे इसी भाव की मान्यता प्रतिष्ठित करते हैं। इसी सदर्भ मे दाम्पत्य जीवन की असफलता पर भी प्रकाश डाला गया है। उनकी मान्यता है कि पति की पत्नी के प्रति उपेक्षा, उसकी अधिकार भावना, पत्नी के प्रति अविश्वास, गृह कलह, कटु व्यवहार और इन सबसे विशेष नवीन और प्राचीन मान्यताओ के सघर्ष ही वैवाहिक जीवन की असफलता के कारण है। वे पतिव्रत के एकागी आदर्श को मानकर नहीं चलते। उनकी दृष्टि मे सामजस्यपूर्ण व्यवहार ही गृहस्थी की सुख पूर्ण पीठिका प्रस्तुत कर सकने मे समर्थ हो सकती है। इस प्रकार से प्रेमचन्द जी के नारी पात्र बाह्य सघर्षों की ही अभिव्यजना करते हैं। अन्तर्संघर्ष की उद्भावना करने वाले चरित्र प्रेमचन्द साहित्य मे अधिक नहीं बन सके है।

हिन्दी लेखकों की ही भाति तत्कालीन बगाली साहित्यकारो द्वारा भी नारी सम्बन्धी लगभग वैसी ही अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। रवीद्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त जी के अधिक पास ठहरते हैं। उनकी पात्रियां भी अधिकाश मे पत्निया ही

हैं। उनका सांस्कृतिक स्वरूप उज्ज्वल एवं स्पष्ट है। साथ ही सामाजिक विषमताओं और कुप्रथाओं पर तीखा व्यंग्य भी किया है। 'घर और बाहर' की विमला का एक-निष्ठ पति प्रेम उसके व्यक्तित्व को बहुत ऊंचा उठा देता है। परन्तु उसके सामाजिक व्यक्तित्व को निखिलेश अधिक उदारतापूर्वक नहीं देख सका है। नारी की सामाजिक स्वतन्त्रता की समस्या को उपस्थित करने में यह उपन्यास सफल रहा है। 'नष्ट-नीड़' की चारुलता बाल-विवाहिता है। पारिवारिक सीमाओं में वह बन्दिनी है। उसको साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित करने का उद्देश्य महिला-समाज में शिक्षा का प्रचार करना है। उसमें पति भक्ति की भावना विद्यमान है। उसका प्रेम अन्तर्मुखी है। अमल के प्रति चारु की रागात्मक-प्रवृत्ति का विकास उपन्यास में मनोवैज्ञानिक संवेदनाओं को प्रकट करता है। 'मध्यवर्तिनी' कहानी में पार्वती का पति के लिए त्याग महान् उदात्त भावना से सिक्त है। वह अपनी सेवाओं के कारण ही स्तुत्य है। पड़ोसिन' कहानी में बाल-विधवा के करुण चित्र का अंकन हुआ है -

'मेरी पड़ोसिन बाल-विधवा है। वह मानो शिशिर के आंसुओं में भीगी हुई कुन्द कली के समान डंठल से अलग हो गई है। और किसी की सुहाग रात के लिए नहीं, बल्कि केवल देव-पूजा के लिए ही उत्सर्ग कर दी गई है।'

—रवीन्द्र कथा-कुञ्ज, पृ० १५

'दो बहनें' उपन्यास में नारी के मातृत्व को तथा उसके प्रणयिनी रूप को स्थिर किया गया है। शशांक अपनी पत्नी में स्नेहमयी सावधान माँ की छाया देखता है। अतः उसका पुरुष अतृप्त रह जाता है। उर्मी उस अभाव को पूर्ण करती है। रवींद्र का मत है कि 'स्त्री जहां स्त्री है, पुरुष को वहीं यथार्थ पौरुष के लिए अवकाश मिलता है।'

—रवींद्र साहित्य, भाग १, पृ० २।

संक्षेप में रवींद्रनाथ जी के नारी चरित्रों के विषय में यह कहा जा सकता है कि उनके अधिकांश चरित्र पारिवारिक जीवन की पृष्ठभूमि पर अवतरित हुए हैं। उनकी नारी में प्रणय भाव की अपेक्षा वात्सल्य और ममता का भाव ही अधिक है। वे पूर्ण रूप से घरेलू चित्र हैं। रवींद्र नाथ ने नारी को पुरुष से स्पर्धा करने वाली न मान कर उसको पूर्णता के रूप में ग्रहण किया है। नारी की आत्मा जीवन को सौंदर्य प्रदान करने वाले उपकरणों से संतुष्ट नहीं होती। वह सौंदर्यमयी है, इसीलिए सौंदर्यपूर्ण वातावरण ही उसका अपना क्षेत्र है[1]। उसके जीवन का ध्येय पुरुष का अनुकरण करना, उसके समानांतर चलना या उससे प्रतिस्पर्द्धा करना नहीं है। उसकी प्रकृति भिन्न है, अतः उसका कार्यक्षेत्र भी भिन्न होना चाहिए। वह पुरुष की सहायिका है, उसकी निर्देशिका भी। परन्तु सहयोग और निर्देश का अर्थ नकल करना, अनुकरण करना और इससे विशेष स्पर्धा करना कदापि नहीं है। उसे अपना सही स्थान खोजना

१—दिलीप कुमार राय : एमांग द ग्रेट, पृ० १७५।

है, दूसरे के स्थान की पूर्ति नही करनी है । उसके द्वारा समाज का कल्याण अपने धर्म के प्रति निष्ठावान रह कर ही किया जा सकता है । प्रेम और पारिवारिक जीवन नारी के यथार्थ क्षेत्र हैं । इन्ही की पीठिका मे उसके व्यक्तित्व का विकास होना श्रेयस्कर है ।

जिस प्रकार से रवींद्र जी के नारी चरित्र मैथिलीशरण जी की नारी-कल्पना के अधिक निकट प्रतीत होते है, उसी प्रकार शरतचन्द्र तथा बकिमचन्द्र के नारी पात्र प्रेमचन्द जी के नारी पात्रो के समान सामाजिक विषमताओ की पृष्ठभूमि मे चित्रित हुए है । बकिम जी की कृति 'रजनी' मे वृद्ध विवाह की कुरीति पर प्रहार किया गया है । ललित लवग का कैशार्य राम सदय के वृद्धत्व से बाध दिया जाता है । पुरुष नारी को सामान्य सम्पत्ति के रूप मे ग्रहण करता है, जिससे नारी के व्यक्तित्व का हनन होता है । शरत् के उपन्यासो मे यह भावना अधिक विस्तार से प्रेमचन्द के विस्तार की भाँति प्रकट होती है । 'बड दिदि' की माधवी बाल-विधवा है । सुरेन्द्र के प्रति वह निसर्ग भावना से आकृष्ट होती है । उसका रूप, उसका यौवन, उसकी निराश्रयावस्था मे उसके लिये अभिशाप बनता है । वह गाँव छोडकर चली जाती है । उसमे संयम की गहन गम्भीरता विद्यमान है, इसीलिये उसका चरित्र उच्छृखल नही हो पाया है । उसका चारित्र उदात्त गुणो से पूर्ण है तथा उसकी शुभ्रता श्रद्धास्पद है । 'रामेर सुमति' की नारायणी मे भी इसी सद्वृत्ति का विकास दिखाया गया है । वह अपने चरित्र की उच्चता मे 'हिमालय से भी महान्' है । उसका व्यक्तित्व बाह्य सघर्षों के बीच पिस कर कण-कण बिखरता प्रतीत होता है । फिर भी कहीं अति मानवीय गुणो को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा नही की गई है । 'चन्द्रनाथ' में विधवा-विवाह की समस्या को उठाया गया है । विधवा को विवाह की स्वीकृति प्रदान करने मे सबसे बडा भय समाज का है, इस कथन की पुष्टि की गई है । 'बिदुर छेले' की बिंदो भी इसी प्रकार का दुर्भाग्यपूर्ण जीवन बिताती है । 'बिराज बहू' में भारतीय गृहिणी का आदर्श प्रतिष्ठित किया गया है । उसकी सकल्प शक्ति एवं चारित्रिक दृढता इस कृति की मूल सवेदना है । 'परिणीता' की ललिता के मानसिक सम्थान मे शरत् के नारी पात्रो मे स्वाभाविक मूलभूत गहराई का अभाव है । उसका जीवन विराज-बहू की अपेक्षा अधिक सरल और सुलझा हुआ है । 'चरित्रहीन मे फिर से विधवा-विवाह के प्रश्न को उठाया गया है । सावित्री इसी कारण, कि वह विधवा है, सतीश को अपना सकने मे असमर्थ रही है । परतु यहा शरत् की नारी का विद्रोह मुखरित होता है । उसमे बौद्धिक जागृति का सम्पूर्ण उन्मेष पहली बार शरत् साहित्य में प्रतिलक्षित हुआ है । यहा से उनकी नारी 'सावित्री' के समान पतिभक्त और 'भगीरथी' के समान पवित्र नही रह जाती । वह अटल पति-भक्ति पर

भी विश्वास नहीं करती । यहीं से मानसिक संघर्षों का आरम्भ होता है और शरत् प्रेमचन्द जी से हट कर प्रसाद जी के निकट प्रतीत होने लगते हैं । 'चरित्रहीन' की किरण को समाज के विधान से भय नहीं है । धार्मिक संस्था को वह जीवन के सत्य से बड़ा नहीं मानती । किरणमयी के चरित्रांकन में शरत् कुछ जर्जर परम्पराओं एवं अकल्याणकारी विश्वासों का ध्वंस कार्य करते दीख पड़ते हैं जैसा आगे चलकर प्रसाद जी के साहित्य में प्रचुर मात्रा में दृष्टिगत होता है । किरण प्रेम-भाव की स्वतन्त्र प्रतिष्ठा का आदर्श लेकर उपस्थित होती है । उसके चारित्रिक अवयवों में प्रेम ही सर्व-प्रमुख है । उसकी स्थूल भावनाओं का उभार उसकी अन्तर्दमित वासना का परिणाम है । यह मनोविश्लेषण-प्रवृत्ति शरत् में किरण से ही प्रारम्भ होती है । शरत् इस चरित्र के माध्यम से यह घोषणा करते प्रतीत होते हैं कि नारी जीवन का पर्याय प्रेम ही है । पति प्रेम के अभाव में वह सतीश, दिवाकर और उपेंद्र से प्रेम करती है और मुख्य बात तो यह है कि वह इसे बुरा भी नहीं मानती । 'चरित्रहीन' में प्रेम का दुहरा संघर्ष प्रतिलक्षित होता है । किरण की व्यभिचार वृत्ति के पीछे एक सामाजिक कारण है । वह स्वयं इस उच्छृंखलता के लिये उत्तरदायी नहीं है । समाज भी समान रूप से जिम्मेदार है । नारी के स्वतन्त्र प्रेम के आदर्श को 'शेष प्रश्न' में व्यवस्थित अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है । इस कृति में एकनिष्ठा के आदर्श को इस प्रकार नितांत निराधार घोषित कर दिया गया है—

'स्रोत के खिंचाव से कौन कब पास आ जाता है और कब दूर चला जाता है, इसका हिसाब कोई नहीं जानता[1] ।'

'शेष-प्रश्न' की कमल प्रणय भावना को शुद्ध मनोविज्ञान की पीठिका पर प्रस्थापित करती है । उसके विवाह सम्बन्धी सिद्धांत प्रचलित मान्यताओं के प्रतिकूल बैठते हैं । वह विवाह संस्था की असफलता और खोखलेपन पर व्यंग्य करती है—

'वह तो अनभिज्ञ यौवन का पागलपन नहीं है । बहुदर्शी गुरुजनों द्वारा किया गया कार्य है । सपने का मूलधन नहीं है—आँखों से देखी हुई पक्के आदमियों द्वारा जाँच पड़ताल की हुई शुद्ध वस्तु है[2] । वह प्रणय प्रसंग में जातिगत एवं साम्प्रदायिक भेद-भाव पर भी विश्वास नहीं करती तथा हृदय के सम्मिलन को ही महत्व प्रदान करती है ।

शरत् की दूसरी कृतियों में एक ओर यदि नारी का शान्त, उदात्त स्वरूप चित्रित हुआ है, तो दूसरी ओर उनकी विवशता की, अभावों की और उसके प्रति अपार दयनीयता की कहानी भी प्रस्तुत की गई है । 'श्रीकांत' की राजलक्ष्मी दया,

१—राम स्वरूप चतुर्वेदी : शरत् के नारी पात्र, पृ० ७५ पर उद्धृत ।
२—वही, पृ० २४३ पर उत्कथित ।

ममतामय है, साथ ही स्पष्टवादिनी और सहज अभिमानपूर्ण भी । वेश्या का जीवन व्यतीत करने पर भी वह व्यभिचार बुद्धि से रहित है । उसे भारतीय सतीत्व के आदर्श पर गर्व है और जब उसे इस प्रकार रहने का अवकाश मिलता है तो वह उनका पूर्ण निर्वाह भी करती है । इसी प्रकार भागीरथी अपनी चारित्रिक शुद्धता और उदात्त गुणो मे बडी महान् प्रतीत होती है । 'देवदास' की पारो एवं गृहदाह की मृणाल भी इसी कोटि की सदवृत्तिपूर्ण महिलाए है । दूसरी ओर, 'पडित भा शाइ' की कुसुम, 'पल्ली समाज' की रमा तथा 'अरक्षणीया' की दुर्गा अपने दुर्भाग्य की विस्तृत, कभी समाप्त न होने वाली कहानी सुनाती है ।

'गृह-दाह' की अचला का चरित्र-निर्माण मनोवैज्ञानिक पीठिका पर हुआ है । अचला मे मानसिक सघर्ष की विस्तृत भूमिका निर्मित हुई है । यहा भी एकनिष्ठ प्रेम की लोक मान्यता पर कुठाराघात किया गया है और नारी के स्वतत्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की गई है ।

'नारी का मूल्य' मे शरत् ने नारी के प्रति की गई सामाजिक क्रूरताओं पर कठोर व्यग्य किए है । उनका मत है कि यह विश्वास है कि नारी का सतीत्व पुरुष के लिए उपादेय है, नारी पर पुरुष की क्रूरता है[1] । देवत्व की आड लेकर पुरुष ने नारी की दुर्दशा की है[2] । वेश्यावृति और सम्बन्ध विच्छेद पर भी उनके विचार बहुत ही स्पष्ट हैं । बगाल मे वेश्या-गणना के आधार पर कुछ तथ्य प्रकट हुए हैं । वेश्या-वृति अपनाने वाली महिलाओ मे ७० प्रतिशत सधवा है तथा ३० प्रतिशत विधवा । इसका कारण आर्थिक दारिद्रय अथवा पति या कुटुम्बियो के अत्यधिक अत्याचार और उत्पीडन है ।

शरत् समाज का अर्थ नर और नारी के रूप मे लेते हैं । उनकी मान्यता है कि समाज मे नारी के पतन से नर और नारी दोनो का ही अनिष्ट होता है । उन्होंने नारी के सामाजिक अधिकारो की जोरदार वकालत की है । उसे पुरुष के समान सामाजिक स्वीकृति देने का प्रयास किया है । सामाजिक रूढिवादिता पर जिसने उसके व्यक्तित्व का हनन् कार्य कर डाला है, व्यग्य उपस्थित किये है और नारी के प्रणय-भाव को मनोवैज्ञानिक भाव-भूमि पर अभिव्यक्त किया है । इस सम्बन्ध मे वे नारी और प्रेम को पर्याय मान कर चले हैं तथा उसको भी पुरुष के समान ही प्रणय की सुविधा प्रदान करने का समर्थन करते हैं । 'पथर दावी' मे भारती के चारित्रांकन मे राष्ट्रीय भावना का भी समावेश किया गया है । और इस प्रकार से उन्होने नारी-सम्बन्धी उन सभी प्रसगो को अपने साहित्य में स्थान दिया है, जिन्हे प्रसाद जी अपने साहित्य मे लेकर चले है ।

१—नारी का मूल्य, देखिए पृष्ठ ४ ।

२—नारी का मूल्य, देखिए पृष्ठ १० ।

आधुनिक मराठी लेखकों में ना० सी० फड़के, वि० स० खाण्डेकर, मामा वरेरकर तथा शि० चोगुले का नाम उल्लेखनीय है। चोगुले जी की साहित्यिक पृष्ठ-भूमि प्रेमचन्द जी की ही भांति ग्रामीण है। अतः ग्रामीण नारी-जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास इनके साहित्य में अधिक हुआ है तथा साथ ही आदर्श स्थापना की चेष्टा भी रही है। 'जमींदार की बेटी' में मुन्नी को शिक्षा में प्रवीण विवेकशील और विचार पूर्ण बतलाया है। इस उपन्यास की कथा वस्तु अन्तर्जातीय विवाह तथा शिक्षित एवं आयु में अधिक युवतियों के विवाह की समस्या पर विशेष रूप से प्रकाश डालती है। मामा वरेरकर के 'हक के गुनाम' में बहु-विवाह प्रथा पर व्यंग्य हुआ है। सामाजिक संकीर्णता तथा नारी के वैभव्यपूर्ण जीवन की विषमताएं इस उपन्यास का विषय रही हैं। ना० सी० फड़के तथा वि० स० खाण्डेकर की प्रवृत्ति मूलतः रोमान्टिक रही है। स्त्री और पुरुष के स्वाभाविक निसर्ग सम्बन्धों पर विश्लेषणात्मक निष्कर्ष लेने तथा अन्तर्भावनाओं के संघर्ष को प्रस्तुत करने का प्रयास ही अधिक रहा है। 'कुलमी-मजरी' (खाण्डेकर) की कुसुम इसी संघर्ष का शिकार है। इसी कृति की नमुनाई के चरित्र में बर्नार्ड शा की नारी सम्बन्धी भावना अभिव्यक्त हुई है, जो पुरुष को अपना भोज्य बनाती है। मनोवैज्ञानिक संघर्षों के चित्रण के साथ साथ, रूढ़िवादिता पर कठोर व्यंग्य एवं सामाजिक नैतिक मान्यताओं के खोखलेपन का यथार्थ चित्रण खाण्डेकर जी की कहानियों में दृष्टिगत होता है, जो उनके साहित्यिक विस्तार को महत्वपूर्ण बना देता है।

उड़िया उपन्यासकार फकीर मोहन सेनापति प्रेमचंद की परम्परा में आते हैं। 'छः बीघा जमीन' में भगिया या जीवन 'गोदान' की धनिया के समानान्तर चलता है। मलयालम भाषा का चेम्मीन (मछुवारे : ले० तकषी शिव शंकर पिल्ले) तटवर्ती प्रदेशों के निवासियों की कहानी प्रस्तुत करता है। करुतम्मा का प्रणय मनोवैज्ञानिक मनोभूमि पर चित्रित हुआ है तथा विभिन्न रूढ़िवादिता एवं विश्वासों के होते हुए भी मनोविश्लेषण-विज्ञान की पृष्ठभूमि ही अधिक सुदृढ़ बन पड़ी है।

तो, हम प्रसाद की नारी कल्पना के वैभिन्न्य की बात कह रहे थे। जहाँ तक समकालीन हिन्दी साहित्यकारों का प्रश्न है, हम इतना अवश्य कहना चाहेंगे कि गुप्त जी के नारी पात्रों में अंकित सांस्कृतिक और पारिवारिक रूप के अतिरिक्त भी प्रसाद जी की नारी कल्पना में कुछ और है। जो नया है और जिसकी अभिव्यक्ति प्रसाद जी ने अपने मौलिक ढंग से की है। प्रसाद जी की नारी-कल्पना गुप्त जी की अपेक्षा अधिक विस्तृत भाव-भूमि पर अभिव्यक्त हुई है। गुप्त जी में अन्तर्संघर्ष पूर्ण चित्र नहीं मिलते, प्रसाद जी का कथा-साहित्य इससे आपूर्ण है। गुप्त जी के साहित्य में विभ्रष्ट चरित्र अपवाद रूप में ही आ सके हैं, उनकी सांस्कृतिक लेखनी असत् भाव का स्पर्श करने से जैसे हिचकती रही है, इसके विपरीत प्रसाद जी ने सत्-असत् व्यव-

हार-आदर्श, कल्पना-यथार्थ आदि सभी पक्षों को अपनी साहित्यिक चर्चा का विषय बनाया है। प्रेमचन्द मे सामाजिक पक्ष की प्रधानता है। सामाजिक स्तर पर प्रेमचन्द जी ने नारी वर्ग के बाह्य संघर्ष को प्रसाद जी से अधिक और खूब बारीकी तथा खूब विस्तार के साथ चित्रित किया है। प्रसाद जी ने भी नारी की समाजगत स्थिति के चित्र उपस्थित किए हैं, परन्तु प्रेमचन्द जी की अपेक्षा बहुत कम। विशेष रूप से कुछ कहानियो मे ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नाग यज्ञ और कंकाल में। तितली मे भी इससे सम्बन्धित वर्णन मिलते हैं, परन्तु प्रसगवश ही। यदि सामाजिक विषमता के चित्रण में प्रेमचन्द जी प्रसाद जी से बहुत आगे हैं तो नारी के सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय स्वरूप के सदर्भ में प्रसाद जी प्रेमचन्द को काफी पीछे छोड देते हैं।

अन्य भारतीय साहित्यकारों के विवेचन में बगाली लेखकों के नाम सर्व प्रथम आते हैं। रवीन्द्र की नारी-कल्पना मे सामाजिक सुधारो की योजना ती है लेकिन नारी के प्रति वे एक पूर्व निर्मित दृष्टिकोण लेकर चले प्रतीत होते हैं। उनके सभी नारी-पात्र अच्छे हैं, सत् हैं और यदि बुरे हैं तो मात्र समाज की क्रूरता के कारण ही। रवीन्द्र की नारी-कल्पना श्रद्धास्पद रही हैं। दूसरी बात, उन्होने नारी के पारिवारिक आदर्श को प्रसाद से अधिक महत्व दिया प्रतीत होता है। इतना अधिक कि उनकी नारी-भावना कहीं कहीं पर एकांगी सी लगती है। प्रसाद जी रवीन्द्रनाथ जी से अधिक प्रगतिशील हैं। उन्होंने भारतीय सस्कृति का आदर्श तो माना है, परन्तु सामाजिक जागृति और क्रान्ति की अवहेलना नहीं की है। उस आलोक में नारी के अधिकारों के प्रति उपेक्षा का भाव प्रकट नही होने दिया है। उन्होने भी सुधार-योजना पर विश्वास किया है। परन्तु विशेष परिस्थितियो मे क्रान्ति को भी उचित ठहराया है। रवीन्द्र इतना नही बढ सके हैं। यह क्रान्ति तो शरत् के परवर्ती साहित्य में प्रतिलक्षित होती है। शरत् के नारी पात्रो की प्रसाद के नारी पात्रों से अच्छी तुलना हो सकती है। शरत प्रसाद जी से किसी भी क्षेत्र मे (नारी के राष्ट्रीय स्वरूप के अतिरिक्त) कम नही है। उन्होने प्रसाद जी से अधिक नारी की वस्तु स्थिति को समझने, समझाने और सुलझाने की चेष्टा की है। सामाजिक रूढ़िवादिता पर उनके प्रहार प्रसाद जी से कम कठोर नही रहे हैं। तथाकथित नैतिकता की उन्होंने भी धज्जी उड़ाई है। उनकी नारी प्यार करने के अधिकार की माँग पेश करती है। वह साहसशीला है। रूढ़ियो की बाधाओं को, जिसने उसके व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध कर दिया है, वह तोड डालने के लिए तत्पर है। उनके 'चरित्रहीन' की किरण १९१४ की (चरित्र हीन के प्रकाशन की तिथि) नारी न लग कर १९६४ की नारी लगती है, और उस समय ऐसी नारी का चित्रांकन और उसका पक्ष-समर्थन लेखक के अमित साहस का ही परिचायक कहा जा सकता है। शरत् निश्चित रूप से नारी चित्रण के विविध पक्षो में प्रसाद जी के समान और कहीं नही उनसे अधिक प्रगतिशील एवं साहस युक्त जान पड़ते हैं। उनका दृष्टिकोण प्रसाद जी की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी

दूसरी ओर विशिष्ट वर्गीय नारी-वर्ग पर भी (अपनी संख्या में बहुत ही कम) जो अर्थ और वैचारिक विकास के बल पर पहले प्रकार की नारी से एक दम विपरीत दिशा में अग्रसर हो रहा था, उनकी दृष्टि पड चुकी थी। सामाजिक स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक था कि इन दो विपरीत दिशाओ मे जाने वाले नारी-वर्ग के बीच एक सामंजस्य पूर्ण आदर्श की प्रतिष्ठा हो। इन दो विपरीत आदर्शों के मध्य एक समझौता हो, जिससे समाज के सुगमतापूर्ण विकास मे कोई बाधा उत्पन्न न हो सके। प्रसाद जी ने ऐसा ही किया है। पिछले पृष्ठ पर हम कह आए हैं कि मनोवैज्ञानिक पीठिका पर उन्होने संघर्षात्मक चित्र प्रस्तुत किए हैं। परन्तु अन्त मे इन विषम चरित्रो में सामञ्जस्य पूर्ण स्थिति का निर्वाह भी हुआ है। प्रसाद जी की नारी अपने वैचारिक पक्ष में भी भावनामयी है। उसमे बौद्धिक पक्ष प्रधान नही है। व्यभिचार बुद्धि सदा असत् की ओर प्रेरित करती है। अनतदेवी, मागन्धी, तथा विजया के चरित्र इसी बात को पुष्ट करते हैं। उधर देवसेना, मालविका तथा श्रद्धा आदि उदात्त चरित्र अपनी संघर्षात्मक परिस्थिति मे भी उदात्त गुणों से युक्त होकर जीवन मे सामरस्य की आदर्श-स्थापना करते हैं। इसी सामजस्य पूर्ण स्थिति की प्रतिष्ठा प्रसाद का आदर्श रहा है, जो आधुनिक समाज की संघर्षरत नारी के लिए स्वस्थ निर्देश है। कोरी बौद्धिकता से सत् भाव का विकास नही हो पाता, इसके लिए भावात्मक पृष्ठभूमि की महती आवश्यकता है। प्रसाद जी ने, मानव को इडा के पास छोड़ती हुई श्रद्धा के इन शब्दों में इसी समन्वय भाव को अभिव्यक्ति प्रदान की है—

'यह तर्कमयी तू श्रद्धामय
तू मनन शील कर कर्म अभय
इसका तू सब संताप निचय
हर ले, हो मानव भाग्य उदय।'

—कामायनी, पृष्ठ २४४।

संदर्भ ग्रन्थ

प्रसाद-साहित्य

काव्य—

कामायनी, आसू, लहर, झरना, महाराणा का महत्त्व, प्रेम-पथिक, करुणालय, कानन-कुसुम ।

नाटक—

स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, विशाख, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री, एक घूंट ।

उपन्यास—

ककाल, तितली, इरावती ।

कहानी-सग्रह—

आकाशदीप, इँद्रजाल, प्रतिध्वनि, आधी, छाया ।

विविध विषय—

काव्य और कला तथा अन्य निबध, चित्राधार ।

अन्य साहित्यिक कृतियां

अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध'

प्रिय प्रवास, अधखिला फूल, कल्पलता ।

अमृतराय

कस्बे का एक दिन, कठघरे, भोर से पहले ।

अमृता प्रीतम

पिंजर, डा० देव ।

अज्ञेय

शेखर एक जीवनी (भाग १ व २), नदी के द्वीप, जय दोल ।

उपेंद्रनाथ 'अश्क'

अलग-अलग रास्ते, कैद और उडान, जय पराजय, पक्का गाना, काले साहब, पत्थर अल पत्थर, कहानी लेखिका और जेहलुम के सात पुल ।

किशोरीलाल गोस्वामी

आदर्श सती, राजकुमारी, स्वर्गीय कुसुम, सुख सर्वरी, मालती माधव।

किशोर साहू

नागिनें और बुलबुलें।

गुरुभक्त सिंह

कुसुम कुञ्ज, नूरजहाँ, वनश्री।

जैनेंद्र कुमार

त्याग पत्र, सुनीता, परख, वातायन।

धर्मवीर भारती

गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा।

नरेंद्र शर्मा

मिट्टी और फूल, प्रवासी के गीत, प्रभात फेरी।

नीरज

विभावरी, नीरज की पाती, दर्द दिया है, दो गीत।

प्रेम घन

प्रेम घन सर्वस्व (भाग १)।

प्रताप नारायण मिश्र

प्रताप नारायण मिश्र ग्रन्थावली (भाग १)।

प्रेमचंद

वरदान, प्रतिज्ञा, निर्मला, काया कल्प, कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन, गोदान, मंगलसूत्र, सेवा सदन।

बलदेव प्रसाद मिश्र

शृंगार शतक।

बाबू छेदीलाल

अबलोन्नति पद्यमाला।

बाबा भगवानदीन

पंच रत्न।

बच्चन

सतरंगिनी, मिलन, यामिनी, धार के इधर-उधर।

बालकृष्ण भट्ट

माधवी-माधव, नल-दमयंती, सौ अजान एक सुजान, भट्ट निबंधावली (भाग १, २)।

भगवती प्रसाद वाजपेयी

निमंत्रण, दो बहनें, उतार-चढ़ाव।

भगवतीचरण वर्मा

तीन वर्ष, आखिरी दाव, अपने खिलौने, इस्टालमेट, दो बाके, राख और चिगारी ।

भारत भूषण अग्रवाल

ओ अप्रस्तुत मन ।

भारतेंदु हरिश्चंद्र

भारतेंदु ग्रथावली (भाग १ व २) ।

मैथिलीशरण गुप्त

भारत भारती, किसान, पचवटी, जयद्रथ वध, द्वापर, साकेत, यशोधरा, वैदेही वनवास, सिद्धराज ।

महादेवी वर्मा

अतीत के चलचित्र, पथ के साथी, शृखला की कडिया, साध्य गीत ।

मार्कण्डेय

पान-फूल, हमा जाई अकेला ।

यशपाल

देशद्रोही, दादा कामरेड, मनुष्य के रूप, दिव्या, उत्तमी की मा, तुमने क्यो कहा था मैं सुन्दर हू ।

राजेंद्र यादव

खेल-खिलौने, उखडे हुए लोग ।

राम विलास शर्मा

रूप-तरग ।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

रश्मि रथी ।

रामानद तिवारी

पार्वती ।

रामकुमार वर्मा

रूप-राशि, रजत-रश्मि ।

राधाकृष्ण दास

महारानी पद्मिनी, दुखिनी बाला, निस्सहाय हिंदू ।

रामचरित उपाध्याय

राम चरित चितामणि ।

रामनरेश त्रिपाठी

मिलन, पथिक, स्वप्न ।

लक्ष्मीनारायण मिश्र

सिंदूर की होली, मुक्ति का रहस्य, वत्सराज ।

लक्ष्मीनारायण लाल

बया का घोसला और सांप ।

वृन्दावनलाल वर्मा

मृगनयनी ।

विनोद रस्तोगी

रुपया, रूप और रोटी ।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

अनामिका, परिमल ।

सुमित्रानंदन पंत

पल्लव, ज्योत्स्ना, युग वाणी, ग्राम्या, पांच कहानियां ।

सोहनलाल द्विवेदी

हुंकार, चित्रा, वासंती, कुणाल ।

सियाराम शरण गुप्त

गोद ।

श्रीधर पाठक

भारतीय वीणा ।

हरिकृष्ण प्रेमी

रक्षाबंधन, छाया ।

अनूदित कृतियां

बर्नार्ड शा	मिसेज वारेन	अंग्रेजी से अनूदित
	स्टीफेन ज्वीग की कहानियां	,, ,,
रवींद्र साहित्य, भाग १, २, ५, ६ और ८ ।		बंगला से अनूदित
शि० चौगुले	जमींदार की बेटी	मराठी से अनूदित
मामा वरेरकर	हक के गुलाम	,, ,,
ना० सी० फडके	बस नं० बारह	,, ,,
वि० स० खांडेकर	भुलसी मंजरी	,, ,,
	दो मन	,, ,,
	प्रीति की खोज	,, ,,
फकीर मोहन सेनापति	छ बीघा जमीन	उड़िया से अनूदित
तकषी शिव शंकर पिल्ले	मछुवारे	मलयालम से अनूदित
समरसेट माम	शैतान में खुदा	अंग्रेजी से अनूदित

प्रसाद सम्बन्धी समीक्षा ग्रंथ

नंद दुलारे वाजपेयी	जयशंकर प्रसाद
रामलाल सिंह	कामायनी अनुशीलन

गुलाबराय	प्रसाद जी की कला
इद्रनाथ मदान	जयशकर प्रसाद चिंतन व कला
परमेश्वरीलाल गुप्त	प्रसाद के नाटक
जगन्नाथ प्रसाद शर्मा	प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन
विनय मोहन शर्मा	कवि प्रसाद—आसू तथा अन्य कृतिया
प्रेमशकर	प्रसाद का काव्य
फतेहसिह	कामायनी सौंदर्य
रामरतन भटनागर	प्रसाद साहित्य और समीक्षा
रामनाथ सुमन	प्रसाद की काव्य साधना
विनोद शकर व्यास	प्रसाद और उनका साहित्य
खण्डेलवाल स्नातक	महाकवि प्रसाद
सुधाकर पाण्डेय	कामायनी समीक्षा, प्रसाद की कविताए
महावीर अधिकारी	जयशकर प्रसाद, जीवनी कला और कृतित्व
जगदीश नारायण दीक्षित	प्रसाद के नाटकीय पात्र
द्वारिका प्रसाद	कामायनी मे काव्य, सस्कृति और दर्शन
शम्भुनाथ पाण्डेय	ध्रुवस्वामिनी और प्रसाद
	प्रसाद जी की नाटय कला और अजातशत्रु
सुशीला कुमारी, विमला कुमारी	प्रसाद के उपन्यास और कहानिया
प्रसाद परिषद द्वारा सकलित	प्रसाद का साहित्य

अन्य समीक्षा ग्रथ

शैल कुमारी	आधुनिक हिंदी साहित्य मे नारी भावना
लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	आधुनिक हिंदी साहित्य
सुधींद्र	हिंदी कविता मे युगातर
रामचद्र शुक्ल	हिंदी साहित्य का इतिहास
रामरतन भटनागर	भारतेदु हरिश्चद्र
किशोरीलाल गुप्त	भारतेदु तथा अन्य सहयोगी कवि
राजेंद्र प्रसाद शर्मा	हिंदी गद्य के निर्माता—बालकृष्ण भट्ट
गगा बख्श सिह	द्विवेदी युगीन निबध साहित्य
उदय भानु सिह	महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग
श्री कृष्ण लाल	आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास
नगेंद्र	आधुनिक हिंदी कविता की प्रमुख प्रवृत्तिया

डा० देवराज	आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में मनोविज्ञान
राम स्वरूप चतुर्वेदी	शरत् के नारी पात्र
भोलाशंकर व्यास	मराठी कवि दर्शन
महेंद्र भटनागर	समस्या मूलक उपन्यासकार प्रेमचंद
केंडलर	एस्पेक्ट्स आफ माडर्न ड्रामा
आर. ए स्काट	फिफ्टी ईयर्स आफ इंगलिश लिटरेचर
डब्ल्यू. एच. हडसन	कीट्स एण्ड हिज पोयट्री
जान एम मुरी	कीट्स एण्ड शेक्सपियर
ला सिमफोनीपेस्टोरेल	आंद्रे गिड

समाज शास्त्र

ए. एस. अल्तेकर	द पोजिशन आफ वीमन इन हिन्दू सिवलीजेशन
नीरा देसाई	वीमन इन माडर्न इण्डिया
सी. वाई चिंतामणि	इण्डियन सोशल रिफार्म
मार्गरेट ई. कजिन्स	इण्डियन वीमन टुडे एंड डे
चंद्रकला हाते	हिंदू वीमन एण्ड हर फ्यूचर
एच. सी. ई. जकारिया	रिनसेंट इण्डिया
एनी बीसेंट	वेक अप इण्डिया
	बिल्डर आफ न्यू इण्डिया
	फार इण्डियाज अप-लिफ्ट
मोहनदास करमचंद गांधी	वीमन
थामस	वीमन एण्ड मेरिज इन इण्डिया
इक़बाल सिंह, राजाराव	व्हीदर इण्डिया
क्लेवरडन	द वीमन सफरेज मूवमेंट इन कनाडा
जैनसन	द रिवोल्ट आफ अमेरिकन वीमन
अर्नेस्ट ग्रोव्ज	द अमेरिकन वीमन
लण्डबरी तथा फोर्नहम्	माडार्न वीमन—द लास्ट सैक्स
जान फिट्ज्सीमन्स	वीमन टु डे
सर ए. अब्राहम	वीमन—मैन्स इक्वल
हैरी बेस्ट	द सोवियट स्टेट एण्ड इट्स इन्सपैक्शन
ह्यूगो पी. थीम	वीमन आफ माडर्न फ्रांस
	द वीमन इन पोलैंड

	वीमन इन नाजी जर्मनी
	वीमन इन सोवियट रशिया
वाई एम रेगे	व्हीदर वीमन
ए आर देसाई	सोशल बैंक ग्राउण्ड आफ इण्डियन नेशनलिज्म
विवेकानद	भारतीय नारी
धर्मदेव शास्त्री	हिमाचल प्रदेश की आदिम जातिया
संकलित	वीमन आफ इण्डिया
सकलित	बसतलाल मुरारका स्मृति ग्रथ

इतिहास

स्मिथ, मूजी तथा लायड	वल्ड हिस्ट्री
स्मिथ	द आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया
ए बी कीथ	द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया
बेनी प्रसाद	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता
जवाहरलाल नेहरू	ग्लिम्प्सस आफ वर्ल्ड हिस्ट्री
पनिक्कर	ए सर्वे आफ इण्डियन हिस्ट्री
रति भानुसिह नाहर	प्राचीन भारत का राजनीतिक व सास्कृतिक इतिहास

राजनीति

ए एम बुच	राइज एण्ड ग्रोथ आफ लिबरइज्म
बी पी गीतारमैया	हिस्ट्री आफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस (भाग १ व ४)
लाला लाजपतराय	यग इण्डिया
सी. वाई. चिनामणि	इण्डियन पालिटिक्स द म्यूटिनी

सस्कृति, दर्शन, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र

'दिनकर' रामधारी सिह	सस्कृति के चार अध्याय
देवराज	सस्कृति का दार्शनिक विवेचन
बेलवेंकर तथा रानाडे	हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी
बल्देव उपाध्याय	भारतीय दर्शन
यदुवंशी	शैव मत
दीवानचन्द	पश्चिमी दर्शन

स्टाउट	मैनुअल आफ साइकलोजी
सिन्हा	मनोविज्ञान
जाथर एण्ड बेरी	इण्डियन इकानोमिक्स
शाम शास्त्री	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
देवदत्त शास्त्री	कौटिलीय अर्थशास्त्र

जीवनी तथा विविध

मोहिनी मोहन गोस्वामी	विवेकानंद चरित्र
हरिश्चन्द्र विद्यालंकार	महर्षि दयानंद सरस्वती
चित्राव शास्त्री	चरित्र कोष (मराठी में)
एच कुंजरू	जी के देवधर
कालिदास	अभिज्ञान शाकुन्तलम्
दिलीप कुमार राय	एमार द ग्रेट

द एनसाइक्लोपीडिया अमेरिका

पत्र-पत्रिकाए आदि

आलोचना अंक २५ व २६

कल्याण (नारी विशेषांक)!

वनस्थली विद्यापीठ विवरण पत्रिका

मरुधर बालिका विद्यापीठ का सक्षिप्त सविधान

मरुधर महिला शिक्षण-सघ का सविधान।

सरस्वती (१९०६—१९५८)

चांद (१९२५—१९४२)

विशाल भारत (१९३०—१९५१)

माधुरी (१९२३—१९४७)

साहित्य संदेश (१९५०—१९५६)

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	११	समस्या	सदस्या
२१	२०	वेयक्तिक	वैयक्तिक
२१	२०	जागरुकता	जागरूकता
२१	३२	प्रतिमा	प्रतिभा
२६	१	कालीन	पूर्व कालीन
३२	१४	थी	है
३२	१७	ओर	ओर
३३	२८	अन्तविरोध	अन्तर्विरोध
७३	२	वेधानिक	वैधानिक
८८	६	गिरिदिडहृश	गिरिदिह
८८	१०	सख्या	सस्था
८९	२५	निर्माण के	निर्माण मे
९०	१	मालावारी	मालाबारी
९०	१	विववाह	विवाह
९७	१	की	को
९७	३०	निषेद	निषेध
९७	३०	विशेद	विशेष
९७	३०	परिस्थितियो	परिस्थितियो
९७	३३	आवश्यकना	आवश्यकता
९८	२५	सक्रातम	सक्रामक
९९	१०	वेध	वैध
१०१	२	नामक	नायक
१०१	१४	सिफारिस	सिफारिश
१०१	२१	उच्छ्रखलता	उच्छृंखलता
११३	९	शैणिक	शैक्षणिक
११३	१४	वेशिष्ठ्य	वैशिष्ठ्य
११६	६	जागरुक	'जागरूक
११७	१६	ध्यान	ध्यान
११९	३	पारीवारिक	पारिवारिक
११९	२७	निरूमण	निरूपण
१२६	१	सस्थाओ	सस्थाएँ
१३८	१४	स्वीकृति	स्वीकार
१३९	१०	प्रवेश कर	प्रवेश कर बता
१४५	४	धुमिल	धूमिल
१४६	४	का	—
१४७	७	की	के
१४७	१५	घरी	घरी
१४९	१९	भयो	गयो
१४९	२१	ओचक	औचक

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४	लोकिकता	लौकिकता
२५	है	है
३	चपे	चपं
५	प्रेमधन	प्रेमघन
१३	वेंगगात्र	बेंगगात्र
१४	निरूपरा	निरूपण
११	को	की
१३	प्रेमधन	प्रेमघन
१	'विपमोषधम्'	'विपमौषधम्
४	चलायो	चलायो
३२	को	की
१६	उच्छृ रखल	उच्छृंखल
२२	पैशाविक	पैशाचिक
१	गर्भ पात	गर्भपात
३	पूर्नविवाह	पुनर्विवाह
२१	फैलया	फैलाय
११	'वर्षा विन्दु'	'वर्षा विन्दु' के
१७	प्रेमधन	प्रेमघन
२०	सम्मत	सम्भव
७	विवाव	विवाह
४	इते	इतै
१२	अधक विज्ञ	सुविज्ञ
१५	धर्म से	धर्म से पूर्ण
१६	सहर्धामिणी	सहधर्मिणी
२७	लेखो	लेखकों
२५	ओर आकर्षित	अपनी ओर आकर्षित
१०	विलास	विकास
५	प्रतिवादन	प्रतिपादन
३३	साहित्यकान	साहित्यकार
१५	जागरुकता	जागरूकता
७	पुरावस्था	दुरावस्था
१३	क़ौल	ठौर
२४	मैथिली	मैथिली
२६	हमने	प्रति हमने
३१	क	की
११	सौरा	द्वारा
१८	विधवा	विधवा
१०	व्यंग	व्यंग्य
२२	बहि	बह्नि